हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—३५

खाद और उर्वरक

लेखक

फूलदेवसहाय वर्मा

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

खाद्यान्न की समस्या भारत की प्रमुख समस्या है। इसका समाधान हुए बिना हमारा देश सुखी और समुन्नत नहीं हो सकता। हमारी आबादी तेज़ी से बढ़ रही है और यद्यपि खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने का बराबर प्रयत्न हो रहा है, फिर भी हमें प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का गल्ला बाहर से मँगाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में इस समस्या का निराकरण करने के लिए और भी अधिक व्यापक प्रयत्न करना आवश्यक है।

गल्ले की पैदावार बढ़ाने का एक उपाय यह भी है कि खेती करने के तरीकों में सुधार हो तथा भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने की ओर अधिक ध्यान दिया जाय। यह पुस्तक इसी दृष्टि से लिखी गयी है। इसके लेखक श्री फूलदेवसहाय वर्मा हैं जिन्हें बाल्यकाल से ही इस विषय में दिलचस्पी रही है और व्यावहारिक अनुभव के साथ साथ वे कृषि सम्बन्धी प्रश्नों का बराबर अध्ययन करते रहे हैं। हिन्दी समिति के अनुरोध से आपने बड़े परिश्रम से यह पुस्तक तैयार की है जो सामान्य किसानों के लिए ही नहीं, वरन् इस विषय के विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए तथा खेती-बारी की उन्नति चाहनेवालों के लिए भी परमोपयोगी साबित होगी।

वर्मा जी हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर बराबर लिखते रहे हैं। आपके सैकड़ों अनुसन्धान पत्र तथा लेख अमेरिका, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन और भारत के वैज्ञानिक जर्नलों में छपे हैं। हिन्दी में आपने रबर, पेट्रोलियम, प्लास्टिक आदि पर तथा ईख और चीनी एवं विटामिन और आहार पर पुस्तकें लिखी हैं। आपकी 'कोयला' नामक पुस्तक हम समिति की ग्रन्थमाला में पहले प्रकाशित कर चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी इस ग्रन्थमाला का ३५वाँ पुष्प है। हमें आशा है कि अपनी महत्त्वपूर्ण सामग्री, आवश्यक आँकड़ों, विषयके सुस्पष्ट प्रतिपादन तथा सरल भाषा के कारण यह पुस्तक हिन्दी साहित्य के एक आवश्यक अंग की पूर्त्ति में सहायक सिद्ध होगी।

भगवतीशरण सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

भूमिका

मेरा जन्म किसान के घर में हुआ था। जीवन के प्रथम बारह बरस मैंने गाँव में किसानों के बीच बिताये हैं। उसी समय से खेती में मेरी दिलचस्पी रही है। पीछे मैं शहर चला आया और नियमित रूप से अध्ययन करने लगा। बी० एस-सी० और एम० एस-सी० पास करने के बाद भी नियमित रूप से कृषि के अध्ययन करने की मेरी उत्कट इच्छा थी पर परिस्थितियाँ कुछ ऐसी होती गयीं कि मैं ऐसा न कर सका।

बाद में मैं रसायन के अध्यापन-कार्य में लग गया। इस समय भी मेरी दिलचस्पी खेती में बराबर बनी रही। मकान के हाते में सब प्रकार की साग-सब्जियाँ, परवल, आलू, भिंडी, क्वाश, चुकन्दर, सोयाबीन, सेम, कवाछ आदि फूल और फल और अनाज धान, गेहूँ, जौ, चना, मटर, मकई, अरहर आदि और ईख उगाता रहा हूँ। उर्वरकों के उपयोग के साथ-साथ मैंने अपना कम्पोस्ट भी तैयार किया है।

इस दिलचस्पी और व्यावहारिक अनुभव के आधार पर ही मैं 'खाद और उर्वरक' पर पुस्तक लिखने का साहस कर सका हूँ। मेरे एक मित्र और सहपाठी सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के बाद कुछ बड़े पैमाने पर रांची के निकट खेती कर रहे हैं। उनके फार्म में मैं अनेक बार गया हूँ और खाद और उर्वरक की समस्या पर उनसे विचार-विमर्श किया है। उनके अनुभव का भी मैंने इस पुस्तक के लिखने में लाभ उठाया है।

'इण्डियन फार्मिंग' में खाद और उर्वरक पर अनेक निबन्ध समय-समय पर विशेषज्ञों द्वारा प्रकाशित हुए हैं। उर्वरकों के उपयोग पर कुछ बुलेटिनें भी इण्डियन कौंसिल ऑफ एग्रिकल्चरल रिसर्च द्वारा प्रकाशित हुई हैं। उन सबों से इस पुस्तक के लिखने में सहायता ली गयी है। बिहार के कृषि विभाग द्वारा भी कुछ पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। उनका भी उपयोग इस पुस्तक में किया गया है। इन पुस्तिकाओं के प्राप्त करने और कुछ फसलों के हिन्दी पर्यायवाची शब्द के प्राप्त करने में मुझे डा० उपेन्द्र नाथ वर्मा, वनस्पति-विज्ञान के प्रोफेसर रांची कृषि कालेज से सहायता मिली है। मैं उनका आभारी हूँ।

आशा है कि किसानों से लेकर खेती के छात्रों और अध्यापकों तक के लिए यह

पुस्तक लाभकारी सिद्ध होगी। जान-बूझकर इसकी भाषा सरल रखी गयी है ताकि सभी इस पुस्तक से लाभ उठा सकें।

भारत में खाद्यान्न की कमी है। खाद्यान्न की उपज बढ़ाने में खाद और उर्वरक का बड़ा हाथ है। यदि खाद और उर्वरक का उचित उपयोग हो, सिंचाई का समुचित प्रबन्ध हो और अच्छे बीज आसानी से उपलब्ध हों तो कोई कारण नहीं कि भारत में खाद्यान्न का उत्पादन दुगुना न हो जाय। पूरी आशा है कि इस पुस्तक के अध्ययन से खाद और उर्वरकों के सम्बन्ध की आवश्यक बातों की जानकारी हो जायगी और उससे खाद्यान्न के उत्पादन में सहायता मिलेगी।

शक्ति-निवास, बोरिंग रोड,
पटना—१

फूलदेवसहाय वर्मा

विषय-सूची

चित्र-सूची

* तारांकित चित्र अलग छापे गये हैं।

चित्र १--एशिया के सबसे बड़े सिन्दरी उर्वरक कारखाने का विहंगम दृश्य, पृ० ८६

पहला अध्याय

खेती के सम्बन्ध में भारत सरकार की योजनाएँ और सहकारी खेती

"उत्तम खेती मध्यम बान; निकृष्ट सेवा भीख निदान।"

भारत के अधिकांश निवासी गाँवों में रहते हैं। उनकी प्रधान जीविका खेती है। सन् १९५१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ३५·७ करोड़ में से २९·९ करोड़ अर्थात् ८३ प्रतिशत लोग गाँवों में निवास करते हैं। उनमें २४·९ करोड़, समस्त आबादी का प्राय: ७० प्रतिशत, खेती पर जीवन निर्वाह करते हैं। शेष मनुष्यों को भी अपने आहार के लिए खेती पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसे लोगों की संख्या क्रमश: बढ़ रही है जिनकी जीविका खेती है। १८७२ की मनुष्य-गणना में ऐसे व्यक्ति ६५ प्रतिशत ही थे जब कि १९५१ में ये ७० प्रतिशत हो गये। ग्रेट ब्रिटेन में समस्त आबादी का केवल ५ प्रतिशत ही खेती पर निर्भर करता है। देश में जितना धन पैदा होता है उसका ५०·२ प्रतिशत (१९५०-५१ की राष्ट्रीय आय कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार) खेती से आता है। उद्योग-धन्धों का विकास होने पर भी कृषि ही देश का सबसे बड़ा धन्धा रहेगा।

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता आहार की है। खेती से ही आहार प्राप्त होता है। अनेक उद्योग-धन्धे, जैसे वस्त्र, जूट और चीनी के कारखाने खेती से प्राप्त कच्चे माल पर ही निर्भर करते हैं। स्टार्च, साबुन, वनस्पति आदि उद्योग-धन्धे भी खेती पर ही निर्भर करते हैं। खेती अच्छी होने से किसानों के पास अधिक धन होगा और उनकी उद्योग-धन्धों के सामान खरीदने की क्षमता बढ़ेगी। इससे उद्योग-धन्धों के विकास में भी सहायता मिलेगी। खेती का प्रभाव समाज और राजनीति पर भी पड़ता है। खेती खुली वायु में होती है। इससे किसान हट्टे-कट्टे और अधिक स्वस्थ होते हैं। इन्हीं लोगों में से हमें सैनिक प्राप्त होते हैं जो देश की रक्षा के लिए बड़े आवश्यक हैं।

सन् १९५० में कोरिया युद्ध छिड़ा और भारत की खाद्यसमस्या जटिल हो गयी।

अत: भारत ने प्रथम पंचवर्षीय योजना बनायी, जिसका मुख्य उद्देश्य कृषि-उत्पादन बढ़ाना था। यह योजना १९५१ में बनी। इसकी रूप-रेखा १९५१ के जुलाई में प्रकाश में आयी। कुछ हेर-फेर के साथ १९५२ के ८ दिसम्बर से योजना लागू हुई। इस योजना में १९५२ से १९५६ तक २०६९ करोड़ रुपये का खर्च कूता गया था। योजना में कृषि और सामुदायिक योजना का विकास था, जिसमें सिंचाई और बिजली का उत्पादन भी सम्मिलित था।

समस्त धन का लगभग ३२ प्रतिशत अर्थात् ६६२ करोड़ रुपया खेती और सिंचाई में खर्च करने की योजना थी। आशा की गयी थी कि इससे कृषि-उत्पादन की वृद्धि इस प्रकार होगी—

खाद्यान्न—७६ लाख टन (१४ प्रतिशत की वृद्धि)
कपास —१२·६ लाख गाँठ (४२ प्रतिशत की वृद्धि)
जूट —२०·९ लाख गाँठ (६३ प्रतिशत की वृद्धि)
ईख —७ लाख टन (१२ प्रतिशत की वृद्धि)
तेलहन —४ लाख टन (८ प्रतिशत की वृद्धि)

इस योजना में खाद्यान्न और व्यापार की फसलों, जैसे ईख, कपास और जूट के उत्पादन पर विशेष जोर दिया गया था। इसके साथ साथ मछली-उत्पादन, पशु-पालन, मिट्टी-संरक्षण और जंगल-सुधार पर भी जोर दिया गया था। खाद्यान्न उत्पादन के लिए खेत की जोताई, उर्वरक का अधिकाधिक उपयोग, उत्तम बीज और सिंचाई के लिए पर्याप्त जल की प्राप्ति पर विशेष बल दिया गया था। परती जमीन को बड़े पैमाने पर जोतकर फसल उगाने का प्रयत्न भी इसमें सम्मिलित था। जापानी विधि से धान उपजाने पर जोर दिया गया। किसान ही खेत के मालिक हों ताकि खेती में वे अधिक दिलचस्पी ले सकें; इसके लिए जमीन के कानून में संशोधन हुआ और जमीन्दारी की समाप्ति हुई।

इसका परिणाम अच्छा हुआ। कृषि उत्पादन संख्या जहाँ सन् १९५०-५१ में ९६ थी, वहाँ सन् १९५२-५३ में १०३, १९५३-५४ में ११४, १९५४-५५ में ११६·४ पर १९५५-५६ में कुछ कम ११३·७ हो गयी।

अनाज-उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है, इसका पता अनाज के आयात से भी लगता है। १९५१ में २१६·७९ करोड़ रुपये का, १९५२ में २०८·०७ करोड़ का, १९५३ में ८५·९५ करोड़ का, १९५४ में ४७·०२ करोड़ का और १९५५ में केवल ३३·१ करोड़ रुपये का अनाज बाहर से भारत में आया। १९५१ में जहाँ ५१ लाख

टन अन्न बाहर से आया वहाँ १९५५ में ७ लाख टन ही आया। १९५६ में भारत में १० लाख टन अनाज भंडार में था। १९५८-५९ में २० लाख टन गेहूँ और ५ लाख टन चावल मँगाने का प्रयत्न हो रहा है जिसका मूल्य ७७ करोड़ रुपया आँका गया है।

अनाज के उत्पादन की वृद्धि से देश की आर्थिक दशा में स्थिरता आ गयी है, विदेशी मुद्रा की बचत हुई है जिससे उद्योग-धन्धों के सामान बाहर से मँगाने में सुविधा हुई है। कपास के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। जूट और चीनी के उत्पादन में यद्यपि सन् १९५२-५३ और १९५३-५४ में कमी हुई पर १९५४-५५ और १९५५-५६ में पर्याप्त वृद्धि हुई है। १९५४-५५ में १५·९ लाख टन और १९५५-५६ में १८·७ लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ। छोटी-छोटी सिंचाई की योजनाओं से इसमें विशेष सहायता मिली है। पहली पंचवर्षीय योजना में १०० लाख एकड़ ज़मीन की सिंचाई का प्रबन्ध हुआ और ६००० नल-कूप खोदे गये। अमोनियम सल्फेट की खपत भी इस बीच प्रायः दुगुनी हो गयी है। जहाँ पहली पंचवर्षीय योजना के पहले २७५ हजार टन अमोनियम सल्फेट खपता था वहाँ अब ६१० हजार टन की खपत हो गयी है। इस बीच १० लाख एकड़ नयी भूमि की जुताई हुई है। योजना के पूर्व जहाँ २५२० लाख एकड़ भूमि में खेती होती थी वहाँ उसके बाद खेतीवाली भूमि २७१० लाख एकड़ हो गयी है। जापानी विधि से धान की खेती जहाँ १९५२-५३ में केवल ४ लाख एकड़ में होती थी वहाँ १९५३-५४ में यह १३ लाख एकड़ भूमि में हो गयी है, फलतः उत्पादन की वृद्धि से अनाज की बिक्री के नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रही।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में और उत्पादन बढ़ाने की योजना बनी है। आबादी की वृद्धि और उद्योग-धन्धों के विकास से कृषि उत्पादन की माँग बढ़ गयी है और बढ़ेगी। इस दूसरी योजना में खेती पर ५६५ करोड़ रुपया लगाने का विचार है। इससे——

अनाज उत्पादन में	१०० लाख टन
कपास उत्पादन में	१३ लाख गाँठ
तेलहन उत्पादन में	१५ लाख टन
जूट उत्पादन में	१० लाख गाँठ
ईख उत्पादन में	१३ लाख टन

वृद्धि की आशा की जाती है।

वृद्धि के लिए उन्नत जोताई, अच्छी सिंचाई और अधिक उर्वरक का उपयोग आवश्यक माना गया है। हरी खाद और कम्पोस्ट के उपयोग से भी उत्पादन की वृद्धि की चेष्टा हो रही है। अच्छे बीज का भी प्रबन्ध किया जा रहा है। जगह-जगह पर पचीस पचीस एकड़ के, समस्त देश में ४२८२ फार्म खुलेंगे जिनमें उत्तम बीज उपजाकर किसानों में वितरण होगा। इस बीच २० लाख बंजर भूमि का भी कर्षण होगा। जापानी विधि से खेती का क्षेत्र २० लाख एकड़ से बढ़कर १९६०-६१ तक ४० लाख एकड़ हो जायगा। इससे आशा की जाती है कि २० लाख टन की वृद्धि धान के उत्पादन में होगी।

बिहार सरकार ३५०००० रुपया नगरपालिकाओं को कर्ज़ दे रही है ताकि इस धन से वे नगरों में कम्पोस्ट तैयार कर किसानों के बीच वितरण करने का प्रबन्ध करें। सन् १९५७-५८ में सरकार ११७५०० रु०, १९५८-५९ में १२२६९० रु०, १९५९-६० में ५५००० रु० और १९६०-६१ में ५४८१० रु० देगी। यह कर्ज ५ से १० वर्षों में अदा कर देना होगा।

हरी खाद के लिए सरकार प्रति एकड़ एक औंस घैंचा या सनई के बीज का पैकेट वितरित करेगी, जिसको खेतों के किनारे किनारे किसान बोकर घैंचा या सनई का बीज उपजाकर हरी खाद के लिए उसका उपयोग करेंगे। उत्तर प्रदेश में ऐसे बीज के २५ लाख पैकेट, पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा में एक एक लाख पैकेट वितरित होंगे। हरी खाद के उपयोग से पैदावार दुगुनी हो जाने की आशा की जाती है।

अपर्याप्त उत्पादन भारत की खेती का सबसे बड़ा दोष है। उत्पादन वृद्धि के लिए वैज्ञानिक रीतियों का अनुसरण अनिवार्य हो जाता है। वैज्ञानिक ढंग अपनाने में अधिक पूँजी और विस्तृत कृषि-क्षेत्र का होना आवश्यक है। भारत में इन दोनों का अभाव है। यहाँ छोटे-छोटे किसानों की संख्या बहुत बड़ी है, जैसा कि रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की 'ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण' रिपोर्ट से पता लगता है। उसके आँकड़े ये हैं—

किसानों के प्रकार	कुल किसानों के साथ भूमि	प्रति किसान की भूमि	बोई जाने वाली कुल भूमि
	प्रतिशत		प्रतिशत
छोटे किसान	३०	लगभग ३ एकड़	१०
मध्यम किसान	४०	लगभग ६ एकड़	३२
बड़े किसान	२०	लगभग १५ एकड़	२८
बहुत बड़े किसान	१०	लगभग २७ एकड़	३०

भारत के किसानों में ७० प्रतिशत ऐसे हैं जिनके पास खेती-योग्य भूमि का कुल ४२ प्रतिशत है और प्रति किसान कुल भूमि लगभग ६ एकड़ है। स्पष्ट है कि इतनी छोटी इकाइयों में वैज्ञानिक रीतियों से खेती करना सम्भव नहीं है।

इन कठिनताओं के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि सहकारी खती को अपनाया जाय। सहकारी खेती के मुख्यतः निम्नलिखित लाभ बतलाये जाते हैं—

१. सहकारी खेती से खेती का खर्च कम हो जाता है।

२. मजदूर का पूरा पूरा उपयोग होता है।

३. जानवरों का जो अकेले खेती करने से ठीक-ठीक उपयोग नहीं हो पाता, सहकारी खेती करने से ठीक-ठीक उपयोग होता है।

४. कृषि के उन्नत औजारों का ठीक-ठीक उपयोग होता है।

५. बीज, खाद, खेती के अन्य सामान तथा औजार, कच्चा माल, जैसे लोहा, सीमेंट, कोयला आदि क्रैडिट पर प्राप्त कर सकते हैं। अपनी पैदावार को ठीक से बेच सकते हैं।

६. खेत, पूँजी तथा मजदूर का ठीक-ठीक उपयोग होता है।

७. ठीक से बाँध आदि बाँधकर भूमि-संरक्षण का कार्य किया जा सकता है।

८. किसान अपने खेत के छोटे-छोटे टुकड़ों में उगायी फसल को अकेले ठीक से देखभाल नहीं कर सकता। लेकिन जब सहकारी खेती करता है, तो इसकी देख-भाल करना आसान होता है।

९. सिंचाई का भी ठीक से बन्दोबस्त अकेले खेती करने से नहीं हो पाता, लेकिन सहकारी खेती करने से पटवन का ठीक से बन्दोबस्त हो सकता है।

१०. सहकारी खेती से सामाजिकता की भावना बढ़ती है और साम्प्रदायिकता की भावना दूर होती है। पारस्परिक वैमनस्य दूर होता है और आपसी सम्बन्ध दृढ़ होता है तथा भेद-भाव मिट जाता है।

सहकारी खेती का रूप कैसा रहना चाहिए यह विषय विचारणीय है। सहकारी खेती के प्रधानतया तीन रूप हैं—

१. सामूहिक खेती—इसमें व्यक्तिगत स्वामित्व का अपहरण होता है। सब खेत सरकार के या सोसायटी के होते हैं। किसान मजदूर का कार्य करते हैं। यह रीति चीन और रूस में बरती जाती है। भारत में ऐसा होना सम्भव नहीं है। अपने अपने खेतों से किसानों को इतना प्रेम होता है कि वे उन्हें देने को तैयार नहीं होंगे।

२. सहकारी खेती—इसमें किसान का व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त नहीं किया जाता, किन्तु बहुत से किसान अपनी भूमि मिलाकर एक बड़ी इकाई का निर्माण करते

हैं और फिर वैज्ञानिक ढंग से सामूहिक खेती जैसा कार्य करते हैं। भारत में ऐसा सम्भव है। अनेक स्थलों पर ऐसी खेती करने का प्रयास हो रहा है। इसमें दोष यह बतलाया जाता है कि बड़ी-बड़ी इकाइयों के निर्माण से और वैज्ञानिक साधनों के उपयोग से बेरोजगारी की समस्या बढ़ेगी। पर खेती से जो व्यक्ति मुक्त होंगे उन्हें अन्य धन्धों में लगाया जा सकता है।

३. सहकारिता के आधार पर व्यक्तिगत खेत——यहाँ सहकारिता का सहारा केवल उन्हीं आवश्यकताओं के लिए लिया जाता है जिनकी पूर्ति एक छोटे से किसान के लिए सम्भव नहीं है। किसानों के खेत ज्यों के त्यों बने रहते हैं लेकिन बहुत से कार्य सहयोग से होते हैं, जैसे फसलों की खरीद-बिक्री, खेती के औजार तथा मशीनों का उपयोग, फसल की देखरेख का सम्मिलित बन्दोबस्त आदि। इस ढंग में इस सहकारी खेती-समिति के द्वारा खेती की किसी योजना के लिए इसका सदस्य प्रतिबन्ध में नहीं है कि वह उसे करे ही। वह उसी खास मतलब को करता है, जिसके लिए वह समिति या सोसायटी का सदस्य है।

ऊपर के तीनों प्रकार की सहकारी खेती अन्य-अन्य देशों में की जाती है, पर भारत की वर्तमान परिस्थिति में सहकारिता के आधार पर व्यक्तिगत खेती ही सबसे अच्छी है, यद्यपि अनेक स्थानों पर सहकारी खेती भी हो रही है।

दूसरा अध्याय

खाद्यान्न समस्या और खाद

"खादै कूड़ा ना टरै, करम लिखा टरि जाय।
रहिमन कहत बनाय के, देवो पांस बनाय।।"

संसार की आबादी दो अरब ६९ करोड़ ५० लाख है। यह आबादी प्रति वर्ष २ करोड़ ९८ लाख की दर से बढ़ रही है। भारत की आबादी आज ३८·४ करोड़ है। यहाँ की आबादी भी प्रतिवर्ष ५० लाख की गति से बढ़ रही है। जितने मनुष्य संसार में हैं उन सबको भरपेट भोजन नहीं मिल पा रहा है। आबादी के बढ़ने से खाद्यान्न समस्या दिन-दिन जटिल होती जा रही है। भारत को भी आज खाने के सामान, गेहूँ और चावल बाहर से मँगाने पड़ते हैं। यह आवश्यक है कि खाद्य समस्या को हम ठीक-ठीक समझें और ऐसा प्रयत्न करें कि सबको भरपेट पुष्टिकर भोजन मिले।

संसार में आज जो वैमनस्य बढ़ा हुआ है, एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के प्रति जो द्वन्द्व चल रहा है, उसका मुख्य कारण खाद्य सामग्री की कमी है। प्रत्येक देश अपने देशवासियों का ही चिन्तन करता है और उन्हें भरपेट भोजन देना चाहता है। इसके लिए वह सब कुछ करने को तैयार है। सारे संसार का चिन्तन वह नहीं करता।

कुछ देश ऐसे हैं जो आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न उत्पन्न करते हैं। ऐसे देशों में मुख्य अमेरिका है। कुछ देश ऐसे हैं जहाँ वहाँ के अधिवासियों के खिलाने के लिए पर्याप्त खाद्यान्न नहीं उत्पन्न होता। ऐसे देशों में ग्रेट ब्रिटेन एक है। जो देश पर्याप्त खाद्यान्न नहीं उत्पन्न करते वे अपने देश में अन्य पदार्थों को तैयार कर बाहर भेजते हैं और उनके स्थान पर बाहर से खाद्य सामग्री मँगाते हैं। सब देशों में सब प्रकार की खाद्य सामग्री नहीं उपजती। कुछ देशों में कुछ उपजता है तो कुछ देशों में कुछ। कहीं दूध अधिक होता है तो कहीं अण्डे अधिक पैदा होते हैं। कहीं अनाज अधिक उपजता है तो कहीं फल अधिक उपजते हैं। इस प्रकार एक देश की कमी दूसरे देश की उपज से पूरी होती है।

विभिन्न राष्ट्रों के बीच वैमनस्य दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि खाद्यान्न

का उत्पादन बढ़ाया जाय। ऐसा प्रयत्न किया जाय कि किसी देश के निवासी को भूख से मरने की नौबत न पहुँचे। इसके लिए विभिन्न देश विभिन्न रीतियों से प्रयत्न कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना संसार में सुख और शान्ति स्थापित करने के लिए हुई है और इसके लिए वह प्रयत्न कर रहा है कि संसार में पर्याप्त खाद्यान्न का उत्पादन हो।

यदि संसार के सब राष्ट्र परस्पर सहयोग कर विज्ञान की सहायता से खेती में सुधार करें और मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ायें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि इतना खाद्यान्न उपजाया जा सकता है जिससे आज के सब मनुष्यों को ही भरपेट पुष्टिकर भोजन न मिले, वरन् अनेक वर्षों तक आनेवाली पीढ़ी को भी भरपेट भोजन मिल सके। इसके लिए परस्पर सहयोग से सब राष्ट्रों को मिलकर भगीरथ प्रयत्न करने की आवश्यकता है। यह काम असम्भव नहीं है, यद्यपि कठिन अवश्य है। प्रयत्न से इसमें पूरी सफलता मिल सकती है।

सब देशों की पैदावार एक सी नहीं होती। किसी देश में गेहूँ प्रति एकड़ अधिक उपजता है और किसी देश में कम। कहीं धान की पैदावार बहुत अच्छी होती है और कहीं कम। भारत में पैदावार प्रति एकड़ अन्य कई देशों से बहुत कम होती है। पैदावार बढ़ाने के लिए आधुनिक साधनों के अपनाने में हम अभी समर्थ नहीं हुए हैं। भारत की मिट्टियाँ यद्यपि अच्छी हैं, जलवायु भी अनुकूल है पर कुछ तो अज्ञान के कारण और कुछ दरिद्रता के कारण हम अपने खेतों में उतना अनाज नहीं उपजा सकते जितना अनाज अन्य कई देशों में उपजता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में पैदावार बढ़ाने की चेष्टाएँ हुई थीं और उसके फलस्वरूप पैदावार में पर्याप्त वृद्धि हुई है, पर अब भी इस दिशा में और प्रयत्न करने की गुंजायश है और यदि प्रयत्न किया जाय तो पैदावार को पर्याप्त बढ़ाकर हम अपने आहार की पूर्ति अपने देश में उत्पन्न सामग्रियों से ही कर सकते हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में पर्याप्त बंजर भूमि, जंगल और परती ज़मीन कर्षण में आयी। उसमें आधुनिक साधनों का उपयोग हुआ। उससे पैदावार में पर्याप्त वृद्धि हुई। उचित जोताई, बोआई, सिंचाई और उपयुक्त खाद के व्यवहार से अब भी पैदावार बहुत कुछ बढ़ायी जा सकती है। खाद्य के सम्बन्ध में तब देश स्वतंत्र हो सकता है और उसे अन्य देशों पर निर्भर रहना नहीं पड़ेगा।

पैदावार बढ़ाने में खाद का क्या हाथ है, इसी की जानकारी के लिए यह पुस्तक लिखी जा रही है। खेतों में केवल खाद डालने से ही पैदावार नहीं बढ़ायी जा सकती। कैसी खाद, किस मात्रा में और किस समय खेतों में डालनी चाहिए, इसकी जानकारी बहुत आवश्यक है।

खेतों की उपज अनेक बातों पर निर्भर करती है। इनमें कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है। हम उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर मनुष्य का अधिकार है और उनमें हम परिवर्तन कर सुधार कर सकते हैं। इनमें निम्नलिखित बातें अधिक महत्त्व की हैं——

१. मिट्टी और वायु का ताप——फसल के उगाने में मिट्टी और वायु का ताप बड़े महत्त्व का है। ठंडे देशों में पेड़-पौधे अधिक नहीं उगते। उत्तरी ध्रुव प्रदेशों के ताप पर कोई फ़सल नहीं उगती। बर्फ़ से ढँके प्रदेशों में बहुत कम पेड़-पौधे उगते हैं। जो उगते भी हैं वे खाद्यान्न की दृष्टि से महत्त्व के नहीं हैं। गरम और अर्ध-गरम देशों का ताप पेड़-पौधों के लिए बहुत अनुकूल है। अनेक पेड़-पौधे ऐसे ताप पर उपजते हैं। मिट्टी और वायु के ताप पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है, यह प्राकृतिक है। इसमें हम कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। सौभाग्य से भारत का ताप पेड़-पौधों के उगाने और अन्न उपजाने के लिए बहुत अनुकूल है। यहाँ के ताप में सब प्रकार के पेड़-पौधे उगाये जा सकते हैं। यह देश इतना विस्तृत है कि बर्फ़ से ढँके स्थानों से लेकर गरम से गरम स्थल इसमें विद्यमान हैं। यही कारण है कि देवदार और चीड़ के पेड़ों से लेकर रबर और कपूर के वृक्ष तक यहाँ लगाये जा सकते हैं।

२. सूर्य का प्रकाश——पेड़-पौधों के लिए सूर्य का प्रकाश बड़ा आवश्यक है। सूर्य के प्रकाश से ही पौधों में वह शक्ति आती है जिससे पौधे वायु के कार्बन डाइआक्साइड को ग्रहण कर कार्बन लेकर बढ़ते और सूर्य-प्रकाश की शक्ति को अनेक कार्बनिक पदार्थों में संचित रखते हैं। यही सूर्य की शक्ति हमें अनाज, पत्ते, फूल और फल के रूप में प्राप्त होती है। इसी शक्ति से हम बढ़ते, स्वस्थ रहते और काम करने की क्षमता प्राप्त करते हैं।

सूर्य का बहुत तीव्र प्रकाश कुछ पौधों की वृद्धि को रोकता है। ऐसे पौधों को तीव्र प्रकाश से बचाने के लिए छाया में रखना पड़ता है, कम से कम उस समय जब प्रकाश तीव्रतम हो। गरमी के दिनों में छोटे-छोटे पौधों को दोपहर के समय छाया में रखना पड़ता है। इस प्रकार छाया द्वारा सूर्य-प्रकाश की तीव्रता को कम कर सकते हैं।

सूर्य-प्रकाश के स्थान में कृत्रिम प्रकाश का उपयोग किया जा सकता है अथवा नहीं; इसका प्रयोग आज हो रहा है। बिजली का प्रकाश आज हमें प्राप्य है। ऐसा प्रकाश पाना सरल है और सम्भव है कि जल-विद्युत कारखानों से बहुत सस्ता भी प्राप्त हो जाय। इस सम्बन्ध में जो प्रयोग किये गये हैं उनसे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि बिजली के प्रकाश में भी कुछ पौधे उगाये जा सकते हैं। कुछ फूल गरमी में फूलते हैं। प्रयोगों से पता लगता है कि सूर्य-प्रकाश की अधिकता के कारण ऐसे वृक्षों

में फूल लगते हैं। जाड़े के दिनों में बिजली का प्रकाश देकर गरमी में फूल देनेवाले कुछ पौधों में फूल उगाया गया है। इससे मालूम होता है कि सूर्य-प्रकाश के स्थान में कुछ सीमा तक बिजली का प्रकाश भी उपयुक्त हो सकता है।

३. मिट्टी की गहराई और बनावट—उपज के लिए मिट्टी ऐसी होनी चाहिए कि पेड़-पौधों की जड़ें उसमें जम सकें। जब तक जड़ जमती नहीं, पेड़-पौधे खड़े नहीं रह सकते। खड़े न रहने से वे गिरकर नष्ट हो सकते हैं। जड़ों को मिट्टी में कुछ दूरी तक प्रवेश करना चाहिए ताकि मिट्टी से वे अपना आहार और पानी खींच सकें। पत्थर पर कोई पौधा इस कारण नहीं उगता कि उसमें जड़ें प्रवेश नहीं कर सकतीं और इस प्रकार आहार और पानी से वंचित रहती हैं। रेत में भी पौधे नहीं उगते। रेत में वे खड़े नहीं हो सकते और वहाँ न पानी ही इकट्ठा हो सकता है। कुछ सीमा तक मिट्टी सुधारी जा सकती है। मिट्टी की बनावट में परिवर्तन किया जा सकता है। इसके लिए खेतों को कोड़ना और जोतना पड़ता है। अन्य उपायों से भी मिट्टी का सुधार हो सकता है।

४. मिट्टी में नमी—मिट्टी में नमी का होना बड़ा आवश्यक है। नमी की मात्रा भिन्न-भिन्न स्थलों की मिट्टी में भिन्न-भिन्न होती है। नमी बहुत कुछ जलवायु, ढाल, मिट्टी की बनावट और धरती की सतह पर उगे पेड़-पौधों पर निर्भर करती है। सिंचाई, पानी-बहाव, जुताई और घास-पात के नियंत्रण से नमी में बहुत कुछ परिवर्तन किया जा सकता है। अनेक स्थलों की मिट्टी में नमी कम रहती है। ऐसी मिट्टी में बीज नहीं अँकुरते और पेड़-पौधे नहीं बढ़ते। बीज के अँकुरने के लिए मिट्टी में जल की एक निश्चित मात्रा रहनी चाहिए। कभी-कभी सूखा होने पर खेत की सिंचाई कर बीज की बोआई होती है।

५. मिट्टी में वायु—मिट्टी में वायु का रहना आवश्यक है। पौधों की जड़ों को वायु मिलनी चाहिए। वायु के अभाव में वे न उगते हैं और न ठीक तरह से बढ़ते ही हैं। वायु की मात्रा पानी-बहाव और जुताई पर बहुत कुछ निर्भर करती है। खेतों की गोड़ाई भी इसी उद्देश्य से होती है। मिट्टी जितनी अधिक जुती हुई हो और जड़ों में पानी इकट्ठा न होता हो उतनी ही अधिक वायु जड़ों को मिलती है। खेत की सिंचाई के बाद मिट्टी बैठ जाती है। ऐसी मिट्टी को हलका करने के लिए गोड़ाई की आवश्यकता पड़ती है।

६. धरती की ढाल और पथरीलापन—जमीन की ढाल ऐसी होनी चाहिए कि उसकी जुताई सुगमता से हो सके। जमीन में कंकड़-पत्थर भी नहीं रहने चाहिए। इनसे जुताई में रुकावट पहुँचती है।

७. **अतिरिक्त लवण**--किसी किसी मिट्टी में लवणों की मात्रा अधिक रहती है। ऐसी मिट्टी में पेड़-पौधे नहीं उगते। खारी मिट्टी में पर्याप्त सोडियम सल्फेट रहता है। सज्जी मिट्टी में पर्याप्त सोडियम कार्बोनेट रहता है। ऐसी मिट्टी में पौधे न उगते और न पनपते ही हैं। इन लवणों को निकाल देने पर ही फसलें उग सकती ह। ऐसी मिट्टी का सुधार हो सकता है। जल द्वारा लवणों को घुलाकर निकाला जा सकता है। चूना डालकर भी लवणों को निष्क्रिय बनाया जा सकता है। छोआ डालकर ऐसी मिट्टी के उपजाऊ बनाने का प्रयत्न उत्तर प्रदेश में हुआ है।

८. **पेड़-पौधों के रोग और कीड़े**--कुछ पौधों में जल्द रोग लग जाते हैं, कुछ में नहीं। प्रयत्न हुआ है ऐसे पौधों के उगाने का जिनमें रोग न लगे अथवा कम से कम रोग लगे। कुछ सीमा तक इसमें सफलता मिली है। बीजों के चुनाव से रोगों का आक्रमण कुछ सीमा तक रोका जा सकता है। कुछ पेड़-पौधे कीड़ों से आक्रान्त होते हैं। इन कीड़ों के मार डालने का सफल प्रयत्न हुआ है। आज अनेक ऐसी औषधियाँ बनी हैं जिनसे पौधों के रोग रोके जा सकते हैं और खेतों में लगनेवाले कीड़ों का विनाश किया जा सकता है। इनसे बचने के लिए कृषिविभाग से सहायता लेनी चाहिए। रोगों से बचाने और कीड़ों को मारने के लिए उसके पास साधन रहते हैं और उससे इसमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

९. **बाढ़ और आँधी**--अन्य अनुकूल परिस्थितियाँ होने और फसलों के अच्छे प्रकार से उगने पर भी बाढ़ के कारण कभी कभी फसलें नष्ट हो जाती हैं। भारत में कुछ नदियाँ ऐसी हैं जिनमें बराबर बाढ़ आती रहती है और फसलों के साथ-साथ गाँवों को भी बहा ले जाती है। ऐसी नदियों में बाँध बाँध कर बाढ़ की उग्रता कम की जा सकती है। भारत की तीन ऐसी प्रमुख नदियों में बाँध बाँधे जा रहे हैं। ये नदियाँ बिहार की दामोदर और कोसी नदियाँ और उड़ीसा की महानदी है। इन तीनों नदियों के कारण प्रायः प्रति वर्ष कहीं न कहीं बाढ़ आकर लोगों को अपार कष्ट देती रहती है। इन तीनों नदियों की बाढ़ रोकने का प्रयत्न हो रहा है और इन में बाँध बाँधे जा रहे हैं। इससे केवल बाढ़ ही नहीं रुकेगी वरन् नदी का पानी, जो व्यर्थ बहकर समुद्र में मिल जाता है, रोककर रखा जा सकता है, जिससे लाखों एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती है। यही नहीं, उनसे सस्ती बिजली भी उत्पन्न की जा सकती है जिसका उपयोग अनेक उद्योग-धन्धों के विकास में किया जा सकता है। दामोदर घाटी योजना, कोसी योजना और महानदी योजना का उद्देश्य यही है। आशा है कि इन योजनाओं के पूरा हो जाने पर वहाँ के अधिवासियों की सुख-समृद्धि बहुत कुछ बढ़ जायगी।

कभी कभी आँधी से भी फसलों को बहुत नुकसान होता है। सौभाग्य से भारत में आँधी ऐसे समय गरमी के मौसम में आती है जब खेतों में फसलें नहीं रहतीं। इससे फसलों की हानि तो कम ही होती है पर उस समय होनेवाले आम और लीची के फलों की हानि बहुत अधिक होती है। कभी-कभी तो आँधियों के कारण आम और लीची की फसलें बिल्कुल नष्ट हो जाती हैं। आँधी के रोकन और उससे होनेवाली हानियों से बचने का अब तक कोई सफल प्रयत्न नहीं हुआ है।

१०. खाद—फसल उगाने के लिए अनुकूल परिस्थितियों के रहते हुए भी कभी-कभी फसलें अच्छी नहीं होतीं। इसका प्रमुख कारण मिट्टी में उन तत्त्वों की कमी है जिनसे पौधे बढ़ते और फूलते-फलते हैं। एक ही खेत में बार बार फसल उगाने से मिट्टी की उर्वरता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। कुछ प्राकृत साधन ऐसे हैं जिनसे मिट्टी की उर्वरता का विनाश होने से आप से आप रक्षा होती है। पर इसमें समय अधिक लगता है।

जैसे मनुष्य को आहार की आवश्यकता होती है और उसके अभाव में वह बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता और उसकी कार्य करने की क्षमता भी नष्ट हो जाती है, वैसे ही पौधों को भी आहार की आवश्यकता होती है। आहार के अभाव में उनकी वृद्धि रुक जाती, फूलना-फलना बन्द हो जाता और अन्त में वे सूख जाते हैं। आहार की कमी से फूलने और फलने में कमी हो जाती है और पर्याप्त अनाज नहीं पैदा होता। अच्छी पैदावार के लिए पौधों को आवश्यक आहार उचित मात्रा में और समय पर मिलना चाहिए।

पौधों को आहार मिट्टी से मिलता है। पौधों की जड़ें आहार को ग्रहण कर पौधों के विभिन्न अंगों में ले जाकर उनकी पुष्टि करती हैं। मिट्टी में पौधों का आहार रहता है। पर बार-बार फसल के उगाने से आहार की कमी हो जाती है। धीरे-धीरे पैदा-वार कम होती जाती है। पदावार कम नहीं हो इसके लिए आवश्यक है कि हम मिट्टी में समय-समय पर पौधों का आहार डालें। साधारणतया इसके लिए हम खेतों में 'खाद' डालते हैं। खाद में पौधों के आवश्यक आहार रहते हैं।

खाद शब्द संस्कृत भाषा के 'खाद्य' से निकला है जिसका अर्थ होता है भोजन, वह जो खाया जाय। अंग्रेजी में खाद के लिए मैनियोर शब्द का उपयोग होता है। मैनियोर का शाब्दिक अर्थ है हाथ से काम करना, खनना। इसी अर्थ में यह पहले प्रयुक्त होता था। धीरे-धीरे इस अर्थ में परिवर्तन हुआ। १७वीं और १८वीं सदी में मैनियोर का अर्थ हुआ ऐसे पदार्थ जिनके मिट्टी में देने से उपजाऊ शक्ति की वृद्धि होती थी। उस समय खड़िया, चूना, मार्ल (एक प्रकार की मिट्टी; अवमृदा) और

जली हुई मिट्टी मैनियोर कही जाती थी। आजकल मैनियोर उन पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है, जो खेत की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते हैं। आज 'घरेलू खाद' या 'गोबर खाद' ही वास्तविक खाद हैं। चूना, खड़िया और अवमृदा की अब खाद में गिनती नहीं होती। इन्हें मिट्टी-सुधारक या संशोधक कहते हैं। शोरा और पैठिक धातुमल सदृश पदार्थों को, जिनमें पौधों के पोषण के एक या दूसरे तत्त्व रहते हैं, हम 'कृत्रिम खाद', 'रासायनिक खाद' या 'उर्वरक' नाम देते हैं। अंग्रेजी के 'फरटीलाइज़र' शब्द का पर्यायवाची शब्द हमारे विचार में 'उर्वरक' होना चाहिए, यद्यपि आजकल दैनिक पत्रों में इसके लिए 'रासायनिक खाद' शब्द का उपयोग हो रहा है। कभी-कभी खाद और उर्वरक पर्यायवाची शब्द समझे जाते हैं। एक के स्थान में दूसरे का उपयोग मुक्त रूप से होता है। अंग्रेजी में भी मैनियोर और फरटीलाइज़र पर्यायवाची शब्द समझे जाते हैं। मेरे विचार में दोनों के बीच विभेद रखना आवश्यक है, जैसा अन्य लोगों ने भी किया है।

कुछ लोग खाद को दो वर्गों में विभक्त कर उन्हें 'कार्बनिक खाद' और 'अकार्बनिक या खनिज खाद' कहते हैं। कार्बनिक खाद से उनका आशय उन सभी पदार्थों से है जो पेड़-पौधों से और पशु-पक्षियों के मल-मूत्र आदि से प्राप्त होते हैं। साधारणतया हम इन्हें 'खाद' कहते हैं। अकार्बनिक या खनिज खाद वे पदार्थ हैं जो अकार्बनिक उद्गमों से, कारखानों या प्राकृतिक या नैसर्गिक निक्षेपों से प्राप्त होते हैं। इन्हें हम फरटीलाइज़र या 'उर्वरक' कहते हैं।

इस पुस्तक में हम 'खाद' शब्द का उपयोग उन सभी पदार्थों के लिए करेंगे जो घास-पात, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों के मल और मूत्र एवं प्राणियों से प्राप्त होते हैं। इनमें वे सभी पदार्थ आ जाते हैं जिन्हें हम 'घरेलू खाद', 'गोबर खाद', 'खलिहान की खाद', 'घूरे की खाद', 'हरी खाद', 'मिश्र खाद' (कम्पोस्ट), 'ग्वानो' (समुद्री पक्षियों की विष्ठा), 'विष्ठा' आदि नामों से पुकारते हैं।

उर्वरक हम उन पदार्थों को कहेंगे जो अकार्बनिक होते हैं। ऐसे पदार्थों में अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट, चीली-शोरा (सोडियम नाइट्रेट), भारतीय शोरा (पोटेसियम नाइट्रेट), हड्डी-चूरा, हड्डी-राख, सुपर फास्फट, खनिज फ़ास्फ़ेट आदि आ जाते हैं।

उर्वरक तैयार करने का एक बहुत बड़ा कारखाना भारत में बिहार प्रदेश के सिन्दरी स्थान में बना हुआ है। सम्भवतः यह एशिया खंड का सबसे बड़ा कारखाना है। इसमें अमोनियम सल्फ़ेट तैयार होता है। अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट, अमोनियम नाइट्रेट और यूरिया के तैयार करने का भी प्रबन्ध हो रहा है। इस कारखाने का

सविस्तर वर्णन आगे के प्रकरणों में होगा। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के ट्रावन-कोर में भी उर्वरक का एक कारखाना है। यहाँ भी अमोनियम सल्फ़ेट तैयार हो रहा है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में सिन्दरी सदृश तीन और कारखाने खोलने का लक्ष्य रखा गया है। सिन्दरी के कारखाने का विस्तार भी होनेवाला है जिसका उल्लेख आगे होगा। फास्फेट उर्वरक तैयार करने के भारत में १५ कारखाने हैं। एक नया कारखाना सिन्दरी में इस वर्ष से चालू हुआ है।

खाद और उर्वरक से अधिक खाद्यान्न उत्पादन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में भारत की आबादी ४१ करोड़ हो जायगी। यदि प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रति दिन १८·३ औंस खाद्यान्न रखें तो १०५ लाख टन खाद्यान्न, १५ लाख टन तेलहन और १६० लाख टन ईख की आवश्यकता पड़ेगी। पर खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य ऊँचा ही रखना चाहिए। भारत सरकार के कृषि-मंत्री ने आकाशवाणी से इस सम्बन्ध में जो सूचनाएँ दी हैं उनका सारांश यह है कि उर्वरक के अधिक व्यापक उपयोग से खाद्यान्न की पूर्ति हो सकती है। उनका कथन है—

"उर्वरक के उपयोग से खाद्यान्न की पैदावार बहुत कुछ बढ़ायी जा सकती है। सन् १९५१ में २८२·४ हजार टन अमोनियम सल्फेट की खपत हुई थी, जब कि १९५२ में खपत घटकर २७६·३४ हजार टन हो गयी, पर १९५३ में बढ़कर ४२६·६ हजार टन हो गयी। १९५४ में खपत की वृद्धि केवल २७,००० टन थी। १९५५ में खपत बढ़कर ५५२·४ हजार टन हो गयी। यह मात्रा १९५२ की खपत की प्रायः दुगुनी है। १९५६ में खपत प्रायः ६२५,००० टन हो गयी। ऐसी आशा की जाती है कि १९६०—६१ में अमोनियम सल्फेट की खपत १८·५ लाख टन हो जायगी।

सिन्दरी का कारखाना खुलने से अमोनियम सल्फेट की कीमत ३६५ रुपया प्रति टन से गिरकर २९० रुपया प्रति टन हो गयी है, किसानों को उर्वरक खरीदने के लिए कर्ज़ देने का भी प्रबन्ध हुआ है।

सुपर-फास्फेट के उपयोग में भी वृद्धि हुई है। १९५१ में ४३·३ हजार टन सुपर-फास्फेट की खपत हुई। जब कि १९५२ में यह घटकर २८·७ हजार टन हो गयी (१९५२ में कोरिया का युद्ध छिड़ा था)। १९५३ में मात्रा बढ़कर ५० हजार टन, १९५४ में ८० हजार टन और १९५५ में एक लाख टन हो गयी।"

देश के लोग अब समझ गये हैं कि उर्वरक के उपयोग से पैदावार बढ़ायी जा सकती है। नदी-घाटी योजनाओं और सिंचाई के उत्तम प्रबन्ध से और उर्वरक के

व्यवहार से सूखी ज़मीन में अधिक फसल उगायी जा सकती है। फसल की २५ लाख टन वृद्धि के लिए ३·७ लाख टन नाइट्रोजन और १·२ लाख टन फास्फरिक अम्ल की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए १८·५ लाख टन अमोनियम सल्फेट और ७·५ लाख टन सुपर-फास्फेट चाहिए। यूरोप, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका और दक्षिण कोरिया आदि देशों में उर्वरक के व्यवहार से २५ से ५० प्रतिशत पैदावार की वृद्धि हुई है। अनुभव से पता लगा है कि भारत में भी इतनी वृद्धि हो सकती है। इतनी वृद्धि के लिए १८·५ लाख टन अमोनियम सल्फेट की आवश्यकता पड़ेगी।

चित्र २—फसलों पर खाद और उर्वरक का प्रभाव

यह इंग्लैंड की रौथमस्टेड अनुसन्धानशाला के अधीन एक खेत का चित्र है। बायें खेत में १०६ वर्षों से कोई खाद अथवा उर्वरक नहीं डाला गया है, दायें खेत में नियमित रूप से खाद डाली गयी है। बीच और पीछे की जमीन परती रखी गयी है। खादवाले खेत की फसल अच्छी है जब कि बिना खादवाले खेत की फसल बड़ी हीन दशा में है।

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

१. हमें किसानों का ध्यान उर्वरक की उपयोगिता की ओर आकर्षित करना चाहिए। उसके उपयोग के लाभ को उन्हें बताना चाहिए।

२. हमें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि किसानों को सरलता से उर्वरक प्राप्त हो सके।

३. किस फसल में कितनी खाद और कब डालनी चाहिए यह बताना बहुत ज़रूरी है। यह बताना चाहिए कि आवश्यकता से अधिक या कम खाद देने से विशेष लाभ नहीं होता। कभी-कभी हानि हो सकती है।

४. किस भूमि में कौन खाद कितनी मात्रा में देनी चाहिए; इसका ज्ञान भी होना बड़ा आवश्यक है।

५. अमोनियम सल्फेट के स्थान में यूरिया और अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट का भी अधिक लाभ के साथ उपयोग हो सकता है। (इन उर्वरकों के निर्माण का भी सिन्दरी में प्रबन्ध हो रहा है ये और अब मिलने लगगे।)

६. अमोनियम सल्फेट के स्थान में अमोनियम क्लोराइड का भी लाभ के साथ उपयोग हो सकता है। अभी तक जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि अमोनियम क्लोराइड भी अनेक फसलों के लिए अच्छा उर्वरक है। सम्भवत: कुछ फसलों के लिए क्लोराइड हानिकारक हो सकता है। अल्प मात्रा में सोडियम क्लोराइड से कोई हानि नहीं होती। कुछ फसलों के लिए सोडियम लाभकारी सिद्ध हुआ है।

जापानी विधि से धान उगाने से बंबई में धान की उपज बढ़ी हुई पायी गयी है। जापानी विधि की खेती से मिट्टी का फास्फेट बड़ी मात्रा में निकल जाता है। उसकी पूर्ति आवश्यक है। भारत में तैयार फास्फेट उसकी पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। अधिक मात्रा में फास्फेट ख़ाद बननी चाहिए। (बिहार राज्य द्वारा फास्फेट निर्माण के संयन्त्र आज दस वर्षों से बैठाये जा रहे हैं। इस वर्ष से यह संयन्त्र कार्य करने लगे हैं और आशा है कि यहाँ पर्याप्त मात्रा में सुपर फास्फेट बनेगा।)

कृषि विभाग को आदेश दिया गया है कि वह नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटाश उर्वरकों का मिश्रण तैयार करे और मिट्टी की प्रकृति के अनुसार खेतों में डालने का प्रबन्ध करे।

कौन उर्वरक किस अनुपात में रहना चाहिए यह भूमि की प्रकृति और मिट्टी के पी एच मान पर निर्भर करता है। इसके लिए मिट्टी के संगठन का ज्ञान आवश्यक है। मिट्टी के विश्लेषण और पी एच मान के निर्धारण का प्रबन्ध भारत सरकार की ओर से हो रहा है। इसके लिए समस्त देश में २५ प्रयोगशालाएँ खुल रही हैं जिनमें मिट्टी का विश्लेषण होगा।

यह सुझाव भी रखा गया है कि अनेक स्थानों पर किसानों के खेतों में ही प्रयोग कर उर्वरकों की उपयोगिता उन्हें दिखायी जाय। इसका भी प्रबन्ध किया जा रहा

है। उर्वरकों का उपयोग तभी बढ़ेगा जब वे किसानों को सरलता से प्राप्य हों। प्रत्येक गाँव में दूकानें खुलनी चाहिए और उधार उवरक देकर वितरण का प्रबन्ध करना चाहिए। इसके लिए कर्ज़ देने का भी प्रबन्ध हो रहा है। सुझाव है कि खरीफ फसलों के लिए चैत में और रबी फसलों के लिए आषाढ़ में कर्ज दिया जाय।

उर्वरक के उपयोग में चौकसी

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् की एक विज्ञप्ति में बताया गया है कि फसलों को रासायनिक खाद देते समय इस बात का प्रबन्ध होना चाहिए कि खेत में नमी काफी रहे।

धरती में कूड़े-कचरे और गोबर की खाद भी काफी होनी चाहिए। भारतीय किसान के पास इसकी कमी नहीं होती। यदि खेत में यह खाद कम होती है तो रासायनिक खादों के इस्तेमाल से विशेष लाभ नहीं पहुँचता। जब किसी नाइट्रोजनीय —अमोनियम सल्फेट—जैसी खाद को खड़ी फसल में ऊपर से बुरकना हो तो उसे पाँचगुनी मिट्टी या पशुशाला की खाद में मिला देना चाहिए। ऐसा करने से खाद की तेजी मंद पड़ जाती है। वह यदि पत्तों पर गिर जाती है तो उन्हें जलाती नहीं।

नाइट्रोजनीय खाद को बुरकने का सबसे अधिक लाभ उस समय होता है जब वह अंकुर फूटने से अथवा पौधे जम जाने से एक-दो सप्ताह बाद में किया जाता है। रेतीली और बजरीली धरती में नाइट्रोजनीय खाद पहले से नहीं देना चाहिए।

प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने कांग्रेस विधायकों की बैठक में ८ अगस्त १९५८ को चंडीगढ़ में कहा था कि देश के आर्थिक पुनरुद्धार के कार्यक्रम में खाद्यान्न के उत्पादन पर अधिक ध्यान देना चाहिए। नेहरूजी ने आगे कहा—"भारत को खाद्यान्न में आत्मनिर्भर ही नहीं होना चाहिए बल्कि वह ऐसी स्थिति में हो कि देश की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खाद्यान्न का निर्यात कर डालर कमा सके। इसलिए खाद्यान्न का उत्पादन दूना करने के लिए सभी प्राप्त साधनों को जुटाना चाहिए।"

राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था पर उर्वरक का प्रभाव

"पौधों की खुराक याने उर्वरक का उपयोग यदि सोच-समझकर किया जाय तो इससे किसान का जीवन-स्तर ऊँचा उठ सकता है। उर्वरकों से किसान को व्यक्तिशः अधिक लाभ ही नहीं होता, बल्कि देश की अर्थ-व्यवस्था पर भी इनका प्रभाव पड़ता है।" ये विचार हाल ही में हैदराबाद में टैक्निकल सहयोग मिशन की ओर से भारत

सरकार को परामर्श प्रदान करनेवाले खाद्य-विशेषज्ञ श्री राबर्ट एच० एन्जल ने भार-तीय खाद संस्था की एक बैठक में भाषण करते हुए व्यक्त किये।

श्री एन्जल भारत आने के पूर्व एक समय अमेरिका की राष्ट्रीय खाद संस्था के प्रबन्धकारी रह चुके हैं। आपने कहा कि आधुनिक कृषि अत्यधिक वैज्ञानिक उद्योग बन गयी है। यह ऐसा सहकारी कार्य है जिसमें वैज्ञानिक अनुसन्धान के आधार पर गुर तैयार करता है, विक्रेता उस गुर को किसान तक पहुँचाता है तथा अन्त में किसान उपभोक्ता को अपनी पैदावार बेचता है। आज से पूर्व तक किसान अपनी भूमि से काफी निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते थे। पैदावार के कारण जिन पौष्टिक वस्तुओं की भूमि में कमी हो जाती थी, खादों का उपयोग कर वे उसकी भरपाई नहीं कराते थे।

पौधों के विकास में नाइट्रोजन, फास्फरिक अम्ल और पोटाश का जो महत्त्व है, उस पर बल देते हुए श्री एन्जल ने कहा––"भूमि से हम जो वस्तु छीन लेते हैं, वह मात्रा में बहुत अधिक होती है। उसके बदले में अब तक हम भूमि को बहुत कम देते रहे हैं। लेकिन यह बात अधिक देर तक नहीं चल सकती। यदि भूमि से आशातीत उत्पादन की हम उम्मीद करते हैं तो हमें भूमि का शोषण बन्द करना होगा।"

खाद के आर्थिक पहलू पर प्रकाश डालते हुए श्री एन्जल ने दो चार्ट उपस्थित किये, जिनमें भारत के एक राज्य में किये गये परीक्षणों के परिणामों पर प्रकाश डाला गया था। आपने बताया कि जिस भूमि में खाद का इस्तेमाल किया गया था, उसके प्रत्येक एकड़ से मुनाफा हुआ। यह मुनाफा केवल पैसे के लिहाज से ही नहीं हुआ, अपितु अतिरिक्त आमदनी का जिस प्रकार से किसान ने उपयोग किया उस लिहाज से भी हुआ। उसने अपने मकान की छत नयी डाल ली, उसका जीवन-स्तर भी हर तरह ऊँचा उठ गया।

एन्जल ने किसानों को यह सूचना प्रदान करने के महत्त्व पर विशेष बल दिया, आपने कहा कि यह बात आवश्यक है कि ऐसे तथ्यों की व्यापक रूप से जानकारी दी जानी चाहिए कि कूड़े-कचरे व गोबर की खाद में, सुपर-फास्फेट मिला देने पर उनसे अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

हैदराबाद को अपने सफल कृषि-कार्य क्रम पर बधाई देते हुए आपने कहा कि हैदराबाद में भूमि-अनुसन्धानशालाएँ स्थापित की जानी चाहिए। ये किसानों को खाद की सही मात्रा और सही किस्म के बारे में बतलायेंगी।

रिचार्ड बी० ग्रेग्ग उर्वरक के उपयोग के अमेरिकी विशेषज्ञ हैं। वे हाल ही में भारत का दौरा कर गये हैं। उनका कथन है कि "नाइट्रोजन के लिए अमोनियम सल्फेट, फास्फरस के लिए पीसा हुआ फास्फेट चट्टान अथवा सुपर-फास्फेट, पोटेसियम

के लिए पोटेसियम क्लोराइड या नाइट्रेट और कैलसियम के लिए चूना-पत्थर या चूने के उपयोग से अस्थायी रूप से उत्पादन की वृद्धि तो होती है, बशर्ते उनका उपयोग सोच-समझकर अल्प मात्रा में और भूमि की प्रकृति का अध्ययन कर किया जाय। बिना सोचे-समझे बड़ी मात्रा में लगातार कई वर्षों तक के उपयोग और कार्बनिक खादों के अभाव में उनके इस्तेमाल से नुकसान हो सकता है। उर्वरक के उपयोग से केंचुए (Earthworms), जीवाणु और अन्य लाभकारी सूक्ष्माणु मिट्टी में कम हो जाते हैं। उनके कम होने से भूमि की मिट्टी की बनावट का ह्रास होता है और मिट्टी का कटाव भी होता है।

"अधिक उर्वरकों के उपयोग से पैदावार बढ़ सकती है पर फसलों के गुण निकृष्ट हो जाते हैं। उर्वरकों पर उगे हुए फल और सब्जियों का स्वाद कम रुचिकर होता और वे अधिक काल तक टिकते भी नहीं हैं। उनकी पौष्टिकता भी कम होती है। उर्वरक पर उगे पौधों को कीड़े, कवक और अन्य रोग अधिकता से आक्रान्त करते हैं। पोटाश और नाइट्रोजन के आधिक्य से कार्बोहाइड्रेट अधिक बनते हैं जिससे कीड़े अधिक आकर्षित होते हैं।

उर्वरक के अधिक उपयोग में खर्च भी अधिक पड़ता है। कीटाणुनाशक और कवकनाशक औषधियों का व्यवहार बढ़ जाता है। इससे पैदावार की कीमत बढ़ जाती है। उपभोक्ताओं को अधिक पैसा ही नहीं देना पड़ता वरन् उनके स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। अमेरिका और यूरोप में उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के बुरे परिणाम देखे गये हैं।

अमोनियम सल्फेट के अत्यधिक मात्रा के व्यवहार से पौधों में डार-पात बहुत अधिक बढ़ जाते और रंग अधिक गाढ़ा हरा होता है। दाने पकने के पहले ही ऐसे पौधे नय जाते अथवा गिर पड़ते हैं। अधिक व्यवहार से फास्फेट अविलेय होकर पौधों को प्राप्य नहीं होते। अधिक पोटाश से अनाज और फलों में पोटाश की मात्रा बढ़ जाती है और उससे हृदय रोग (घनास्रता; thrombosis) होने की सम्भावना बढ़ जाती है। अधिक कैलसियम से मिट्टी के 'लेश' खनिज लवण अविलेय होकर पौधों को अप्राप्य हो जाते हैं, इससे पौधे उन्हें ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। ये लेश तत्त्व मनुष्यों, पशुओं और पौधों की वृद्धि तथा स्वास्थ्य के लिए समान रूप से आवश्यक हैं।"

इससे ग्रेग्ग के मतानुसार उर्वरक का उपयोग बहुत सोच-समझकर बड़ी सावधानी से और अपेक्षया अल्प मात्रा में करना चाहिए।

इन कठिनाइयों के कारण ग्रेग्ग का मत है कि घास-पात, सूखे पत्तों, गोबर और

अन्य उद्भिदीय निरर्थक पदार्थों से बने कम्पोस्ट का व्यवहार उत्तम है। यदि कम्पोस्ट ठीक-ठीक सड़ा हो और उसमें असंख्य सूक्ष्माणु, केंचुए और उनके अण्डे विद्यमान हों तो वह बहुत उत्तम खाद है। ऐसे कम्पोस्ट को जब खेतों में डालकर जोता जाता है तब मिट्टी की रेत और पत्थर उन तत्त्वों को मुक्त करते हैं जो पौधों के पोषण के लिए आवश्यक हैं। ये तत्त्व कार्बनिक पदार्थों से मिलकर ऐसे रूप में परिणत हो जाते हैं जो बरसात में संकर्षण से निकल नहीं जाते। कम्पोस्ट के कुछ सूक्ष्माणु वायु के नाइट्रोजन का स्थिरीकरण भी करते हैं। यदि भूमि में मटियार मिट्टी अधिक है तो खाद से वह भुरभुरी हो जाती है जिससे जोतने में सहूलियत होती और वायु सरलता से मिट्टी में प्रवेश करती है। ऐसी मिट्टी अधिक पानी को सोखकर रखती भी है। सूखा में इससे बड़ी सहायता मिलती है। इससे मिट्टी का कटाव भी कम होता है।

यदि भूमि में सड़ा हुआ कार्बनिक पदार्थ दो से चार प्रतिशत रहे तो उसमें फसल बहुत अच्छी उगती है। फसलों में रोग-निवारण क्षमता आ जाती है और उनमें कीड़े कम लगते हैं। ऐसी फसलों पर पले हुए पशु और व्यक्ति अधिक स्वस्थ और पुष्ट होते हैं।

यह सच है कि कम्पोस्ट (मिश्र खाद) का प्रभाव तत्काल उतना अच्छा नहीं पड़ता। पर प्रभाव पहले वर्ष से ही देख पड़ता है। यदि प्रति एकड़ प्रति वर्ष अथवा दो-दो वर्षों पर ४ टन के हिसाब से कम्पोस्ट डाला जाय तो चार वर्षों में दशा बहुत अधिक सुधर जाती है और पैदावार महत्तम हो जाती है।

ग्रेग्ग साहब फिर आगे कहते हैं—"मैं यह नहीं कहता कि उर्वरक का उपयोग बिल्कुल करना ही नहीं चाहिए। उनका उपयोग ऐसी भूमि में करना चाहिए जो बंजर है, परती है और जिसमें पर्याप्त नमी है। अन्यथा यदि इसे इस्तेमाल करना है तो सोच-समझकर अपेक्षया अल्प मात्रा में करना चाहिए।"

कम्पोस्ट अच्छी खाद है। विष्ठा का कम्पोस्ट और उत्तम है। विष्ठा मिट्टी के साथ मिलाकर खेतों में डाली जा सकती है, जैसा चीन और जापान में होता है। विष्ठा की खाद में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक रहती है। खेतों में कम्पोस्ट डालने के बाद तुरन्त आधे घण्टे के अन्दर खेतों को जोतकर कम्पोस्ट को मिट्टी से मिला देना चाहिए। धूप में खुला रखने से कम्पोस्ट के सूक्ष्माणु बहुत कुछ मर जाते हैं और ह्यूमस का नाश होता है। इससे खाद का मान बहुत कुछ घट जाता है। गरमी के दिनों में कम्पोस्ट जल्दी तैयार हो सकता है पर ठीक तरह से सड़ने के लिए उसमें समय-समय पर पानी डालना पड़ता है। पटना उच्च न्यायालय के चीफ जस्टिस शेमियर ने एक लेख 'सर्चलाइट' नामक दैनिक पत्र में प्रकाशित कराया था जिसमें उन्होंने लिखा था

कि सूखे पत्तों और गोबर को मिलाकर गरमी में बीच-बीच में पानी डालकर दो मास में अच्छा सड़ा हुआ कम्पोस्ट तैयार हुआ था। गरमी में वायु का ताप ऊँचा रहने से सड़ना जल्दी होता है।

एफ० डब्लू० पार्कर का उर्वरक के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत है—यह मत सबसे अधिक आधुनिक है और गहन अध्ययन तथा अनुभव के आधार पर आधारित है।

२००० वर्षों से फसल उगाकर हम पौधों के आवश्यक आहार नाइट्रोजन, फास्फरस, पोटाश और अन्य पोषक तत्त्वों को निकालते आ रहे हैं। बहुत अल्प मात्रा में इन तत्त्वों को फिर से मिट्टी में डाला गया है। संकर्षण और कटाव से भी पौधों के आहार बड़ी मात्रा में निकल गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि सिंचाई होने पर भी औसत पैदावार कम होती है।

इस दशा को सुधारने के लिए पर्याप्त मात्रा में और उचित ढंग से उर्वरक का उपयोग अत्यावश्यक है। यह दशा सुधर सकती है; ये जो प्रयोग, प्रत्यक्षण (demonstration) और अनुसन्धान लाखों किसानों द्वारा हुए हैं उनसे सिद्ध हो जाता है।

संसार के अधिक उन्नत देशों ने उर्वरक के व्यापक प्रयोग से पैदावार बहुत बढ़ायी है। गणना से मालूम होता है कि पश्चिमी यूरोप, जापान, दक्षिण कोरिया और अमेरिका के पूर्वी और दक्षिणी संयुक्त राज्यों में उर्वरकों के नियमित रूप के उपयोग से कृषि-पैदावार २५ से ५० प्रतिशत बढ़ गयी है। सन् १९५४-५५ में नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटैसियम की १७,६३७,००० मेट्रिक टन की खपत हुई थी। यह ८५० लाख टन उर्वरक के बराबर है। यदि इनका उपयोग नहीं होता तो संसार की आहार और वस्त्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती थी। अन्य देशों की भाँति भारत को भी इन पदार्थों का उपयोग कर कृषि-उत्पादन बढ़ाना चाहिए।

कौन उर्वरक

सभी स्वीकार करते हैं कि नाइट्रोजनीय उर्वरक की आवश्यकता पड़ती है। इधर प्रयोगों और प्रत्यक्षण से वैज्ञानिकों को विश्वास हो गया है कि भारत की मिट्टी में फास्फरस की कमी है। मिट्टी में फास्फरीय खाद देने से फसलें अच्छी उगती हैं। पोटाश की कमी का अब तक ठीक पता नहीं लगा है पर इसका अध्ययन अब सावधानी से हो रहा है।

हमें अब संतुलित उर्वरक का उत्पादन करना चाहिए। ऐसे उर्वरक में नाइट्रोजन, फास्फेट और पोटाश समुचित मात्रा में रहते हैं। ऐसा मिश्रित उर्वरक तैयार कर बेचने का प्रबन्ध करना बड़ा आवश्यक है। कानून भी ऐसा बनना चाहिए कि मिश्रित

उर्वरक में सब पोषक तत्त्व उचित मात्रा में विद्यमान रहें। अमेरिका में ऐसा कानून बना है।

कितना उर्वरक

भारत में १२०,००० टन नाइट्रोजन और २०,००० टन फास्फेट के उपयोग की गणना हुई हैं। यह ६ : १ अनुपात है। पर अनुपात २ : १ रहना चाहिए।

भारत सरकार के कृषि विभाग का अनुमान है कि सन् १९६१ में ३७०,००० टन नाइट्रोजन और १२०,००० टन फास्फेट की आवश्यकता पड़ेगी। यहाँ अनुपात ३ : १ है। इसका आशय यह है कि नाइट्रोजनीय उर्वरक का उत्पादन ३०० प्रतिशत और फास्फेट उर्वरक का उत्पादन ६०० प्रतिशत अगले तीन-चार वर्षों में बढ़ना चाहिए, पर फास्फेट की आवश्यकता के सम्बन्ध में अब जो गणना हुई है उससे फास्फेट की आवश्यकता १८०,००० टन कूती गयी है। मिश्रित उर्वरक में १४०,००० टन नाइट्रोजन और १४०,००० टन फास्फेट का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

मिट्टी में फास्फेट और अन्य पोषक तत्त्वों की मात्रा निर्धारित करने के लिए स्थान-स्थान पर प्रयोगशालाएँ खुल रही हैं।

अभी तक जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि सस्ते उर्वरक यूरिया, अमोनियम नाइट्रेट और अमोनियम क्लोराइड भी अमोनियम सल्फेट के समान ही प्रभावकारी हैं। ये उर्वरक अमोनियम सल्फेट से १० से २० प्रतिशत कम कीमत में बिक सकते हैं, इनके निर्माण का भी प्रबन्ध सिन्दरी कारखाने में हो रहा है।

उचित ढंग से और ठीक समय पर उर्वरक के उपयोग से उनकी दक्षता २५ से ३० प्रतिशत बढ़ सकती है। पोटाश की आवश्यकता का अभी ठीक-ठीक पता नहीं लगा है। कहीं उससे लाभ हुआ है और कहीं नहीं।

१९५४ में महसूस किया गया कि उर्वरकों के उपयोग को बताने के लिए प्रत्यक्षण आवश्यक है। अतः दिन दिन प्रत्यक्षण में वृद्धि हो रही है। भारत सरकार ने दो लाख टन उर्वरक इस के लिए प्रदान किया है और प्रत्यक्षण का क्षेत्र बढ़ाया जा रहा है।

उर्वरकों के वितरण का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए ताकि किसानों को समय पर और आवश्यकता पड़ने पर जल्द बिना किसी झंझट के उर्वरक मिल सकें। उन्हें उर्वरक के लिए पाँच मील से अधिक न जाना पड़े, इसके लिए देश के कोने कोने में उर्वरक गोदाम खुलने चाहिए और क्रेडिट पर खाद देने का प्रबन्ध होना चाहिए।

तीसरा अध्याय

पौधा, उसकी बनावट और आवश्यकताएँ

जंगलों, बाग-बगीचों और खेतों में जो पेड़-पौधे, घास-पात और साग-सब्जियाँ उगती हैं उन्हें हम 'पौधा' कहते हैं। साधारण बोलचाल में इसे 'वनस्पति' भी कहते हैं। पौधों से ही हमें अनाज प्राप्त होता है जिन्हें हम खाते और पशु-पक्षियों को खिलाते हैं। पौधों से ही हमें तेलहन प्राप्त होता है जिससे हम तेल निकालते और अनेक आवश्यक पदार्थ, डालडा, कोकोजेम, कोटोजेम आदि स्नेह, पेण्ट, साबुन आदि प्रति दिन व्यवहार की वस्तुएँ तैयार करते हैं। पौधों से ही हमें सुन्दर और सुगंधित फूल, मीठे और सुस्वादु फल प्राप्त होते हैं। साग-सब्जियाँ भी पौधों से ही प्राप्त होती हैं। पशुओं का चारा, घास-भूसा भी पौधों से ही प्राप्त होता है। आज अनेक खाद, गोबर की खाद, कम्पोस्ट आदि हमें पौधों से ही प्राप्त होते हैं जिनसे खेतों की उपजाऊ शक्ति बढ़ायी जा सकती है।

पौधों की संरचना क्या है? किन-किन तत्त्वों से पौधा बना है? इन प्रश्नों का अध्ययन बड़ी सूक्ष्मता और पूर्णता से हुआ है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि इसी पर मनुष्य का जीवन और स्वास्थ्य निर्भर करता है।

पौधों में सबसे अधिक मात्रा जल की रहती है। पौधों का ८० से ९० प्रतिशत भाग जल का ही बना होता है। पौधों के लिए उत्स्वेदन भी आवश्यक है। उत्स्वेदन में पौधे जल को हवा में बाहर निकालते हैं। उत्स्वेदन में पर्याप्त जल खर्च होता है। सूखे पदार्थ के प्रति पाउण्ड पर २०० से २५० पाउण्ड जल उत्स्वेदन से निकलता है। न्यूनतम मात्रा आर्द्र देशों में और अधिकतम मात्रा शुष्क देशों में निकलती है। एक इंच वर्षा से प्रति एकड़ ११३ टन जल धरती पर गिरता है। ५ टन सूखे पौधों के उत्पादन में ५ से ६ इंच वर्षा की आवश्यकता पड़ती है।

जल में हाइड्रोजन और आक्सिजन रहते हैं। हाइड्रोजन और आक्सिजन केवल जल में ही नहीं रहते वरन् पौधों के कार्बोहाइड्रेट, सेल्यूलोस, स्टार्च और शर्कराओं में भी रहते हैं। तेल में भी हाइड्रोजन और आक्सिजन रहते हैं। कुछ पेड़ों में तारपीन

का तेल रहता है। तारपीन के तेल में भी हाइड्रोजन रहता है। पौधों को समस्त हाइड्रोजन और आक्सिजन जल से ही प्राप्त होते हैं।

पौधों के लिए जल बड़ा आवश्यक है। उन्हें पर्याप्त जल मिलना चाहिए। कुछ पौधों को अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है और कुछ को कम जल से ही काम चल जाता है। कुछ पौधों की जड़ें धरती में गहरी जाती हैं। ऐसे पौधों को बाहर से कम जल मिलने से भी उनका काम चल जाता है। कुछ पौधों की जड़ें बहुत गहरी नहीं जातीं। उन्हें बाहर से अधिक जल मिलने की जरूरत होती है। अरहर और चने के पौधे पहले के उदाहरण हैं और धान तथा जई के पौधे दूसरे के उदाहरण हैं। साधारणतया पौधों को जल वर्षा से प्राप्त होता है। जहाँ वर्षा पर्याप्त नहीं होती वहाँ सिंचाई से पौधों को जल दिया जाता है।

सूखे पौधों का लगभग ४० प्रतिशत भाग आक्सिजन का होता है। यह समस्त आक्सिजन प्रायः जड़ों के द्वारा ही पौधों को प्राप्त होता है। इसके लिए आवश्यक है कि जड़ स्वस्थ दशा में रहे और उसे बराबर जल मिलता रहे।

पौधों की बनावट में जल के बाद कार्बन का प्रमुख अंश है। पौधों के सूखे अंश का लगभग ५० प्रतिशत केवल कार्बन का बना होता है। कार्बन के पंजर पर ही पेड़-पौधे खड़े रहते हैं। पेड़-पौधों के सब अंगों के निर्माण में कार्बन लगता है। जड़, तना, डाल, पात, फूल, फल और बीज सब कार्बन के बने होते हैं।

पौधों में कार्बन वायु के कार्बन डाइ-आक्साइड से आता है। वायुमण्डल में केवल ०·०३ प्रतिशत (आयतन में) कार्बन डाइ-आक्साइड रहता है। कार्बन के लिए बहुत बड़ी मात्रा में वायु की आवश्यकता पड़ती है। वायुमण्डल में इतनी वायु विद्यमान रहती है। कार्बन डाइ-आक्साइड के बराबर निकलते रहने पर भी वायु में उसकी मात्रा कम नहीं होती, प्रायः स्थायी रहती है। कार्बनिक पदार्थों के सड़ने-गलने, जलने और प्राणियों की साँस द्वारा निकली वायु से कार्बन डाइ-आक्साइड वायु को बराबर मिलता रहता है। इस कारण वायु के कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा में विशेष अन्तर नहीं होता।

कार्बन डाइ-आक्साइड की उपलब्धि के लिए पौधों को किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। पर ऐसा देखा गया है कि कृत्रिम रीति से वायुमण्डल में कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा बढ़ाने से पौधों की उपज बढ़ जाती है।

पौधों द्वारा कार्बन के स्वांगीकरण के लिए एक हरे पदार्थ, क्लोरोफिल की ज़रूरत पड़ती है। क्लोरोफिल क्लोरोप्लास्ट में रहता है। पौधों के अधिस्तर (Epidermis) के नीचे स्कन्ध-ऊतक (Palisade tissue) रहते हैं। ऊतकों की

कोशाओं में क्लोरोफिल रहता है। अधिस्तर के रन्ध्रों (Stomata) द्वारा कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण होता है। अवशोषण की मात्रा रन्ध्रों की संख्या पर निर्भर करती है।

सूरजमुखी के पत्ते में देखा गया है कि सूर्य के चमकीले प्रकाश में प्रति घण्टा प्रति १०० वर्ग सेंटीमीटर तल पर १० से १५ घन सेंटीमीटर गैस का अवशोषण होता है। पर गैस का स्वांगीकरण बहुत कुछ पौधे की जाति, सूर्य-प्रकाश की तीव्रता, वायुमण्डल के ताप आदि पर निर्भर करता है। कोशाओं की दीवारों के जल में कार्बन डाइ-आक्साइड घुलकर क्लोरोप्लास्ट में पहुँचता है। वहाँ सूर्य-प्रकाश की किरणों के द्वारा रासायनिक परिवर्तन होता है। क्लोरोफिल विकीर्ण ऊर्जा (Radiant energy) का अवशोषण कर रासायनिक ऊर्जा में परिणत करता है। इस कार्य को प्रकाश-संश्लेषण (Photo-synthesis) कहते हैं। सब तरंगदैर्घ्यों के प्रकाश से यह कार्य सम्पादित होता है पर वर्णक्रम की पीत से रक्त किरणें प्रकाश-संश्लेषण के लिए अधिक शक्तिशाली होती हैं। पत्तों पर पड़े हुए प्रकाश का प्रायः ७० प्रतिशत अवशोषित हो जाता है। शेष प्रकाश या तो परिवर्तित हो जाता अथवा पारगमित हो जाता है। पर अवशोषित प्रकाश का केवल २ से ३ प्रतिशत ही प्रकाश-संश्लेषण में काम आता है।

प्रकाश की दीप्ति (illumination) कम होने से उसी अनुपात में कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण कम हो जाता है। पर यदि दीप्ति और कार्बन डाइ-आक्साइड पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों तो अवशोषण पर वायुमण्डल के ताप का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

प्रकाश-संश्लेषण में कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण कैसे होता है, यह अभी तक पूरा मालूम नहीं है। पर यह निश्चित है कि अवशोषण से पहले स्टार्च और शर्कराएँ बनती हैं तथा आक्सिजन मुक्त होता है। आक्सिजन उसी अनुपात में मुक्त होता है जिस अनुपात में कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण होता है। पौधों में कई यौगिकों के रूप में कार्बन रहता है। इनमें सेल्यूलोस की मात्रा सबसे अधिक रहती है। यह अधिक महत्त्व की भी है। वस्तुतः पौधों का आधार या पंजर सेल्यूलोस का ही होता है। इसी के आधार पर पेड़-पौधे खड़े रहते हैं। इन कार्बनिक यौगिकों के निर्माण के लिए सूर्य के प्रकाश का रहना नितान्त आवश्यक है।

यद्यपि पौधों के अधिकांश भाग कार्बन के बने होते हैं पर उनके निर्माण में कुछ अन्य तत्त्वों की भी आवश्यकता पड़ती है। इन तत्त्वों की मात्रा अपेक्षया कम रहती है पर इनका महत्त्व कम नहीं होता। पौधों की वृद्धि के लिए ये बहुत आवश्यक हैं।

इस संबंध में काँच के पात्रों में अनेक प्रयोग हुए हैं। इन प्रयोगों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पौधों के बढ़ने, फूलने और फलने के लिए कुछ अन्य तत्त्वों की उपस्थिति भी अत्यावश्यक है। ऐसे तत्त्वों की मात्रा अधिक आवश्यक नहीं होती पर उनका रहना अत्यन्त आवश्यक है।

ऐसे प्रयोग करने के लिए काँच के पात्रों में विभिन्न लवणों के विलयन रखे जाते हैं। ये लवण सामान्य जल में घुले रहते हैं। पर यदि अधिक यथार्थ परिणाम प्राप्त करना हो तो शुद्ध आसुत जल का उपयोग होना चाहिए। प्रमुख लवणों के विलयन इस प्रकार तैयार किये जाते हैं—

लवण नाम	प्रति लिटर
पोटेसियम नाइट्रेट	१ ग्राम
पोटेसियम हाइड्रोजन फास्फेट	०·५ ग्राम
कैलसियम सल्फेट	०·५ ग्राम
मैगनीशियम सल्फेट	०·५ ग्राम
सोडियम क्लोराइड	०·१ ग्राम
फेरिक साइट्रेट	०·०२ ग्राम

लेश तत्त्वों में बोरन, मैंगनीज़, जस्ता और ताँबे के लवणों के विलयन रहते हैं। ऐसे विलयनों में दस लाख भाग जल में लवण एक भाग से कम ही रहते हैं।

पौधों की जड़ों को इन लवणों के विलयनों में रखकर पौधों पर उनके प्रभाव का निरीक्षण करते हैं। सामान्य जल में अल्प अपद्रव्य रहते हैं। वे बहुधा लेश तत्त्वों के लिए पर्याप्त होते हैं, पर यदि आसुत जल का उपयोग हो तो अल्प मात्रा में लेश तत्त्वों के लवणों के विलयन डाले जाते हैं। प्रयोगों के लिए एक पात्र के विलयन में आवश्यक पोषक तत्त्वों के सब लवण रहते हैं। अन्य पात्रों में किसी एक तत्त्व की कमी कर उस कमी के प्रभाव का पौधे पर निरीक्षण करते हैं। चित्र में दिये पात्रों में नं० १ में पौधों के सब आवश्यक तत्त्व विद्यमान हैं। इस पात्र में जौ के पौधे की वृद्धि नियमित रूप से होकर उसमें बाल लगी हुई है। अन्य पात्रों के विलयनों में किसी न किसी एक तत्त्व की कमी है। उन पात्रों के जौ के पौधे ठीक तरह से बढ़े नहीं हैं और उनमें बाल भी नहीं लगी हैं। पात्र नं० २ के विलयन में नाइट्रोजन का अभाव है। यहाँ पौधा बिल्कुल बढ़ा नहीं है। जब तक उसे बीज का नाइट्रोजन मिलता रहा वह बढ़ता रहा और ज्यों ही वह समाप्त हो गया वृद्धि रुक गयी। नं० ३ के पात्रवाले पौधे को फास्फेट नहीं मिलता है। इसकी वृद्धि भी कुछ समय के बाद रुक गयी और इसमें कोई बाल न

लगी। नं० ४ के पात्र में पोटाश लवण नहीं है। नं० ५ के पात्र में चने का अभाव है और नं० ६ के पात्र में मैगनीशियम का अभाव है। इन पात्रों के पौधों की भी आव-

चित्र ३—जौ के पौधों के जलसंवर्धन में पोषक तत्त्वों का प्रभाव
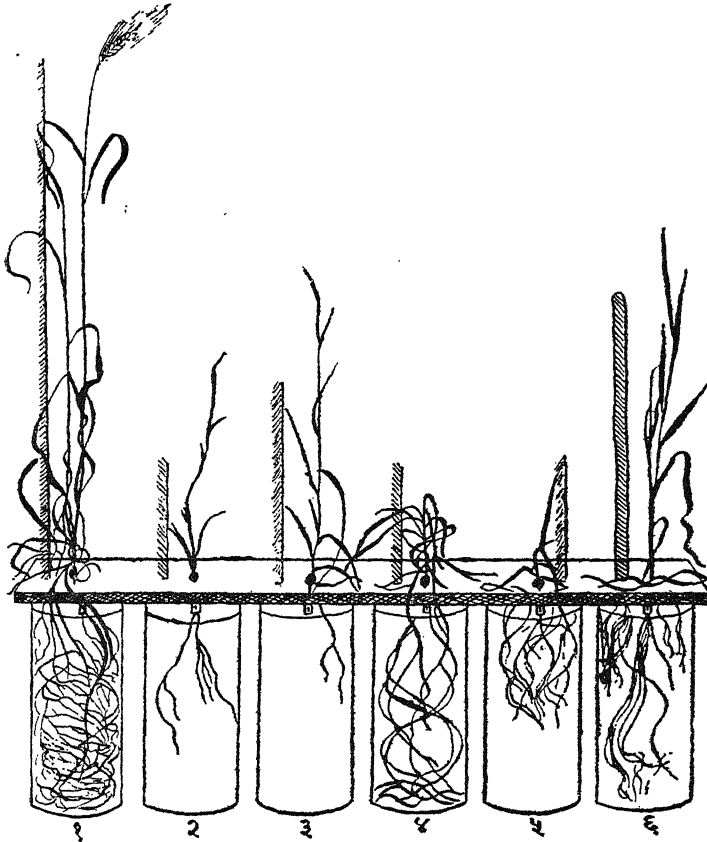
१ समस्त आवश्यक खाद

२ नाइट्रोजन को छोड़कर अन्य सब आवश्यक खाद

३ फास्फेट को छोड़कर अन्य सब आवश्यक खाद

४ पोटाश को छोड़कर अन्य सब आवश्यक खाद

५ चूना को छोड़कर अन्य सब आवश्यक खाद

६ मैगनीशियम को छोड़कर अन्य सब आवश्यक खाद

श्यक वृद्धि नहीं हुई है। इन प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि पौधों के बढ़ने, फूलने और फलने के लिए नाइट्रोजन, फास्फरस, सल्फर, कैलसियम, मैगनीशियम, पोटेसियम और लोहा निश्चित रूप से आवश्यक हैं। इन तत्त्वों को मिट्टी में अवश्य रहना चाहिए। इनमें किसी एक की कमी से भी वृद्धि रुक जाती है और पौधे फूलते-फलते नहीं हैं, यद्यपि कुछ समय तक बीज में उपस्थित तत्त्वों के कारण वे भले ही बढ़ते रहें। सोडियम और सिलिकन सदृश तत्त्व जो पौधों की राख में पाये जाते हैं, पौधों के लिए आवश्यक नहीं हैं। उनकी अनुपस्थिति में भी पौधे बढ़ते, फूलते और फलते हैं।

अतः पौधों के लिए नाइट्रोजन नितान्त आवश्यक है। सूखे पौधों में नाइट्रोजन की मात्रा २ से ४ प्रतिशत रहती है। कोशाओं के निर्माण में नाइट्रोजन लगता है। बिना नाइट्रोजन के कोशाओं का निर्माण नहीं हो सकता। प्रोटीन और क्लोरोफिल में नाइट्रोजन रहता है।

पौधे नाइट्रोजन के समुद्र में रहते हैं। वायु का प्रायः ८० प्रतिशत नाइट्रोजन होता है। पर थोड़े से छीमीवाले पौधे ही वायु से नाइट्रोजन ग्रहण कर सकते हैं। शेष पौधों को मिट्टी से ही जड़ों के द्वारा नाइट्रोजन के यौगिकों से नाइट्रोजन ग्रहण करना पड़ता है।

थोड़े से छीमीवाले पौधे जो वायु के नाइट्रोजन को ग्रहण कर सकते हैं, शिम्बी कुल के पौधे (leguminous plants) हैं। इनकी जड़ों में गाँठें होती हैं जिनमें बैक्टीरिया (जीवाणु) होते हैं। बैक्टीरिया विभिन्न प्रकार के होते हैं, जैसा चित्र से प्रकट होता है। ये वायु के असंयुक्त नाइट्रोजन को लेकर यौगिकों में परिणत करते हैं। इन यौगिकों से पौधे फिर नाइट्रोजन प्राप्त करते हैं। बैक्टीरिया ऐसी ही मिट्टी में पनपता है जिसमें कार्बनिक पदार्थों की प्रचुरता रहती है।

पौधों के द्वारा नाइट्रोजन के स्वांगीकरण के लिए यह आवश्यक है कि नाइट्रोजन आयन के रूप में मिट्टी में रहे। कुछ थोड़े से पौधे कार्बनिक नाइट्रोजन को भी ग्रहण कर सकते हैं। नाइट्रोजन के आयन दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के आयन में बिजली का ऋण आवेश रहता है और दूसरे प्रकार के आयन में धन आवेश रहता है। नाइट्रेट ऋणायन है और अमोनिया धनायन। इन आयनों के रूप में ही पौधे नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं। कुछ पौधे नाइट्रेट आयन को जल्द ग्रहण करते और कुछ अमोनियम आयन को। अधिकांश नाइट्रेट आयनों को ही ग्रहण करते हैं।

मिट्टी में नाइट्रोजन रहता है। यदि हम मिट्टी के ऊपरी तल, केवल ६ या ७ इंच की गहराई को लें तो एक एकड़ भूमि की मिट्टी का भार लगभग २० लाख पाउण्ड से अधिक होता है। ऐसी मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा केवल ०·१ प्रतिशत हो तो

उतनी मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा लगभग २००० पाउण्ड होती है। ०·२५ प्रतिशत रहने से मात्रा प्रायः ५००० पाउण्ड हो जाती है।
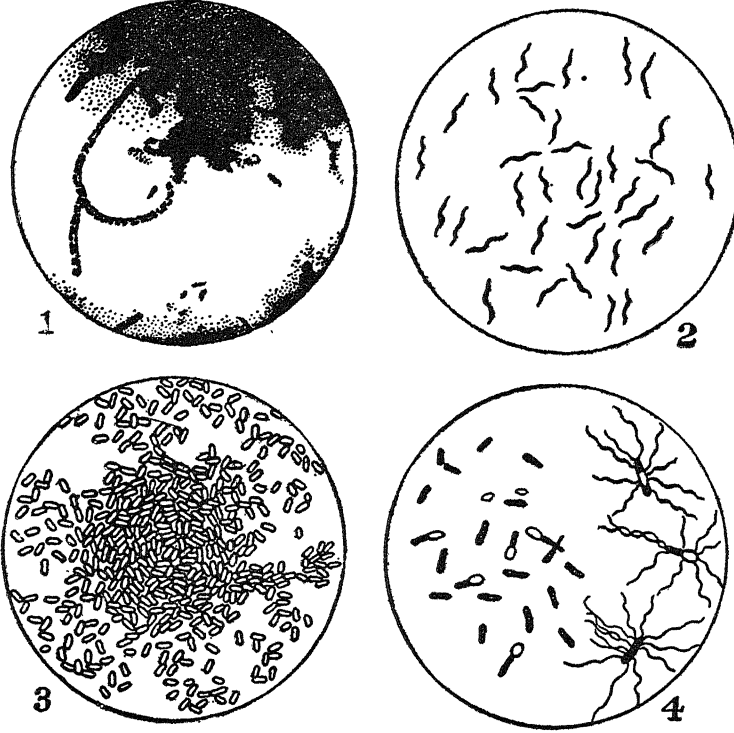
चित्र ४—नाइट्रोजन के स्थिरीकरण के विभिन्न बैक्टीरिया

१. बेजियटोला (Beggiatola)
२. स्पाइरोकीटा (Spirochaeta)
३. बेसिलाई (दण्डाणु)
४. बीजाणु निर्मायक और चर बैक्टीरिया जिसमें बीजाणु और कशा (Flagella) दिखलाया गया है।

साधारणतया मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा ०·१ से ०·२५ प्रतिशत रहती है। रेतीली भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा इससे कम रह सकती है। गोबरवाली मिट्टी

में नाइट्रोजन ०·२५ प्रतिशत से अधिक रह सकता है। मिट्टी का समस्त नाइट्रोजन सक्रिय नहीं होता। प्रति एकड़ भूमि में ५००० पाउण्ड सक्रिय नाइट्रोजन रहे तो अनाज और घास-पात की उपज के लिए यह यथेष्ट होगा। पर समस्त नाइट्रोजन के सक्रिय न होने के कारण मिट्टी में और नाइट्रोजनवाली खाद डालने से पैदावार बढ़ जाती है।

नाइट्रोजनवाली खाद की प्रचुरता से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। पौधों को गहरा हरा रंग प्राप्त होता है। पत्तों, तनों और फलों की बढ़ती में प्रगति होती है। शाकीय फसलों की किस्म उन्नत होती है और पौधे तेजी से बढ़ते हैं। चारे और भोज्य फसलों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है।

यह ध्यान रहे कि इसकी बहुत अधिक खाद से हानि भी हो सकती है। कवकों के आक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसा देखा गया है कि जिस खेत में नाइट्रोजनीय खाद बहुत अधिक पड़ी है उस खेत के गेहूँ में रितुआ (rust) नामक रोग अधिक लगता है। एक दूसरा कवक एपिक्लोइ टायफिना (Epichloe Typhina) भी अधिक नाइट्रोजनवाले खेत में अधिक लगता है जब कि अन्य खेतों में यह रोग नहीं होता। मनगोल्डस (mangolds) के खेतों में साधारणतया कवक का आक्रमण नहीं होता पर अधिक नाइट्रोजन खादवाले खेतों में वह लगा हुआ पाया जाता है। कुछ अन्य रोग भी अधिक नाइट्रोजन वाले खेतों में जल्द लग जाते हुए देखे गये हैं। धान, गेहूँ वाले पौधों के गिर जाने का भी भय रहता है। फसलों के गिर जाने से पैदावार निश्चित रूप से कम हो जाती है।

पौधों के लिए फास्फरस बड़ा जरूरी है, अनाज की पैदावार से फास्फरस का घना संबंध है। पौधे विलेय फास्फेट के रूप में इसको ग्रहण करते हैं। फास्फेट से जड़ें बनती और नीचे अधिक गहराई तक फैलती हैं जिससे पौधे नीचे से जल और आहार ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। इससे पौधों की बढ़ती अच्छी होती है, पौधे जल्द पकते हैं, पौधों के फूलने और बीजोत्पादन में उन्नति होती है। दलहनी फसलों में जीवाणुओं के कार्य करने की क्षमता बढ़ती और नाइट्रोजन कोशाओं के विकास में सहायता मिलती है।

पौधों के लिए पोटाश भी आवश्यक है यद्यपि शुद्धावस्था में यह हानिकर होता है। अन्य उर्वरकों के साथ मिलाकर ही इसका उपयोग करना चाहिए। पोटाश से क्लोरोफिल के विकास में सहायता मिलती है। ऊपर कहा गया है कि क्लोरोफिल से ही पौधे वायु के कार्बन डाइ-आक्साइड को ग्रहण कर उसके कार्बन से बढ़ते हैं। पोटाश से पौधों में शीघ्र बढ़ने और रोगों के आक्रमण से बचने की क्षमता आती है। तने कठोर

और शक्तिशाली होते हैं जिससे उनके झुक जाने का भय नहीं रहता। अनाज और बीज का आकार बढ़ता है। दलहनी और अन्य फसलों में पाले से बचने की शक्ति पैदा होती है। स्टार्च, शर्करा और तेल के निर्माण और आदान-प्रदान का कार्य सुचारु रूप से होता है।

पौधों के लिए नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटेसियम आवश्यक आहार हैं। कैलसियम, मैगनीशियम और गन्धक मध्यम आहार और लोहा, मैंगनीज़, बोरन, जस्ता, ताँबा और मोलिबडेनम क्षुद्र आहार हैं। पर ये सब तत्त्व आहार हैं और इनका रहना अत्यावश्यक है।

कैलसियम से जड़ों का विकास अधिक होता और बढ़ती जल्द होती है। इससे पौधों में शक्ति और भूसे में कड़ापन आता है। अन्य आहार-तत्त्वों के पाचन में इससे सहायता मिलती है। अनाज और बीज का विकास अच्छा होता और पौधों के अन्दर विकसित विषों का दमन होता है। चारे और भोज्य फसलों में चूने की मात्रा बढ़ती है।

मैगनीशियम से पत्तों के गहरे हरे रंग के संरक्षण में सहायता मिलती है। क्लोरोफिल का मैगनीशियम एक आवश्यक अंग है। मैगनीशियम से आहार तत्त्वों का संतुलित पाचन होता, पौधे फास्फरिक अम्ल के ग्रहण करने में समर्थ होते और तेल तथा चर्बी के निर्माण में सहायता मिलती है। इससे स्टार्च के स्थानान्तरण में भी सहायता मिलती है।

गन्धक से जड़ की बढ़ती अधिक होती, बीजोत्पादन उन्नत होता और पौधे की बढ़ती में सहायता मिलती है। प्रमुख पोषक तत्त्वों के अभाव में मक्का के पत्ते कैसे लगते हैं इसका कुछ पता चित्र से लगता है।

कुछ तत्त्व ऐसे भी हैं जिनकी बड़ी अल्प मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। इनका रहना भी नितान्त आवश्यक है। पर अधिक मात्रा से लाभ के स्थान में हानि हो सकती है, अल्प मात्रा में इन तत्त्वों को ज़रूर रहना चाहिए।

पौधों को जिन तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है उनके नाम और संकेत नीचे दिये जाते हैं—

तत्त्व	संकेत	तत्त्व	संकेत
नाइट्रोजन	N	मैंगनीज	Mn
फास्फरस	P	बोरन	B
पोटेसियम	K	मोलिबडेनम	Mo
कैलसियम	Ca	जस्ता	Zn
मैगनीशियम	Mg	ताँबा	Cu

तत्त्व	संकेत	तत्त्व	संकेत
गन्धक	S	हाइड्रोजन	H
लोहा	Fe	आक्सिजन	O
		कार्बन C	

पौधों का पोषण

पौधों के पोषण के लिए उपर्युक्त सब तत्त्व आवश्यक हैं। किसी फसल में एक तत्त्व की अधिक मात्रा की जरूरत पड़ती है और किसी फसल में दूसरे तत्त्व की, पर आवश्यकता सब की रहती है। इन तत्त्वों में किसी एक के अभाव से भी पौधों की वृद्धि रुक जाती और उनमें कुछ न कुछ दोष आ जाता है।

पौधों को हाइड्रोजन और आक्सिजन जल से प्राप्त होता है। कार्बन वायु से प्राप्त होता है। नाइट्रोजन कुछ पौधों को वायु से भी प्राप्त होता है पर अधिकांश को जड़ द्वारा मिट्टी से प्राप्त होता है। अन्य सब पोषक तत्त्व मिट्टी से ही प्राप्त होते हैं। कुछ तत्त्व तो इतनी अल्प मात्रा में आवश्यक होते हैं कि उन्हें अलग से मिट्टी में देने की ज़रूरत नहीं पड़ती। इतनी अल्प मात्रा मिट्टी में सदा ही वर्तमान रहती है। फसल के बारबार उगाने से नाइट्रोजन और फास्फरस सदृश तत्त्वों की कमी हो जाती है। इन्हें तब बाहर से उर्वरक के रूप में देने से ही फसल की पैदावार बढ़ती है। पौधों के अकार्बनिक अंश राख में रह जाते हैं। राख की मात्रा साधारणतया आधा प्रतिशत से अढ़ाई प्रतिशत तक रहती है। पौधों के जलाने से यही अंश बच जाता है।

चौथा अध्याय

खाद का इतिहास

फसल की बोआई कब से शुरू हुई इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। पुरातत्त्व-विज्ञों का अनुमान है कि दस से बारह हज़ार वर्षों से फसल की बोआई होती आ रही है। पहले-पहल जब खेतों में फसल उगायी गयी होगी तब फसलें अवश्य ही अच्छी उगी होंगी, पर धीरे-धीरे देखा गया होगा कि एक ही खेत में फसल के बारबार उगाने से पैदावार कम होती जाती है। पैदावार कम हो जाने पर लोग ऐसे खेतों को छोड़कर दूसरे नये खेतों में फसल उगाते होंगे, क्योंकि उस समय आबादी बहुत कम थी, खेतों की कमी नहीं थी और थोड़े खेतों में ही पर्याप्त अनाज पैदा हो जाता था।

बाद को लोगों ने देखा कि जिस धरती की उपजाऊ शक्ति कम हो गयी है उसमें बाहर से कुछ डालने से उपजाऊ शक्ति फिर लौट आती है। ऐसे प्रयुक्त होनेवाले पदार्थों में पशु-पक्षियों का मल-मूत्र था जिसका उपयोग आज तक इस काम के लिए होता आ रहा है। पीछे हड्डियों, काष्ठ की राखों, पशुओं की संचित विष्ठा, मछलियों, खड़िया और एक प्रकार की मिट्टी 'मार्ल' का उपयोग धीरे-धीरे होने लगा।

प्राचीन ग्रन्थों से पता लगता है कि ईसा मसीह से सैकड़ों वर्ष पूर्व से एशिया और अमेरिका वालों को खड़िया, मार्ल, लकड़ी की राख आदि का उपयोग मालूम था। प्राचीन यूनानी ग्रन्थों में हरी खाद का भी उल्लेख मिलता है। खाद के रूप में मछली और ग्वानो का उपयोग तो अमेरिका के आदिवासी इण्डियन भी जानते थे। आधुनिक अर्थ में खाद का उपयोग १०० वर्ष से कुछ ही पहले से होता आ रहा है। खनिज लवणों का उपयोग तो और आधुनिक है तथा १०० वर्ष से इधर ही शुरू हुआ है।

फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए उर्वरक का उपयोग सम्भवत: १६६५ ई० से शुरू होता है। इसी वर्ष केनेम डिगबी (Kenelm Digby) ने एक लेख में लिखा था कि शोरे के व्यवहार से पैदावार बढ़ायी जा सकती है। १८०४ ई० में स्विटज़रलैण्ड के निकोलस थियोडोर ड सोयासे (Nicholas Theodore de Sausse) ने इस बात की ओर लोगों का ध्यान खींचा था कि राख में जो तत्त्व रहते हैं वे पौधों की वृद्धि के लिए अत्यावश्यक हैं। इस कथन की पुष्टि एक दूसरे व्यक्ति बूसिन्गो

(Boussingault) द्वारा १८३० ई० में हुई। इन्होंने खेती की उन्नति के लिए अलसाक में एक प्रयोगशाला स्थापित की थी। गाइजेन विश्वविद्यालय के जर्मन रसायनज्ञ सुप्रसिद्ध लीबिग (Liebig) ने १८५५ या ५६ में पहले-पहल बताया कि पौधों को फ़ास्फ़रस और पोटैसियम की आवश्यकता होती है। लीबिग ने यह भी बतलाया कि उद्भिदों में कार्बन अवश्य रहता है और यह कार्बन वायु से आता है। रौथमस्टेड की प्रयोगशाला में अनुसंधान करनेवाले लावेस (Lawes), गिल्बर्ट (Gilbert) और प्यूग (Pugh) ने निश्चित रूप से बतलाया कि पौधों की वृद्धि के लिए नाइट्रोजन अत्यन्त आवश्यक है। खेतों में संयुक्त नाइट्रोजन का रहना इन्होंने आवश्यक बतलाया। इनके मत में जिस अनुपात में नाइट्रोजन रहता है उसी अनुपात में पैदावार की बढ़ती होती है। इस सम्बन्ध में अमेरिका में भी अनुसन्धान हुए और वहाँ के कृषि विभाग के टामस ग्रीन क्लीम्सन ने भी सिद्ध किया कि पौधों को नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है और वे वायु से नाइट्रोजन ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं।

खाद के रूप में हड्डियों का उपयोग पुराना है। हड्डी का चूरा खाद के लिए बहुत दिनों से प्रयुक्त होता आ रहा है। १७वीं सदी में खाद के लिए हड्डी के चूरे के उपयोग का वर्णन मिलता है। १९वीं सदी में तो हड्डी के चूरे का व्यापार बहुलता से होने लगा था। अमेरिका में १८२५ ई० में पहले-पहल हड्डी के चूरे का खाद के लिए उपयोग शुरू हुआ। १८४२ में लावेस ने सुपर-फ़ास्फेट का पेटेण्ट लिया और इसका निर्माण शुरू किया। इससे उन्होंने बहुत धन कमाया।

पेरू और कुछ अन्य टापुओं में ग्वानो मिलता है। ग्वानो समुद्री पक्षियों की हजारों वर्षों से संचित विष्ठा है। खाद के रूप में इसका उपयोग बहुत दिनों से होता आ रहा है। ग्वानो का पता पहले-पहल यूरोपवालों को १८०२ ई० में वानस्पतिक वैज्ञानिक हमबोल्ट (Humbolt) द्वारा लगा था। १८२० ई० में वह पहले-पहल यूरोप आया और १८३२ ई० में अमेरिका गया। खाद के रूप में इसका उपयोग लगभग १८४० ई० से बराबर होता आ रहा है। वहाँ से विभिन्न देशों को पर्याप्त मात्रा में ग्वानो भेजा जाने लगा। १८४० में अनुमान था कि ग्वानो की मात्रा १२,०००,००० टन थी पर १८७५ में घटकर वह लगभग २,०००,००० टन हो गयी। बाद में अन्य नाइट्रोजन वाली खादों के प्रयोग में आने से इसका उपयोग धीरे-धीरे कम होने लगा। आज इसका उपयोग बहुत सीमित हो गया है।

चिली में शोरे का निक्षेप मिलता है। चिली का शोरा सोडियम नाइट्रेट है। १८३० ई० से खाद के लिए इसका उपयोग शुरू हुआ। उस समय इसका उपयोग बड़ा

सीमित था। १८५० में प्रायः २४०,००० मेट्रिक टन चिली-शोरा बाहर भेजा गया था। इस शोरे का उपयोग अब शीघ्रता से बढ़ने लगा। सारे यूरोप, एशिया और अमेरिका में यह बिकने लगा। एशिया में पहले-पहल ईख की खेती में इसका उपयोग सबसे अधिक होता था। नील की खेती में भी इसका उपयोग होता था। चाय की खेती में अब भी इसका उपयोग होता है। आज पर्याप्त मात्रा में इसका उपयोग हो रहा है। भारत में भी चिली-शोरे का उपयोग होता है, यद्यपि इसकी मात्रा धीरे-धीरे अब कम हो रही है।

भारत में भी एक प्रकार का शोरा उत्पन्न होता है। यह पोटैसियम नाइट्रेट है। इसका उपयोग भी बहुत पुराना है, धान की खेती के लिए यह शोरा उत्तम खाद है। नाइट्रोजन के साथ-साथ इससे पोटैसियम भी प्राप्त होता है जो कुछ फसलों के लिए उत्तम खाद समझा जाता है। नाइट्रोजन और पोटैसियम दोनों तत्त्वों की उपस्थिति इसकी विशेषता है।

खाद के लिए अमोनियम लवणों का उपयोग १८४० में इंग्लैण्ड में शुरू हुआ। रौथमस्टेड की प्रयोगशालाओं के प्रयोगों से सिद्ध हो गया कि अमोनियम लवण भी खाद के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। उस समय साधारणतया अमोनियम क्लोराइड और अमोनियम सल्फ़ेट के मिश्रण का उपयोग होता था। उस समय कोयला-गैस के निर्माण से पर्याप्त अमोनियम लवण प्राप्त होता था।

अमोनियम लवणों का उपयोग अमेरिका में बहुत पीछे १८९३ ई० में शुरू हुआ। इसके उपयोग का उल्लेख इससे पूर्व १८४९ ई० में जान पिटकिन नौर्टन (John Pitkin Norton) द्वारा एक पुस्तक में मिलता है। अमेरिका में आज अमोनियम लवणों का उपयोग सबसे अधिक तादाद में होता है।

पोटाश लवण का विस्तृत निक्षेप जर्मनी के स्टास्फर्ट नामक स्थान में मिलता है। सन् १८६० से पोटाश लवणों का उपयोग खाद के लिए जर्मनी में शुरू हुआ। १८६१ से पोटाश लवण जर्मनी से निर्यात होने लगा। पीछे अमेरिका में भी पोटाश लवण का निक्षेप मिला। १८६९–७० में पोटाश लवण जर्मनी से अमेरिका आया और खाद के लिए उसका उपयोग शुरू हुआ। १९वीं सदी के अन्त तक इसका उपयोग सार्वभौम रूप से होने लगा था। कुछ फसलों के लिए पोटाश खाद आवश्यक समझी जाती है। गत विश्वयुद्ध में जब पोटाश लवणों का निर्यात जर्मनी से बन्द हो गया तब बारूद के लिए शोरे की बड़ी आवश्यकता पड़ी। पोटाश लवणों के अन्य उद्गमों की खोज होने लगी। इस खोज के फलस्वरूप ही पता लगा कि 'डेड सी' के जल में पर्याप्त लवण रहता है और उसमें पोटाश-लवण की मात्रा इतनी अधिक है कि वह लाभ के

साथ प्राप्त हो सकता है। तब पोटाश लवण तैयार करने का एक कारखाना खुला और शीघ्र ही वहाँ एक बड़ा नगर बस गया।

हड्डी का चूरा खाद के लिए प्रयुक्त हो सकता है, इसका प्रदर्शन लीबिग ने १८३९–४० में किया था। इसकी उपयोगिता फ़ास्फ़ेट के कारण है यह भी मालूम था। यदि चूरे को सल्फ्यूरिक या हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से उपचारित कर लें तो खाद की उत्कृ-ष्टता बढ़ जाती है। इसका पता भी १८३५ में लग गया था। पीछे पता लगा कि लोहे के निर्माण में एक पदार्थ प्राप्त होता है जिसे पैठिक धातु-मल (बेसिक स्लैग) कहते हैं। इसमें भी फ़ास्फ़ेट रहता है और हड्डी के चूरे के स्थान में इसका उपयोग हो सकता है। १८८० ई० से चूरे के स्थान में बेसिक स्लैग का उपयोग शुरू हुआ।

पीछे कुछ फ़ास्फ़ेट-चट्टानों का भी पता लगा। ये चट्टानें फ़ास्फ़ेट खाद के लिए उपयुक्त हो सकती हैं। फिर इन चट्टानों का उपयोग शुरू हुआ। अमेरिका में सन् १८६८ ई० में और उत्तर अफ्रीका में सन् १८८९ ई० में फ़ास्फ़ेट चट्टानें पायी गयीं। फ़ास्फ़ेट चट्टानों का उपयोग सबसे पहले इंग्लैण्ड में शुरू हुआ। इसका पहला कार-खाना सन् १८७३ ई० में लावेस द्वारा खोला गया था, जिससे उन्होंने बहुत धन कमाया। कुछ लोग खाद के रूप में फ़ास्फ़ेट के उपयोग का श्रेय लीबिग को देते हैं और कुछ लोग लावेस को।

उर्वरक तैयार करने का पहला कारखाना जर्मनी में १८४९ ई० में खुला था। प्राय: इसी वर्ष अमेरिका में भी मिश्रित उर्वरक तैयार करने का पहला कारखाना खुला। १८५४ में अमेरिका में केवल १०० टन उर्वरक तैयार हुआ था, १८५६ में २०,००० टन। अब कारखानों की संख्या शीघ्रता से बढ़ने लगी। १८६० में ऐसे कारखानों की संख्या १७ थी। १९०० ई० में लगभग २,०००,००० टन मिश्रित उर्वरक तैयार हुआ था। मिश्रित उर्वरक का उपयोग इंग्लैण्ड में पीछे शुरू हुआ।

उस समय अकार्बनिक उर्वरकों में सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट, कार्बनिक खादों में रेंड़ी की खली, हड्डी का चूरा, अवक्षिप्त फ़ास्फ़ेट, सुपर-फ़ास्फ़ेट, पोटैश-लवणों में पोटाश खनिज, कनाइट, पोटैसियम क्लोराइड, पोटैसियम सल्फ़ेट, पोटैसियम-मैगनीशियम सल्फ़ेट मालूम थे।

कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए सुप्रसिद्ध 'रौथेमस्टड एक्सपेरिमेण्टल स्टेशन' की स्थापना १८८९ ई० में सर जौन बी० लावेस द्वारा हुई थी। उन्होंने सुपर-फ़ास्फेट के निर्माण से पर्याप्त धन कमाया था और उसी में से ५ लाख डालर देकर एक ट्रस्ट की स्थापना की। सन् १९०० में लावेस मर गये। पर यह संस्था बराबर काम

करती चली आ रही है। मिट्टी और उर्वरक के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रयोग इसी संस्था में हुए हैं। पौधों के पोषण के सम्बन्ध में भी पर्याप्त खोजें यहाँ हुई हैं।

अमेरिका में कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए पहली संस्था सन् १८६९–७० में खुली थी पर यह अधिक दिनों तक जीवित न रह सकी। सन् १८८७ ई० में 'हैच एक्ट' (Hatch Act) नाम का एक कानून पास हुआ जिससे अमेरिका के प्रत्येक राज्य में कृषि-प्रयोग संस्था के खोलने का आदेश था। आज अमेरिका में अनेक संस्थाएँ हैं जिनमें कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान हो रहे हैं। इनमें एक सबसे पुरानी संस्था कनेक्टीकट (Connecticut) की है जिसकी स्थापना सन् १९२५ में हुई थी।

अमेरिका के संयुक्त राज्यों की एक संस्था 'आहार और कृषि' के अनुसन्धान के लिए सन् १९०५ ई० में स्थापित हुई थी जो पीछे सन् १९४५ ई० में एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बन गयी। इस संस्था का कार्यालय अब न्यूयार्क में है और अनेक देशों की संस्थाएँ इससे संबद्ध हैं। इसकी ओर से कृषि और उर्वरक के सम्बन्ध की पुस्तकें बराबर प्रकाशित हो रही हैं।

एक दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना सन् १९२४ ई० में हुई थी। इसे 'सोयाएल अन्तर्राष्ट्रीय सोसायटी' कहते हैं। इस संस्था में मिट्टी-विज्ञान का अध्ययन होता है। इस संस्था से मिट्टी के सम्बन्ध में बहुत सी आवश्यक बातों का ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है।

भारत में भी कृषि-अनुसन्धान के लिए पूसा नामक स्थान में 'कृषि अनुसन्धान' नामक संस्था की स्थापना सन् १९०५ में हुई। उस समय बिहार में पूसा का महत्त्व इस कारण था कि पूसा के आस-पास अनेक निलहों की कोठियाँ थीं जिनमें नील के पेड़ से रंग निकाला जाता था। पूसा की मिट्टी भी बड़ी उपजाऊ है। यह संस्था अनेक वर्षों तक अनुसन्धान करती रही। पीछे नील की खेती बन्द हो गयी और अंग्रेज निलहे बिहार छोड़कर चले गये। इस बीच सन् १९३३ में बिहार में भयंकर भूचाल आया जिससे इस संस्था की इमारतों को बड़ी क्षति पहुँची। इससे यह संस्था सन् १९३४ में दिल्ली चली गयी और पूसा कृषि 'अनुसन्धानशाला' के नाम से ही दिल्ली के निकट कार्य कर रही है। इस अनुसन्धानशाला के अधीन १००० एकड़ भूमि है जिसकी सिंचाई नहर और नल-कूपों के पानी से हो सकती है। इसका पुस्तकालय बहुत बड़ा है। उसमें एक लाख चालीस हजार पुस्तकें हैं और लगभग एक हजार पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। गामा किरण की सहायता से नयी जातियों के पौधों के उगाने का प्रयत्न वहाँ आज हो रहा है। भूमि सर्वेक्षण के लिए दिल्ली, खड़गपुर, नागपुर

और बंगलोर में संस्थाएँ खुली हैं और मिट्टी-परीक्षण के लिए २४ प्रयोगशालाएँ खुलने-वाली हैं जिनमें १५ खुल चुकी हैं।

वायु से संयुक्त नाइट्रोजन प्राप्त करने की पहली सफल चेष्टा जर्मनी में प्रथम विश्वयुद्ध के पहले शुरू हुई, परन्तु इसमें प्रगति युद्ध के बाद ही हुई। अब मिश्रित उर्वरकों का निर्माण शुरू हुआ। ऐसे उर्वरक नाइट्रोजन और फ़ास्फ़रस के मिश्रित उर्वरक, नाइट्रोजन, फ़ास्फ़रस और पोटैसियम के मिश्रित उर्वरक थे। इनके निर्माण में पर्याप्त वृद्धि हुई। ये पहले यूरोप में ही बनते थे। पीछे ये अमेरिका में भी बनने लगे। इसी समय चट्टानों से प्राप्त फ़ास्फेटों का व्यवसाय बहुत चमक उठा।

खाद के लिए पोटैसियम लवणों का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ने लगा। पहले यह केवल जर्मनी से आता था। अब अन्य उद्गमों की खोज होने लगी और यह अन्य स्थानों में भी पाया जाने लगा। न्यू मैक्सिको के कार्ल्सबाड की खानों में यह मिला। आज डेड-सी के जल से भी पोटैसियम लवण प्राप्त होता है।

भारत में भी पोटाश-लवण पाया जाता है। मिट्टी में पोटैसियम नाइट्रेट बनता है। कार्बनिक पदार्थों पर उपयुक्त ताप और वायु के कारण कुछ बैक्टीरिओं के द्वारा पोटैसियम नाइट्रेट बनकर 'नोनी मिट्टी' में पाया जाता है। इसी मिट्टी से पोटैसियम नाइट्रेट शोरे के रूप में निकाला जाता है। शुद्ध करने पर इससे 'कलमी शोरा' प्राप्त होता है और अधिक शोधन से प्रायः पूर्णतया शुद्ध शोरा प्राप्त हो सकता है, जिसका उपयोग बारूद बनाने में होता है। आतशबाजी में भी शोरे का उपयोग महत्त्व का है। कहावत है 'शोरा शोर करे, गन्धक ले उड़े।'

भारत में रासायनिक खाद या उर्वरक तैयार करने की संभावना की जाँच के लिए सन् १९४४ ई० में ग्रेट ब्रिटेन से एक प्राविधिक मंडल (मिशन) भारत आया। इस मंडल ने प्रति वर्ष ३५०,००० टन अमोनियम सल्फेट तैयार करने का एक कारखाना खोलन की सिफारिश की। उसने यह भी विचार किया कि इस कारखाने के लिए कच्चा माल, ईंधन और शक्ति कहाँ से प्राप्त होगी। मंडल ने यह भी सिफारिश की कि किस विधि से अमोनियम सल्फेट तैयार करना चाहिए।

अमोनिया के निर्माण के लिए नाइट्रोजन और हाइड्रोजन की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन कैसे प्राप्त हो सकता है? हाइड्रोजन के निर्माण के लिए कौन-सी विधि अधिक सुविधाजनक होगी इस पर भी विचार हुआ। अमोनियम सल्फ़ेट के लिए सल्फ़ेट कहाँ से प्राप्त होगा इस पर भी विचार हुआ।

अमोनियम सल्फेट के निर्माण में नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के अतिरिक्त कोयला, कोक, जिपसम, लौहमाक्षिक और गन्धक का उपयोग हो सकता है। इसके लिए

सस्ती शक्ति और सस्ती बिजली भी आवश्यक है। भारत में गन्धक नहीं पाया जाता, अल्प मात्रा में उस समय बलूचिस्तान में गन्धक पाया जाता था जो पीछे पाकिस्तान में चला गया। बाहर से मँगाये गन्धक से ही भारत में सल्फ्यूरिक अम्ल बनता है। गन्धक पहले जापान और इटली से आता था। पीछे अमेरिका से भी आने लगा। लौहमाक्षिक से सल्फ्यूरिक अम्ल तैयार करने का काम भारत में अभी सुचारु रूप से चला नहीं है, यद्यपि भारत में लौहमाक्षिक के पर्याप्त निक्षेप अनेक स्थलों में पाये गये हैं। अतः यह निश्चय हुआ कि जिपसम से ही सल्फ़ेट प्राप्त करना सुविधाजनक होगा। जिपसम पर्याप्त मात्रा में राजस्थान के बीकानेर और जोधपुर में पाया जाता है, ट्रावनकोर में भी जिपसम पाया जाता है। इधर कुछ अन्य स्थलों में भी जिपसम के पाये जाने का समाचार मिला है।

कोयला और कोक की सरलता से प्राप्ति के कारण यह निश्चय हुआ कि अमोनियम सल्फेट के निर्माण का कारखाना धनबाद के निकट दामोदर नदी पर सिन्दरी में खुलना चाहिए। सिन्दरी के चुनाव का प्रधान कारण यह था कि यह स्थान कोयले की खानों के समीप है। अतः वहाँ कोयला और कोक सस्ता मिल सकता है और निम्न कोटि के कोयले का भी उपयोग किया जा सकता है जो बहुत सस्ता पड़ेगा। अन्त में सिन्दरी में ही उर्वरक का कारखाना खुला और वहाँ वह बड़ी सफलता से कार्य कर रहा है। मंडल ने जो एक दूसरा स्थान चुना था वह अलीगढ़ के समीप उत्तर प्रदेश में था। पर वहाँ परिवहन की कठिनाइयों के कारण कारखाना न खुल सका।

पाँचवाँ अध्याय

नाइट्रोजनीय खाद

पौधों को जिन पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है उनमें नाइट्रोजन का स्थान सबसे अधिक महत्त्व का है। फसलों की पैदावार बहुत कुछ मिट्टी में उपस्थित नाइट्रोजन पर ही निर्भर करती है। नाइट्रोजनीय खाद का मूल्य भी फास्फरस और पोटैसियम उर्वरकों से अधिक, प्राय: तिगुना होता है। मिट्टियों में नाइट्रोजन रहता है। भारत के विभिन्न स्थानों की मिट्टियों में कितना नाइट्रोजन रहता है यह आगे दिया गया है।

मिट्टी में नाइट्रोजन का रूप——मिट्टी में नाइट्रोजन कई रूपों में रहता है। कुछ संयुक्त रूप में रहता है, कुछ असंयुक्त रूप में। कुछ नाइट्रोजन कार्बनिक यौगिकों के रूप में और कुछ अकार्बनिक यौगिकों के रूप में रहता है। कुछ नाइट्रोजन लवण जल में विलेय होता है और कुछ अविलेय। कुछ नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में, कुछ अमोनियम लवणों के रूप में और कुछ नाइट्राइट के रूप में रहता है।

मिट्टी में असंयुक्त नाइट्रोजन की मात्रा सबसे अधिक रहती है। कार्बनिक नाइट्रोजन की मात्रा कृषियोग्य भूमि में ०·०५ से ०·३ प्रतिशत रहती है। नाइट्रेट की मात्रा सबसे अधिक, समस्त नाइट्रोजन का २० प्रतिशत तक रह सकती है। दलदल और पानी से भरी भूमि में अमोनियम लवण और नाइट्राइट रह सकते हैं। जिस मिट्टी में वायु का प्रवेश स्वच्छन्दता से होता है उसमें अकार्बनिक नाइट्रोजन लवण बड़ी अल्प मात्रा में रहते हैं।

नाइट्रोजन चक्र——मिट्टी में से नाइट्रोजन बराबर बाहर निकलता रहता है और बाहर से आता रहता है। निकलने और आने का क्रम ऐसा है जिसमें से कुछ पर मनुष्य का अधिकार नहीं है और कुछ पर अधिकार हो सकता है।

मिट्टी में नाइट्रोजन घास-पातों के सड़ने-गलने से, हरी खाद से, गोबर और घूरे की खाद से, वायु के नाइट्रोजन यौगिकों और विशेष खादों तथा उर्वरकों से आता है। बिजली के चमकने से नाइट्रोजन के आक्साइड बनते हैं जो वर्षा-जल में घुलकर मिट्टी पर गिरकर उसी में मिल जाते हैं। मिट्टी में कुछ सूक्ष्म जीवाणु भी रहते हैं जो वायु

के नाइट्रोजन को पकड़कर यौगिकों में परिणत कर मिट्टी में मिलाते हैं। मिट्टी से जो नाइट्रोजन निकलता है, वह फसल के रूप में अथवा पानी में घुलकर पानी के निकल जाने से अथवा पानी द्वारा मिट्टी से बहाकर निकल जाने से अथवा कुछ जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन अथवा अमोनिया के रूप में वायु में निकाल देने से चला जाता है।

कार्बनिक पदार्थों के नाइट्रोजन के मिट्टी में अनेक रूपान्तर होते हैं। उनमें नाइट्रोजन प्रोटीन के रूप में रहता है। उसका विच्छेदन होने से अनेक मध्यम उत्पाद बनते हैं। अन्त में वह नाइट्रेट में परिणत हो जाता है। नाइट्रेट के रूप में ही या तो जीवाणु उसे खा जाते अथवा पौधे खींच लेते हैं, या पानी के साथ संकर्षण से वह निकल जाता अथवा जीवाणुओं द्वारा अमोनिया या नाइट्रोजन बनकर वायु में मिल जाता है। यह कार्य साधारणतया बराबर चलता रहता है। इसीसे कहा जाता है कि नाइट्रोजन एक चक्र है जो बराबर चलता रहता है।

नाइट्रोजनीय खाद—नाइट्रोजनीय खाद मोटे तौर से दो किस्म की होती है। जो नाइट्रोजनीय खाद कार्बनिक स्रोतों, पशुओं और पेड़-पौधों से प्राप्त होती है उसे कार्बनिक नाइट्रोजनीय खाद कहते हैं और जो नाइट्रोजनीय खाद अकार्बनिक उद्गमों, खानों और निक्षेपों से प्राप्त होती है उसे अकार्बनिक नाइट्रोजनीय खाद कहते हैं। कार्बनिक नाइट्रोजनीय खादों में कार्बन अवश्य रहता है। कैलसियम साइनेमाइड और यूरिया ऐसी दो कार्बनिक खादें हैं जिनमें कार्बन रहने पर भी हम अकार्बनिक खादों में उनकी गिनती करते हैं, क्योंकि ये दोनों उर्वरक अकार्बनिक स्रोतों से प्राप्त होते हैं। इनका वर्णन अकार्बनिक नाइट्रोजनीय खाद रूप में ही किया जाता है।

इनमें कौन-सी खाद खेतों में डालनी चाहिए यह बहुत कुछ मिट्टी और फसल पर निर्भर करता है। साधारण रूप से कहा जा सकता है कि यदि नाइट्रोजनीय खाद डालना हो तो अंशतः कार्बनिक खाद के रूप में और अंशतः अकार्बनिक खाद के रूप में डालना अच्छा है। कार्बनिक खादों से मिट्टी को ह्यूमस भी प्राप्त होता है जो पौधों के लिए लाभप्रद है। कार्बनिक खादों से मिट्टी में जीवाणु बढ़ते और पनपते हैं। जीवाणुओं से खेतों को लाभ होता है।

नाइट्रोजन का स्वांगीकरण—किस रूप में पौधे नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं इस संबन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ लोगों का कहना है कि नाइट्रेट के रूप में पौधे नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं। कुछ लोगों का मत है कि अमोनिया के रूप में और कुछ लोगों का मत है कि ह्यूमस के रूप में पौधे नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं।

इस संबंध में जो अन्वेषण हुए हैं उनसे पता लगता है कि अधिकांश पौधे नाइट्रेट और अमोनियम दोनों प्रकार के नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं। कुछ पौधे नाइट्रेट नाइ-

ट्रोजन को अधिक पसन्द करते और कुछ अमोनियम नाइट्रोजन को अधिक पसन्द करते हैं। सोयाबीन दोनों प्रकार के नाइट्रोजन को ग्रहण कर सकता है। यह पहली अवस्था में अमोनियम नाइट्रोजन को ग्रहण करता और पिछली अवस्था में नाइट्रेट नाइट्रोजन को। धान भी पहले अमोनियम नाइट्रोजन को ही अधिक ग्रहण करता और पीछे नाइट्रेट नाइट्रोजन को। अनानास अमोनियम नाइट्रोजन के नाइट्रोजन को जल्द ग्रहण करता है।

कुछ पौधे कार्बनिक नाइट्रोजन को सीधे ग्रहण कर सकते हैं। बोमों (Beaumont, १९३१) ने देखा है कि तम्बाकू ऐसपेरेगिन (Asparagin), साइस्टीन (Cystein) और यूरिया को सीधे ग्रहण कर सकता है।

रसेल (१९३२) का मत है कि मकई, जौ और कद्दू, ऐसे पौधे जिनमें कार्बोहाइड्रेट की प्रचुरता रहती है, अमोनियम नाइट्रोजन को जल्द ग्रहण करते और मटर, मूंग, मोठ, ऐसे पौधे जिनमें कार्बोहाइड्रेट कम रहता है, तभी अमोनियम नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं जब कैलसियम कार्बोनेट उपस्थित हो। जो पौधे ऐसी मिट्टी में भी अच्छे उपज सकते हैं जिसमें संवातन की कमी है और जिसमें विलेय पोटैसियम, सोडियम और कैलसियम की कमी है, वे अमोनियम नाइट्रोजन को अंशतः अथवा पूर्णतः सहन कर सकते हैं। एलिसन (१९३१) का मत है कि बड़े-बड़े पौधे अमोनियम नाइट्रोजन को ही अधिक ग्रहण करते हैं।

ऐसा कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े पौधे नाइट्रेट, अमोनियम और कार्बनिक तीनों किस्म के नाइट्रोजन का स्वांगीकरण कर सकते हैं। साधारणतया नाइट्रेट नाइट्रोजन का सबसे अधिक मात्रा में स्वांगीकरण होता है। उसके बाद अमोनिया नाइट्रोजन का और तब कार्बनिक नाइट्रोजन का स्थान आता है। यदि मिट्टी अल्प अम्लीय, उदासीन अथवा क्षारीय है तो पौधे नाइट्रेट नाइट्रोजन की अपेक्षा अमोनियम नाइट्रोजन का जल्द स्वांगीकरण करते हैं। यदि मिट्टी प्रबल अम्लीय है तो पौधे नाइट्रेट नाइट्रोजन का स्वांगीकरण जल्द करते हैं।

नाइट्रोजनीय खाद का प्रभाव

१. नाइट्रोजन से डार-पात और तने तेजी से बढ़ते हैं और उनका बढ़ना अधिक काल तक होता रहता है। नाइट्रोजन की कमी से वृद्धि धीमी और कम हो जाती है। यदि नाइट्रोजन बिल्कुल न रहे तो अंकुर तब तक बढ़ता है जब तक बीज का नाइट्रोजन उसे मिलता रहता है। ज्यों ही नाइट्रोजन का मिलना रुक जाता है, वृद्धि बन्द हो जाती है।

चित्र ६—मक्का का खेत

बायें बिना खाद या उर्वरक वाला, दायें खाद या उर्वरक वाला

२. नाइट्रोजन से पौधों में गहरा हरा रंग आता है। नाइट्रोजन के अभाव म पौधों के पत्ते पीले होने लगते हैं अथवा उनमें पीत रक्तता आ जाती है और पीछे वे सूख जाते हैं या 'जल जाते' हैं। फूल के पत्ते जल्द झर जाते, कलियाँ मर जातीं और शाखाएँ ठूँठ हो जाती हैं। पत्तों का सूखना निचले भाग से शुरू होकर ऊपर की ओर बढ़ता है।

३. नाइट्रोजन से पौधों द्वारा फास्फरिक अम्ल और पोटाश के स्वांगीकरण में सहायता मिलती है।

४. नाइट्रोजन से फसलों के पकने पर प्रभाव पड़ता है। अधिक नाइट्रोजन से फसलें देर से पकती हैं। नाइट्रोजन की कमी से समय के पहले फसलें पक जाती हैं। यदि पर्याप्त पोटाश और फास्फेट न हो तो अधिक नाइट्रोजन से अनाज देर से बनता है। नाइट्रोजन की कमी से बीज छोटे आकार के और भार में हलके तथा सिकुड़े हुए दिखाई देते हैं।

५. नाइट्रोजन के आधिक्य से पुआल अधिक बनता और कमजोर होता है। पौधे इससे खड़े नहीं रह सकते, वायु और वर्षा से गिर पड़ते हैं। पौधों का गिरना अनाज-उत्पादन की दृष्टि से बुरा होता है।

६. नाइट्रोजन से पुआल और अनाज के बीच, पत्तों और मूलों के बीच अनुपात बढ़ जाता है। अर्थात् पुआल अधिक होता और अनाज कम, पत्ते अधिक होते और जड़ की गाँठें (आलू, शकरकन्द, मूली) कम होती हैं। जिस अनुपात में पत्ते और पुआल बढ़ते हैं उस अनुपात में मूल या अनाज नहीं बढ़ता।

७. नाइट्रोजन के आधिक्य से चारा और भोज्य फसलों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है पर कार्बोहाइड्रेट और राख की मात्रा कम हो जाती है। सब्जियों और फसलों के रखने के गुण में कमी आ जाती है। ये अधिक समय तक टिकते नहीं हैं।

८. नाइट्रोजन के आधिक्य से डाल-पात बहुत बढ़ते और कोमल होते हैं। इससे ऐसी फसलों में कीड़ों और कवकों के आक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। देखा गया है कि नाइट्रोजन के आधिक्य से गेहूँ की दृढ़-कोशा-भित्ति (Scheleren-chyma) कम हो जाती है जिससे स्थूल-कोण (Collenchyma) का अनुपात बढ़ जाता है और इससे पौधों पर कवकों का आक्रमण होता है।

भारत के विभिन्न स्थानों की भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा का विवरण—

उत्तर-प्रदेश		सहारनपुर	० ०८३
स्थान	औसत प्रतिशत मात्रा	मुजपफरनगर	०·०८७
देहरादून	०·१५५	बिजनौर	०·०७३
अलमोड़ा	०·१९९	मेरठ	०·०५०
नैनीताल	०·१४८	मुरादाबाद	०·०५४
पीलीभीत	० ०७३	बरेली	० ०६७
खीरी	०·०७९	शाहजहाँपुर	०·०६२
बहराइच	०·०५०	फर्रुखाबाद	० ०६०
गोंडा	०·१०३	मथुरा	० ०६२
बस्ती	० ०८५	आगरा	०·०३४

इटावा	०·०३०	हजारीबाग	०·०४७
रामपुर	०·०७८	पलामू	०·०६५
जालौन	०·०३९	राँची	०·०४९
झाँसी	०·०५१	मानभूम	०·०५२
सीतापुर	०·०६१	सिंहभूम	०·०५७
हरदोई	०·०६८	**उड़ीसा**	
बाराबंकी	०·०६४	वालासोर	०·०३६
लखनऊ	०·०५६	कटक	०·०५९
उन्नाव	०·०४६	पुरी	०·०४४
कानपुर	०·०४२	गंजाम	०·०२२
हमीरपुर	०·०६३	अंगुल	०·०६१
बाँदा	०·०५८	संभलपुर	०·०३९
प्रतापगढ़	०·०७०	**असम**	
जौनपुर	०·०९३	लखीमपुर	०.१२५
बनारस	०·११३	शिवसागर	०·११५
गाजीपुर	०·०४०	नवगाँव	०·१०८
आजमगढ़	०·०६५	दारंग	०·१२९
गोरखपुर	०·०६३	कामरूप	०·१८६
अलीगढ़	०·०३५	गोलपारा	०·१०२
बिहार प्रदेश		नागा पहाड़ी	०.१४८
पूर्निया	०·१०७	खसियाँ पहाड़ी	०.१३७
भागलपुर	०·०६५	मनीपुर	०·२१२
दरभंगा	०·०५२	गारो पहाड़ी	०·१३४
मुजफ्फरपुर	०·०४९	काचर	०·१५७
चम्पारन	०·०६२	सिलहट	०·०९९
सारन	०·०५२	तेराई	०·१३१
शाहाबाद	०·०६२	त्रिपुरा	०·१०३
पटना	०·०६६	मनिपुर	०·२१२
गया	०·०५१	**बंगाल**	
मुंगेर	०·०६१	दार्जिलिंग	०·१४२
सन्थाल परगना	०·०५३	जलपाइगुड़ी	०·०९२

दीनाजपुर	०·०७९
मालदह	०·०७५
राजशाही	०·०८४
मुर्शिदाबाद	०·०७३
नदिया	०·०४२
बीरभूम	०·०४५
बर्दवान	०·०३९
बाँकुरा	०·०५९
मेदिनीपुर	०·०५९
हुगली	०·०७२
हाबड़ा	०·१३०
चौबीस परगना	०·१२७

मद्रास और आन्ध्र

विजगापट्टम	०·०४३
पूर्वी-गोदावरी	०·०६९
पश्चिम-गोदावरी	०·०५७
कृष्णा	०·०४०
गुण्टूर	०·०४१
नेल्लोर	०·०४७
चित्तूर	०·०१७
चिंगलीपुत्त	०·०४३
उत्तरी-अरकाट	०·०६३
दक्षिणी-अरकाट	०·०३६
सलेम	०·१२८
त्रिचनापल्ली	०·०३७
कोयम्बटूर	०·१५४
मदुरा	०·१८३
तंजौर	०·०४१
रामनद	०·०२३
तिन्नवली	०·०४४
कुर्नूल	०·०५२
कुडप्पा	०·०५०
अनन्तपुर	०·०२७
बेल्लारी	०·०३०
नीलगिरि	०·२६०
द० कनारा	०·०८३
मालाबार	०·१५८
रायचूर	०·०४८
वारंगल	०·०६६
बीदर	०·०९९
करीमनगर	०·३२६

पुराना मध्यप्रदेश एवं बरार

अकोला	०·०४६
बेतूल	०·०८४
होशंगाबाद	०·०७०
सागर	०·०४३
जबलपुर	०·०५४
छिन्दवाड़ा	०·०४८
वर्धा	०·०५०
बालाघाट	०·०६४
नागपुर	०·०५१
चाँदा	०·०७५
दुर्ग	०·०९५

बम्बई

पंचमहाल	०·०५७
अहमदाबाद	०·०७२
खेड़ा	०·०५५
भड़ौच	०·०४४
सूरत	०·०४४
पूर्वी खानदेश	०·०८९
पश्चिमी खानदेश	०·०८८
नासिक	०·०७५

अहमदनगर	०·०५९	करनाल	०·०७१
बड़ोदा	०·०७३	अम्बाला	०·०४८
नवसारी	०·०४७	शिमला	०·२५०
अमरेली	०·०६८	होशियारपुर	०·०३४
मेहसाना	०·०५२	पटियाला	०·०४५
ओखामण्डल	०·०३३	कोटा	०·०५६
जोधपुर	०·२४६	अलवर	०·०३९
लिम्बडी	०·०३५	इन्दौर	०·०५७
पूना	०·०७१	रायसी	०·०४९
सतारा	०·०६९	**दिल्ली**	
शोलापुर	०·०४३	दिल्ली	०·०४५
बीजापुर	०·०५१	अजमेर मेरवाड़ा	०·०४३
बेलगाँव	०·०५८	कुर्ग	०·२००
धारवाड़	०·०६१	सिक्किम	०·०५१
उत्तरी कनारा	०·११२	**मैसूर**	
रतनागिरी	०·१४२	मैसूर	०·०३६
कोलाबा	०·०६३	हसन	०·१३०
थाना	०·१११	बंगलोर	०·०३६
पंजाब		टुमकुर	०·०७०
अमृतसर	०·०६३	कोचीन	०·३०२
जालन्धर	०·०५१	ट्रावनकोर	०·१४६
फीरोजपुर	०·०७७	कोलार	०·०६६
हिसार	०·०५२	सिमोगा	०·०८८
रोहतक	०·०५८		

विभिन्न फसलों द्वारा खेतों से खींच लिये जानेवाले नाइट्रोजन की मात्रा का विवरण

फसल	सिंचाई या अन्य स्थिति	प्रति एकड़ पौण्ड में औसत उपज	खींचे नाइट्रोजन की मात्रा प्रति एकड़ पौण्ड में
धान	असींचा	२०००	३०
गेहूं	असींचा	८००	३५
गेहूं	सींचा	२०००	६०

फसल	सिंचाई या अन्य स्थिति	प्रति एकड़ पौण्ड में औसत उपज	खींचे नाइट्रोजन की मात्रा प्रति एकड़ पौण्ड में
ज्वार	अन्नवाली	२०००	५९
ज्वार	चारावाली	२५०००	५०
बाजरा	अन्नवाली	१०००	३२
मकई	अन्नवाली	१५००	२७
मकई	चारावाली	२०००	३५
जौ	सींचा	१४००	४८
जौ	असींचा	८००	७२
अरहर	अन्नवाली	२००	२०
अरहर बड़ी	अन्नवाली	८००	७५
मटर	बीज	९००	५६
चना	अन्नवाला	४००	२५
चना	सींचा	१०००	७५
उरद	अन्नवाली	६००	३७
मूँग	अन्नवाली	६००—८००	६०
तिल	अन्नवाला	६००	६०
मूँगफली	—	१४००	६३
तीसी	बीज	५००	१४
सरसों	बीज	६००	२०
अरंडी	बीज	२०००	७५
तोरिया	बीज	६००	२०
ईख	बंवई	२१०००	७५
ईख	बिहार	२४०००	१२०
ईख	उत्तर प्रदेश	५२०००	१५०
रुई	रेशा	४००	२७
तम्वाकू	बिहार	१२००	८०
जूट	रेशा	१४००	६०
ल्यूसर्न	चारा	६५००	३५०
सूदान घास	चारा	६५००	८०
सूरन	सींचा	३६०००	१७१
आलू	सींचा	६०००	३३
बैंगन	सींचा	२२०००	९३
गोभी	सींचा	६०००	३१
प्याज	सींचा	१४०००	४८
हल्दी	सींचा	१८०००	३८
अदरख	सींचा	६०००	२३

फसल	सिंचाई या अन्य स्थिति	प्रति एकड़ पौण्ड में औसत उपज	खाद्य नाइट्रोजन की मात्रा प्रति एकड़ पौण्ड
मिर्च	सींचा	१०००	४७
अरुई	सींचा	१६०००	४०
शलजम	सींचा	३२०००	८०
धनियाँ	बीज	८००	४०
चाय	आसाम	८००	४०
काफी	मद्रास	८००	३०
सेम	बीज	२०००	६०
सोयाबीन		१०००	८०

विभिन्न नाइट्रोजनीय खादों और उर्वरकों में नाइट्रोजन की प्रतिशतता

अमोनियम क्लोराइड	२६	ग्वानो	५–१
अमोनियम सल्फेट	२०·६	ह्वेल ग्वानो	१०
सोडियम नाइट्रेट	१५·५	मछली	६–८
अमोनियम नाइट्रेट	३२·५	घूरे की खाद	३–५
पोटैसियम नाइट्रेट	.१४	अवपंक (स्लज)	१–५
कैलसियम साइनेमाइड	२०·५	बिनौला खली	५
अमोनिया (द्रव)	८२	रेंड़ी खली	५–६
डाइ-अमोफास	२१	सरसों खली	४–५
एमोफास-ए	११	मूँगफली खली	६–७
एमोफास-बी	१६	नीम खली	४–५
निसीफास नं० १	१३·५	अलसी खली	४–५
निसीफास नं० २	१७·५	नील की खली	५–६
नाइट्रो-चॉक	१७	महुआ की खली	२–३
कलसियम नाइट्रेट	१७	गन्दा पानी	१·०५
यूरिया	४६	कम्पोस्ट	१–२
कैल-यूरिया	३४	गोबर की खाद	०·५–१·५
लूनाफास	२०	सखा खून	८–१४
लूना साल्टपीटर	२६	चमड़ा चूण	६–१२
डाइकैल नाइट्रेट फास	१७	मुर्गी विष्ठा	२–५
भाप-उपचारित हड्डी का चूरा	१·२	मानव विष्ठा	१–२
हड्डी की खाद	३·४		

छठाँ अध्याय

अकार्बनिक नाइट्रोजनीय उर्वरक

अकार्बनिक नाइट्रोजनीय उर्वरकों में सोडियम नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट, कैलसियम नाइट्रेट, पोटैसियम नाइट्रेट, अमोनियम क्लोराइड, कैलसियम साइनेमाइड और यूरिया हैं।

सोडियम नाइट्रेट

अनेक धातुओं के नाइट्रेट संसार के अनेक स्थलों में पाये जाते हैं। इनमें दो ही प्राकृतिक नाइट्रैट व्यापार की दृष्टि से महत्त्व के हैं—एक सोडियम नाइट्रेट और दूसरा पोटैसियम नाइट्रेट। कैलसियम नाइट्रट का निक्षेप भी कुछ स्थलों म पाया गया है पर ऐसे निक्षेप की मात्रा इतनी अधिक नहीं है कि इसका व्यापार हो सके।

सोडियम नाइट्रेट के निक्षेप अनेक देशों, मिस्र, अर्जेण्टिना, मेक्सिको, दक्खिन-पच्छिम अफ्रीका, कोलम्बिया और संयुक्त राज्य अमेरिका में पाये गये हैं। पर इसका सबसे बड़ा निक्षेप चिली में पाया जाता है, इससे इसे 'चिली का शोरा' कहते हैं। आज कृत्रिम रीति से भी, सोडियम कार्बोनेट और अनोनिया से, सोडियम नाइट्रेट अनेक देशों, इंगलैण्ड, जर्मनी, नारवे और अमेरिका में तैयार होता है। कृत्रिम नाइ-ट्रेट और प्राकृतिक नाइट्रेट में विशेष भेद नहीं है। कृत्रिम नाइट्रेट में आयोडीन और कुछ अन्य लवण अल्प मात्रा में नहीं रहते, जसे प्राकृतिक नाइट्रेट में पाये जाते हैं। जहाँ तक उर्वरता का प्रश्न है, उनमें विशेष अन्तर नहीं देखा जाता, यद्यपि कुछ तत्त्वों के लेश से उन तत्त्वों की पूर्ति मिट्टी में हो सकती है।

चिली के शोरे का प्रथम उल्लेख १८०९ ई० में मिलता है। पहले-पहल १८१३ में स्पेनवालों के द्वारा यह निकाला गया था और १८३० ई० में पेरू से बाहर जहाज द्वारा भेजा गया था। यह शोरा, ८३० टन, वर्जीनिया के नौरफोक बन्दरगाह पर जुलाई १८३० में पहुँचा था। जब वहाँ इसके उतारने की आज्ञा नहीं मिली तब वह यूरोप भेज दिया गया।

सोडियम नाइट्रेट का निक्षेप चिली देश के उत्तरी भाग में टारापाक पठार में (Tarapaca plateau) में पाया जाता है। यह पठार ३००० से ९००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यह पठार उत्तर से दक्खिन ४५० मील लम्बा और पूरब से पच्छिम १५ से ५० मील चौड़ा है। इसके दो ओर पर्वत श्रेणियाँ हैं। पूरब की ओर ऐन्डेज़ (Andes) पर्वत और पच्छिम की ओर प्रशान्त महासागर तट की पहाड़ियाँ हैं। इस पठार पर बहुत अल्प वर्षा होती है। दो तीन वर्षों पर कुछ वर्षा हो जाती है। वह भी इतनी कम होती है कि पानी वहाँ ही सूख जाता है। सम्भवतः एक समय यह भूमि आर्द्र और उपजाऊ थी, जैसा कि वहाँ पाये गये फौसिलों से पता लगता है।

सोडियम नाइट्रेट का निक्षेप पठार की पूरबी ढाल पर, ४००० से ७००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। निक्षेप की गहराई कुछ इंचों से लेकर ३० फुट तक की है। औसत गहराई ३ से ४ फुट है। समुद्र तट से १५ से ९० मील की दूरी पर अन्दर की ओर निक्षेप स्थित है।

चिली का शोरा कैसे बना, यह ठीक-ठीक मालूम नहीं। इसके बनने के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त समय-समय पर प्रतिपादित हुए हैं। कुछ सिद्धान्त निम्न-लिखित हैं —

(१) एक सिद्धान्त यह है कि वायु का नाइट्रोजन बिजली के विसर्ग से आक्साइड बनता है और यह आक्साइड सोडियम के साथ मिलकर सोडियम नाइट्रेट बनता है। ऐसा भी कहा जाता है कि सोडियम कार्बोनेट अथवा कैलसियम कार्बोनेट से नाइट्रोजन के आक्सीकरण में सहायता मिलती है।

(२) एक दूसरा सिद्धान्त यह है कि समुद्री जीवों और वनस्पतियों से सोडियम नाइट्रेट बनता है। किसी समय ज्वालामुखी के कारण समुद्र तट की भूमि उठ कर पठार बनी। इससे समुद्र के जीव और घास ऊपर उठ आये, समय पाकर उनका आक्सीकरण हुआ और समुद्री लवण के साथ मिलकर सोडियम नाइट्रेट का निर्माण हुआ। इस सिद्धान्त की पुष्टि में कहा जाता है कि समुद्री घासों में आयोडीन रहने के कारण सोडियम नाइट्रेट में भी अल्प मात्रा में आयोडीन आ जाता है। पर इतने विस्तृत निक्षेप के लिए समुद्री घास की मात्रा बहुत अधिक होनी चाहिए जो सम्भव नहीं प्रतीत होती। इस सिद्धान्त के विरुद्ध एक दूसरी बात यह है कि नमक की उपस्थिति में कार्बनिक पदार्थों का नाइट्रीकरण नहीं होता। एक और बात इसके विरुद्ध यह है कि यदि समुद्री घास से ही सोडियम नाइट्रेट बना है तो उसमें ब्रोमेट भी रहना चाहिए क्योंकि समुद्री घासों में आयोडीन के साथ-साथ ब्रोमीन भी रहता है। पर सोडियम नाइट्रेट में ब्रोमेट नहीं पाया जाता।

(३) एक सिद्धान्त यह है कि ग्वानो से सोडियम नाइट्रेट बनता है। समुद्र के पक्षी आस-पास के पर्वतों पर आकर बठते और विष्ठा त्याग करते हैं। विष्ठा पर जीवाणुओं की क्रिया होकर उसका नाइट्रोजन नाइट्रीकरण द्वारा पहले कलसियम नाइट्रेट बनता, जो सोडियम क्लोराइड की उपस्थिति में सोडियम नाइट्रेट में परिणत हो जाता है और कैलसियम क्लोराइड पानी में घुलकर विलयन के रूप में निकल जाता है। सोडियम नाइट्रेट फिर पर्वत शिखरों से बहकर पठार में आकर एकत्र होता जाता है और इस प्रकार उसका स्तर समय पाकर मोटा होता जाता है। इस बात से इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि सोडियम नाइट्रेट में कुछ नमक अवश्य पाया जाता है, पर फास्फेट का न होना इस सिद्धान्त का बड़ा दोष है। ग्वानो में फास्फेट अवश्य रहता है पर सोडियम नाइट्रेट के निक्षेप में फास्फेट बिल्कुल नहीं पाया जाता। यदि यह सोडियम नाइट्रेट समुद्री पक्षियों की विष्ठा से बना होता तो फास्फेट उसमें जरूर रहता।

(४) एक सिद्धान्त यह है कि एक समय वहाँ नदियाँ बहती थीं। नदियों का पानी पहाड़ों और मिट्टियों से आता था। ऐसे पानी में नाइट्रेट और अन्य लवण घुले रहते थे। बहुत समय तक नदियों का पानी भाप बनकर उड़ता रहा और उसका लवण वहाँ जमता गया। धीरे-धीरे समय के परिवर्तन से पानी का बरसना बन्द हो गया। नदियाँ सूख गयीं। नाइट्रेट के निक्षेप नदी-तल में जमते गय। इस सिद्धान्त से आयोडीन की उपस्थिति की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं होती। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन १९१६ ई० में हुआ था और अनेक व्यक्ति इसके पोषक हैं। साधारणतया यह सिद्धान्त अनेक लोगों द्वारा स्वीकृत समझा जाता है।

(५) हीडेन और सैकेट (Headden and Sacket) का सिद्धान्त यह है कि नाइट्रोजन का एक विशिष्ट प्रकार के जीवाणु, एजोटोबैक्टर क्रूककम (Azotobacter Chroocucum) द्वारा स्थिरीकरण (fixation) होता है। प्रयोगों से मालूम हुआ है कि इस जीवाणु में बहुत बड़ी मात्रा में नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की क्षमता है। अतः इस जीवाणु द्वारा ही नाइट्रोजन के स्थिरीकरण से सोडियम नाइट्रेट एक समय बना था। फिर मौसम बदल गया और स्थिरीकरण की क्रिया समाप्त हो गयी।

(६) कुन्टसे (Kuntze) का सिद्धान्त है कि कुछ विशिष्ट पक्षी अनन्त संख्याओं में घूमते हुए इसके निकट के पर्वत, ऐन्डेज़ पर आते हैं और वहाँ मल-त्याग करते हैं। इन पक्षियों की आदत है कि ये एक ही स्थान पर मल-त्याग करते हैं। इनके मल से ही सोडियम नाइट्रेट का विस्तृत निक्षेप इकट्ठा होता गया है। इन पक्षियों के मल और मूत्र से नाइट्रोजन और चट्टानों के छीजन (withering)

से सोडियम प्राप्त होकर सोडियम नाइट्रेट बनता है। इस सिद्धान्त से आयोडीन की उपस्थिति की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं होती।

चिली निक्षप

टारापाक पठार में जहाँ सोडियम नाइट्रेट का विस्तृत निक्षेप है, सबसे ऊपर बालू और जिपसम का, जिसमें अल्प फास्फट भी रहता है, एक स्तर है। इस स्तर को 'कोस्ट्रा' (Costra) कहते हैं। इस स्तर के नीचे सपिंडन चट्टान (Conglomerate rock) का एक दूसरा स्तर है। इस स्तर में मृत्तिका और कंकड़ (gravel) रहते हैं। इस स्तर को 'कोंजीलो' (Congelo) कहते हैं। इसमें नमक की प्रतिशतता अधिक रहती है। इस स्तर के नीचे एक तीसरा स्तर होता है जिसमें सोडियम नाइट्रेट रहता है। इस स्तर को 'कालिके' (Caliche) कहते हैं। कालिके अशुद्ध होता है। इसमें मिट्टी और बालू मिली रहती है। सोडियम नाइट्रेट के अतिरिक्त इसमें कुछ सोडियम, कैलसियम और मैगनीशियम के सल्फेट, अल्प मात्रा में आयोडेट और बोरेट रहते हैं। सोडियम नाइट्रेट की मात्रा ५ से ७० प्रतिशत तक रह सकती है। पहले ऐसे निक्षेप से ही सोडियम नाइट्रेट निकाला जाता था जिसमें ५० प्रतिशत सोडियम नाइट्रेट रहता था। अब इतने मोटे निक्षेप कम मिलते हैं जिनमें सोडियम नाइट्रेट ३० प्रतिशत से अधिक रहे। पहले १५ प्रतिशत से कम सोडियम नाइट्रेट के निक्षेप से सोडियम नाइट्रेट नहीं निकाला जाता था। आज ऐसे निक्षेप से भी सोडियम नाइट्रेट निकाला जाता है जिसमें सोडियम नाइट्रेट ८ प्रतिशत तक हो। कालिके स्तर के नीचे 'कोबा' (coba) का एक और स्तर होता है जिसमें मिट्टी और फौसिल पाये गये हैं।

कोस्ट्रा और कोंजेलो के स्तर ३ से ५ फुट मोटे होते हैं। कालिके के स्तर कुछ इंचों से लेकर १० फुट तक के मोटे होते हैं। कालिके की औसत मोटाई ३ फुट की होती है। अभी तक सतह से २४ फुट तक का निक्षेप निकाला गया है।

कालिके

कालिके में अविलेय मिट्टीवाले पदार्थ मिले रहते हैं। ये पदार्थ विलेय लवणों से जुटे रहते हैं। सोडियम नाइट्रेट के अतिरिक्त कुछ नमक और सोडियम सल्फट मिले रहते हैं। अल्प मात्रा में पोटैसियम, कैलसियम और मैगनीशियम के सल्फेट, नाइट्रेट और क्लोराइड तथा अल्प मात्रा में आयोडेट, बोरेट और परक्लोरेट रहते हैं।

कालिके का औसत संघटन

	प्रतिशतता
सोडियम नाइट्रेट ($NaNO_3$)	८–२५
पोटेसियम नाइट्रेट (KNO_3)	२–३
सोडियम क्लोराइड ($Nacl$)	८–२५
सोडियम सल्फेट (Na_2SO_4)	२–१२
कैलसियम सल्फेट ($CaSO_4$)	२–६
मैगनीशियम सल्फेट ($MgSO_4$)	०–३
सोडियम बोरेट ($Na_2B_4O_7$)	१–३
सोडियम आयोडेट ($NaIO_3$)	०·०५–०·१
सोडियम परक्लोरेट ($NaClO_4$)	०·१–०·५
अविलेय द्रव्य	२२–७८

कालिके निकालने की रीति

ऊपर के स्तरों को कुदाल से हटा देते हैं। तब कालिके के स्तरों में लोहे के छड़ों से हाथ से छेद करते हैं। छेद ऊपर सकरा और नीचे चौड़ा होता है। चौड़े स्थान में डाइनामाइट रखकर आग लगाकर उड़ाते हैं। कालिके का स्तर इससे टूट-फूट जाता है। हाथों से टुकड़ों को इकट्ठा करते हैं। बड़े-बड़े टुकड़ों को तोड़कर छोटा करते और रेल के डब्बों में भरकर हाथों से खींचकर अथवा खच्चरों से खिंचवाकर किसी केन्द्रीय स्थान में इकट्ठा करते हैं। वहाँ से शोधन के लिए परिष्करणी में ले जाते हैं।

इधर कुछ वर्षों से कालिके निकालने की रीति में सुधार हुआ है, सुधार वहाँ ही सम्भव है जहाँ निक्षेप मोटा और व्यापक है। इसके लिए नियमित रूप से खाई खोदते हैं। खाई अपोदघर्षक (Scraper) या भाप-कुदाली द्वारा खोदते हैं। संपीडित वायु द्वारा फिर छेद करते हैं। छेद में डाइनामाइट रखकर उड़ाते हैं। अच्छे टुकड़ों को बटोरकर छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ते हैं। विद्युत-चालित फावड़े (Shovel) से उठाकर डब्बों में भरकर कारखाने भेजते हैं। फिर मिट्टी या कंकड़ों को खाई में फेंक देते हैं।

कालिके के संशोधन की दो विधियाँ हैं। एक पुरानी विधि और दूसरी नयी

विधि। पुरानी विधि को "शैंक्स विधि" (Shanks process) और नयी विधि को गुग्गेनहाइम विधि (Guggenheim process) कहते हैं।

शैंक्स विधि

कालिके को पहले दलित्र में डालकर छोटे-छोटे टुकड़ों, प्रायः तीन इंच के टुकड़ों, में दलते हैं। इसे तब टंकी में रखते हैं। टंकी में ६० से १०० टन कालिके अँट सकता है। टंकी में भाप की कुंडलियाँ रहती हैं। कालिके के सोडियम नाइट्रेट को घुलाने के लिए
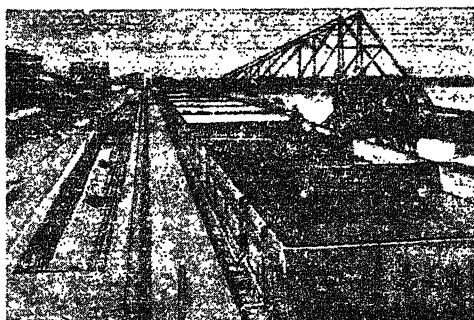
चित्र ७—संकर्षण टंकी, जिसमें पीसे हुए कालिके या नाइट्रेट खनिज का धावन होता है।

कालिके-उपचारित विलयन डालकर गरम करते और उबालते हैं। इसे फिर निथारक टंकी में रखकर छोड़ देते हैं। वहाँ विलयन रखने से उसका मैल बैठ जाता है। कालिके से विलयन निकाल लेने पर जो अंश बिना घुला बच जाता है उसको फिर दुर्बल विलयन से, जो आगे मणिभों के धोने से प्राप्त होता है, उपचारित करते हैं। इससे कालिके का अवशिष्ट नाइट्रेट भी निकल आता है। अब जो अंश बच जाता है उसे फेंक देते हैं। विलयन को छिछले कड़ाहों में रखकर खुली वायु में ठंडा करते और सुखाते हैं। ठंडे होने पर सोडियम नाइट्रेट के मणिभ निकल आते हैं। कड़ाहों से मणिभों को निकालकर उनमें लिपटे विलयन, मातृ-द्रव, को बहा लेते और मणिभों को थोड़े जल से धोकर ढेर में इकट्ठा करते हैं। सोडियम नाइट्रेट के इस दुबल विलयन को फिर कालिके के घुलाने में प्रयुक्त करते हैं। कुछ समय में मणिभ वायु और धूप में सूख जाते हैं। उन्हें फिर पीसकर जूट के बोरों में रखकर रेल द्वारा बन्दरगाहों में भेजते हैं और वहाँ से जहाजों पर लदकर वह दूर देश जाता है।

कड़ाहों से जो मातृ-द्रव प्राप्त होता है उसे अन्य कालिके के घुलाने में फिर इस्तेमाल करते हैं। यदि कालिके में सोडियम नाइट्रेट की मात्रा अधिक रहे तो यह विधि सस्ती पड़ती है। कम सोडियम नाइट्रेट वाले कालिके के लिए यह विधि सस्ती नहीं पड़ती। लगभग सन् १९२५ तक केवल यही विधि सोडियम नाइट्रेट की सफाई के लिए प्रयुक्त होती थी। इस रीति से प्राप्त सोडियम नाइट्रेट मणिभीय होता है पर यह बिल्कुल सफेद नहीं होता। इसमें कुछ रंग भूरा या गुलाबी आभा का होता है। इसके मणिभ के निर्माण में जल नहीं रहता पर अल्प मात्रा में अवशोषित जल रहता है। यह लवण जल में जल्द घुल जाता है और वायु से जल को ग्रहण कर चिपचिपा हो जाता है और अन्त में घुलकर विलयन बन जाता है।

इस विधि से प्राप्त सोडियम नाइट्रेट के विश्लेषण आँकड़े इस प्रकार के हैं—

सोडियम नाइट्रेट	९६·७५ प्रतिशत
जल	२·१० प्रतिशत
सोडियम क्लोराइड	०·७५ प्रतिशत
सल्फेट	०·३० प्रतिशत
अविलेय पदार्थ	०·१० प्रतिशत

यदि सोडियम नाइट्रेट ९५ प्रतिशत रहे तो उसमें नाइट्रोजन १५·६ प्रतिशत रहता है।

गुग्गेनहाइम विधि

इस विधि के उपयोग से परिष्कार का खर्च बहुत घट गया है। यह विधि ऐसे कालिके के लिए भी इस्तेमाल हो सकती है जिसमें सोडियम नाइट्रट की मात्रा अल्प हो।

इस विधि में कालिके को महीन पीसते हैं। चूर्ण का विस्तार ५/८ इंच से बड़ा नहीं रहना चाहिए। इसे फिर बड़ी-बड़ी टंकियों में रखते हैं। इन टंकियों में लगभग ७·५०० टन कालिके अँट सकता है। कालिके को गरम विलयन से उपचारित करते हैं। अवशिष्ट उष्मा (waste heat) से विलयन को गरम करते हैं, इससे गरम करने का खर्च कम हो जाता है। अब सोडियम नाइट्रेट को बड़ी-बड़ी शीतक टंकियों में रखकर यांत्रिक शीतन से ठंडा कर हिमांक ताप पर लाते हैं। १०° सें० तक ठंडा करने से भी लवण बहुत कुछ पृथक् हो जाता है। निम्न ताप पर सोडियम नाइट्रेट कम विलेय होता है और ऊँचे ताप पर बहुत अधिक। इस विलयन के ठंडा करने से विलयन से सोडियम नाइट्रेट के मणिभ निकल आते हैं। केन्द्रापसारक में रखकर

चलान से पानी निकलकर नाइट्रेट सूख जाता है। इसमें केवल २·५ प्रतिशत जल रह जाता है। कालिके से सोडियम नाइट्रेट के घुलाने में मातृ-द्रव का फिर से उपयोग करते हैं। इस प्रकार घुलाने का चक्र चलता रहता है।

सोडियम नाइट्रेट को अब दानेदार बनाते हैं। इसके लिए उसे पिघलाकर दानदार बनाने के कक्ष में ३४० सें० पर पम्प कर तुंड (nozzle) द्वारा निकालते हैं। पिघला हुआ नाइट्रेट तुंड से निकलकर कक्ष की वायु में गिरकर हिमांक के नीचे तक ठंडा होता है। इस प्रक्रिया में सोडियम नाइट्रेट का सारा जल निकल जाता है। दानेदार सोडियम नाइट्रेट को जलरोधी कागज-अस्तरित मोटे टाट के बोरे में रखकर बाहर भेजते हैं। ऐसे सोडियम नाइट्रेट म जल की मात्रा ०·५ प्रतिशत और सोडियम नाइट्रेट ९८·५ से ९९ प्रतिशत रहता है। नाइट्रोजन की मात्रा प्रायः १६ प्रतिशत रहती है।

गुग्गेनहाइम विधि की विशेषता यह है कि कम सोडियम नाइट्रेट वाले कालिके से भी सरलता से और कम खर्च में सोडियम नाइट्रट निकल आता है। इसमें उष्मा का उपयोग पूण रूप से हो जाता है। देख-भाल के लिए इसमें एक चतुर्थांश श्रमिकों से काम चल जाता है। इससे प्राप्त सोडियम नाइट्रेट अधिक शुद्ध होता है। इस विधि से कालिके का सोडियम नाइट्रेट प्रायः ९० प्रतिशत प्राप्त होता है। केवल १० प्रतिशत शोधन में नष्ट होता है जब कि शैंक्स विधि में लगभग ५० प्रतिशत नष्ट हो सकता है।

अब शोधन का एक ऐसा संयन्त्र बैठाया गया है जिसमें यन्त्रों से कालिके निकाला जाता, बिजली से स्थानान्तरित किया जाता और निम्न ताप पर घुलाया जाता है। यह संयन्त्र १९४४ में बैठाया गया था। मणिभ बनाने की ऐसी रीति अपनायी गयी है कि उन्हें दानेदार बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सोडियम नाइट्रेट का प्रबल विलयन आठ टंकियों में बहाया जाता है जिनमें तीन उष्मा-विनिमायक (exchanger) लगे रहते हैं। इस बहाव से मणिभ ऐसे रूप में निकलते हैं कि उन्हें सीधे बोरे में रखकर बाहर भेजा जा सकता है। ऐसा सोडियम नाइट्रट चैम्पियन ब्रण्ड के नाम से बिकता है। एक बोरे में १०० पौण्ड रखा जाता है।

चैम्पियन ब्रैण्ड सोडियम नाइट्रेट का विश्लेषण	प्रतिशत
१३०° सें० पर जल	०·१००
जल-विलेय अंश	०·२९०

चैम्पियन ब्रैण्ड सोडियम नाइट्रेट का विश्लेषण	प्रतिशत
सोडियम क्लोराइड	०·७६०
सोडियम सल्फेट	०·२८१
सोडियम बोरेट (अजल)	०·०७१
पोटैसियम क्लोरेट और परक्लोरेट	०·१००
लोहा और अलुमिनियम लवण	लेश
पोटैसियम आयोडेट	०·१००
कैलसियम आक्साइड	लेश
मैगनीशियम आक्साइड	०·०५६
सोडियम नाइट्राइट	लेश
पोटेसियम नाइट्रेट	०·३६५
सोडियम नाइट्रेट (अन्तर से)	९७·७३१

इसमें प्रमुख तत्त्वों की मात्रा इस प्रकार है —	प्रतिशत
नाइट्रोजन	१६·२६०
पोटाश (K_2O)	०·२३०
पोटाश आयोडेट	०·०६०
सोडियम (Na)	२६·८४९

सोडियम नाइट्रेट के मणिभों के निकल जाने पर जो मातृ-द्रव प्राप्त होता है उसमें पोटैसियम और मैगनीशियम के लवण तथा बोरेट, सल्फेट और क्लोराइड रहते हैं। इसे पहले फेंक दिया जाता था क्योंकि इससे लवणों के निकालने में अधिक खर्च और परिश्रम लगता था, पर अब ऐसी विधि पायी गयी है जिससे कम खर्च में इन लवणों को अलग-अलग कर सकते हैं।

इसके लिए मातृ-द्रव को छिछले तालाबों में ले जाकर धूप में सूखने के लिए छोड़ देते हैं। प्रत्येक तालाब १० एकड़ विस्तार का होता है। उससे अब पोटैसियम नाइट्रेट, सोडियम नाइट्रेट, आयोडीन, बोरिक अम्ल, सोडियम सल्फेट और मैगनीशियम लवण प्राप्त किये जा सकते हैं।

चिली के शोरे का व्यापार

सोडियम नाइट्रेट को चिली का शोरा कहते हैं। पहले-पहल यह चिली से आता था, इसी कारण इसका नाम चिली-शोरा पड़ा। आज तो यह कृत्रिम रीति से अनेक

देशों में तैयार होता है। एक समय चिली-शोरे पर चिली की सरकार का एकाधिकार (monopoly) था। इससे सरकार मनमाना कर वसूल करती थी और दाम ऊँचा था। उस समय सरकार १२½ डालर कर लेती थी। पर प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अनेक देश कृत्रिम सोडियम नाइट्रेट तैयार करने लगे। इससे चिली सरकार को कर कम करना पड़ा। १९३३ से सरकार नफे का केवल २५ प्रतिशत लेने को तैयार हो गयी जिससे शोरे का दाम गिर गया और चिली-शोरे की बिक्री बढ़ गयी। आज चिली में तेरह कम्पनियाँ शोरा निकालने का काम कर रही हैं। इनमें तीन कम्पनियाँ बड़ी हैं और वे समस्त उत्पादन का प्रायः ८७ प्रतिशत निकालती हैं। संसार में चिली-शोरे का उपयोग बहुत बढ़ गया है। हर देश में सोडियम नाइट्रेट का व्यवहार हो रहा है। १९१४ के पहले ५०० से ६०० लाख टन सोडियम नाइट्रेट चिली से बाहर जाता था। उसके बाद ६०० से ७०० लाख टन और अधिक जाने लगा है।

कृत्रिम सोडियम नाइट्रेट

आज वायु के नाइट्रोजन और नमक के सोडियम से सोडियम नाइट्रेट तैयार होता है। वायु के नाइट्रोजन को पहले अमोनिया में परिणत करते हैं। इसके परिणत करने की विधि वही है जो सिन्दरी के उर्वरक कारखाने में प्रयुक्त होती है। इस विधि से पहले-पहल १९२९ में अमेरिका में सोडियम नाइट्रेट बना था। अमेरिकी कृत्रिम सोडियम नाइट्रेट को आर्केडियन (arcadian) सोडियम नाइट्रेट कहते हैं।

वायु का नाइट्रोजन जल-गैस के हाइड्रोजन के साथ मिलकर अमोनिया बनता है। नमक से सोलवे विधि (Solvay Process) द्वारा सोडियम कार्बोनेट तैयार होता है। अमोनिया को फिर उपयुक्त उत्प्रेरक की उपस्थिति में आक्सीकृत कर नाइट्रोजन् के आक्साइड और फिर नाइट्रिक अम्ल प्राप्त करते हैं। इन आक्साइडों और नाइट्रिक अम्ल को सोडियम कार्बोनेट के विलयन में अवशोषित कराने से सोडियम नाइट्रेट बनता है। विलयन के अंशतः वाष्पीभवन से सोडियम नाइट्रेट के मणिभ पृथक् हो जाते हैं। अमेरिका में यही विधि प्रयुक्त होती है। इस प्रकार से प्राप्त सोडियम नाइट्रेट का विश्लेषण यह है—

आर्केडियन सोडियम नाइट्रेट का विश्लेषण	प्रतिशत
सोडियम नाइट्रेट	९९·६३
समस्त नाइट्रोजन	१६·४२
जल	०·४१

आर्केडियन सोडियम नाइट्रेट का विश्लेषण	प्रतिशत
सोडियम क्लोराइड	०·२३
सोडियम नाइट्राइट	०·००९
कैलसियम (CaO)	०·०६१
मैगनीशियम (Mg_2O)	०·००३
लोहा (Fe_2O_3)	०·००१
अलुमिना (Al_2O_3)	०·००२
अविलेय	०·००४

सोडियम क्लोराइड पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से भी सोडियम नाइट्रेट प्राप्त हो सकता है।

$$NaCl + HNO_3 = NaNO_3 + 2\ HCl$$
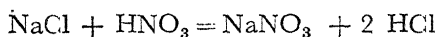
नारवे में कैलसियम नाइट्रेट पर सोडियम ज़ियोलाइट (Zeolite) की क्रिया से सोडियम नाइट्रेट प्राप्त होता है। सोडियम ज़ियोलाइट में कैलसियम नाइट्रेट को ले जाने से सोडियम नाइट्रेट और कैलसियम ज़ियोलाइट बनते हैं। कैलसियम ज़ियोलाइट पर समुद्र का पानी ले जाने से वह फिर सोडियम ज़ियोलाइट में परिणत हो जाता है।

सोडियम नाइट्रेट उर्वरक के अपद्रव्य

चिली का सोडियम नाइट्रेट जो उर्वरक के लिए प्रयुक्त होता है, बिल्कुल शुद्ध नहीं होता। उसमें कुछ अपद्रव्य रहते हैं। अधिकांश अपद्रव्य ऐसे हैं जिनसे पौधों को कुछ नुकसान नहीं होता। कुछ के रहने से तो पौधों को विशेष लाभ होता है। जिन पदार्थों से पौधों को नुकसान होता है उनमें एक सोडियम परक्लोरेट है। सोडियम नाइट्रेट में परक्लोरिक अम्ल की मात्रा ०·१४ से ६·७९ प्रतिशत रह सकती है।

सोडियम और पोटैसियम परक्लोरेट अँकुरने में बाधा पहुँचाते हैं। इनसे पत्ते पीले पड़ जाते हैं। सभी स्वीकार करते हैं कि सोडियम परक्लोरेट से हानि होती है पर कितनी मात्रा से होती है इसमें मतभेद है। जहरिया (Zaharea) का मत है कि परक्लोरेट के ०·१ प्रतिशत से चुकन्दर, राई (rye) और गेहूँ के अँकुरने में कोई बाधा नहीं पड़ती पर जई के अँकुरने में बाधा पहुँचती है। बीजांकुर (seedlings) तो इससे दुर्बल विलयन से भी प्रभावित होते हैं। जई का बीजांकुर तो सबसे अधिक प्रभावित होता है। ०·००१ प्रतिशत विलयन गेहूँ और जौ को नुकसान नहीं
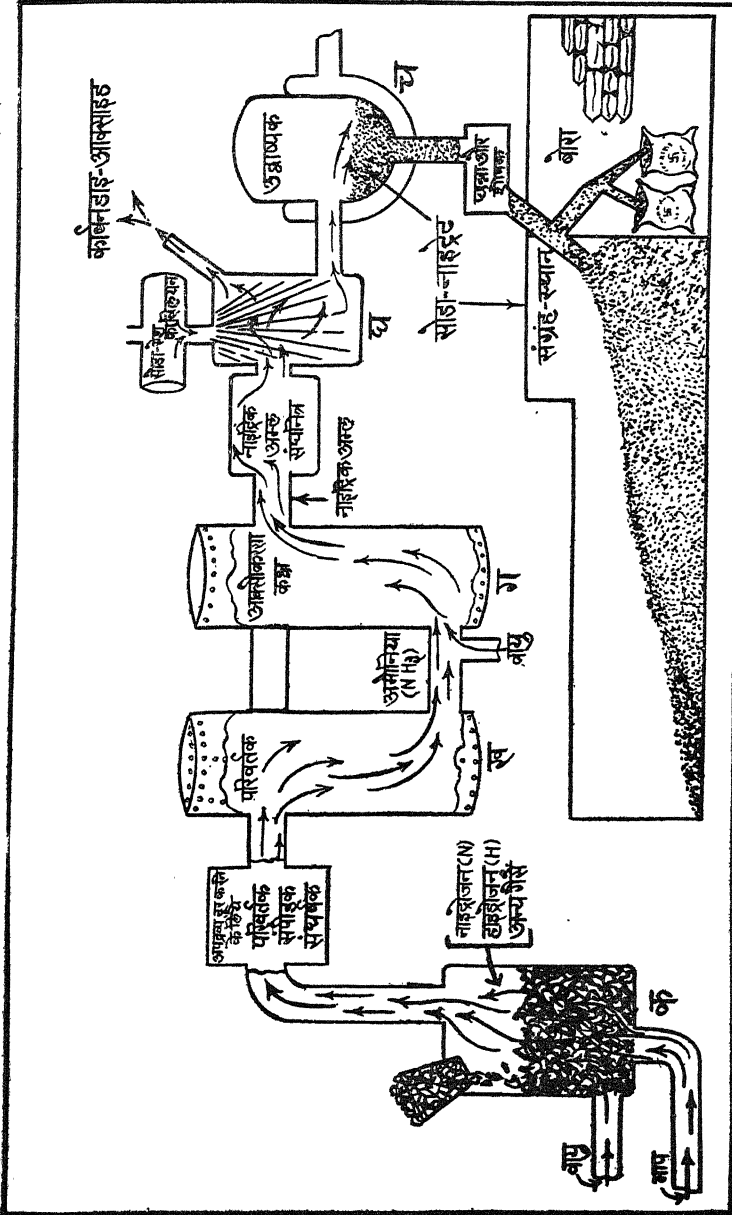
चित्र ८—सोडियम नाइट्रेट के रूप में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण

'क' में उत्तप्त कोक रहता है जिस पर वायु और भाप की क्रिया से नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि गैसें बनकर अपद्रव्य दूर हो कर 'ख' परिवर्तक में जाती है जहाँ अमोनिया बनता है। अमोनिया का आक्सीकरण 'ग', आक्सीकरण कक्ष में होता है जहाँ से नाइट्रिक अम्ल का वाष्प बनकर सोडा-ऐश के विलयन के साथ सोडियम नाइट्रेट बनता और कार्बन डाइ-आक्साइड निकल जाता है। वहाँ से उद्वाष्पक में उसका सान्द्रण होकर सोडा-नाइट्रेट के मणिभ निकल आते और छान और सुखा कर गोदाम में जाते हैं जहाँ से वे बोरे में भरे जाते हैं।

करता पर जई को नुकसान पहुँचाता है। उन्होंने यह भी देखा कि सोडियम नाइट्रेट में १ प्रतिशत परक्लोरेट के रहने से दानेवाली फसलों और आलू की पैदावार में ४ प्रतिशत की, और २ प्रतिशत के रहने से २५ प्रतिशत की तथा पुआल में और भी अधिक कमी हो गयी थी। डे कालुवे (De Caluwe) ने देखा कि १५० ग्राम शुद्ध सोडियम नाइट्रेट को एक वर्ग मीटर में डालने से फसल की पैदावार ६·७ किलोग्राम थी, जब कि सोडियम नाइट्रेट में २·६७ प्रतिशत सोडियम क्लोरेट के रहने से पैदावार केवल ३·३५ किलोग्राम थी। सोडियम क्लोरेट की मात्रा ४ से ५ प्रतिशत रहने से तो फसल बिल्कुल नष्ट हो गयी।

सोडियम नाइट्रेट का मिट्टी की भौतिक दशा पर प्रभाव

सोडियम नाइट्रेट के व्यवहार से मिट्टी की भौतिक दशा बिगड़ जाती है, विशेषत: ऐसी मिट्टी की जिसमें कोलायड अधिक रहते हैं। इस बात को पहले-पहल हॉल (Hall) ने नोट किया था। फिर अन्य लोगों ने भी यह देखा। अमेरिका में आलड्रिक (Aldrich) ने भी १९४५ में यह बात देखी। फिर फायरमैन (Fireman) ने देखा कि अर्ध-रुक्ष (semi-arid) मिट्टी में सोडियम नाइट्रेट के व्यवहार से मिट्टी की जल-प्रवेश्यता (water permeability) प्राय: एक प्रतिशत कम हो जाती है। इसका कारण यह समझा जाता है कि सोडियम नाइट्रेट के व्यवहार से सोडियम कार्बोनेट बनता है, जो वास्तव में मिट्टी की दशा को बिगाड़ता है। ऐसी बिगड़ी हुई मिट्टी का सुधारना कुछ कठिन होता है। चूने से ऐसी बिगड़ी दशा नहीं सुधरती। सुपर फास्फेट के व्यवहार से कुछ सीमा तक दशा सुधर जाती है। ऐसा सुझाव है कि इसे रोकने के लिए केवल सोडियम नाइट्रेट के व्यवहार की अपेक्षा सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट के मिश्रण का व्यवहार अच्छा होता है। कुछ लोगों का अनुभव है कि आर्द्र क्षेत्रों में सोडियम नाइट्रेट के उपयोग से ऐसी स्थिति कदाचित् ही पैदा होती है।

कुछ लोगों का विचार है कि सोडियम नाइट्रेट के बारबार व्यवहार से मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है। यह कथन किसी भी एक उर्वरक के व्यवहार में सच हो सकता है। इसलिए ऐसी स्थिति न पैदा हो इसके लिए आवश्यक है कि सोडियम नाइट्रेट के साथ-साथ अन्य खादों, पोटाशीय और फास्फोरीय, का भी व्यवहार होता रहे।

मिट्टी की अम्लता दूर करने में भी सोडियम नाइट्रेट समर्थ होता है। इस दिशा में इसका प्रभाव कैलसियम या पोटैसियम नाइट्रेट से अधिक होता है। सोडियम नाइट्रेट का १०० ग्राम इतनी मिट्टी की अम्लता दूर कर सकता है जितना पीसा हुआ

चूना-पत्थर का ६० ग्राम। इस सम्बन्ध में जो प्रयोग अमेरिका के पेन्सिलवेनिया फार्मों में हुए हैं उनसे पता लगता है कि खेतों में सोडियम नाइट्रेट डालने से चूने की आवश्यकता जरूर कम हो जाती है। पर जब अम्लता शुरू हो जाती है तब उसके रहने पर भी शीघ्रता से बढ़ती है। अतः सोडियम नाइट्रेट के प्रयुक्त करन पर भी चूना डालने से नहीं चूकना चाहिए। आवश्यकता मालूम पड़ने पर चूने का व्यवहार अवश्य करना चाहिए। केवल अम्लता दूर करने में सोडियम नाइट्रेट का उपयोग ठीक नहीं है।

सोडियम नाइट्रेट से लाभ

सोडियम नाइट्रेट जल में विलेय होता है। इस कारण इसका नाइट्रोजन पौधों को शीघ्र ग्राह्य होता है। सोडियम पोटैसियम को अंशतः प्रतिस्थापित भी कर सकता है। जर्मनी में पाल वैगनर और स्वीडन के आट्टरबर्ग (Atterberg) ने जो प्रयोग किये हैं उनसे स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि पोटेसियम का स्थान अंशतः सोडियम ले सकता है। मिट्टी में पोटैसियम की कमी का बुरा प्रभाव कुछ सीमा तक सोडियम रोक सकता है ।

सोडियम से मिट्टी के फास्फेटों की विलेयता बढ़ जाती है। मिट्टी के फास्फेट और सोडियम नाइट्रेट के बीच प्रतिक्रिया होकर सोडियम फास्फेट बनता है जो जल में बहुत विलेय होता है। इसे पौधे बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। फास्फेट को पौधों द्वारा उपलब्ध करने में सोडियम नाइट्रेट सहायक होता है।

मिट्टी में फ्लोरीन भी रहता है। फ्लोरीन पौधों के लिए हानिकारक होता है। सोडियम नाइट्रेट से मिट्टी का फ्लोरीन सोडियम फ्लोराइड में परिणत हो निर्दोष बन ज़ाता है।

जिस मिट्टी में सोडियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक हो उसमें सोडियम नाइट्रेट का उपयोग बहुत सोच-विचार कर करना चाहिए। ऐसा सामान्यतः रुक्ष (arid) और अर्ध-रुक्ष क्षेत्रों में होता है। जहाँ पानी कम बरसता है वहाँ नाइट्रेट का उपयोग इस कारण अच्छा होता है कि उस मिट्टी में अमोनीकरण और अमोनिया के आक्सी-करण के जीवाणुओं के अभाव के कारण नाइट्राइट और नाइट्रेट बनने की क्रिया बड़ी मन्द रहती है। अतः अमोनियम सल्फेट से उतना लाभ नहीं होता जितना नाइट्रेट से होता है। ऐसी मिट्टी के लिए कैलसियम नाइट्रेट इस कारण श्रेष्ठ है कि कैलसियम और नाइट्रेट दोनों पौधों के काम आ जाते हैं।

मिट्टी के कैलसियम और मैगनीशियम के संरक्षण में भी सोडियम नाइट्रट सहा-

चित्र ९—चुकन्दर के गाछ पर नाइट्रोजन खाद के आधिक्य का प्रभाव
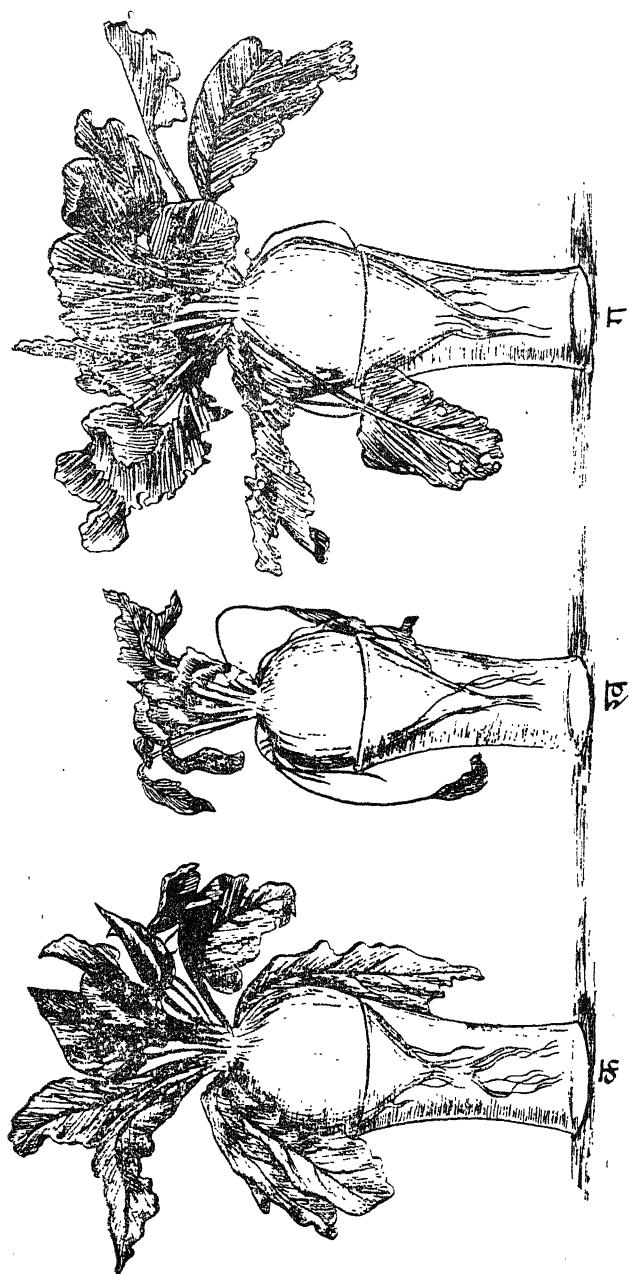
'क' पात्र के चुकन्दर पर सामान्य खाद दी गयी है जिससे बढ़ती अच्छी हीं हुई।
'ख' पात्र के चुकन्दर पर नाइट्रोजनीय खाद का आधिक्य है।
'ग' पात्र के चुकन्दर पर नाइट्रोजनीय खाद के आधिक्य के साथ-साथ पोटाश उर्वरक भी है।

यक होता है। आर्द्र जलवायु में उदासीन मिट्टी में ऋणायन प्रधानतया कैलसियम और मगनीशियम के साथ संयुक्त रहते हैं और अम्लीय मिट्टी में लोहा, अलुमिनियम तथा मैंगनीज के साथ संयुक्त रहते हैं। जब आर्द्र मिट्टी में सोडियम नाइट्रेट डाला जाता है तब सोडियम पौधों द्वारा अवशोषित हो मिट्टी की अम्लता को अंशतः उदासीन बना देता है। इससे कैलसियम और मैगनीशियम का संरक्षण होता है। इंग्लैण्ड में स्पष्ट रूप से देखा गया है कि सोडियम नाइट्रेट से खेतों के चूने की क्षति कम हो जाती है। अमेरिका में भी ऐसा ही देखा गया है।

पौधों की वृद्धि में सोडियम का प्रभाव

पौधों की वृद्धि के लिए नाइट्रोजनीय खाद की आवश्यकता पड़ती है। विना नाइट्रोजन के वे बढ़ते नहीं। नाइट्रोजन के अभाव में वे फूलते-फलते भी नहीं हैं। सोडियम नाइट्रेट के सोडियम और नाइट्रोजन दोनों लाभकारी होते हैं। जल्द प्रभाव उत्पन्न करने वाली खादों में सोडियम नाइट्रेट का स्थान ऊँचा है। यह जल में जल्द घुल जाता है और शीघ्रता से पौधों पर प्रभाव उत्पन्न करता है।

कपास पर नाइट्रोजन वाली विभिन्न खादों का प्रभाव इस प्रकार पाया गया है —

	नौ वर्षों की पैदावार का औसत मान प्रति एकड़		
	उपलब्धि पौंड में	वृद्धि	प्रतिशत वृद्धि
अमोनियम सल्फेट	१८५८·७०	३५४·८५	२३·५९
अमोनियम नाइट्रेट	१९१८·३३	४१४·४८	२७·५६
सोडियम नाइट्रेट	१९५०·५१	४४६·६६	२९·७०
विना खाद	१५०३·८५	—	—

इन आँकड़ों से मालूम होता है कि सबसे अधिक पैदावार सोडियम नाइट्रेट से हुई है।

मिट्टी में जो सोडियम नाइट्रेट डाला जाता है उसका ४२ से ६५ प्रतिशत फसल में निकला हुआ पाया जाता है।

किन-किन फसलों पर सोडियम नाइट्रेट का प्रभाव अधिक होता है और किन-किन पर कम, इस पर एक मत नहीं है। प्रायः सभी स्वीकार करते हैं कि धान्य फसलों (cereals) पर इसका प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। जड़-फसलों पर इसका प्रभाव उतना महत्त्व का नहीं है। मैनगोल्ड (mangolds) पर इसका प्रभाव धान्य फसलों जैसा ही पड़ता है। जर्मनी में चुकन्दर के लिए सोडियम नाइट्रेट मूल्यवान् समझा

जाता है। इससे पत्तीदार साग-सब्जी अच्छे उगते हैं। उन सभी फसलों के लिए यह अच्छा समझा जाता है जो वायु से नाइट्रोजन नहीं ग्रहण कर सकतीं। फलीदार फसलों के लिए यह उतना आवश्यक नहीं समझा जाता। वैद्यनाथन् ने अनेक फसलों और कई किस्म की मिट्टियों पर अकेले अथवा अन्य उर्वरकों के साथ इसका प्रयोग किया है। कुछ फसलों में बहुत अधिक लाभ देखा गया है और कुछ फसलों का लाभ संदिग्ध है।

सोडियम नाइट्रेट की मात्रा

सोडियम नाइट्रेट का कितना उपयोग करना चाहिए, यह फसल और मिट्टी पर निर्भर करता है। साधारणतया ५० से ४०० पौण्ड प्रति एकड़ इस्तेमाल होता है। साग-भाजियों में, विशेषत: उन भाजियों में जो पत्तों के लिए उपयुक्त होती हैं, बड़ी मात्रा में प्रति एकड़ १००० पौण्ड तक इस्तेमाल हो सकता है। भारी मिट्टी में भी इसका उपयोग अधिक हो सकता है। फलीदार फसलों के लिए यह उतना आवश्यक नहीं है। अल्प मात्रा में ऊपर से डालने से लाभ होता पाया गया है। फूलों के लिए दो गैलन जल में एक औंस सोडियम नाइट्रेट घोलकर पौधों पर डाला जा सकता है। सिंचाई के जल में ५० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट ७००० से ८००० गैलन पानी में इस्तेमाल हो सकता है।

सोडियम नाइट्रेट की व्यवहार-रीति

बीज बोने के समय न डालकर पौधे कुछ बढ़ जायँ तब सोडियम नाइट्रेट का डालना अच्छा होता है। चूँकि यह जल में बहुत विलेय है, संकर्षण से इसका नाश बचाने के लिए पीछे से खेतों में डालना अच्छा होता है। यदि अधिक मात्रा में डालना हो तो एक बार के स्थान में दो या दो से अधिक बार डालना अच्छा होता है। इससे संकर्षण द्वारा क्षति बहुत कुछ रोकी जा सकती है। जड़ों को भी क्षति नहीं पहुँचती। पत्तों पर यह न पड़ना चाहिए। इससे कोमल पत्ते क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। पहली बार यदि बीज बोने से पहले डालना हो तो उसे खेतों में छींट सकते हैं अथवा ड्रिल द्वारा डाल सकते हैं। दूसरी बार तो ऊपर से ही जड़ के पास डालना चाहिए।

सोडियम नाइट्रेट पशुओं के लिए विषैला होता है। अत: जिस खेत में सोडियम नाइट्रेट डाला गया है उसकी घास पशुओं को तत्काल चरने नहीं देनी चाहिए।

अवशेष परिणाम

यद्यपि संकर्षण द्वारा सोडियम नाइट्रेट की क्षति शीघ्रता से हो सकती है, पर देखा

गया है कि सोडियम नाइट्रेट का प्रभाव कभी-कभी कई फसलों तक रहता है। ऐसा विशेष रूप से चरागाहों और बाग-बगीचों में देखा गया है। सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता है कि मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणु नाइट्रोजन को पकड़कर मिट्टी में रख लेते हैं। सूक्ष्माणुओं द्वारा नाइट्रोजन का उपभोग भी हो सकता है। विशेषतः ऐसी मिट्टी में जिसमें कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में रहते हैं।

अमोनियम उर्वरक

नाइट्रोजनीय खादों में अमोनियम लवणों का उपयोग सबसे अधिक हो रहा है। एक समय सोडियम नाइट्रेट का उपयोग सबसे अधिक होता था पर जब से कृत्रिम अमोनियम लवण बनने लगे तब से अमोनियम लवणों का उपयोग दिन-दिन बढ़ने लगा और आज सबसे अधिक मात्रा में इसी खाद का उपयोग हो रहा है। अमोनियम लवणों में अब अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट और अमोनियम नाइट्रेट उपयुक्त होते हैं। अमोनिया द्रव का भी अब उपयोग पच्छिमी देशों विशेषतः अमेरिका में होता है।

अमोनियम सल्फेट

पत्थर-कोयले को उच्च ताप पर गरम करने से उपजात के रूप में अमोनिया प्राप्त होता है जो सलफ्यूरिक अम्ल के योग से अमोनियम सल्फेट बनता है। एक समय अमोनियम सल्फेट का एकमात्र स्रोत कोयला ही था पर आज तो कृत्रिम रीति से वायु के नाइट्रोजन से बड़ी मात्रा में अमोनिया बनता और उससे अमोनियम सल्फेट प्राप्त होता है।

कोयले में नाइट्रोजन रहता है। यह नाइट्रोजन उस काठ से आता है जिससे कोयला बना है। नाइट्रोजन की मात्रा कोयले में ०·८ से १·६ प्रतिशत रहती है। जब कोयले को ऊँचे ताप पर गरम किया जाता है तब उसका कुछ नाइट्रोजन अमोनिया गैस के रूप में निकलता है और कुछ कोक में रह जाता है। यदि कोयले को बन्द पात्र में गरम किया जाय तो कोयले का प्रायः २५ प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनिया के रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

कोयले को जब बन्द पात्र में वायु की अनुपस्थिति में गरम किया जाता है तब उसे कोयले का 'भंजक आसवन' (destructive distillation) कहते हैं। भंजक आसवन से कोयले का नाइट्रोजन अमोनिया के रूप में अन्य गैसों के साथ मिलकर

निकलता है। कोयले के गरम करने के आज तीन उद्देश्य होते हैं—(१) कोयला गैस बनाना, (२) कठोर कोक बनाना और (३) कोमल कोक बनाना।

(१) कुछ कारखाने ऐसे हैं जो कोयला-गैस की प्राप्ति के लिए कच्चे कोयले को भभके में गरम करते हैं। कोयला-गैस गरमी या प्रकाश उत्पन्न करने में प्रयुक्त होती है। अनेक नगरों में गैस से रोशनी होती है। भोजन भी गैस से पकाया जाता है। कुछ कारखानों में भी गैस से गरम करने का कार्य होता है।

कोयले को ऊँचे ताप पर गरम करने से जो कोयला-गैस प्राप्त होती है उसमें हाइड्रोजन, मिथेन, कार्बन डाइ-आक्साइड, अमोनिया, जल-वाष्प और अलकतरा के सूक्ष्म कण, एथिलीन, नैफ्थलीन आदि अनेक हाइड्रोकार्बन रहते हैं। गैस को ठंडा करने और पानी द्वारा पारित करने से अमोनिया पानी में घुलकर निकल जाता है। अमोनिया के ऐसे विलयन को 'अमोनिया द्रव' या 'गैस द्रव' कहते हैं। इस द्रव में सलफ्यूरिक अम्ल डालने से अमोनियम सल्फेट बनता है ; विलयन को गाढ़ा करने से अमोनियम सल्फेट के मणिभ निकल आते हैं। ऐसे अमोनियम सल्फेट में पर्याप्त अपद्रव्य मिले रहते हैं। यदि अमोनिया द्रव में चूना डालकर भाप द्वारा आसुत किया जाय तब भाप के साथ-साथ अमोनिया निकल आता है। इस प्रकार निकले अमोनिया को सलफ्यूरिक अम्ल की टंकी में ले जाने से अपेक्षया शुद्ध अमोनियम सल्फेट प्राप्त होता है। यह भी बिल्कुल शुद्ध नहीं होता, इसमें भी कुछ अपद्रव्य रहते हैं जो उसके रंग से मालूम होता है। ताँबे के बड़े-बड़े मूठवाले करछुल से अमोनियम सल्फेट को टंकी से निकालकर द्रव को बहाकर निकाल देते और उसे अल्प जल से अथवा अमोनिया मिले जल से धोकर केन्द्रापसारक में अथवा गरम हवा से सुखाकर बोरे में बन्द करके बाहर भेजते हैं।

(२) कुछ कारखानों में, विशेषतः धातुओं के निर्माण वाले कारखानों में, कठोर कोक (hard coke) की जरूरत पड़ती है। बिटुमिनी कोयले को ऊँचे ताप पर गरम करने से कठोर कोक प्राप्त होता है। प्रत्येक लोहे के कारखाने में कठोर कोक तैयार करने का संयन्त्र रहता है, क्योंकि लोहे के कारखाने में बड़ी मात्रा में कोक लगता है। कठोर कोक के निर्माण में भी गैसें निकलती हैं जिनमें अमोनिया रहता है। इसका अमोनिया भी अब अमोनियम सल्फेट में परिणत किया जाता है।

(३) घरेलू ईंधन में कठोर कोक नहीं इस्तेमाल होता। कठोर कोक जल्दी आग नहीं पकड़ता। कोमल कोक ही इंधन के लिए काम आता है। कोमल कोक अपेक्षया निम्न ताप पर कोयले को गरम करके प्राप्त किया जाता है। इससे बनी गैसों को सलफ्यूरिक अम्ल के विलयन (६०° बौमे) में ले जाते हैं जहाँ गैसों का अमोनिया

अम्ल में अवशोषित होकर अमोनियम सल्फेट बनता है। कुछ कारखानों में शीतक (cooler) लगे रहते और कुछ में अलकतरा निष्कर्षक भी लगे रहते हैं। इससे गैसों का प्रायः समस्त अमोनिया निकल आता है।

इन सब कारखानों में उपजात के रूप में अमोनियम सल्फेट प्राप्त होता है। जहाँ-जहाँ कोयला-गैस या कोक बनते हैं वहाँ वहाँ अमोनिया प्राप्त करने का प्रयत्न हो रहा है। पहले अनेक कारखानों में अमोनिया प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं होता था। सारा अमोनिया नष्ट हो जाता था क्योंकि अमोनिया प्राप्त करने के उपकरण में काफी धन लगता है। पर प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जब अमोनियम सल्फेट का मूल्य बहुत बढ़ गया था तब अमोनिया-प्राप्ति के संयन्त्र बैठाने में सहायता मिली और आज शायद ही कोई कारखाना हो जो अमोनियम सल्फेट की उपलब्धि का प्रयत्न न करता हो। विभिन्न तापों पर गरम करने और विभिन्न नाइट्रोजन वाले कोयलों से अमोनियम सल्फेट विभिन्न मात्राओं में प्राप्त होता है, पर साधारण रूप से कहा जा सकता है कि एक टन कोयले से लगभग ३० पौण्ड अमोनियम सल्फेट प्राप्त होता है।

कोयले के सिवा बिटुमिनी शिलिका (shale) और हड्डियों के भंजक आसवन से भी अमोनियम सल्फेट प्राप्त हो सकता है। जहाँ-जहाँ इनका भंजक आसवन होता है वहाँ वहाँ उसकी उपलब्धि की चेष्टाएँ होती हैं।

कृत्रिम अमोनियम सल्फेट

कोयले से प्राप्त होने के सिवा कृत्रिम रीति से आज बड़ी मात्रा में अमोनियम सल्फेट प्राप्त होता है। भारत के उर्वरक कारखानों में भी अमोनियम सल्फेट कृत्रिम रीति से ही तैयार हो रहा है। सिन्दरी कारखाने में ऐसा ही अमोनियम सल्फेट तैयार होता है। कृत्रिम रीति में वायु का नाइट्रोजन, जल के हाइड्रोजन से मिलकर अमोनिया बनता है। इस अमोनिया को सलफ्यूरिक अम्ल में ले जाने से अमोनियम सल्फेट बनता है। पर आजकल सलफ्यूरिक अम्ल नहीं प्रयुक्त होता। यह महँगा पड़ता है। आधुनिक रीति जिपसम रीति है जिसमें अमोनिया और कार्बन डाइ-आक्साइड को ऐसी टंकी में प्रविष्ट कराते हैं जहाँ पीसा हुआ जिपसम जल में लटका (निलम्बित) रहता है। अमोनिया और कार्बन डाइ-आक्साइड के बीच प्रतिक्रिया होकर पहले अमोनियम कार्बोनेट बनता और वह फिर कैलसियम सल्फेट के साथ मिलकर अमोनियम सल्फेट और कैलसियम कार्बोनेट बनता है। कैलसियम कार्बोनेट अविलेय होने के कारण अवक्षिप्त हो जाता और अमोनियम सल्फेट विलयन में रहता है। छानकर कैलसियम कार्बोनेट को निकाल देते और विलयन को गाढ़ा करते हैं जिससे अमोनियम सल्फेट

मणिभ के रूप में निकल आता है। इस विधि का विस्तार से वर्णन सिन्दरी कारखाना प्रकरण में हुआ है।

अमोनियम सल्फेट के लक्षण

शुद्ध अमोनियम सल्फेट सफेद मणिभीय ठोस पदार्थ है। कृत्रिम रीति से प्राप्त अमोनियम सल्फेट भी सफेद होता है। पर कोयले से प्राप्त अमोनियम सल्फेट में कुछ रंग होता है। रंग पीला, भूरा, नीला या धूसर हो सकता है। यह रंग अपद्रव्यों के कारण होता है। अल्प अलकतरा, बड़ी अल्प मात्रा में फेरिक फेरोसाइनाइड और आर्सिनीयस सल्फाइड भी रंग प्रदान करते हैं। इसके संघटन में जल नहीं होता पर आर्द्र वायु में यह जल का कुछ अवशोषण कर सकता है। सूखी वायु में यह सूखा रहता है। इसमें साधारणतया असंयुक्त सलफ्यूरिक अम्ल नहीं रहता। पर कुछ नमूनों में ०·१५ से ०·५ प्रतिशत असंयुक्त अम्ल रह सकता है। यदि किसी नमूने में असंयुक्त अम्ल हो तो वह पिंड बन सकता है। ऐसे अम्लवाले नमूने से बोरे आक्रान्त होकर गल जाते हैं। यदि मणिभ बड़े आकार के हों तो पिंड बनने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। यह खेतों में बिना पीसे डाला जाता है। यदि किसी नमूने में असंयुक्त अम्ल हो तो अमोनिया वाले पानी के धोने से अम्ल निकल जाता है।

शुद्ध अमोनियम सल्फेट में २१·२ प्रतिशत नाइट्रोजन और २७·५ प्रतिशत गन्धक रहता है। व्यापार के अमोनियम सल्फेट में प्रायः २० प्रतिशत नाइट्रोजन और २४ प्रतिशत गन्धक रहता है।

अमोनियम सल्फेट जल में विलेय होता है। सामान्य ताप पर इसकी विलेयता सोडियम नाइट्रेट सी ही होती है। इसका संकर्षण इतनी जल्दी नहीं होता जितना सोडियम नाइट्रेट का होता है।

कोयले से प्राप्त अमोनियम सल्फेट में अल्प अमोनियम थायोसाइनेट (NH_4CNS) रह सकता है। अमोनियम थायोसाइनेट पौधों के लिए विषैला होता है, अतः यह पौधों को नुकसान पहुँचाता है। इसकी उपस्थिति का परीक्षण अमोनियम सल्फेट को पानी में घुलाकर विलयन में फेरिक क्लोराइड का विलयन डालने से होता है। यदि थायोसाइनेट विद्यमान है तो विलयन रक्त सा लाल हो जाता है।

मिट्टी पर अमोनियम सल्फेट की क्रिया

अमोनियम सल्फेट जब मिट्टी में डाला जाता है तब मिट्टी और अमोनियम सल्फेट के बीच दो प्रतिक्रियाएँ होती हैं। एक प्रतिक्रिया में मिट्टी का कैलसियम अमोनियम से विस्थापित होता है। इससे अमोनियम मिट्टी के साथ मिलकर मिट्टी का संकीर्ण

(कम्प्लेक्स Complex) बनता और कैलसियम, कैलसियम सल्फेट में परिणत हो जाता है। कैलसियम सल्फेट जल में अपेक्षया विलेय होता है। पानी के निकास के साथ वह सरलता से और जल्दी निकल जाता है।

दूसरी प्रतिक्रिया में अमोनियम का नाइट्रीकरण होता है। मिट्टी के जीवाणुओं के द्वारा अमोनिया नाइट्रेट में परिणत होता है। नाइट्रेट कैलसियम के साथ मिलकर कैलसियम नाइट्रेट बनता है, जिसे पौधे ग्रहण करते हैं। कुछ कैलसियम नाइट्रेट संकर्षण से नष्ट भी हो जाता है। अमोनियम सल्फेट का सल्फेट मुक्त होकर मिट्टी की अम्लता को बढ़ाता है। यदि चूने की कमी है तो अम्लता बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। कुछ फसलों के लिए मिट्टी की अम्लता हानिकारक है। मिट्टी में चूना डालने से अम्लता दूर हो जाती और तब पौधों को नुकसान नहीं होता है।

ये परिवर्तन अनुकूल परिस्थितियों में ही होते हैं। अनुकूल परिस्थिति है जल का होना, ताप का ऊँचा रहना और अम्लता की कमी। परिवर्तन में ७ से १० दिन लगते हैं। यदि परिस्थिति अनुकूल न हो तो अधिक समय लग सकता है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि पौधे नाइट्रोजन को ग्रहण कर सकें इसके लिए क्या आवश्यक है कि अमोनियम सल्फेट का नाइट्रीकरण हो? पहले ऐसा समझा जाता था कि पौधों के लिए नाइट्रोजन को ग्राह्य बनाने के लिए अमोनियम सल्फेट का नाइट्रीकरण आवश्यक है, पर इधर जो अनुसन्धान हुए हैं उनसे पता लगता है कि कुछ पौधे अमोनियम नाइट्रोजन को ही अधिक शीघ्रता से ग्रहण करते हैं। अल्प अम्लीय, उदासीन अथवा क्षारीय मिट्टी में अमोनियम नाइट्रोजन का अवशोषण छोटे-छोटे पौधे अधिक शीघ्रता से करते हैं। प्रबल अम्लीय मिट्टी में नाइट्रेट-नाइट्रोजन का अवशोषण अधिक शीघ्रता से होता है। यह देखा गया है कि जल्दी उगनेवाले पौधे नाइट्रेट-नाइट्रोजन को शीघ्रता से ग्रहण करते हैं। पीएरे और बावर (Pierre and Bower, १९४३) का स्पष्ट मत है कि पी एच के ऊँचा होने से पौधे अमोनियम नाइट्रोजन को अधिक ग्रहण करते हैं।

रसेल (१९३२) का मत है कि अधिक स्टार्चवाले पौधे, जैसे जौ, मकई और कद्दू अमोनियम नाइट्रोजन को शीघ्र ग्रहण करते और कम स्टार्चवाले पौधे, जैसे मटर और मूँग-मोठ (verches) अमोनियम नाइट्रोजन को तभी ग्रहण करते हैं जब मिट्टी में कैलसियम कार्बोनेट उपस्थित रहता है। कुछ पौधे जो कम जुती ज़मीन में उग सकते हैं और जिस मिट्टी में विलेय पोटेसियम, सोडियम और कैलसियम लवण कम रहते हैं, वे अमोनियम नाइट्रोजन को भीं ग्रहण करते हैं। अनानास अमोनियम नाइट्रोजन को ग्रहण कर लेता है। धान भी अमोनियम लवण को सरलता से ग्रहण करता है।

केली (Kelly) का मत है कि पानी लगे धान के खेतों में सोडियम नाइट्रेट अंशतः सोडियम नाइट्राइट में परिणत हो जाता है। नाइट्राइट के इकट्ठा हो जाने पर धान की फसल को नुकसान पहुँचता है। अतः धान के लिए सोडियम नाइट्रेट से अमोनियम सल्फेट कहीं अच्छा उर्वरक है। कुछ घासें भी अमोनियम सल्फेट से अच्छी उपजतीं और उनकी हरियाली उत्तम होती है।

मिट्टी की अम्लता में वृद्धि

अमोनियम सल्फेट यद्यपि नार्मल लवण है पर प्रतिक्रिया में यह अम्लीय होता है। इसे खेतों में डालने से मिट्टी की अम्लता बढ़ जाती है। ऐसा बारनेट, होस्टर (Barnette and Hoster, १९३०) और पियरे (Pierre, १९३१) का स्पष्ट मत है। अम्लीय मिट्टी में अनेक पौधे नहीं उगते। अम्लीयता के कारण नाइ-ट्रीकरण मन्द पड़ जाता है और समुचित ढंग से नहीं चलता। मिट्टी का पी एच ५·५ से कम हो जाने से ऐसा होता है। अमोनियम सल्फेट से उत्पन्न अम्लता का निवारण चूना या अन्य क्षारीय पदार्थों के डालने से सरलता से हो जाता है। ऐसा हॉल, गिमिनहम (Hall and Gimminham, १९०७), नोल, गार्डनर और इरवि (१९३१) ने स्पष्ट रूप से बतलाया है।

मिट्टी की विषालुता

अमोनियम सल्फेट के बारबार उपयोग से जो अम्लता उत्पन्न होती है वह फसलों के लिए विषैली हो सकती है। अमोनियम सल्फेट से मुक्त लवण पहले मिट्टी के कैल-सियम और मैगनीशियम के साथ मिलकर सल्फेट बनता है। यदि मिट्टी में इन तत्त्वों का अभाव हो तो यह लोहे, अलुमिनियम और मैंगनीज़ को आक्रान्त कर उनका विलेय सल्फेट बनता है। ये विलेय लवण ही पौधों पर विषैला प्रभाव उत्पन्न करते हैं। यदि मिट्टी में पर्याप्त चूना रहे तो इन धातुओं के विलेय सल्फेट बनने की सम्भावना नहीं रहती और तब इनका विषैला प्रभाव नहीं उत्पन्न होता।

मिट्टी की बनावट में परिवर्तन

यदि जल-वायु अनुकूल न हो तो अमोनियम सल्फेट का नाइट्रीकरण जल्द नहीं होता। इससे मिट्टी की बनावट में अन्तर आ जाता है जिससे उसकी उपजाऊ शक्ति क्षीण हो जाती है। यह विशेष रूप से उस मिट्टी में देखा जाता है जिसका पोत (texture) सूक्ष्म होता, कार्बनिक पदार्थ कम रहता और जिसके तल की मिट्टी बँधी हुई नहीं होती।

चूने की कमी

जैसा ऊपर कहा गया है, अमोनियम सल्फेट के उपयोग से मिट्टी का कैलसियम कैलसियम सल्फेट के रूप में संकर्षण द्वारा निकल जाता है। यदि सोडियम नाइट्रेट का व्यवहार हो तो उसमें जितना चूना-पत्थर डालने की ज़रूरत पड़ेगी उसकी अपेक्षा प्रत्येक १०० ग्राम अमोनियम सल्फेट पर ६७ ग्राम और अधिक चूना-पत्थर डालने की आवश्यकता पड़ती है।

१०० ग्राम अमोनियम सल्फेट के व्यवहार से मुक्त अम्ल के उदासीन वनाने में कितना चूना-पत्थर ($CaCO_3$) लगेगा, इस सम्वन्ध में विभिन्न अन्वेषकों के विभिन्न मत हैं। हुडिग का मत है कि १०० ग्राम, हार्टवेल और डैमन का मत है कि ११० ग्राम, क्राउथर का मत है कि ११२ ग्राम और पियरे का मत है कि १२० ग्राम कलसियम कार्बोनेट लगेगा। एलिसन और कूक का विचार है कि प्रति १०० ग्राम अमोनियम सल्फेट की अम्लता दूर करने के लिए कैलसियम कार्बोनेट का १४३ ग्राम लगेगा। यह निर्विवाद है कि अमोनियम सल्फेट के व्यवहार से मिट्टी से चूना निकल जाता है। इस कारण मिट्टी में अधिक मात्रा में चूना डालने की ज़रूरत पड़ती है। चूने की कमी की पूर्ति के लिए कितना चूना-पत्थर डालना चाहिए, इस सम्बन्ध में साधारणतया कहा जा सकता है कि प्रति टन अमोनियम सल्फेट के लिए १·५ से २·० टन पीसा हुआ चूना-पत्थर डालना ठीक है।

अमोनियम सल्फेट से अन्य पोषक तत्त्वों की उन्मुक्ति

मिट्टी में पौधों के अन्य पोषक तत्त्व रहते हैं। अमोनियम सल्फेट डालने से ये उन्मुक्त होकर पौधों को प्राप्य हो जाते हैं। ऐसे तत्त्वों में पोटैसियम, सोडियम, कैलसियम और मैगनीशियम हैं। इनका मुक्त होना तो पौधों के लिए अच्छा है पर इससे मिट्टी की उर्वरता अवश्य क्षीण हो जाती है, क्योंकि पानी के निकास में संकर्षण द्वारा ये मिट्टी से निकल भी जाते हैं।

अमोनियम सल्फेट की मात्रा

कितना अमोनियम सल्फेट डालना चाहिए यह बहुत कुछ मिट्टी और फसल की प्रकृति पर निर्भर करता है। नाइट्रोजन की मात्रा की दृष्टि से ७५ ग्राम अमोनियम सल्फेट लगभग १०० ग्राम सोडियम नाइट्रेट के बराबर होता है। बहुत आर्द्र मिट्टी में बारबार कई वर्षों तक इसका व्यवहार ठीक नहीं समझा जाता। जो पौधे अम्लीय मिट्टी में अच्छे उगते हैं उनकी खेती में अमोनियम सल्फेट का व्यवहार स्वच्छन्दता से हो सकता है।

साधारणतया प्रति एकड़ ५० से २५० पौण्ड का व्यवहार हो सकता है। धान्य फसलों और घासों के लिए प्रति एकड़ १०० से २०० पौण्ड इस्तेमाल होता है। ईख के खेतों में ११० से ३२० पौण्ड, आलू में ११० पौण्ड, मिर्च और साग-भाजियों में ८० से १०० पौण्ड, जूट में १५० से १८० पौण्ड, कपास में १०० से १५० पौण्ड, फल-वृक्षों में ३०० से ५०० पौण्ड, चाय और रबर में २२० से ३३० पौण्ड के व्यवहार से लाभ होता पाया गया है।

अमोनियम सल्फेट और फसल

सभी फसलों में अमोनियम सल्फेट का व्यवहार हो सकता है। जिस मिट्टी में उर्वरता की कमी हो और फसल अच्छी नहीं उगती हो अथवा जिस मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी हो, वहाँ अमोनियम सल्फेट का व्यवहार होता है। नाइट्रोजन के लिए गोबर खाद अथवा कम्पोस्ट से यह कहीं अच्छा होता है। बहुत आर्द्र मिट्टी में अमोनियम सल्फेट का व्यवहार लगातार अनेक वर्षों तक नहीं करना चाहिए। ऐसे पौधों के लिए भी इसका व्यवहार निरर्थक है जो अम्लीयता को सहन नहीं कर सकते। अम्लीय मिट्टी में उपजनेवाली फसलों के लिए अमोनियम सल्फेट अच्छी खाद है। अम्ल-बदरी (cranberry), नील-बदरी (blue-berry), तरबूज और रोडोडेन्ड्रन इससे अच्छे उगते हैं। इसके व्यवहार से आलू में कलंकिका (scab) का रोग नहीं होता अथवा होने पर उसका नियंत्रण हो जाता है। चरागाहों में इसके बार बार के उपयोग से ऐसी घासें उपजती हैं जो अम्ल-सहिष्णु (acid resistant) होती हैं।

व्यवहार की रीति

बीज बोने से पहले मिट्टी के जोतने के समय अमोनियम सल्फेट डालने से अच्छा फल प्राप्त हुआ है। कैलीफोर्निया में धान के खेतों में वायुयान से अमोनियम सल्फेट गिराकर जोता गया है और उससे भी सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त हुआ है। पर साधारणतया फसलों की जड़ों में सोडियम नाइट्रेट की भाँति ऊपर से या पार्श्व से अमोनियम सल्फेट डाला जाता है। इसे बीज या पौधों के बोने के समय न डालकर पौधे जब कुछ बढ़ जायँ तब ऊपर से डालना अच्छा होता है। इससे वर्षा द्वारा संकर्षण से अमोनियम सल्फेट का नाश होना रोका जा सकता है। पौधों के उगने के बाद ही बिहार में ईख के खेतों में और मध्य प्रदेश के कपास और जुआर के खेतों में डालने से अधिक लाभ होता हुआ पाया गया है। देर से डालने से उतना लाभ नहीं होता।

अमोनियम सल्फेट और सोडियम नाइट्रेट का तुलनात्मक अध्ययन

अनेक लोगों ने प्रयोग करके यह जानने की कोशिश की है कि इन दोनों नाइट्रोजनीय उर्वरकों में कौन उत्तम है और किसका व्यवहार अधिक अच्छा होगा। प्रयोगों से जो परिणाम निकले हैं वे एक से नहीं हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि विभिन्न अन्वेषकों ने विभिन्न मिट्टियों में विभिन्न फसलों के साथ विभिन्न रीतियों से उर्वरकों का व्यवहार किया है जिससे विभिन्न परिणाम प्राप्त होना स्वाभाविक है।

एक समय लोगों की धारणा थी कि अमोनियम सल्फेट की अपेक्षा सोडियम नाइट्रेट अधिक कार्यक्षम तथा प्रभावकारी होता है और अमोनियम सल्फेट की कार्यक्षमता सोडियम नाइट्रेट की क्षमता से केवल ९/१० होती है।

रसेल (१९१७) की रिपोर्ट है कि गेहूँ और जौ में अमोनियम सल्फेट की अपेक्षा सोडियम नाइट्रेट से पैदावार अधिक होती है।

प्रति एकड़ गेहूँ की २० वर्ष की औसत पैदावार

नाइट्रोजनीय खाद	पैदावार, बुशेल
सोडियम नाइट्रेट के रूप में ८६ पौण्ड नाइट्रोजन	३१·४
अमोनियम सल्फेट के रूप में ८६ पौण्ड नाइट्रोजन	२८·८
बिना खाद	१४·४

प्रति एकड़ जौ की ६० वर्ष की औसत पैदावार

नाइट्रोजनीय खाद	पैदावार, बुशेल
सोडियम नाइट्रेट में ४३ पौण्ड नाइट्रोजन	४२·७
अमोनियम सल्फेट में ४३ पौण्ड नाइट्रोजन	४१·५
बिना खाद	१९·७

वैद्यनाथन (१९३३) की रिपोर्ट के अनुसार, जो कि धारवार फार्म के कपास और जुआर की फसलों पर निर्भर करती है, अमोनियम सल्फेट की अपेक्षा सोडियम नाइट्रेट से कपास और जुआर की पैदावार अधिक होती है। सहस्रबुद्धे (१९३४) ने रिपोर्ट दी है कि सोडियम नाइट्रेट की अपेक्षा अमोनियम सल्फेट के उपयोग से गुड़ का उत्पादन अधिक होता है। वैद्यनाथन् ने कोयम्बटूर फार्म में किये गये प्रयोगों के परिणामस्वरूप ऐसी रिपोर्ट दी है।

लौरेंज और जौन्सन (१९५३) ने जो प्रयोग कैलिफोर्निया की मिट्टी पर किये हैं उनसे उन्होंने यह परिणाम निकाला है कि अमोनियम सल्फेट से पैदावार अधिक बढ़ी हुई पायी जाती है। इसका कारण उन्होंने यह बतलाया है कि अमोनियम सल्फेट के अम्लीय प्रभाव से पोषक तत्त्व, फास्फेट आदि मुक्त होकर पौधों को प्राप्त होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि अमोनियम सल्फेट के व्यवहार से अच्छी पैदावार का होना बहुत कुछ मिट्टी के पी एच पर निर्भर करता है। मिट्टी के पी एच के व्यवस्थापन (adjustment) से पैदावार एक या दूसरे उर्वरक से अधिक या कम हो सकती है। कुछ प्रयोग अनेक वर्षों तक हुए हैं और कुछ थोड़े समय तक। तम्बाकू पर अल्पकालीन प्रयोगों से गर्नर और ब्राउन (१९१९) ने जो परिणाम प्राप्त किये हैं वे निम्न प्रकार हैं। प्रयोग केवल छः वर्षों तक किये गये थे।

तम्बाकू पर विभिन्न नाइट्रोजनीय खादों के अल्पकालीन व्यवहार का प्रभाव

नाइट्रोजनीय खाद	प्रति एकड़ पैदावार पौण्ड में
सोडियम नाइट्रेट	११९५
अमोनियम सल्फेट	१२२८
घूरे की खाद	११०२
बिनौले की खली	११०४
बिना खाद	८६८

अमेरिका में जो दीर्घकालीन प्रयोग हुए हैं उनकी रिपोर्ट नोला, गार्डनर और इरविन (१९३१) तथा नोल और रिचर (१९५०) ने की है। उनके आँकड़े ये हैं—

पैदावार प्रति एकड़ पौण्ड में

	२४ पौण्ड नाइट्रोजन		४८ पौण्ड नाइट्रोजन		७२ पौण्ड नाइट्रोजन	
	सोडियम नाइट्रेट	अमोनियम सल्फेट	सोडियम नाइट्रेट	अमोनियम सल्फेट	सोडियम नाइट्रेट	अमोनियम सल्फेट
औसत १८८२-१९२१	१८०२१	१६८५७	१८६३२	१६३५७	१८९५३	१४९८५
बिना चूना १९२२-१९३७	१५११४	८३३८	१५२८४	५७९२	१५८६९	५०६३
चूने के साथ १९२२-१९३७	१७५३२	१९३९४	१८४६५	२००१३	१८७१५	१९२२७
बिना चूना १९३८-१९४५	१६६००	८६२२	१६९१९	६१५६	१७८७०	५६९६
चूने के साथ १९३८-१९४५	१६४६२	१५९६७	१६१८६	१६७८४	१६०९९	१६५८९

इन आँकड़ों से पता लगता है कि १९२२-१९३७ में यद्यपि अमोनियम सल्फेट से पैदावार अधिक हुई, पर १९३८-१९४५ में पैदावार अधिक नहीं हुई है।

वाइट (White, १९२५) ने इन प्रयोगों से जो परिणाम निकाला, वह यह है— इन प्रयोगों से यह पता नहीं लगता कि दोनों उर्वरकों में कौन उत्तम है और कौन निकृष्ट। इससे यह मालूम होता है कि अमोनियम सल्फेट के व्यवहार में सावधानी बरतना बहुत आवश्यक है।

दोनों उर्वरकों की तुलना से निम्नांकित बातें मालूम होती हैं—

अमोनियम सल्फेट	**सोडियम नाइट्रट**
१. इसमें नाइट्रोजन की मात्रा लगभग २१ प्रतिशत रहती है।	इसमें नाइट्रोजन की मात्रा केवल १५·६ प्रतिशत के लगभग रहती है।
२. यह जल में विलेय होता है।	यह जल में समान रूप से विलेय होता है।
३. संकर्षण से इसकी क्षति कम होती है।	संकर्षण से इसकी क्षति अधिक होती है।
४. यह अम्लता को बढ़ाता है।	यह अम्लता को अंशतः दूर करता है।

५. यह कैलसियम को कैलसियम सल्फेट के रूप में मिट्टी से निकालता है।	यह कैलसियम का संरक्षण करता है।
६. अधिक नाइट्रोजन रहने के कारण एक सा मूल्य रहने पर भी यह सस्ता होता है।	कम नाइट्रोजन रहने के कारण यह अपेक्षया महँगा पड़ता है।
७. इससे फसल जल्दी पक जाती है, अतः वृद्धि के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता। पैदावार कम होती है।	इससे फसल कुछ देर से पकती है अतः वृद्धि के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है, जड़ें जमीन के अन्दर अधिक दूर तक फैलती हैं। इससे सूखे या ऊँचे ताप का प्रभाव फसलों पर कम पड़ता है।

अमोनियम क्लोराइड

अमोनियम क्लोराइड, 'साल अमोनियक' या 'नौसादर' के रूप में हमें बहुत दिनों से मालूम है। ऊँट के गोबर को जलाने से जो कजली बनती है उसी से पहले यह तैयार होता था। बाद में इसके विस्तृत निक्षेप कुछ ज्वालामुखी क्षेत्रों में पाये गये। इटना में १६२५ में इसके विस्तृत निक्षेप पाये गये थे जहाँ से निकालकर यह विभिन्न देशों को भेजा जाता था और काम में आता था।

अब अमोनियम क्लोराइड कृत्रिम रीति से तैयार होता है। हाइड्रो क्लोरिक अम्ल पर अमोनिया की क्रिया से यह प्राप्त हो सकता है, पर वस्तुतः सोडियम क्लोराइड पर अमोनियम और कार्बन डाइ-आक्साइड की क्रिया से यह प्राप्त होता है। इस रीति से उपजात के रूप में वाशिंग सोडा भी प्राप्त होता है। इस प्रकार से अमोनियम क्लोराइड बनाने का एक बड़ा कारखाना उत्तर प्रदेश के मुगलसराय के समीप साहू-जैन पुरी में खुल गया है।

अभी अमोनियम क्लोराइड अमोनियम सल्फेट से महँगा पड़ता है, इस कारण उर्वरक के लिए इसका उपयोग नहीं होता। इसमें नाइट्रोजन की मात्रा अमोनियम सल्फेट में विद्यमान नाइट्रोजन की मात्रा से अधिक रहती है। इसमें २५·५ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। अतः यह अमोनियम सल्फेट से अधिक सान्द्र खाद है।

कुछ लोगों की धारणा थी कि क्लोरीन के रहने से पौधों के लिए यह अच्छी खाद नहीं हो सकता, पर इधर जो प्रयोग इस सम्बन्ध में देश में और बाहर हुए हैं उनसे पता लगता है कि कुछ फसलों के लिए यह अमोनियम सल्फेट से अधिक उत्कृष्ट खाद है,

कुछ फसलों के लिए यह अमोनियम सल्फेट के बराबर ही पाया गया है और कुछ फसलों के लिए उससे निकृष्ट।

भारत के अनेक फार्मों में इसके उपयोग के सम्बन्ध में इधर प्रयोग हुए हैं। उनका उल्लेख आगे 'अमोनियम क्लोराइड' प्रकरण में हुआ है।

भारत का कारखाना जब अमोनियम क्लोराइड तैयार करने लगेगा तब यह अवश्य ही सस्ता प्राप्त होगा। इससे भविष्य में इसका उपयोग दिन-दिन बढ़ेगा ; ऐसी आशा की जाती है। भारत के लिए इससे दो लाभ होंगे। एक गन्धक की बचत होगी और दूसरे यह भारत के नमक से तैयार होगा और साथ-साथ उपजात के रूप में एक उपयोगी पदार्थ 'वाशिंग सोडा' भी प्राप्त होगा।

अमोनियम क्लोराइड ऊपर से खेतों में डाला जाता है। यह प्रति एकड़ ५० से २५० पौण्ड तक इस्तेमाल हो सकता है। वास्तविक मात्रा मिट्टी की भौतिक दशा, फसल की किस्म और पूर्व प्रयुक्त हुई खादों पर निर्भर करती है।

अमोनियम नाइट्रेट

नाइट्रोजनीय खादों में अमोनियम नाइट्रेट सबसे अधिक सान्द्र खाद है। इसमें नाइट्रोजन लगभग ३५ प्रतिशत रहता है। व्यापार के अमोनियम नाइट्रेट में नाइट्रोजन ३२·५ से ३३·५ प्रतिशत रहता है। इसका सब का सब नाइट्रोजन पौधों के काम आ जाता है। इसका कोई अंश बचा नहीं रहता। इसका आधा नाइट्रोजन अमोनियम के रूप में और आधा नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में रहता है। अतः इसका प्रभाव पौधों पर सबसे अधिक और अन्य सब नाइट्रोजनीय खादों से शीघ्र पड़ता है।

भौतिक गुण

अमोनियम नाइट्रेट सफेद होता है। इसके मणिभ भी सफेद होते हैं। यह जल में बहुत विलेय, सोडियम नाइट्रेट से दुगुना विलेय होता है। इसके छोटे-छोटे मणिभ मिलकर बड़े-बड़े दाने बनते हैं। दानेदार अमोनियम नाइट्रेट अधिक सरन्ध्र होता है।

आर्द्र वायु में अमोनियम नाइट्रेट आर्द्रताग्राही होता है। जल को ग्रहण कर यह पिंड बन जाता है। पिंड को तोड़कर ड्रिल द्वारा खेतों में डाल सकते हैं। तोड़ने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए ताकि विस्फोट का भय न रहे।

अमोनियम नाइट्रेट के मणिभ कई प्रकार के होते हैं। -१८° सें० से नीचे के मणिभ चतुष्कोणिक (tetragonal) होते हैं, -१८° सें० से ३२·३° के बीच के मणिभ लंब चतुर्भुजीय छद्म-चतुष्कोणिक (ortho-rhombic pseudotetragonal), ३२·३° और ८४·२° के बीच के लंबचतुर्भुजीय, ८४·२° और १२५·२° के बीच

के चतुष्कोणिक तथा १२५·२° के ऊपर के घनाकार होते हैं। एक रूप से दूसरे रूप में बदलने पर इनमें उष्मा-परिवर्तन और आयतन-परिवर्तन होते हैं।

अमोनियम नाइट्रेट दहन का पोषक है। यह आग पकड़ लेता है और विस्फोट उत्पन्न करता है। जलने और विस्फोट उत्पन्न करने का कारण अभी तक समझ में नहीं आया है। बन्द पात्र में गरम करने से, स्काट और ग्राण्ट (१९४८) के अनुसार ३००–३५०° से० के बीच विशिष्ट परिस्थितियों में इसका विस्फोट होता है। विस्फोट से बचने के लिए उत्पादकों ने निम्नलिखित सावधानी की सिफारिश की है।

१. अमोनियम नाइट्रेट के बोरों को जब तक उपयोग न करना हो तब तक बड़ी सावधानी से बन्द करके रखना चाहिए।

२. बोरों को अन्दर सूखे स्थान पर रखना चाहिए।

३. अमोनियम नाइट्रेट को जल्द से जल्द इस्तेमाल करना चाहिए। बहुत दिनों तक संचित नहीं रखना चाहिए।

४. बोरों को एक के ऊपर दूसरा छः से अधिक नहीं रखना चाहिए।

५. प्रति सप्ताह बोरों का स्थान बदलते रहना चाहिए। यदि पिंड बनता हो तो बोरों को कठोर गच पर रखना चाहिए। पिंड को तोड़ने में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। विस्फोटकों की सहायता से तोड़ने की कभी भी कोशिश नहीं करनी चाहिए।

६. अमोनियम नाइट्रेट के निकट सिगरेट या बीड़ी नहीं पीना चाहिए अथवा आग या लौ निकट न आने देना चाहिए। बोरों से अमोनियम नाइट्रेट निकाल लेने पर बोरों को नष्ट कर देना चाहिए।

७. अमोनियम नाइट्रेट के निकट जल्द जलनेवाला पदार्थ, फास्फरस, गन्धक, कार्बनिक पदार्थ और कुछ धातुएँ नहीं आने दे ी चाहिए।

सन् १९२१ में जर्मनी में अमोनियम नाइट्रेट से एक भयंकर विस्फोट हुआ था जिसमें ५०९ आदमी मरे थे। १९२७ में टेक्सास नगर में भी ऐसा ही भयंकर विस्फोट हुआ था।

विस्फोट से बचने के लिए अमोनियम नाइट्रेट में अब कुछ निष्क्रिय पदार्थ मिलाय जाते हैं। उनका उल्लेख आगे होगा।

अमोनियम नाइट्रेट का उपयोग उर्वरक के लिए अब होने लगा है। पहले तो इसका उपयोग केवल विस्फोटक पदार्थों के निर्माण में ही होता था। आज भी इसका उपयोग उर्वरक के लिए कम इस कारण होता है कि यह महँगा पड़ता है और इससे विस्फोट होने का भय रहता है; फिर यह आर्द्रताग्राही है, अतः शीघ्र ही इसका पिंड बन जाता है।

सिन्दरी के उर्वरक कारखाने के विकास की योजना बनी है। इस योजना के अनुसार वहाँ अमोनियम नाइट्रेट का भी निर्माण होगा। अमोनियम नाइट्रेट के निर्माण के संयन्त्र वहाँ बैठाये जा रहे हैं और आशा की जाती है कि अमोनियम नाइट्रट का निर्माण वहाँ शीघ्र ही शुरू हो जायगा।

अमोनियम नाइट्रेट का निर्माण

अमोनिया गैस को नाइट्रिक अम्ल में ले जाने से अमोनियम नाइट्रेट बनता है। यह विधि वहुत दिनों से प्रयुक्त होती आ रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जो कम्पनियाँ विस्फोटक के लिए अमोनियम नाइट्रेट का निर्माण करती थीं उन्हें युद्ध बन्द हो जाने से इसका निर्माण बन्द कर देना पड़ा। ऐसी कुछ कम्पनियाँ अमोनिया और अमोनियम नाइट्रेट के विलयन को सुपर-फास्फेट के साथ मिलाकर उर्वरक के लिए बेचने लगीं। इसी बीच अमोनियम नाइट्रेट तैयार करने की एक नयी मशीन १९४२ में वैठायी गयी और १९४३ से अमोनियम नाइट्रेट पर्याप्त मात्रा में उर्वरक के लिए प्राप्त होने लगा। अब अमोनियम नाइट्रेट के दोषों को दूर करने की कोशिश हुई।

इस दिशा में प्रथम कोशिश यह हुई कि अमोनियम नाइट्रेट के मणिभ बड़े-बड़े बनें। फिर मणिभों को ऐसे पदार्थों से ढकने की कोशिश हुई जो आर्द्रता-ग्रहण को रोक सकें। देखा गया कि यदि मणिभों को उपयुक्त पदार्थों से ढक दिया जाय तो आर्द्रता का अवशोषण बहुत कुछ रोका जा सकता है। ऐसे पदार्थों में ट्राइ कैलसियम फास्फेट, कीसलगुर, प्लास्टर आफ पेरिस, केओलिन और अन्य प्रकार की मिट्टियाँ थीं। यदि आर्द्र वायु में अमोनियम नाइट्रेट के मणिभों को ०·५ से १ प्रतिशत जल-प्रत्यपसारी (water-repellent) पदार्थों से, जैसे पैराफिन और वेसलिन या ऐस्फाल्ट के मिश्रण से, अथवा पैराफिन, वेसलिन और रोजिन से, उपचारित किया जाय तो जल का अवशोषण रोका जा सकता है।

बाजारों में जो दानेदार अमोनियम नाइट्रेट बिकता है वह विभिन्न विस्तार का होता है। अमेरिका में कनाडा का जो अमोनियम नाइट्रेट बिकता है उसका ८० प्रतिशत २०—अक्षि चलनी में नहीं चल सकता और ५ प्रतिशत से कम ही ४०—अक्षि चलनी से चलता है। आज अमोनियम सल्फेट ऐसी ही भौतिक दशा में प्राप्त होता है जिस दशा में सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट प्राप्त होते हैं। अमोनियम नाइट्रेट को गन्धक के संसर्ग में भूलकर भी नहीं लाना चाहिए, अन्यथा विस्फोट निश्चित है। कार्बनिक पदार्थों के संसर्ग में भी इसे न लाना चाहिए। १४० ग्राम सुपर-फास्फेट,

४० ग्राम अमोनियम नाइट्रेट और २० ग्राम मूँगफली के छिलकों को गरम करने से ९०-९५° से० पर आग लग गयी थी।

अमोनियम नाइट्रेट का मिश्रण

अमोनियम नाइट्रेट की विस्फोटक प्रवृत्ति को कम करने के विचार से इसे आज अनेक पदार्थों के साथ मिलाकर बेचते हैं। जर्मनी में अमोनियम नाइट्रेट को ६० प्रतिशत जिपसम के साथ मिलाकर बेचते थे। ऐसे उर्वरक का परिणाम जर्मनी, यूरोप और अमेरिका में अच्छा होता था। यूरोप में पोटाश लवणों और अमोनियम सल्फेट को साथ मिलाकर भी बेचते थे। आजकल यह अन्य कई उर्वरकों के साथ मिलाकर बिकता है।

अमोनियम सल्फेट, पीसा हुआ चूना-पत्थर, सुपर फास्फेट और इसी प्रकार के अन्य पदार्थों को साथ मिलाकर बेचने से इसका विस्फोट बहुत कुछ रोका जा सका है। सम्भव है, इससे अल्प मात्रा में अमोनिया नष्ट हो जाता हो।

नाइट्रो-चॉक

अमोनियम नाइट्रेट को आजकल महीन पीसे हुए,—८० से १००—अक्षि चलनी में चाले जानेवाले—चूना-पत्थर के साथ मिलाकर 'नाइट्रो-चाक' (Nitro-chalk) के नाम से बेचते हैं। नाइट्रो-चाक में अमोनियम नाइट्रेट ४४ प्रतिशत के लगभग और कैलसियम कार्बोनेट ५१ प्रतिशत रहता है। नाइट्रोजन १५·५ प्रतिशत रहता है। यह बहुत अच्छा उर्वरक सिद्ध हुआ है। इससे मिट्टी की अम्लता बहुत कुछ कम हो जाती है। अमेरिका में जो नाइट्रो-चाक मिलता है उसमें नाइट्रोजन १६ से २०·५ प्रतिशत और चूनेवाला पदार्थ ४६ से ५० प्रतिशत रहता है। अमेरिका में 'नाइट्रो-चाक' के अतिरिक्त इसके दूसरे नाम 'कैल-नाइट्रो', ए-एन-एल (A-N-L) भी हैं।

अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट

अमोनियम सल्फेट को अमोनियम नाइट्रेट के साथ मिलाकर 'ल्यूना शोरा' के नाम से जर्मनी, इटली और फ्रांस में बेचते हैं। ऐसे उर्वरक को हम $2\ NH_4NO_3\ (NH_4)_2SO_4$ सूत्र से प्रकट कर सकते हैं। वस्तुतः दोनों का अनुपात समाणविक अनुपात में रहता है। इसमें नाइट्रोजन की मात्रा २६ प्रतिशत रहती है। इसका दो-तृतीयांश अमोनियम के रूप में और एक-तृतीयांश नाइट्रेट के रूप में रहता है। यह बहुत कम आर्द्रताग्राही होता है। इसका पिंड नहीं बनता। इसका विस्फोट कभी नहीं होता। उर्वरक के रूप में इसके प्रयोग से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

यदि अमोनियम नाइट्रेट का उपयोग सुपर-फास्फेट के साथ मिलाकर करना हो तो सुपर-फास्फेट को पहले उदासीन बना लेना चाहिए। १०० पौण्ड सुपर-फास्फेट को उदासीन बनाने के लिए २·५ से ५ पौण्ड किसी सक्रिय पदार्थ को मिलाना आवश्यक है। ऐसे सक्रिय पदार्थ जलीयित चूना, चूरा किया हुआ कैलसियम साइनाइड, अमोनिया अथवा सीमेंट-निकास वायु की धूल हो सकती है। अमोनियम नाइट्रेट में जल का अंश जितना ही कम हो उतना ही अच्छा है। इसी कारण भीगा हुआ डोलोमाइट अथवा अन्य भीगा हुआ पदार्थ उसमें नहीं मिलाना चाहिए।

अमोनियम नाइट्रेट के साथ जिन पदार्थों को न मिलाना चाहिए वे हैं सोडियम नाइट्रेट, पोटेसियम नाइट्रेट, सोडियम क्लोराइड और मैगनीशियम क्लोराइड तथा यूरिया। सूखा यूरिया और अमोनियम नाइट्रेट तो कदापि साथ-साथ इस्तेमाल नहीं करने चाहिए।

रसेल का मत है कि अमोनियम नाइट्रेट को सदा ही खड़िया के साथ मिलाकर इस्तेमाल करना चाहिए। खड़िया या चूना-पत्थर के कारण ऐसे मिश्रण में रंग आ सकता है पर इससे कोई नुकसान नहीं होता।

अमोनियम नाइट्रेट का उर्वरक मान

अमोनियम नाइट्रेट का उपयोग आजकल यूरोप और अमेरिका में अधिकता से हो रहा है। भारत में इसका उपयोग अभी नहीं होता क्योंकि यहाँ यह सरलता से उपलब्ध नहीं है। जब भारत में अमोनियम नाइट्रेट बनने लगेगा तब इसका उपयोग अवश्य होगा।

अमोनियम नाइट्रेट जल में बहुत विलेय होता है। इससे पौधे इसे बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। इसमें नाइट्रोजन, अमोनियम और नाइट्रेट दोनों रूपों में रहता है। ऐसी फसलों के लिए यह बहुत अच्छा है जो अमोनियम और नाइट्रेट दोनों नाइट्रोजनों को ग्रहण कर सकती हैं। इसका नाइट्रोजन संकर्षण से जल्दी नष्ट नहीं होता।

अमेरिका में उर्वरक के लिए इसका विलयन बिकता है। ऐसे दो विलयन 'ए एन-डबलू ८३' (AN-W 83) और 'ए एन-डबलू ६०' (AN-W 60) बिकते हैं, जिनमें अमोनियम नाइट्रेट क्रमशः ८३ और ६० प्रतिशत रहता है। सिंचाई के जल में भी डालकर इसका उपयोग हो सकता है। इससे वैसी ही अच्छी पैदावार होती है जैसी ऊपर से खाद डालने से होती है। अमोनियम नाइट्रेट नये पत्तों पर नहीं पड़ना चाहिए। इससे वे क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। अमोनियम नाइट्रेट और अमोनिया का प्रभाव प्रायः एक-सा पाया जाता है।

अमोनिया

अब अमोनिया भी उर्वरक के रूप में अमेरिका में प्रयुक्त हो रहा है। इसका उपयोग निम्नलिखित कारणों से होता है।

१. यह नाइट्रोजनीय उर्वरकों में सबसे सस्ता होता है। अमेरिका में विभिन्न नाइट्रोजनीय उर्वरकों के मूल्य इस प्रकार हैं—

डालर में २० पौण्ड का मूल्य				
वर्ष	सोडियम नाइट्रेट	अमोनियम सल्फेट	अजल अमोनिया	साइनेमाइड
१९४५	१·७५	१·४२	०·७३	१·५२
१९४६	१·९७	१·४४	०·७३	१·५४
१९४७	२·५०	१·६०	०·७२	१·८९
१९४८	२·८६	२·०३	०·७९	२·४७
१९४९	३·१५	२·२९	०·८९	२·७३
१९५०	३·००	१·९५	०·९०	२·२६
१९५१	३·१६	१·९६	०·९६	२·९०
१९५२	३·३४	२·०७	०·९६	३·०४

२. अमोनिया के सीधे उपयोग से अम्लों की बचत होती है। लवणों में जो अम्लीय मूलक रहते हैं उनकी ज़रूरत नहीं पड़ती।

३. अन्य उर्वरकों के साथ, विशेषतः सुपर-फास्फेट के साथ, इसके उपयोग से सुपर-फास्फेट की अम्लता नष्ट होकर उसकी भौतिक दशा बहुत कुछ सुधर जाती है। सुपर-फास्फेट के साथ अन्य कुछ पदार्थों के डालने की ज़रूरत नहीं रह जाती। सुपर-फास्फेट के मुक्त अम्लों को चूने की अपेक्षा अमोनिया शीघ्रता से उदासीन बना देती है।

४. सुपर-फास्फेट के शीघ्र अभिसाधन[1] के लिए अधिक अम्ल की आवश्यकता पड़ती है। अधिक अम्ल देकर उसे शीघ्र अभिसाधित कर फिर अम्ल को अमोनिया से उदासीन कर लेते हैं। इससे अभिसाधन में कम समय लगता है।

[1] Curing

सातवाँ अध्याय

सिन्दरी उर्वरक का कारखाना

पिछले विश्वयुद्ध से पहले भारत में उर्वरक के लिए अमोनियम सल्फेट की वार्षिक खपत लगभग १००,००० टन थी। इसका केवल एक तृतीयांश ही इस देश में उत्पन्न होता था। शेष बाहर से आता था। अमोनियम सल्फेट का उपयोग तब विशेषतया ईख की खेती में होता था। कुछ अमोनियम सल्फेट चाय की खेती में भी खपता था। धीरे-धीरे किसान अमोनियम सल्फेट की उपयोगिता को समझने लगे और अमोनियम सल्फेट की खपत बढ़ने लगी और इसकी कमी का अनुभव होने लगा। अब अमोनियम सल्फेट को बाहर से, विशेषकर अमेरिका और कनाडा से, जहाँ यह पर्याप्त मात्रा में बनता था, मँगाने की आवश्यकता पड़ी। पर उन देशों में भी इसकी खपत बढ़ गयी, दाम चढ़ गये और विदेशी मुद्रा के अभाव के कारण बाहर से मँगाने में कठिनता उत्पन्न हुई। इससे भारत को अमोनियम सल्फेट रूस तथा अन्य साम्यवादी देशों से मँगाने को बाध्य होना पड़ा। १९५७ में भी रूस से कुछ अमोनियम सल्फेट मँगाने की सूचना मिली है।

इस बीच भारत में भी अमोनियम सल्फेट तैयार करने का प्रयत्न शुरू हुआ। ट्रावनकोर के अलवई स्थान में एक कारखाना पहले से खुला था और दूसरा बिहार राज्य स्थित धनबाद ज़िले के सिन्दरी नामक स्थान में खुला। बाहर से अमोनियम सल्फेट मँगाने पर उसका मूल्य प्रति टन ३६५ रुपया पड़ता था, जब कि भारत का बना अमोनियम सल्फेट केवल २९० रुपया प्रति टन बिकता है।

भारत में अमोनियम सल्फेट का उत्पादन और उत्पादन-क्षमता

वर्ष	उत्पादन-क्षमता टन में	वास्तविक उत्पादन टन में
१९५१	४२७,०३०	४६,०००
१९५२	४३२,१७०	२२०,३०२
१९५३	४२६,८५०	३१५,९६०

वर्ष	उत्पादन-क्षमता टन में	वास्तविक उत्पादन टन में
१९५४	—	—
१९५५	—	—
१९५६	—	—
१९५७	—	३८०,०००

सिन्दरी (अंग्रेज़ी में इसे 'सिन्ड्री' लिखते हैं) का कारखाना एशिया का सबसे बड़ा उर्वरक का कारखाना है। इस कारखाने के निर्माण से भारत की आर्थिक दशा में पर्याप्त सुधार हुआ है और भविष्य में और सुधार होने की आशा है। दिन-दिन इस कारखाने की उन्नति हो रही है। उर्वरक की माँग की पूर्ति के लिए अन्य कारखानों के खोलने में भी इससे सहयोग मिल रहा है। उर्वरक के अधिकाधिक मात्रा में तैयार होने से खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि होगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रह गया है। इस कारखाने में अभी केवल अमोनियम सल्फेट का निर्माण होता है। पहली अक्तूबर १९५१ को कारखाना चालू हुआ। कोक वोवेन प्लैण्ट २ करोड़ ८० लाख रुपये से बनकर नवम्बर १९५४ में तैयार हुआ।

सिन्दरी में अमोनियम सल्फेट का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन-क्षमता टन में	वास्तविक उत्पादन टन में
१९५२	३३०,०००	—
१९५३	३३०,०००	१७८,८५७
१९५४	३३०,०००	२७१,८४४
१९५६	३३०,०००	३३१,७२५
१९५७	३३०,०००	३३२,०३१

१९५५ नवम्बर में सबसे अधिक मात्रा में ९००० टन अमोनिया बना था और १९५६ अक्तूबर में सबसे अधिक मात्रा में ३२,३९७ टन अमोनियम सल्फेट बना था। १९५७ दिसम्बर में पूर्व उत्पादन से अधिक ९,३५३ टन अमोनिया और ३२,८९१ टन अमोनियम सल्फेट बना है। १९५७–५८ का समस्त अमोनिया का उत्पादन ९६,१४४

टन है जो अन्य सब वर्षों से अधिक है। १९५७ का औसत दैनिक उत्पादन १,०६१ टन है।

१९५६ और १९५७ में कारखाने के उत्पादन की क्षमता जितनी निर्धारित हुई थी उससे क्रमशः १७२५ और २०३१ टनों की वृद्धि हुई है। सिन्दरी के कारखाने के उत्पादन का लक्ष्य केवल ३३०,००० टन प्रति वर्ष था, जब कि १९५७ में उत्पादन बढ़कर ३३२,८३५ टन हो गया है।

गत पाँच छः वर्षों में अमोनियम सल्फेट का उत्पादन भारत में प्रायः ७ गुना बढ़ गया है। प्रारम्भ से १९५८ तक सिन्दरी के कारखाने में १८ लाख टन से अधिक अमोनियम सल्फ़ेट बना है। इससे विदेशी मुद्रा में ६० करोड़ से अधिक रुपये की बचत हुई है। उर्वरक की सहायता से ३५ लाख टन खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि हो सकती है जिससे बाहर से खाद्यान्न मँगाने में ९३ करोड़ रुपये से अधिक की बचत होगी।

स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने जिन कारखानों को अपने अधिकार में लिया है उनमें सिन्दरी का कारखाना सबसे अधिक दक्षता से कार्य कर रहा है। इसमें उत्पादन के लक्ष्य से अधिक उत्पादन गत दो वर्षों से हो रहा है। अब तक हिस्से-दारों को ४ प्रतिशत की दर से ६८ लाख रुपया वितरित हो चुका है।

सिन्दरी उर्वरक कारखाने की १९५७–५८ की जो रिपोर्ट अभी निकली है उससे पता लगता है कि इस वित्तीय वर्ष में कुल लाभ ३,५२,११,२४६ रुपये का हुआ है। इसमें १,९६,११,२३० रुपया मूल्य ह्रास के लिए, १३,१८,१६७ रुपया सरकार को ऋण का व्याज देने के लिए, ३३,३०,७२२ रुपया मशीनों की मरम्मत और नवीनी-करण के लिए, २५,००,००० रुपया कर-कोष में और ८५,००,००० रुपया हिस्सेदारों के बीच लाभांश वितरण के लिए और शेष २,००,००,३८७ रुपया आगामी वर्ष के खाते में रखा गया है। विभिन्न राज्यों को इस वर्ष ३,२९,८२९ टन उर्वरक भेजा गया है।

सिन्दरी कारखाने के विस्तार की योजना बनी है। इसका उत्पादन ६० प्रति-शत बढ़ाया जा रहा है। इसके विस्तार की योजना में ११ करोड़ रुपया लगने का अनुमान है। इसमें और दो किस्म के उर्वरक तैयार होंगे। ये उर्वरक होंगे यूरिया और अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट। ये दोनों ही अधिक सान्द्र उर्वरक हैं, यूरिया में ४५ प्रतिशत और अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट में २६ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है जब कि अमोनियम सल्फेट में केवल २० प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। यूरिया का उत्पादन ७० टन प्रतिदिन और अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट का उत्पादन ४०० टन प्रतिदिन होगा। विकास के कार्य में पर्याप्त प्रगति हुई है। संयन्त्र-बाहर से मँगाये

जा रहे हैं। आशा की जाती है कि मशीनें १९५९ तक चालू हो जायँगी। इस योजना के चालू हो जाने से २४,००० टन यूरिया और १,४८,००० टन अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट का वार्षिक उत्पादन होगा।

इस कारखाने में उर्वरक के उत्पादन के साथ-साथ इंजीनियरों और अपरेन्टिसों के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध किया गया है। अनेक इंजीनियरों और अपरेन्टिसों को अब तक प्रशिक्षण मिल चुका है। भारत सरकार से वृत्ति पानेवाले और प्राइवेट कारखानों से भेजे अनेक व्यक्तियों का प्रशिक्षण यहाँ हो रहा है। हिन्दुस्तान इस्पात, रूरकेला और नंगल उर्वरक केमिकल्स के प्रशिक्षार्थियों को भी प्रशिक्षण देने का प्रबन्ध है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में जो उर्वरक के कारखाने भारत में खुलेंगे उन कारखानों के टेक्नीशियनों का भी यहाँ प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

१९५७–५८ में इस कारखाने में ७० इंजीनियरिंग ग्रेजुएटों को और ६३ व्यवसाय नवसिखुओं को प्रशिक्षण मिला था। इसके अतिरिक्त नंगल उर्वरक के ६० इंजीनियरिंग ग्रेजुएटों और हिन्दुस्तान स्टील के ४३ नवसिखुओं को प्रशिक्षण दिया गया है।

कारखाने के आसपास एक सुन्दर आधुनिक नगर बस गया है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोरम है। स्थान पहाड़ियों से घिरा हुआ है। चारों ओर बड़े-बड़े पेड़ लग गये हैं। मकानों के आसपास सुन्दर बाग-बगीचे लगे हैं। सड़कों के दोनों ओर बिजली के खंभे हैं। साँझ को चारों तरफ चहल-पहल दिखलाई पड़ती है। आगन्तुकों के लिए स्थान भव्य देख पड़ता है। कारखाने में कार्य करनेवालों की संख्या आज ८१०१ है जिनमें ५३५१ व्यक्ति प्राविधिक और २७५० व्यक्ति अप्राविधिक हैं। उनके आराम और सुविधा के लिए सब प्रकार के प्रबन्ध हैं। क्वार्टरों की संख्या ४ हजार से अधिक है। कई किस्म के क्वार्टर बने हुए हैं। इन मकानों के बनाने में लगभग ५ करोड़ रुपया लगा है। कार्यकर्ताओं के लिए एक सुसज्जित आधुनिक अस्पताल है जिसमें १०० रोगी रह सकते हैं। अस्पताल में सब प्रकार की औषधियाँ रहती हैं और कर्मचारियों को दवाएँ मुफ्त मिलती हैं। शिक्षा के लिए छः स्कूल हैं। लड़कों के लिए एक उच्च विद्यालय है, लड़कियों के लिए भी एक उच्च विद्यालय है। इनके सिवा एक मिडिल स्कूल, दो लोअर प्राइमरी स्कूल और एक किण्डर गार्डन स्कूल है। १५० रुपया वेतन पाने वाले कार्यकर्त्ताओं के बालकों को शिक्षा मैट्रिक्युलेशन तक मुफ्त मिलती है।

नगर के मध्य में एक 'कल्याण केन्द्र' है। नगर के शहरपुरा के एक सुन्दर भव्य भवन में यह स्थित है जहाँ कारखाने के अधिकांश कार्यकर्ता निवास करते हैं। कल्याण
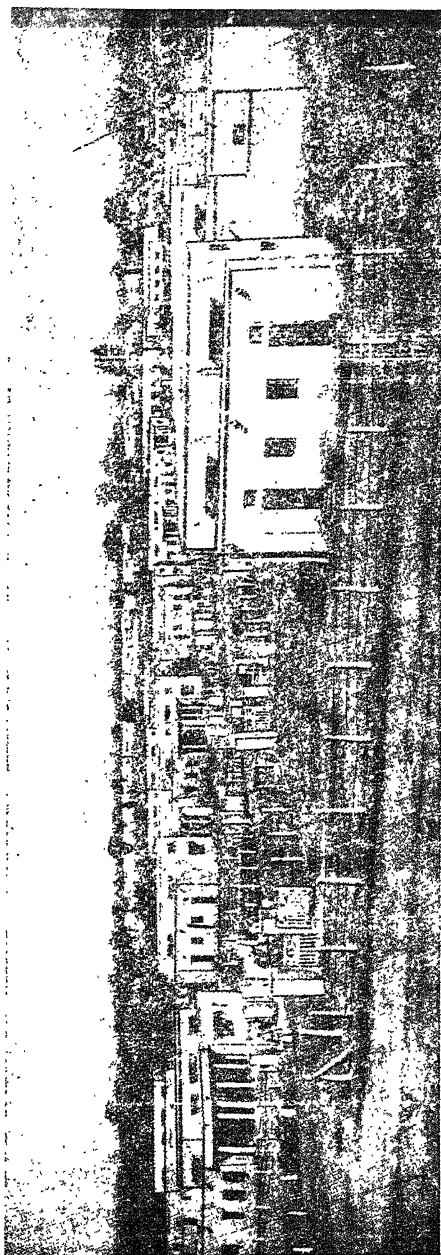
चित्र १०—सिन्दरी नगर का एक दृश्य

केन्द्र के निर्माण में १·८७ लाख रुपया लगा है। यहाँ खेल-कूद का, वाह्य और आभ्यन्तर दोनों खेलों का, जिमनास्टिक आदि का प्रबन्ध है। खेल के अनेक मैदान हैं जिनमें हॉकी, फुटबाल, टेनिस, बैडमिंटन आदि खेले जाते हैं। बैडमिंटन सिखाने के लिए भारत सरकार की ओर से प्रशिक्षक नियुक्त हैं। कल्याण केन्द्र की तीन शाखाएँ नगर के विभिन्न भागों में स्थित हैं। एक अच्छा पुस्तकालय भी है जिसमें अनेक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र, हिन्दी, अंग्रेज़ी और बंगला के आते हैं। इसके निकट में ही एक नाटक-गृह है जिसमें आधुनिक रंगमंच और रंगशालाएँ हैं जिनके निर्माण में ४० हजार रुपया लगा है।

सिन्दरी स्पोर्ट्स एसोसियेशन नामक संस्था खेल-कूद देखती है। राजेन्द्र विद्यापीठ, विनोद केन्द्र, सार्वजनिक पुस्तकालय, बाल कल्याण, जच्चा केन्द्र आदि अन्य कल्याणकारी संस्थाएँ हैं।

कारखाने के विकास के साथ-साथ नगर का भी विकास दिन दिन हो रहा है। नये नये भवन और सड़कें बन रही हैं।

कारखाने में अमोनियम सल्फेट के बनने से इसका मूल्य गिर गया है। दाम घट जाने से इसकी माँग बढ़ रही है। अधिकाधिक किसान इसका उपयोग करने में अब समर्थ हैं। इससे खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि हुई है और अधिक वृद्धि होने की आशा है। बाहर से अनाज मँगाने में जो रुपया आज खर्च हो रहा है उस खर्च में अवश्य ही कमी होगी। विदेशी मुद्रा की बचत से उद्योग-धन्धों के सामान मँगाने में सहूलियत होगी।

कारखाने का इतिहास

संसार में बीसवीं शताब्दी का दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था। भारत में ब्रिटिश आधिपत्य को नष्ट कर स्वतंत्रता प्राप्त करने का संघर्ष चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। उसी समय सन् १९४३ में बंगाल प्रान्त में भीषण अकाल पड़ा। लाखों मनुष्य आहार के अभाव में मक्खियों की भाँति मरने लगे। कुछ लोगों का अनुमान है कि इस भीषण दुर्भिक्ष में बंगाल में लगभग बत्तीस लाख व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी। इस अकाल का कुछ कारण तो प्राकृतिक था। पर बहुत कुछ कारण कृत्रिम, मनुष्य का बनाया हुआ था। इस दुर्भिक्ष ने सारे भारत को स्तब्ध कर दिया। भारत के उस समय के शासक, ब्रिटिश सरकार का ध्यान भी इस घटना की ओर आकर्षित हुआ और इसके कारणों को ढूँढ निकालने का प्रयास शुरू हुआ।

उस समय पहले-पहल जनता को मालूम हुआ कि भारत में अनाज की कमी है और इतना अनाज नहीं पैदा होता कि भारत के सब लोगों को यहाँ के उत्पन्न खाद्यान्न

से भरपेट भोजन मिल सके। बाहर से खाद्यान्न मँगाना पड़ता है। सन् १९५८–५९ में भारत सरकार ने २० लाख टन गेहूँ और ५ लाख टन चावल मँगाने का प्रबन्ध किया है। २० लाख टन गेहूँ का मूल्य ७७ करोड़ रुपया कूता गया है। कमी का एक कारण यह भी है कि भारत की आवादी वड़ी तेजी से, प्रतिवर्ष प्राय: ५० लाख की गति से बढ़ रही है। दूसरा कारण यह है कि खाद्यान्न की उपज धीरे-धीरे कम होती जा रही है। हजारों वर्षों से उसी खेत में अन्न उपजाते-उपजाते मिट्टी में पौधों के पोषण-तत्त्व की कमी हो गयी है। मिट्टी से जितना पदार्थ अनाज के रूप में निकल रहा है उतना फिर मिट्टी में डाला नहीं जा रहा है। थोड़ी-बहुत जो कुछ खाद डाली जाती है वह पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होती। संसार के अन्य देशों के प्रति एकड़ अन्न-उत्पादन की तुलना में भारत में प्रति एकड़ वहुत कम अन्न का उत्पादन हो रहा है। उत्पादन के आँकड़े इस प्रकार हैं—

प्रति एकड़ गेहूँ का औसत उत्पादन		प्रति एकड़ धान का औसत उत्पादन	
मिस्र	१९१८ पौंड	जापान	२३५२ पौंड
जापान	१७१३ ,,	मिस्र	२५९८ ,,
आस्ट्रेलिया	९०९ ,,	चीन	१५३४ ,,
कनाडा	९७९ ,,	इटली	२४४२ ,,
अमेरिका	१०७९ ,,	अमेरिका	१६५७ ,,
चीन	८९८ ,,	वरमा	१२१६ ,,
भारत	७०० ,,	पाकिस्तान	८१७ ,,
		भारत	७३८ ,,

अतएव यह महसूस किया गया कि धरती की उपजाऊ शक्ति वढ़ाये बिना अकाल रोका नहीं जा सकता। उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिए खेतों में खाद और उर्वरक का उपयोग पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए। तव तक भारत में उर्वरक तैयार करने का कोई वड़ा कारखाना नहीं था। जो कुछ उर्वरक भारत में प्रयुक्त होता था वह केवल ईख और चाय की खेती के ही लायक होता था। उसका अधिकांश देश से बाहर, अमेरिका, कनाडा और जर्मनी से आता था। बाहर से लाने में खर्च पड़ने के कारण ऐसा उर्वरक महँगा पड़ता था और भारत के गरीब किसान महँगे उर्वरक का उपयोग करने में असमर्थ थे। जब तक भारत में उर्वरक तैयार करने का कारखाना नहीं खुलेगा तब तक सस्ता और पर्याप्त उर्वरक प्राप्त करना कठिन होगा; ऐसा

निश्चय हो जाने पर उर्वरक कारखाने खोलने का विचार-विमर्श कर एक योजना बनाने के लिए भारत सरकार ने विशेषज्ञों का एक आयोग नियुक्त किया।

इस आयोग के सब सदस्य अपने अपने विषय के विशेषज्ञ थे। इसके अध्यक्ष इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज़ के एक जी० एस० गोविंग (Gowing) थे। इसी कम्पनी के एक दूसरे सदस्य जे० जी० रिग (Rigg) थे। एक तीसरे सदस्य इंग्लैण्ड के पावर गैस कार्पोरेशन लिमिटेड के टी० ए० रिपले (Ripley) और अन्य दो और सदस्य थे।

आयोग ने उर्वरक-निर्माण की समस्या का पूर्ण रूप से अध्ययन किया। अमेरिका और यूरोप के उर्वरक-निर्माण के सब कारखानों का निरीक्षण उसने किया। भारत में आकर भिन्न-भिन्न स्थानों का निरीक्षण किया और अन्त में यह निर्णय दिया कि "अमोनियम सल्फेट के निर्माण का कारखाना भारत में खुलना चाहिए।"

ऐसे कारखाने के लिए उन्होंने धनबाद ज़िले में धनबाद से १५ मील दूर सिन्दरी स्थान को चुना। यह स्थान ग्रैण्ड कार्ड रेलवे लाइन पर स्थित धनबाद स्टेशन से १५ मील दक्खिन में स्थित है। यह कोयले की खानों के निकट है और दामोदर घाटी योजना के अनुसार जो नदी में बाँध बाँधा गया है उसके निकट में भी पड़ता है। सस्ती शक्ति प्राप्त करने की दृष्टि से तो यह स्थान उपयुक्त है पर कच्चे माल प्राप्त करने की दृष्टि से उतना उपयुक्त नहीं है। इस कारखाने में सबसे अधिक कच्चा माल जिपसम लगता है। निकट में जिपसम कहीं नहीं मिलता, इसे सुदूर राजस्थान अथवा सौराष्ट्र से मँगाना पड़ता है।

आयोग की सिफारिश के अनुसार भारत सरकार ने सिन्दरी में ही उर्वरक का कारखाना खोलने का निश्चय किया और उसके फलस्वरूप एशिया का सबसे बड़ा उर्वरक का कारखाना वहाँ आज चल रहा है और वहाँ उर्वरक तैयार करने का जो लक्ष्य रखा गया था उससे अधिक अमोनियम सल्फेट तैयार हो रहा है।

सिन्दरी कारखाने के निर्माण में दो व्यक्तियों का प्रमुख हाथ रहा है। एक इस कारखाने के प्राविधिक सलाहकार ब्राइगेडियर एम० एच० कोक्स, सी० आई० ई० का, दूसरा इसके प्रथम जेनरल मैनेजर श्री वी० सी० मुकर्जी, आई० सी० एस० का।

अमोनियम सल्फेट के अवयव

अमोनियम सल्फेट अमोनिया और सल्फेट से बनता है। अमोनिया में नाइट्रोजन और हाइड्रोजन रहते हैं, सल्फेट में गन्धक और ऑक्सिजन। इन्हें प्राप्त करने के साधन निम्नलिखित हैं—

नाइट्रोजन—वायु में नाइट्रोजन प्रचुरता से पाया जाता है। वायु के पाँच भागों में प्रायः चार भाग नाइट्रोजन का रहता है। अल्प मात्रा में नाइट्रोजन कोयला और लकड़ी में रहता है। कोयले या लकड़ी का जब भंजक आसवन होता है तब उसका नाइट्रोजन अमोनिया के रूप में परिणत होकर गैसों में निकलता है। गैसों से यह सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा अमोनियम सल्फेट के रूप में प्राप्त होता है। अनेक वर्षों तक अमोनियम सल्फेट प्राप्त करने का यही स्रोत था। आज भी कुछ अमोनियम सल्फेट कोयले के भंजक आसवन से प्राप्त होता है। पर आज इसकी माँग इतनी बढ़ गयी है कि इस स्रोत से प्राप्त अमोनियम सल्फेट पर्याप्त नहीं है। इसे प्राप्त करने के अन्य साधनों की खोज होने लगी और उसके फलस्वरूप रसायनज्ञों द्वारा एक ऐसी विधि का आविष्कार हुआ जिससे वायु के नाइट्रोजन और जल के हाइड्रोजन से अमोनिया प्राप्त होने लगा है। इस विधि के आविष्कारक एक जर्मन रसायनज्ञ 'हेवर' हैं और इस कारण इस विधि को 'हेवर की विधि' कहते हैं। इस विधि में अनेक सुधार होकर अब ऐसे यन्त्र बने हैं जिनमें नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के बीच सरलता से प्रतिक्रिया होकर अमोनिया प्राप्त हो जाता है। अमोनिया कैसे बनता है इसका वर्णन आगे के प्रकरणों में होगा।

हाइड्रोजन—अमोनिया के लिए असंयुक्त हाइड्रोजन की आवश्यकता पड़ती है। असंयुक्त हाइड्रोजन बड़ी अल्प मात्रा में वायु में पाया जाता है। पर हाइड्रोजन के अनेक यौगिक जल, अम्ल, क्षार, पेट्रोलियम तेल, पेड़-पौधे आदि में पाये जाते हैं। इनमें सबसे सरल और सस्ता पदार्थ जल है। आजकल जल से ही औद्योगिक हाइड्रोजन तैयार होता है। पेट्रोलियम कूपों से एक 'प्राकृतिक गैस' प्राप्त होती हैं; उससे भी सस्ता हाइड्रोजन वहाँ प्राप्त हो सकता है जहाँ प्राकृतिक गैस प्राप्य है। अनेक स्थलों में प्राकृतिक गैस से हाइड्रोजन प्राप्त होता है। भारत में जल से ही सस्ता हाइड्रोजन प्राप्त होता है।

जल से हाइड्रोजन प्राप्त करने के अनेक तरीके हैं। विज्ञान का विद्यार्थी इन सब तरीकों से परिचित है। दो ही रीतियाँ ऐसी हैं जिनसे सस्ता हाइड्रोजन प्राप्त हो सकता है। एक वैद्युत-विश्लेषण से और दूसरी उत्तप्त कोयले पर भाप की प्रतिक्रिया से। वैद्युत-विश्लेषण रीति वहाँ ही उपयुक्त हो सकती है जहाँ बिजली सस्ती हो। सबसे सस्ती बिजली जल-विद्युत से प्राप्त होती है। जल-विद्युत का उपयोग भारत में जल्दी ही होनेवाला है। अनेक नदियों पर बाँध बाँधकर कृत्रिम जलप्रपात द्वारा उनसे बिजली प्राप्त करने का प्रयत्न हो रहा है। जब ये योजनाएँ पूरी हो जायँगी तब आशा है कि बहुत सस्ती बिजली भारत में प्राप्त हो सकेगी। अभी तक बिजली

इतनी सस्ती नहीं है कि उसका उपयोग सस्ता हाइड्रोजन तैयार करने में किया जा सके।

सिन्दरी में सस्ता हाइड्रोजन दूसरी विधि से ही तैयार होता है। उत्तप्त कोयले पर भाप को पारित करने से अर्ध-जल गैस प्राप्त होती है। इस अर्ध-गैस से ही हाइड्रोजन प्राप्त होता है जो अमोनिया के निर्माण में उपयुक्त होता है, साथ-साथ कार्बन डाइ-आक्साइड भी प्राप्त होता है जो अमोनिया को अमोनियम कार्बोनेट में परिणत करने में काम आता है।

गन्धक—भारत में असंयुक्त गन्धक नहीं पाया जाता। गन्धक के अम्लों के तैयार करने में जो गन्धक प्रयुक्त होता है वह सबका सब बाहर से, कुछ इटली और कुछ अमेरिका से आता है। लोहे के सल्फाइड, लौहमाक्षिक, से भी सल्फर डाइ-आक्साइड प्राप्त होकर अम्ल के निर्माण में प्रयुक्त हो सकता है। लौहमाक्षिक भारत के अनेक स्थलों में पाया गया है पर अभी उससे सलफ्यूरिक अम्ल तैयार करने का यहाँ सफल प्रयास नहीं हुआ है। गन्धक से प्राप्त सलफ्यूरिक अम्ल महँगा पड़ता है। यदि ऐसे सलफ्यूरिक अम्ल का उपयोग अमोनियम सल्फेट तैयार करने में किया जाय तो ऐसा उर्वरक महँगा पड़ेगा। अतः सलफ्यूरिक अम्ल का उपयोग अमोनियम सल्फेट के निर्माण में नहीं किया जाता।

अनेक सल्फेट भारत में पाये जाते हैं। इन सल्फेटों का उपयोग भी अमोनियम सल्फेट के निर्माण में हो सकता है। ऐसे खनिज सल्फेटों में एक जिपसम है। सिन्दरी कारखाने में जिपसम से ही सल्फेट प्राप्त होकर अमोनियम सल्फेट के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

आक्सिजन—अमोनियम सल्फेट में नाइट्रोजन, हाइड्रोजन और गन्धक के अतिरिक्त आक्सिजन भी रहता है। यह आक्सिजन जिपसम से प्राप्त होता है। इसके लिए अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं है।

सिन्दरी कारखाने का कच्चा माल

प्रतिवर्ष ३५०,००० टन अमोनियम सल्फेट तैयार करने में विभिन्न पदार्थों की निम्नलिखित औसत मात्रा लगती है—

जिपसम

सिन्दरी के कारखाने में प्रतिवर्ष ६ लाख टन ऐसे जिपसम की आवश्यकता पड़ती है जिसकी न्यूनतम शुद्धता ८७ प्रतिशत हो। भारत में जिपसम प्रचुरता से

इन निक्षेपों में सौराष्ट्र और मद्रास के निक्षेप सिन्दरी से बहुत दूर हैं। उनके परिवहन में खर्च अधिक पड़ेगा। अतः उनका उपयोग आर्थिक दृष्टि से हितकर नहीं हैं। हिमांचल प्रदेश का निक्षेप उत्कृष्ट कोटि का नहीं है। इसकी मात्रा भी कम ही है और इसकी शुद्धता भी बड़ी निम्न कोटि की है। इस प्रकार केवल राजस्थान का जिपसम ही सिन्दरी कारखाने के लिए प्राप्य है। पहले-पहल जब सिन्दरी कारखाने का निर्माण शुरू हुआ था तब कारखाने के लिए पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश से जिपसम लाने की योजना थी, पर ये निक्षेप पाकिस्तान में पड़ जाने से अब सिन्दरी के लिए प्राप्य नहीं हैं। आजकल बीकानेर से प्राप्त जिपसम का ही उपयोग सिन्दरी के कारखाने में होता है।

कोयला

सिन्दरी का कारखाना झरिया कोयला-क्षेत्रों के समीप में स्थित है। अतः कोयले की प्राप्ति की दृष्टि से उसकी स्थिति बड़ी अच्छी है। बिजली उत्पन्न करने और गरम करने के लिए निम्नकोटि का, कोक न बननेवाला, कोयला इस्तेमाल होता है। यह कोयला निम्न वाष्पशील बिटुमिनी किस्म का है। इस कोयले के प्राथमिक विश्लेषणांक निम्नांकित हैं—

जल	१ से १·४ प्रतिशत
वाष्पशील अंश	१९·० से १८·०५ प्रतिशत
स्थायी कार्बन	६२·४ से ६३·५५ प्रतिशत
राख	१८·५ से १८·४ प्रतिशत
राख द्रवणांक	११८०° से १२६५° सें०
औसत कलरीमान	१२,४०० से १२,१००बि०टि०यू० प्रति पौण्ड

पथरडीहा और दोबरी से भी कोयला प्राप्त हो सकता है। ऐसे कोयले का विश्लेषणांक निम्नांकित है—

	पथरडीहा—		दोबरी —		
	तिसरा नं० ८ प्रतिशत	नं० ९ प्रतिशत	तिसरा नं० १ प्रतिशत	नं० ५ प्रतिशत	नं० ७ प्रतिशत
जल	२·२	१·४	१·५	१·०	१·०
वाष्पशील अंश	२१·६	२३·६	१७·१	१८·५	२०·२
स्थायी कार्बन	४८·४	५१·६	४६·०	५१·५	२९·०
राख	२७·८	२३·४	३५·४	२९·०	२७·२
औसत कलरीमान	१०,१३०	११,२२०	१८,९५०	१०,३३०	१०,६३०

सामान्य बिजली के लिए प्रतिदिन १००० टन ऐसे कोयले की ज़रूरत पड़ती है जिसकी राख-मात्रा १८·५ प्रतिशत हो। अधिक राख रहने से अधिक कोयले की आवश्यकता पड़ती है। बिजली इतनी होनी चाहिए कि उससे कारखाने की आवश्यकता की पूर्ति के साथ साथ वहाँ के कर्मचारियों के वासस्थान की आवश्यकता की भी पूर्ति हो जाय।

कोक

शुरू-शुरू में कारखाने के लिए बाहर से कुल्टी और हीरापुर की इण्डियन आयरन और स्टील कम्पनी के कोक चूल्हे से प्राप्त कोक आता था, पर अब आवश्यक कोक कारखाने में ही तैयार होता है। प्रतिदिन लगभग ६०० टन कोक लगता है। इतना कोक तैयार करने का 'कोक वोवेन प्लाण्ट' कारखाने में लगा हुआ है। सन् १९५४ के ८ अगस्त से यह संयन्त्र कार्य कर रहा है।

जल

हर कारखाने में जल की ज़रूरत होती है। इस कारखाने के समीप में दामोदर नदी है और उसी से जल प्राप्त करने की योजना थी। पर यह नदी पूरे साल जल से भरी नहीं रहती। गरमी में इसका पानी सूख जाता अथवा बहुत थोड़ा रह जाता है। दामोदर घाटी योजना से जल की कठिनाई अब दूर हो गया है। दामोदर नदी में बाँध बँध जाने के कारण अब नदी सूखती नहीं है और नियमित रूप से पानी मिलता रहता है।

परिवहन सुलभताएँ

सिन्दरी में कारखाना खुलने से एक बड़ी सुविधा यह है कि जिपसम लेकर जो मालगाड़ियाँ आती हैं वे जिपसम को उतारकर खाली नहीं लौटतीं। यहाँ से उन डब्बों में कोयला लदकर बाहर जाता है। यदि भारत के अन्य किसी स्थान में यह कारखाना खुला होता तो ऐसा नहीं हो सकता था। जिपसमवाले डब्बे तो खाली लौटते ही, पर कोयलेवाले डब्बों को भी बाहर से खाली लाना पड़ता। इससे सिन्दरी में रेल के परिवहन का खर्च बहुत कुछ कम हो गया है। एक समय विचार था कि इस कारखाने को आगरा के आसपास खोला जाय पर उपर्युक्त कारण से इस विचार को छोड़ देना पड़ा। आज माल डब्बे सिन्दरी कारखाने तक जाते हैं और वहाँ से उर्वरक लादकर देश के भिन्न-भिन्न भागों को भेजे जाते हैं। बाजार की दृष्टि से सिन्दरी

उपयुक्त स्थान, मध्य स्थान नहीं है, पर यहाँ से रेलगाड़ियाँ हर स्थान को सरलता से आ-जा सकती हैं। अतः कुछ सीमा तक बाजार के दूर रहने से विशेष क्षति नहीं है।

भूमि और मजदूर

सिन्दरी में भूमि बहुत सस्ती मिल गयी है। यह पहाड़ी स्थान है और इसमें खेती नहीं होती थी। पर अब यहाँ की आबादी बहुत बढ़ गयी है। एक सुन्दर नगर बस गया है। समीप में ही एक प्रथम कोटि का इंजीनियरिंग कालेज खुल गया है जिसमें ऊँची से ऊँची शिक्षा विभिन्न प्रकार की इंजीनियरिंग की दी जाती है। इस कालेज में आज हजारों छात्र शिक्षा पा रहे हैं। कालेज की प्रयोगशालाएँ लाखों रुपये की मशीनों से सुसज्जित हैं और पाश्चात्य देशों से शिक्षा-प्राप्त अनेक शिक्षक बड़ी लगन से कार्य कर रहे हैं।

इस कारखाने से कुछ मील की दूरी पर ही भारत की एक सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय प्रयोग-शाला, ईंधन अनुसन्धान प्रयोगशाला स्थित है, जिसमें कई सौ अन्वेषक ईंधन और ईंधन से सम्बन्धित विषयों पर अन्वेषण कर रहे हैं। भारतीय कोयले से पेट्रोलियम तैयार करने के सफल प्रयोग इसी प्रयोगशाला में हुए और हो रहे हैं।

सामान्य मजदूर भी यहाँ सस्ते मिलते हैं। आस-पास में आदिवासियों की बस्ती है जिनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। इस कारखाने के खुलने से उनकी आर्थिक दशा में बहुत कुछ सुधार हुआ है तथा अभी और अधिक सुधार होने की आशा है।

प्रबन्ध

सिन्दरी का कारखाना भारत सरकार के उद्योग-मंत्री के अधीन है। इसके प्रबन्ध के लिए डाइरेक्टरों की एक समिति बनी है जिसके अध्यक्ष की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा होती है। यह समिति भारत सरकार की स्वीकृति से कारखाने की नीति निर्धारित करती है। उसको कार्यान्वित करने के लिए एक मैनेजिंग डाइरेक्टर होते हैं। मैनेजिंग डाइरेक्टर को सलाह देने के लिए टेक्निकल सलाहकार और सेक्रेटरी होते हैं। मैनेजिंग डाइरेक्टर के अधीन जेनेरल सुपरिण्टेण्डेण्ट होते हैं जिनके नीचे निम्नलिखित सुपरिण्टेण्डेण्ट होते हैं—

१. अनुरक्षण (देखभाल) सुपरिण्टेण्डेण्ट (एलेक्ट्रिक और मिकेनिक)
२. पावर प्लैण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट
३. यंत्रोपयोग (Instrumentation) सुपरिण्टेण्डेण्ट
४. उत्पादन (Production) सुपरिण्टेण्डेण्ट

५. प्रशिक्षण (Training) सुपरिण्टेण्डेण्ट

६. प्रधान केमिस्ट (रसायनज्ञ)।

इनके अतिरिक्त एक अनुसन्धान विभाग भी है जिसमें एक प्रधान टेक्नोलौजिस्ट, कुछ टेक्नोलौजिस्ट, कुछ सीनियर रिसर्च असिस्टैण्ट, और कुछ जूनियर रिसर्च असिस्टैण्ट हैं।

अनुरक्षण सुपरिण्टेण्डेण्ट के नीचे ये लोग रहते हैं—

१. जेनेरल फोरमैन

२. फोरमैन

३. सहायक फोरमैन

४. फिटर्स

५. हेल्पर्स (सहायक)

उत्पादन सुपरिण्टेण्डेण्ट के नीचे निम्नलिखित कर्मचारी रहते हैं—

१. प्लैण्ट मैनेजर

२. जैनेरल फोरमैन

३. फोरमैन

४. सहायक फोरमैन

५. चार्जमैन

६. आपरेटर्स (ग्रेड १, ग्रेड २ और ग्रेड ३)

७. सहायक कर्त्ता (ग्रेड १, ग्रेड २ और ग्रेड ३)

८. कुली या दैनिक मजदूर

प्रधान केमिस्ट के नीचे केमिस्ट और सहायक केमिस्ट होते हैं।

इस प्रणाली में आदेश देने का सिलसिला ऊपर से नीचे की ओर है। जो लोग एक संतल पर हैं, जैसे फोरमैन, वे एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। एक फोरमैन दूसरे फोरमैन को आदेश नहीं दे सकता। वह उन्हीं लोगों को आदेश देता है जो उसके अधीन कार्य करते हैं। मैनेजिंग डाइरेक्टर ने कुछ काम सुपरिण्टेण्डेण्ट को सौंप दिया है और सुपरिण्टेण्डेण्ट ने प्लान्ट मैनेजर को उसी भाँति कुछ कार्य सुपुर्द कर दिया है। विशेषज्ञों, जैसे अनुरक्षण सुपरिण्टेण्डेण्ट और प्रधान केमिस्ट का काम केवल सलाह देना है। वे उत्पादन सुपरिण्टेण्डेण्ट के कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते, उत्पादन-विभाग के कार्यकर्ताओं को कोई आदेश नहीं दे सकते। ऊपर के कर्मचारियों को ही अपने नीचे के कार्यकर्ताओं को आदेश देने का अधिकार है।

कारखाने के कार्यकर्ताओं के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गयी हैं।

उनके रहने के लिए क्वार्टर बने हुए हैं। खेलने के लिए स्थान हैं। मनोरंजन के लिए सिनेमा है। रोगियों के लिए सुसज्जित अस्पताल और अनेक डाक्टर हैं। प्रतिदिन व्यवहार के लिए अनेक दूकानें खुली हुई हैं जहाँ सब प्रकार की चीजें प्राप्त होती हैं। बालकों की शिक्षा के लिए स्कूल हैं। उनकी देखभाल के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ मौजूद हैं।

निर्माण के संयन्त्र

सिन्दरी के कारखाने को हम निम्नलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. उत्पादन
२. अनुरक्षण
  (क) वैद्युत
  (ख) यांत्रिक
३. रसायन और अनुसन्धानशाला
४. बिजली उत्पादन (पावर प्लैण्ट)
५. दक्षता विभाग

उत्पादन विभाग के फिर तीन अन्तर्विभाग हैं—

१. गैस संयन्त्र
२. अमोनिया संयन्त्र
३. सल्फेट संयन्त्र

गैस संयन्त्र

गैस संयन्त्र में हाइड्रोजन और नाइट्रोजन बनते तथा उनका शोधन होता है। इस संयन्त्र के चार अन्तर्विभाग हैं—

१. कोक-हस्तन
२. गैस-जनन
३. गन्धक-निष्कासन
४. कार्बन मनाक्साइड रूपान्तरण (Conversion)

कोक-हस्तन

कोयले को चूल्हे में तप्त करने से कोक प्राप्त होता है। ऐसे चूल्हे को 'कोक चूल्हा' या 'कोक वोवेन' कहते हैं। ऐसे चूल्हे से जो कोक प्राप्त होता है उसका औसत संगठन इस प्रकार होता है—

कार्बन	लगभग	७५	प्रतिशत
वाष्पशील अंश	लगभग	१·८	प्रतिशत
जल	लगभग	१·०	प्रतिशत
राख	लगभग	२१	प्रतिशत

कोक-चूल्हे से निकले कोक को रेल वैगन द्वारा यांत्रिक टिप्लर (mechanical tippler) में डालते हैं। टिपलर एक पात्र होता है जिसके उलटने का प्रवन्ध रहता है। टिपलर से कोयला एक चलनी में जाता है जहाँ बड़े-बड़े टुकड़े छँटकर दलित्र (Crusher) में जाते और छोटे-छोटे टुकड़े दो चलनियों में छनकर अलग-अलग हो जाते हैं। दला हुआ कोयला और छोटे-छोटे टुकड़े फिर चलनी में छनते हैं। वहुत महीन चूरे को 'ब्रिज' कहते हैं। यह 'ब्रीज कोष्ठक' (breeze bunker) में इकट्ठा होता है। कोयले के आवश्यक विस्तार के टुकड़े अर्ध-गैस बनने के लिए अर्ध-जल गैस संयन्त्र में लाये जाते हैं। यदि दलित्र से लौटे कोक के तत्काल उपयोग की आवश्यकता न हो तो वाहक (conveyor) द्वारा वे संग्रह के लिए 'कोक भंडार' में भेज दिये जाते हैं। वाहक 'वायुयान टिपलर' (aeroplane tippler) होते हैं। ये दुतरफी कार्य कर सकते हैं— भंडार से कोक ला सकते हैं अथवा भंडार से दलित्र में कोक डाल सकते हैं। इन वाहकों के मोटर भी दुतरफी होते हैं। पट्टक (belt) में ग्रामदन्ति (clutch gear) का प्रबन्ध रहता है जिससे पट्टक की दशा आवश्यकतानुसार बदली जा सकती है।

इस विभाग में महत्त्व के साज निम्नलिखित हैं—

१. वैगन टिपलर और प्रदाय अधोवाप (feed hopper)

२. दलित्र तक पट्टकवाहन तन्त्र

३. कोक दलित्र

सिन्दरी में जो टिपलर इस्तेमाल होता है वह इस कारखाने के लिए विशेष रूप से बनाया गया है। इसके बनानेवाले हैं इंग्लैण्ड के ब्रिस्टल के मेसर्स स्ट्रैचेन और हेनशाव (Messers Strachan and Henshaw of Bristol)। कारखाने में तीन ऐसे टिपलर हैं, एक गैस प्लैण्ट में, एक सल्फेट प्लैण्ट में और एक बिजली घर में। ये क्रमशः कोक, जिपसम और कोयले को ढोकर ले जाते हैं। तीनों टिपलर एक साथ ही बने थे।

ये टिपलर प्रति घण्टा ८ से १० वैगनों का सामान ढो सकते हैं। एक वैगन में ३२ टन सामान अँटता है। जिस मार्ग में टिपलर चलता है उस मार्ग का उतार १·३७० होता है। एक टिपलर के खाली करने में लगभग ५ मिनट का समय लगता है।

इसके संचालन के लिए तीन मोटरें रहती हैं। अधोवाप इस्पात का बना होता है और सीमेंट से जड़ा रहता है। इसमें ५० टन सामान अँट सकता है। वैगन के लाने के लिए कूर्पर (winch) होता है। कूर्पर १६ वैगनों को खींच सकता है। कूर्पर की रस्सी ५०० फुट लम्बी और एक इंच चौड़ी होती है। मोटर का अश्वबल ५०, अम्पीयर ७० और परिभ्रमण प्रति मिनट ७३२ बार होता है।

कोक को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने के लिए पट्टकवाहन तन्त्र होता है।

दलित्र में आने के पहले कोक एक चलनी में छाना जाता है। इसमें ३ इंच से छोटे टुकड़े छन जाते और बड़े टुकड़े दलित्र में चले जाते हैं। छने टुकड़ों को फिर चलनी १ और चलनी २ में ले जाते हैं जहाँ चूरा छन कर 'चूरा कोष्ठक' में इकट्ठा होता है। दलित्र दो रहते हैं। वेल्लन दलित्र (Roll crusher) दाँतवाले होते हैं जिनमें कर्त्तक मैंगनीज़ इस्पात के बने होते हैं और प्रति घण्टे ५० टन कोक को दल सकते हैं। इसमें कोक दलकर १२ इंच से ३ इंच के टुकड़े हो जाते हैं। अधोवाप की धारिता १$\frac{१}{४}$ टन की होती है।

गैस-जनन

जल-गैस का उत्पादन उत्तम कोक पर भाप की प्रतिक्रिया से होता है। कोक को १०००° से० के आसपास उत्तप्त कर उस पर भाप को पारित करते हैं। निम्नलिखित समीकरणों के अनुसार प्रतिक्रियाएँ होती हैं——

१. $C+H_2O=CO+H_2$

२. $C+2H_2O=CO_2+2H_2$

३. $CO_2+C=2CO$

४. $C+O_2+4N_2=CO_2+4N_2$
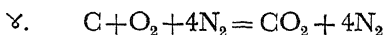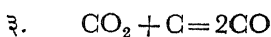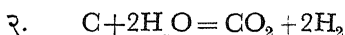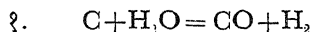
इनमें १ और २ प्रतिक्रियाओं में उष्मा का अवशोषण होता है। ये प्रतिक्रियाएँ प्रारम्भ में होती हैं। प्रतिक्रिया ३ भी उष्मा-शोषक है। यह प्रतिक्रिया बाद में शुरू होती है। प्रतिक्रिया ४ में उष्मा का क्षेपण होता है। इस प्रतिक्रिया से उत्पन्न उष्मा ही प्रथम तीन प्रतिक्रियाओं को उष्मा प्रदान करती है।

नियतावकाश पर पात्र में कोक डालते हैं। वायु-झर्झरी द्वारा वायु प्रविष्ट करायी जाती है। प्रतिक्रिया ४ के कारण ईंधन-तल का ताप ऊपर उठता है। जब कोक ताप-दीप्त हो जाता है तब उस पर भाप को पारित करते हैं। ताप-दीप्त कोक पर भाप की प्रतिक्रिया से जल-गैस बनती है। जल-गैस का बनना उष्मा-शोषक प्रतिक्रिया है। इससे ईंधन-तल का ताप गिर जाता है। अतः बारी-बारी से वायु और भाप को प्रविष्ट

कराते हैं, ताकि ताप बहुत गिरे नहीं और यथासम्भव स्थायी रहे। यहाँ जो समय लगता है उसे साधारणतया दो भागों में विभक्त करते हैं। एक भाग में भाप नीचे से प्रवेश कर ऊपर उठती है और दूसरे भाग में भाप ऊपर से प्रवेश कर पेंदे में आती है। पहले भाग में भाप नीचे से प्रवेश करती और गैस ऊपर से निकलती और दूसरे भाग में भाप ऊपर से प्रविष्ट होती और गैस नीचे से निकलती है। इस प्रकार पहले और दूसरे भागों में क्रम बदलता रहता है। जब वायु प्रविष्ट होती है तब गैसें उज्ज्वालक (igniter) होकर जाती और उज्ज्वालक भाप के पूर्व-तापन का कार्य करता है।

गैस-निर्माण के लिए नाइट्रोजन और हाइड्रोजन का अनुपात १ : ३ रहना चाहिए। यह अनुपात भाप के साथ-साथ वायु के खींचने से प्राप्त होता है। गैसों को घर्ष-धावन से धोते और ठंडा करते हैं। धोनेवाले जल में कुछ सोडा-ऐश मिला रहता है। धावक से निकलने के बाद गैस गैस-धारक में संचित होती है। धारक से यह कार्बन मनाक्साइड रूपान्तरण-संयन्त्र में जाती है।

गैस-निर्माण चक्र ३ से ४ मिनट का होता है। इतने ही समय में इसमें निम्न-लिखित काल (periods) होते हैं:—

धमनकाल (Blow period)—इस काल में भाप-कपाट (steam valve) बन्द रहता है। प्राथमिक वायुकपाट खुला रहता है और जनित्र (generator) के निचले भाग से वायु प्रविष्ट करायी जाती है, ताकि कोक का ताप ऊपर उठकर ऐसे ताप पर पहुँच जाय जब उससे गैस बनने लगे। धमन गैस की उष्मा उत्तापक द्वारा निकाल ली जाती है। प्राथमिक वायु-गति का नियंत्रण नियंत्रक कपाट द्वारा होता है। ईंधन-कक्ष के ऊपरी भाग की धमन-गति धीमी होने से और ताप के ऊँचा होने से धमन-गैस में कार्बन मनाक्साइड अधिक रहता और ताप के नीचा रहने से कार्बन मनाक्साइड कम, तथा कार्बन डाइ-आक्साइड अधिक रहता है। यदि धमन बहुत अधिक हो तो ईंधन-कक्ष का अति तापन हो सकता है जिससे झाँवाँ बनने (clinkering) की कठिनता पैदा हो सकती है। इस काल में चय-कपाट (stack valve) खुला रहता है और गैसें वायुमण्डल में खुली रहती हैं। ज्यों ही चय-कपाट बन्द होता है, भाप-कपाट खुल जाता है।

धमन दौर (Blow run)—धमन काल के पश्चात् जब ईंधन का ताप महत्तम होता है, शीघ्र ही 'धमन दौर' शुरू हो जाती है। वात-गैस (blast gas) में कार्बन मनाक्साइड की मात्रा महत्तम रहती है। इस दौर में उत्पादक वात-गैस और भाप के मिश्रण मशीन में जाते और वहाँ से धावन-बक्स में तथा फिर वहां से धारक (holder) में जाते हैं। इस दौर में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है।

अपदौर काल (uprun period)—जनित्र के पेंदे में भाप प्रविष्ट होती और
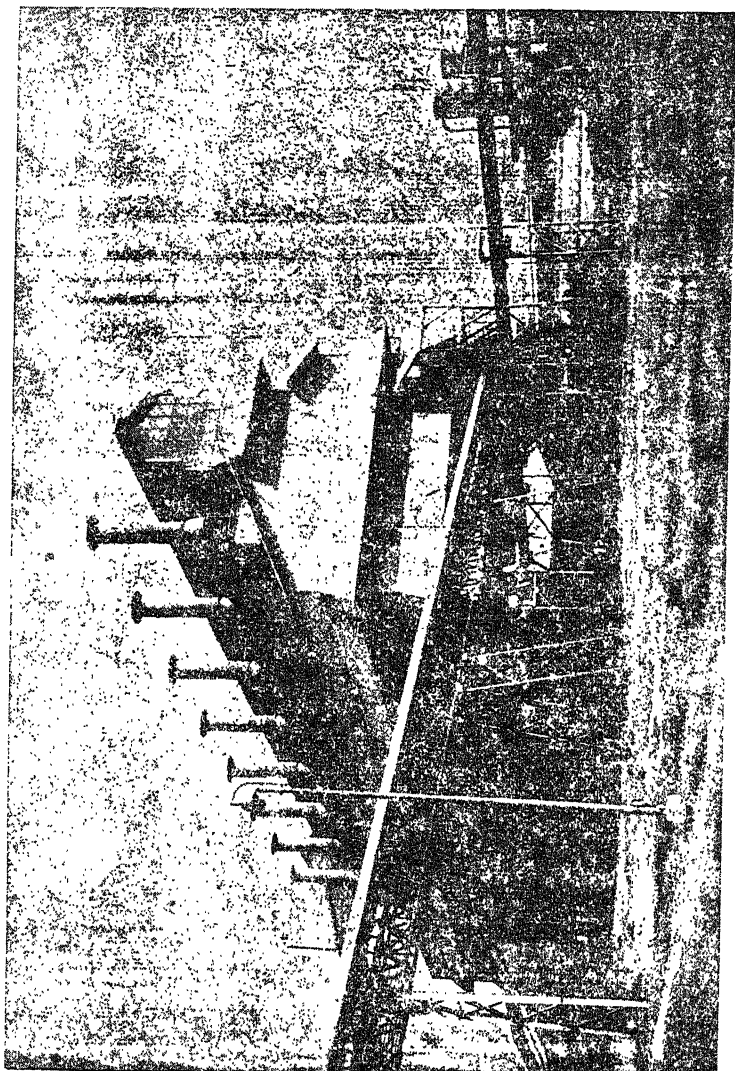
चित्र १२—सिन्दरी कारखाने के गैस संयन्त्र का बाह्य दृश्य

रक्त-तप्त कोक में से पारित हो जल-गैस बनती है। इस प्रकार से बनी गैस ऊपर उठ कर धावन-बक्स में जाती है। इस काल में और वायु प्रविष्ट करायी जाती है

ताकि नाइट्रोजन और हाइड्रोजन का अनुपात ठीक ठीक हो जाय। ऐसा होने के लिए वायु-प्रवेश का नियंत्रण उचित ढंग से होता है।

अवदौर काल (down-run period)—इस काल में कपाट बदल दिया जाता है जिससे भाप ऊपर से आती और गैसें नीचे से निकलती हैं।

अन्तिम अपदौर काल (final uprun period)—इस काल में कपाट को फिर बदल देते हैं। अवदौर बन्द हो जाती और अपदौर शुरू हो जाती है। इस परिवर्तन से ईंधन-संतल का ताप एक सा रखा जा सकता है। जनित्र के पेंदे से जल-गैस निकल जाती है।

दौर परिशोधन (run purging)—अन्तिम अपदौर काल में जनित्र में जल-गैस भरी रहती है। ऐसी स्थिति में यदि धमन शुरू किया गया तो सब जल-गैस वायु में निकलकर नष्ट हो जायंगी। इस क्षति को बचाने के लिए दौर का परिशोधन किया जाता है। इस काल में प्राथमिक वायुकपाट तभी खुलता है जब भाप-कपाट बन्द होता है। पर चय-कपाट अब भी कुछ देर के लिए खुला रहता है। इससे धमन-गैस जल-गैस को विस्थापित कर देती है।

सज्जा (equipments)

बराबर चलने वाले (चक्रीय) कोक भारक (charger)—भारक आठ हैं। उनमें ऊपर से कोक डाला जाता है। भारक से कोक जनित्र में जाता है। एक भारक में ३७५ से ६०० पौण्ड कोक डाला जा सकता है।

गैस जनित्र—जनित्र आठ हैं। सात कार्य करते हैं और एक खाली रहता है। जनित्र इस्पात का बना होता है। इसके कई अंग होते हैं—(१) जल निचोलित वाष्पित्र, (२) शीर्ष निचोल, (३) जाली चालक (grate drive), (४) संरक्षण कपाट, (५) दो, नर-छिद्र; एक शीर्ष पर और दूसरा पार्श्व में, (६) राख बक्स, (७) 'पोकर' छिद्र (poke holes) और (८) जल-तल निर्देशक। इन अंगों के विभिन्न प्रकार्य हैं।

वाष्पित्र में गरम जल आता है। दो मार्गों से जल प्रवेश करता है, एक मार्ग आत्म-चालित है और दूसरा हस्त-चालित। यदि किसी कारण आत्म-चालित मार्ग अवरुद्ध हो जाय तो हस्त-चालित से पानी दिया जाता है।

राख-बक्स में राख इकट्ठी होती है। राख के साथ कुछ झाँवाँ (clinker) और कोक भी मिला रहता है। राख बेच दी जाती है, कोक अलग कर लिया जाता है। प्रति मास लगभग ४०० टन कोक भी राख के साथ निकलता है। कम से कम झाँवाँ बने इसकी कोशिश की जाती है। ऊँचे ताप के कारण राख के द्रवण से झाँवाँ

बनता है। झाँवाँ बनना अच्छा नहीं हैं। कोशिश की जाती हैं कि कम से कम झाँवाँ बने।

वायु धौंकनी (air blowers)—धौंकनी चार रहती हैं। उनमें दो प्राथमिक धौंकनी और दो गौण धौंकनी होती हैं। प्राथमिक धौंकनी से प्रति मिनट ५०,००० घनफुट वायु और गौण धौंकनी से प्रति मिनट १,३०० घनफुट वायु प्रविष्ट होती है। गौण धौंकनी तभी कार्य करती है जब CO की प्रतिशतता अधिक रहती है।

उज्ज्वालक (igniter)—उज्ज्वालक ईंटों का बना होता है। इसमें अनेक संरक्षक युक्तियां होती हैं जिनसे संयन्त्र में कहीं कुछ भी खराबी हो तो उसकी सूचना इनसे मिल जाती है।

गैस संशोधन—कोक और भाप से जो गैसें बनती हैं उनमें हाइड्रोजन सल्फाइड और अन्य सल्फाइड रहते हैं। ऐसी गैसों में कुछ धूलें भी रहती हैं। इन्हें दूर करने के लिए गैसें जल-संमुद्रण बक्स से होकर पारित होती हैं। ऐसे आठ बक्स होते हैं जिनमें सोडा ऐश से मिला हुआ पानी ऊपर से गिरता है। ये बक्स इस्पात के बने होते हैं। बक्स का व्यास ८·५ फुट और गहराई ५·६ फुट होती है। गैस के बहाव की गति अधिक से अधिक ४,७०० घनफुट प्रति मिनट और कम से कम ३,८०० घनफुट प्रति मिनट रहती है। बक्स से निकलने के बाद गैसों का विश्लेषण होता है। उस से निकलकर गैसें 'लीमन धावक' में जाती हैं। यह धावक ७५ फुट ऊँचा और ११ फुट व्यास का होता है। गैस पेंदे से प्रविष्ट होती और सोडा ऐश का विलयन ऊपर से गिरता है। इसमें प्रति मिनट औसत ८,००० घनफुट गैस बहती है। आठ घण्टे में आधा टन सोडा-ऐश लगता है। यहाँ से गैस "गैस शीतक स्तम्भ" में जाती है और वहाँ से फिर गैस-टंकी में, जिसकी धारिता ५००,००० घनफुट होती है।

उपर्युक्त विधि आर्द्र विधि कही जाती है। आर्द्र विधि के बाद शुष्क विधि से गैसों का संशोधन होता है। इसके लिए बक्स होते हैं जिनमें लोहे का आक्साइड और काठ का छीलन भरा रहता है। लोहे के आक्साइड में कुछ कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों के साथ-साथ २३·७ प्रतिशत Fe_2O_3 और ३५–४० प्रतिशत जल रहता है। बक्स में दो या चार अस्तर, एक या दो ऊपर और एक या दो नीचे होते हैं। कुछ गैसें ऊपर उठती और कुछ नीचे की ओर जाती हैं। सुचारु रूप से कार्य करने के लिए आक्साइड में ३५ से ४० प्रतिशत जल रहना आवश्यक है। अधिक या कम जल रहने से कार्य ठीक नहीं होता। आक्साइड अल्पक्षारीय रहना चाहिए। इससे H_2S का अवशोषण अच्छा होता है। अम्लीय होने से अवशोषण कम होता और पात्र का संक्षरण भी होता है।

कुछ समय के बाद लोहे के आक्साइड की अवशोषण-क्षमता नष्ट हो जाती है। उसे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता पड़ती है। पुनर्जीवितकरण की दो रीतियाँ
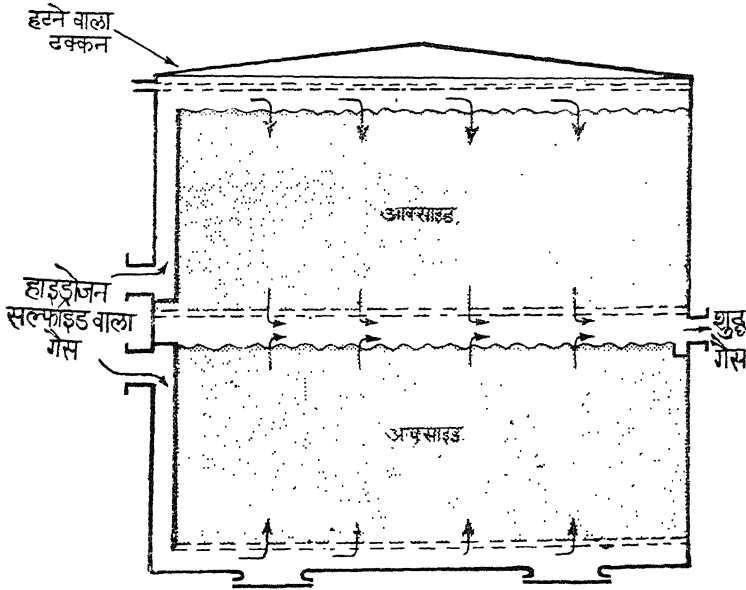
चित्र १३—लोहे के आक्साइड का बक्स

हैं। एक वाह्य रीति और दूसरी आभ्यन्तर रीति। वाह्य रीति में आक्साइड को वायु में खुला रखते और ऊपर से पानी डालते हैं। आभ्यन्तर रीति में बक्स में वायु प्रविष्ट कराते हैं। यहाँ निम्नलिखित क्रियाएँ होती हैं। वाह्य रीति में पहली क्रिया और आभ्यन्तर रीति में दूसरी क्रिया होती है—

(१) $2\,FeS + O_2 + 2\,H_2O = 2\,Fe(OH)_2 + 2S$

(२) $2\,H_2S + O_2 = 2\,H_2O + 2S$
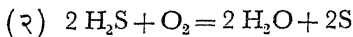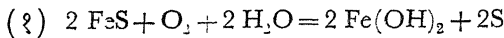
पुनर्जीवितकरण से लोहे के आक्साइड पर गन्धक निक्षिप्त हो जाता है। गन्धक की मात्रा जब ५० से ६० प्रतिशत पहुँच जाती है तब वह आक्साइड निकम्मा हो जाता है। आक्साइड के बक्स ४५ फुट लंबे, ४५ फुट चौड़े और १५ फुट गहरे होते हैं।

गैस-जनित्र की गैस में कार्बन मनोक्साइड लगभग ३६ प्रतिशत रहता है। इसमें पर्याप्त हाइड्रोजन भी रहना चाहिए। भाप से आवश्यक हाइड्रोजन प्राप्त होता है।

$$CO + H_2O = CO_2 + H_2$$
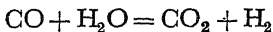
प्रतिदिन गैस का उत्पादन

	कच्ची गैस	परिवर्तित गैस
मात्रा घनफुट में	३४,०००,०००	४४,५००,०००
संगठन प्रतिशतता में		
हाइड्रोजन	३४·१५	४९·६५
कार्बन मनोक्साइड	३६·१	४·००
कार्बन डाइ-आक्साइड	७·४	२९·३
नाइट्रोजन	२१·५५	१६·४८
मिथेन और आर्गन	०·७५	०·५७
हाइड्रोजन सल्फाइड	०·०३	—

संशोधक बक्सों से निकलकर गैसें धौंकनी द्वारा संतृप्त मीनार में जाती हैं जहाँ उष्ण जल बहता रहता है। कुछ भाप लेकर और ताप कुछ घटाकर गैसें मीनार से निकलती हैं। वहाँ से गैसें जल-उष्मक में जाती हैं और वहाँ से संघनित्र में, जहाँ ठंडी होती हैं। ठंडी गैसें फिर अमोनिया शीतक मीनार में जाती हैं और वहाँ से परावर्तक (converters) में। परावर्तक दो होते हैं। गैसें ऊपर से प्रवेश कर नीचे की ओर उत्प्रेरक में होकर बहती हैं। उत्प्रेरक रखने के लिए नर-छिद्र होते हैं। उत्प्रेरक का आयतन ७०० घनफुट रहता है।

गुलिका के रूप में उत्प्रेरक होते हैं। दो किस्म के उत्प्रेरक प्रयुक्त होते हैं। एक उत्प्रेरक का संगठन निम्नलिखित है—

Fe_2O_3	९२ प्रतिशत
Cr_2O_3	६ प्रतिशत
Fe	२ प्रतिशत

गुलिका के विस्तार ९ मिमी० × ५ मिमी० रहते हैं।

सिन्दरी कारखाने ने अपना उत्प्रेरक तैयार किया है। उसके संगठन ये हैं—

Fe_2O_3	७२ प्रतिशत
Cr_2O_3	६ ,,
जल	१० ,,

शेष सल्फेट और कार्बोनेट

इसकी गुलिका के विस्तार हैं १० मिमी० × ९ मिमी०।

उत्प्रेरक के सम्बन्ध में निम्नलिखित सावधानी बरतनी पड़ती है—

१. इसको ५९०° सें० ताप से ऊपर नहीं गरम करना चाहिए।

२. जल से इसकी पोत (texture) नष्ट हो जाती है।

३. गन्धक यौगिकों का इस पर विषैला प्रभाव पड़ता है।

प्रति घनमीटर गैस में H_2S की मात्रा ०·७५ ग्राम से अधिक नहीं रहनी चाहिए।

परावर्तक गैस-धारी की धारिता ४००,००० घनफुट रहती है। परावर्तक को प्रारम्भ में गरम करना पड़ता है। गरम करने के लिए आठ बर्नर रहते हैं। वायु के प्रवेश के लिए धौंकनी रहती है।

अमोनिया संयन्त्र

परिवर्तित गैस को संपीडित कर अमोनिया उत्पादन विभाग में ले जाते हैं। अमोनिया संयन्त्र के निम्नलिखित अंग होते हैं—

१. संपीडन कक्ष

२. संशोधन कक्ष

३. शीतलीकरण पात्र

४. संश्लेषण क्षेत्र

संपीडन कक्ष में गैसों का संपीडन होता है। संपीडन के आठ एकक हैं। ६ क्रमों में अन्तिम दबाव ५२०० पौण्ड प्रति वर्गइंच नाप (psig) प्राप्त होता है।

संशोधन कक्ष में गैसों के अपद्रव्य कार्बन डाइ-आक्साइड (लगभग ३० प्रतिशत), कार्बन मनॉक्साइड (लगभग ४ प्रतिशत) और आक्सिजन पूर्णतया निकाल लिये जाते हैं। यह कार्य तीन क्रमों में होता है। पहले क्रम में जल-मार्जक से कार्वन डाइ-आक्साइड निकलता है। दूसरे क्रम में ताँबा और दाहक सोडा-मार्जकों से कार्वन डाइ-आक्साइड का लेश और कार्बन मनॉक्साइड निकल जाते हैं। तीसरे क्रम में ताँबा-मार्जकों का पुनर्जनन होता है।

जल मार्जक छः एकक रहते हैं। ये ७७ फुट ऊँचे और ८ फुट व्यास के मृदु इस्पात के बने होते हैं। ठंढे जल के मार्जन से लगभग २५ वायुमण्डल दबाव पर कार्बन डाइ-आक्साइड बहुत कुछ निकल जाता है। केवल एक प्रतिशत रह जाता है। मार्जक में पानी ऊपर से गिरता है और कार्वन डाइ-आक्साइड वाला जल नीचे से निकलता है। इस जल का कार्बन डाइ-आक्साइड फिर निकलकर सल्फेट संयन्त्र में प्रयुक्त होता है। इस भाग में पृथक्कारक और पम्प लगे रहते हैं। दबाव और बहाव नापने के यंत्र भी लगे रहते हैं।

ताँबा और दाहक सोडा-मार्जक तीन रहते हैं। एक मार्जक में ताँबा-विलयन रहता

है। दूसरे में दाहक सोडा रहता है। तीसरा पृथक्कारक होता है। यहाँ भी पम्प रहते हैं। ताँबा-मार्जक में कापर फार्मेट का विलयन प्रयुक्त होता है। यह कीमती होता है इस कारण इसके ताँबे के पुनर्जनन की आवश्यकता पड़ती है। पुनर्जनन से यह फिर पहले जैसा सक्रिय हो जाता है। इसे बारबार प्रयुक्त कर सकते हैं। ऐसे पुनर्जनित्र की धारिता ५,००० गलन होती है।

ताँबे का विलयन तैयार करने में निम्नलिखित पदार्थों का उपयोग होता है।

ताँबा खरादन	१,५०० पौण्ड
फार्मिक अम्ल	१,२५० पौण्ड
अमोनिया	१,५०० पौण्ड
जल	७१५ गैलन

वायु और अमोनिया के आधिक्य की उपस्थिति में अमोनियम फार्मेट में ताँबा घुला रहता है।

दाहक सोडा के विलयन के निर्माण में ६५० पौण्ड दाहक सोडा को घुलाकर ५ प्रतिशत विलयन तैयार करते हैं। यहाँ केन्द्राभिसारक पम्प, वायु-संपीडक, दबाव-मापी, बहाव-नियंत्रक, ताम्र विलयन सान्द्रण निर्देशक और तापमापी तथा थर्मो-कपुल रहते हैं।

शीतलीकरण पात्र

अमोनिया संयन्त्र में शीतलीकरण पात्र होता है जिसमें ताँबे का विलयन ठंडा किया जाता है। यहाँ ऐसी युक्तियाँ भी बनी होती हैं जिनसे अमोनिया की सान्द्रता कम की जा सकती है।

संश्लेषण क्षेत्र

संशोधित नाइट्रोजन और हाइड्रोजन गैसों का मिश्रण प्रायः १ : ३ होता है। ५१५० पौण्ड प्रति वर्गइंच दबाव पर प्रविष्ट होने पर अमोनिया बनती और संग्रहविभाग में संग्रह होती है। गैसें ऊपर से प्रवेश कर नीचे जाती हैं। वहाँ से उत्प्रेरक कक्ष में जाती और वहाँ अमोनिया बनाती हैं। अमोनिया का बनना दबाव, ताप, बहाव गति और निष्क्रिय गैसों की उपस्थिति पर निर्भर करता है। परिवर्तित गैस में १२ से १४ प्रतिशत अमोनिया रहता है। वहाँ से अमोनिया जल संघनित्र में जाता है और वहाँ से फिर पृथक्कारक में। गैस को बारबार उत्प्रेरक कक्ष में ले जाते हैं। प्रत्येक चक्र में निष्क्रिय गसों, प्रधानतया आर्गन और मिथेन की मात्रा बढ़ती जाती है।

अमोनिया के संश्लेषण में ताप का नियंत्रण सबसे अधिक महत्व का है। अधिक से अधिक ताप ५००°–५२०° से० रहना चाहिए। इससे ऊपर के ताप पर उत्प्रेरक
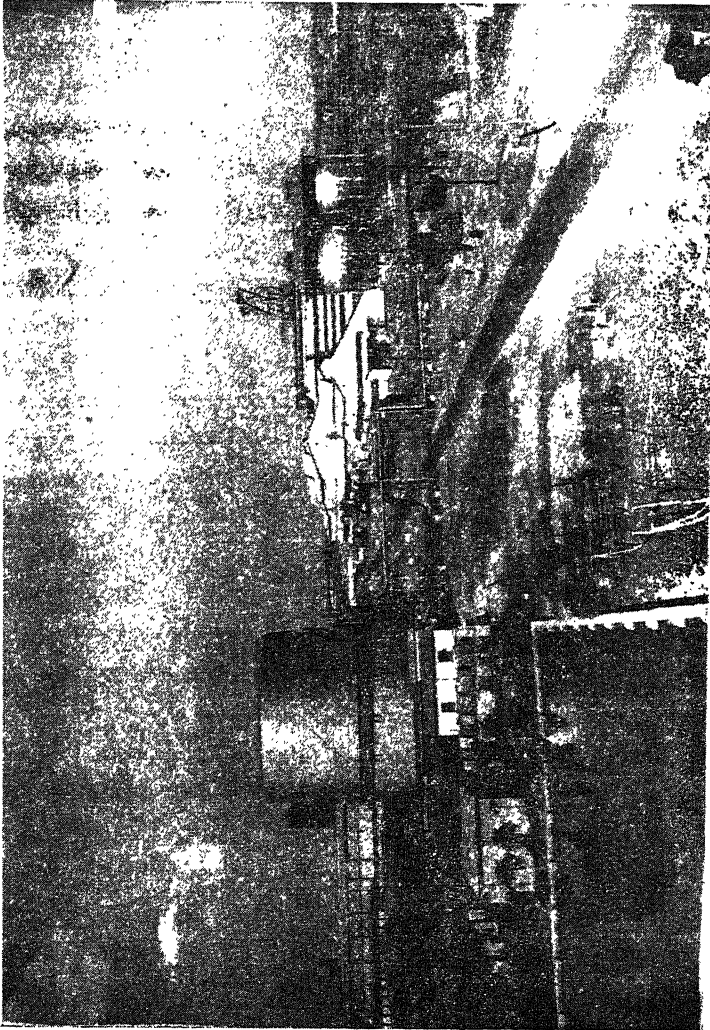
चित्र १४—अमोनिया संश्लेषण का संयन्त्र

का जीवन और सक्रियता घट जाती है।

संश्लेषण में हाइड्रोजन और नाइट्रोजन का अनुपात ३ : १ रहना चाहिए।

निष्क्रिय गैसों की मात्रा १० प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए। साधारणतया निष्क्रिय गैसें आप से आप छेदों से निकलती रहती हैं। इससे इसकी मात्रा साधारणतया बढ़ती नहीं है।

अमोनिया का संग्रह

संश्लेषण होने पर अमोनिया संग्रह टंकी में जमा होती है जहाँ से वह सल्फेट संयन्त्र में जाती है। टंकियाँ हौर्टन किस्म की हैं। प्रत्येक में १५०० टन द्रव अमोनिया १५० पौण्ड प्रति वर्गइंच माप दबाव में अँटती है। टंकी की धारिता का केवल ८५ प्रतिशत अमोनिया से भरा जाता है। यहाँ से जो गैसें निकलती हैं उनमें कुछ अमोनिया रहती है। इस अमोनिया को अवशोषण मीनार में जल-शीतक द्वारा फिर प्राप्त करते हैं।

सल्फेट संयन्त्र

सल्फेट संयन्त्र में सबसे पहला काम जो होता है वह जिपसम का पीसना है। जिपसम पहले दला जाता है और तब महीन पीसा जाता है। ये सब मशीनें पेचीली हैं, पर प्रायः उसी किस्म की हैं जैसी कोयले के दलने में प्रयुक्त होती है। यहाँ भी वैसे ही दलित्र हैं जिनमें १२५ टन जिपसम प्रति घण्टा दला जा सकता है। दले हुए जिपसम का औसत विस्तार एक इंच से डेढ़ इंच रहता है। एक इंच से बड़े टुकड़े प्रायः १० प्रतिशत रहते हैं, शेष एक इंच से छोटे विस्तार के होते हैं।

दलने के बाद जिपसम पीसा जाता है। ये यन्त्र भी पेचीले होते हैं। जिपसम ऐसा पीसा जाता है कि उसका ९५ प्रतिशत १२० ब्रिटिश मानक चलनी में छन जाय।

कार्बोनेटीकरण

कार्बोनेटीकरण में अमोनियम कार्बोनेट बनता है। अमोनिया और कार्बनडाइ-आक्साइड मीनार में आते हैं जहाँ दोनों के बीच क्रिया होकर अमोनियम कार्बोनेट बनता है। मीनारें तीन होती हैं, दो प्रमुख और एक गौण। दोनों पदार्थ प्रायः २०° सें० ताप पर १०० पौण्ड प्रति वर्गइंच माप दबाव पर मीनार में प्रवेश करते हैं। मीनारें प्रायः ३२ फुट ऊँची और ५ फुट व्यास की होती हैं। उनमें "राशिग" वलय भरा रहता है। वलय अलुमिनियम के २" × २" विस्तार के होते हैं। मृदु इस्पात के बने कार्बोनेटीकरण शीतक १२ रहते हैं। इनकी ऊँचाई ७ फुट की और बाह्य व्यास ३ फुट का होता है। शीतक के बाद उत्पाद मार्जक में जाता है जहाँ अधिक से अधिक अमोनिया प्राप्त करने का प्रबन्ध है।

प्रतिक्रिया पात्र

प्रतिक्रिया पात्र २३ फुट ऊँचा और १२ फुट व्यास का होता है। यहाँ एक ओर
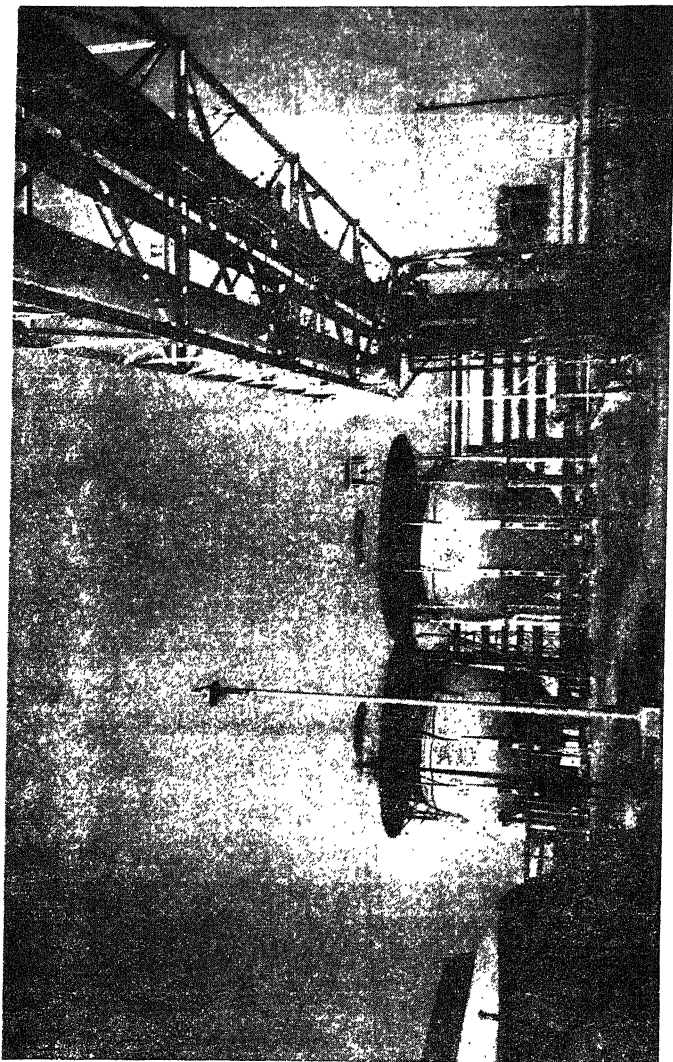
चित्र ६५—हौर्टन किस्म की अमोनिया टंकी (व्यास ४५ फुट, संग्रह धारिता ८०० टन द्रव अमोनिया)

से वाहक द्वारा जिपसम का चूर्ण और दूसरी ओर से अमोनियम कार्बोनेट का विलयन

आता है। दोनों प्रतिक्रिया पात्र में मिलते हैं। वहाँ यान्त्रिक मन्थन होता रहता है। ताप ७०° से ७५° सें० रहता है। इस प्रकार दोनों के मिलने से गाढ़ा गारा (Slurry) बनता है। यह एक पात्र से दूसरे पात्र में जाता है। वायु भी पात्र में प्रविष्ट करायी जाती है। पात्रों का मार्ग अवरुद्ध न हो जाय इसके लिए आध-आध घण्टे पर कपाट को साफ करते रहते हैं।
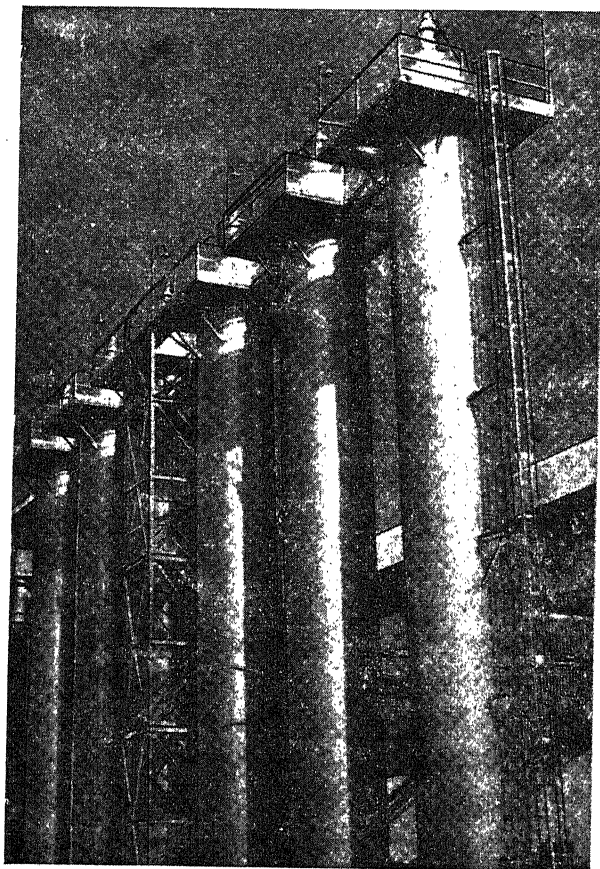
चित्र १६—अमोनिया संश्लेषण संयन्त्र का कार्बन डाइ-आक्साइड मार्जक

प्रतिक्रिया पात्र आठ रहते हैं। वे एक ही विस्तार के होते हैं। उनका ताप भी

प्रायः एक सा ही होता है। दोनों के बीच क्रियाएं हो अमोनियम सल्फेट और कैलसियम कार्बोनेट बनते हैं।

$$NH_4CO_3 + CaSO_4 = (NH_4)_2\ SO_4 + CaCO_3$$
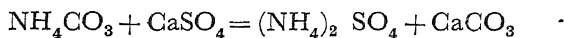
पात्र में CO_2 और NH_3 का अनुपात १ : ३ रहता है। इस प्रतिक्रिया में जो लिपलिपा पदार्थ (magma) बनता है उसका संगठन इस प्रकार रहता है:

अमोनियम सल्फेट $(NH_4)_2SO_4$	२९ प्रतिशत
कैलसियम कार्बोनेट $(CaCO_3)$	२३ प्रतिशत
जल	४४ प्रतिशत
अवशिष्ट अंश	४ प्रतिशत

उत्पाद को अब फिल्टर प्रेस में छानते हैं। ऐसे छानने के ८ छन्ने होते हैं, ४ प्रधान और ४ गौण।

प्रधान छन्ने से जो छनित (filtrate) प्राप्त होता है उसमें प्रति लाख २०० से ४०० भाग ठोस के रहते हैं। इन्हें निथारक में रखते हैं जहाँ ठोस कण पेंदे में बैठ जाते हैं। इस प्रकार निथरे द्रव में ठोस अपद्रव्य प्रति लाख में १६ भाग से अधिक नहीं रहना चाहिए।

"डोपिंग" और "डोप" घर

द्रव के विघटन से अम्लता पर नियंत्रण रहे इसके लिए आवश्यक है कि कुछ पदार्थ द्रव में डाले जायँ। इस कार्य को 'डोपिंग' कहते हैं और जो पदार्थ इसके लिए प्रयुक्त होता है उसे डोपिंग पदार्थ कहते हैं। इसके लिए तीन पदार्थ प्रयुक्त होते हैं—

१. सलफ्यूरिक अम्ल। सलफ्यूरिक अम्ल इस कारण प्रयुक्त होता है कि इसकी उपस्थिति में अमोनियम सल्फेट के मणिभ जल्द बनते हैं।

२. आर्सेनिक आक्साइड और दाहक सोडा। आर्सेनिक से पात्र का संक्षारण रुकता है।

३. फेरिक ऐलम। यह युग्म लवण है और मणिभों के बड़े-बड़े बनने में इससे सहायता मिलती है।

डोपिंग विलयन डोपिंग-घर में तैयार होकर उद्वाष्पकों में पम्प किया जाता है।

सलफ्यूरिक अम्ल बाहर से मँगाया जाता है और ९०–९० टन की धारिता वाली दो टंकियों में रखा जाता है।

दाहक सोडा ड्रम में आता है; प्रत्येक ड्रम में ४५० पौण्ड रहता है। इस्पात की ९ फुट ऊँची और ३ फुट व्यास की टंकियों में इसका विलयन रखा जाता है। इनमें

घुलाकर इसे आर्सेनिक आक्साइड की टंकी में लाया जाता है। आर्सेनिक आक्साइड ६५० पौण्ड के एकक के डोली (Kage) में मिलता है। एक डोली आर्सेनिक आक्साइड (As_2O_3) के लिए आधा ड्रम दाहक सोडा लगता है। दोनों को मिलाकर चार घण्टे तक मथते हैं और मथने के बाद उसी पात्र में रखते हैं। ऐलम एक हंडरवेट के बोरे में आता है। एक भार के लिए ८ हंडरवेट ऐलम और ७०० गैलन पानी लगता है। इसकी टंकी में भी पम्प लगा रहता है। आर्सेनिक आक्साइड और सलफ्यूरिक अम्ल की टंकियाँ अकलुष इस्पात की बनी होती हैं।

विच्छेदन विलयन

विच्छेदन विलयन में

अमोनियम सल्फेट	३५ से ३९ प्रतिशत
अमोनियम कार्बोनेट	०·७ प्रतिशत
कैलसियम कार्बोनेट	५००० भाग प्रति लाख
निलम्बित कण	१५०० भाग प्रति लाख

रहते हैं। इस विलयन के दो कार्य होते हैं। एक, उद्वाष्पन पात्रों से जो गैसें निकलती हैं उनको कम करना और दूसरा, जो अमोनिया और कार्बन डाइ-आक्साइड निकलते हैं उन्हें रोक रखना अथवा पुनः प्राप्त करना।

विच्छेदन विलयन को १०९° से० तक गरम रखते हैं। उससे जो गैसें निकलती हैं उनमें १०० घन सेन्टीमीटर में लगभग ०·०२ ग्राम अमोनिया (NH_3) रहता है। सोडियम आर्सिनेट के रूप में प्रति लाख भाग में १००० भाग उच्च ताप पर आर्सेनिक डाला जाता है।

उद्वाष्पन

विच्छेदित द्रव में अब ३५ से ४१·५ प्रतिशत अमोनियम सल्फेट और १०० घन सेंटीमीटर में केवल ०·०१ से ०·०५ ग्राम असंयुक्त अमोनिया रहता है। इसे अब उद्वाष्पक में ले जाते हैं। तीन प्रभाव-उद्वाष्पक रहते हैं। तीन-तीन एकक रहते हैं। समस्त उद्वाष्पक ९ होते हैं जिनमें प्रति घण्टा ५० टन द्रव का उद्वाष्पन होता है।

प्रभाव	दबाव (psig)	° ताप से०		मातृद्रव में मणिभ प्रतिशत
		द्रव का	वाष्प का	
प्रथम प्रभाव	१४·५	१०९	९९·६	१५ से २५
द्वितीय प्रभाव	५·७५	८३	७५·६	१५ से २५
तृतीय प्रभाव	१·९२	५८	५१·५	१५ से २५

प्रथम प्रभाव में दबाव २० से ३० पौण्ड प्रति वर्गइंच माप रहता है। प्रत्येक प्रभाव में तीन-तीन नल रहते हैं। सब मिलाकर ९ नल हुए। तीनों में मणिभ बनने पर समय-समय पर निकाल लिये जाते है। उद्वाष्पकों में दबाव न्यून रहता है।

संघनित्र तीन रहते हैं, एक प्रधान और दो सहायक। असंघनीय गैसें संघनित्र से निकलकर वायु में चली जाती हैं। ठंडे जल से संघनित्र ठंडा किया जाता है।

उद्वाष्पक में देखने के लिए काँच लगे रहते हैं। उद्वाष्पक में जो द्रव आता है उसका संगठन ऐसा रहता है—

अमोनियम सल्फेट	$[(NH_4)_2\ SO_4]$	४१·५ प्रतिशत
कैलसियम सल्फेट	$(CaSO_4)$	१०० भाग प्रति लाख
कैलसियम कार्बोनेट	$(CaCO_3)$	२१ भाग प्रति लाख
अमोनियम कार्बोनेट	$[(NH_4)_2CO_3]$	०·०३ ग्राम प्रति १०० घ० सें० मी०
आर्सेनिक आक्साइड	(As_2O_3)	१० भाग प्रति लाख
मुक्त अम्ल		०·२ प्रतिशत (अधिक से अधिक)

उद्वाष्पकों से जो उत्पाद प्राप्त होते हैं उनकी विशिष्टता यह है—

अम्लता ०·२ प्रतिशत से कम

४ मिमी० से बड़ा टुकड़ा नहीं रहता

२ मिमी० से बड़ा २५ प्रतिशत से अधिक नहीं रहता

४० प्रतिशत से अधिक ३०–अक्षि मानक ब्रिटिश चलनी में नहीं चलता

५ प्रतिशत से अधिक ७२–अक्षि मानक ब्रिटिश चलनी में नहीं चलता

मणिभ की लम्बाई चौड़ाई २ मिमी० से कम नहीं होती

जो लवण प्राप्त होता है उसमें कैलसियम ०·२५ प्रतिशत कैलसियम आक्साइड के रूप में रहता है। इससे पता लगता है कि उद्वाष्पक में कुछ कैलसियम सल्फेट रहता है और इसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती जाती है।

उद्वाष्पक १२·६ इंच व्यास का पात्र होता है। मणिभीकरण पात्र का व्यास १४·६ इंच रहता है। दोनों की ऊँचाई लगभग ३८ फुट की होती है। पात्र मृदु इस्पात के बने होते हैं। टंकियों से उद्वाष्पक में द्रव आता है। टंकियों की धारिता ६२८० गैलन की होती है। उद्वाष्पक से जो द्रव निकलता है वह स्टेनलेस इस्पात के पात्र में इकट्ठा होता है। इस पात्र की धारिता ४८,००० गैलन की होती है।

द्रव को संघनित करने के लिए शीतक मीनारें होती हैं। ऐसी तीन मीनारें हैं; प्रत्येक भाग के लिए एक-एक। ये मीनारें अमेरिका से बनकर आयी हैं। इनका बनानेवाला न्यूयार्क का फौस्टर व्हीलर कारपोरेशन है।

इसमें ६ पम्प लगे हुए हैं, तीन ठंडे द्रव के लिए और तीन गरम द्रव के लिए। ये ऊँचे दबाव ३० पौण्ड प्रति वर्ग इंच माप पर कार्य करते हैं।

इसमें पीएच नियंत्रण का प्रबन्ध रहता है। पावर प्लैण्ट से पानी आता है, उसका पीएच ८·५ रहता है। सल्फेट प्लैण्ट आते-आते उसका पीएच ७·५ हो जाता है। कार्बोनिटीकरण संयन्त्र में इसका पीएच ७·५ रहना चाहिए, नहीं तो नल का संक्षारण हो सकता है। पीएच नियंत्रण के दो तरीके बरते जाते हैं—

एक तरीके में जब पीएच का मान कम हो जाय तब ताजा पानी डालकर आवश्यक पीएच मान पर रखते हैं।

दूसरे तरीके में आवश्यक चूना डालकर पीएच का मान स्थिर रखते हैं।

लवण के एकत्र होने से तापन-तल में रुकावटें पड़ती हैं। अतः लवणों का हटाना बड़ा आवश्यक हो जाता है। पात्र के पेंदे में जो लवण इकट्ठा होता है उसे लगातार निकालते रहते हैं अथवा उसको समय समय पर निकालते हैं। उष्ण संघनित द्रव से समय-समय पर, साधारणतया पखवारे में एक बार, धोते रहते हैं।

उचित विस्तार के मणिभ (उचित विस्तार के मणिभ में लम्बाई चौड़ाई का अनुपात कम से कम २ : १ रहता है) की प्राप्ति के लिए पीएच ३·० से ३·५ रहना चाहिए। ऐलम और आर्सेनिक आयन की उपस्थिति से भी इसमें सहायता मिलती है। विच्छेदन द्रव से संक्षारण रोकने के लिए आर्सेनिक डालते हैं। ऐलम विलयन उद्वाष्पक में डाला जाता है। उद्वाष्पक द्रव में विभिन्न अवयव इस अनुपात में रहते हैं—

अम्लता	०·१७ से ०·२३ ग्राम	H_2SO_4 प्रति १०० घ० सें०
आर्सेनिक	०·१८ से ०·२३ ग्राम	As_2O_3 प्रति १०० घ० सें०
ऐलम	०·०३ से ०·०९ ग्राम	Al_2O_3 प्रति १०० घ० सें०

सलफ्यूरिक अम्ल तो विच्छेदन-द्रवसंग्रह टंकी में ही डाला जाता है। डालने पर जो पीएच होता है उसे पीएच मीटर से माप लेते हैं। बहाव मापने के बहाव-मीटर होते हैं।

विभिन्न विलयनों का ताप मापने के तापमापी होते हैं और यदि कोई संकट उपस्थित हो तो उसके लिए चेतावनी-संकेतक (alarm signal) होता है। दबाव कम हो जाने की सूचना इसी संकेतक से प्राप्त होती है।

लवण का छानना

अमोनियम सल्फेट के मणिभ मागमा (magma) बनते हैं। इन्हें निथारक में

ले जाते हैं। प्रथम प्रभाव में तीन निथारक: निथारक नं० १, निथारक नं० २ और निथारक नं० ३ रहते हैं।

निथारक के पेंदे से मागमा छन्ने में जाता है। जो मातृ-द्रव इकट्ठा होता है उसे फिर उद्वाष्पक टंकी में भेज देते हैं। प्रत्येक छन्ने में तीन एकक रहते हैं। प्रत्येक एकक में (१) लवण निथारक, (२) लवण छनना, (३) छनना पाश, (४) "रूट्स" धौंकनी (Roots blower), और (५) लवण छनित टंकियां होती हैं।

लवण निथारक—लवण निथारक के तीन एकक होते हैं। ये स्टेनलेस इस्पात के ९·५ फु० व्यास और ११ फुट ऊँचाई के बने होते हैं। इनका निचला भाग शंक्वाकार होता है। पेंदे से एक नली छन्ने तक जाती है और दूसरी नली उष्ण संघनित जल तक जाती है। यदि मार्ग अवरुद्ध हो जाय तो गरम जल से उसे ठीक कर सकते हैं। ऊपर से द्रव गिरकर उद्वाष्पन टंकी में आता है।

लवण छन्ना—लवण छनने के भी तीन एकक होते हैं। यह भी स्टेनलेस इस्पात का बना होता है। यह देश के बाहर से इण्टरनेश्नल कम्बश्चन लिमिटेड द्वारा बनकर आया है। यह छन्ना घूर्णक में होता है। इसमें ३० × ३० अक्षि की तारजाली लगी रहती है।

छन्ने का व्यास ६ फुट और चौड़ाई १·५ फुट रहती है। इसकी धारिता २४ घण्टे में ६०० टन होती है। छन्ने की चाल १·३ से २·६ घूर्णन प्रति मिनट रहती है।

तारजाली को बराबर गरम द्रव और ३ पौण्ड प्रति वर्ग इंच माप की भाप से ४ प्रथों (nozzle) द्वारा बराबर धोते रहते हैं।

छानने पर जो मातृद्रव प्राप्त होता है उसे छन्ना पाश में इकट्ठा करते हैं। वहाँ से लवण छनित टंकी में भेज दिया जाता है। वहाँ से लवण निथारक होकर अन्त में उद्वाष्पक टंकी में पहुँचता है। इसे 'रूट्स' धौंकनी द्वारा भेजते हैं। छन्ने के परदे में से लवण के पिंड को स्थिर चाकू से छीलकर शोषक में ले जाते हैं।

छनना-पाश—छनना-पाश के तीन एकक रहते हैं। यह स्टेनलेस इस्पात का बना होता है। इसका व्यास ६·५ फुट और ऊँचाई १० फुट रहती है। ये न्यून दबाव पर कार्य करते हैं।

रूट्स धौंकनी— 'रूट्स' धौंकनी के भी तीन एकक रहते हैं। इनमें निष्कासन 'साइलेंसर' लगा रहता है। ये ७५ अश्व-बल मोटर से चलते हैं।

लवण-छनित टंकियाँ—इनके भी तीन एकक रहते हैं जो स्टेनलेस इस्पात के बने होते हैं। इस टंकी से जो मातृद्रव निकलता है वह उद्वाष्पक में भेज दिया जाता है।

सुखाना और ठंडा करना

अमोनियम सल्फेट के मणिभों को घूर्णक शोषक में सुखाते और घूर्णक शीतक में ठंडा करते हैं। सुखाने के लिए गरम वायु का उपयोग होता है। शोषक पंखे से वायु आती है। $(NH_4)_2SO_4$ अमोनियम सल्फेट की धूलें बोरे में इकट्ठी होती हैं। ठंडी वायु भी अमोनियम सल्फेट पर भेजी जाती है। इससे निकली धूलें भी इकट्ठी की जाती हैं।

शोषक और शीतक के तीन एकक होते हैं। प्रत्येक में शोषक और शीतक रहते हैं। ये एडगर एलन कम्पनी द्वारा मृदु इस्पात के बनाये गये हैं। इनका व्यास ९ फुट का और लम्बाई ४० फुट की होती है। २० फुट दूरी तक इन शोषकों (drier) पर स्टेनलेस इस्पात की १/८ इंच मोटी चादर का अस्तर चढ़ा होता है। शेष भाग ५/८ इंच मोटाई की मृदु इस्पात चादरों से ढँका रहता है। प्रत्येक शोषक और शीतक ६० अश्व-बल की मोटर से और ९६० घूर्णन प्रति मिनट की गति से चलता है। इसकी धारिता प्रति घण्टा २५ टन की होती है। लवणों में जल की मात्रा २·५ प्रतिशत से ०·०९ प्रतिशत हो जाती है। उष्ण वायु का ताप ३५° से० रहता है। वायु की सापेक्ष आर्द्रता ९० प्रतिशत रहती है। ऐसी वायु से नमक बहुत कुछ ठंडा हो जाता है। २७° से० के ताप की वायु और ६० प्रतिशत आर्द्रता से जल की मात्रा ७·१ प्रतिशत से ०·२ प्रतिशत गिर जाती है।

शोषक पंखे—लवण के सुखाने के लिए जो पंखे प्रयुक्त होते हैं वे ३० अश्व-बल मोटर से चलते हैं। शीतक पंखे भी शोषक पंखे जैसे ही होते हैं।

भट्ठी

गरम वायु के लिए प्रत्येक शोषक में तीन भट्ठियाँ रहती हैं। भट्ठियाँ मृदु इस्पात की बनी होती हैं। उनमें ईंटों का आयताकार (rectangular) अस्तर लगा रहता है। भट्ठियाँ १० फुट ९ इंच ऊँची और ५ फुट १० इंच चौड़ी होती हैं। प्रत्येक में ४ बर्नर रहते हैं। बर्नरों में गैसें जलती हैं। अमोनिया संयन्त्र से अथवा कार्बन मनॉक्साइड (CO) परिवर्तन भाग से ईंधन गैसें आती हैं।

चक्रवात (Cyclone) **पृथक्कारक**—चक्रवात पृथक्कारक से निकली लवण-धूलें बोरे में इकट्ठी होती हैं। शोषक और शीतक के लिए एक एक एकक रहते हैं।

सुचारु रूप से कार्य होता रहे और अमोनियम सल्फेट के अधिक मणिभ बनें इसके लिए परिस्थितियाँ इस प्रकार की रहनी चाहियें—

१. लवण के सफेद पिंड की प्राप्ति के लिए और आर्सेनिक कम लगे इसके लिए अधिक से अधिक विच्छेदक द्रव का उपयोग करना चाहिए।

२. निथारक के पेंदे में केवल एक फुट का मणिभों का तल रहना चाहिए।

३. लवण के पेंदे से यदि मणिभ गिर पड़ें तो समझना चाहिए कि पर्याप्त निर्वात नहीं है।

४. शोषक और शीतक को छनने से लवण आने के पहले आरम्भ कर देना चाहिए। शोषक पंखे को चला देना और भट्ठे को जला देना चाहिए। यदि बर्नर बुझ जाय तो शोषक को खाली कर तब बर्नर जलाना चाहिए।

५. यदि किसी कारण लवण-वाहक रुक जाय तो शोषक और शीतक को बन्द कर देना चाहिए और उद्वाष्पक से लवण मैगमा का पम्प करना बन्द कर देना चाहिए।

लवण का संग्रह और बोराबन्दी

वाहक द्वारा अमोनियम सल्फेट को संग्रह घर में ले जाते हैं जहाँ जीर्णन के लिए वह रखा जाता है अथवा बोरे में सीधे ले जाकर बन्द कर दिया जाता है। बोराबन्दी की मशीन में २० घण्टे में २००० टन की बोराबन्दी हो सकती है। २ हंडरवेट के बोरे में १५०० टन और ८० पौण्ड के बोरे में ५०० टन अमोनियम सल्फेट रखा जाता है। बोराबन्दी करने के पहले लवण को चालते हैं। यदि मणिभ बड़े-बड़े हों तो उन्हें तोड़ना पड़ता है। बोरे में भरकर बोरे को मंच पर ले जाकर वैगन में भरने के लिए रखते हैं।

अमोनियम सल्फेट के संग्रह के स्थान को **'सिलो'** (silo) कहते हैं। सिलो ६६० फुट लम्बा, १५० फुट चौड़ा और ९० फुट ऊँचा तथा लोहे की चादरों का बना होता है। सिलो की धारिता ९०,००० से १००,००० टन की होती है। अमोनियम सल्फेट की घनता इतनी रहती है कि यह प्रति घनफुट में ७ पौण्ड अँटता है। ३ मास का उत्पादन इसमें अँट सकता है।

सल्फेट तौलने की मशीनें होती हैं। एक मशीन में प्रति घण्टा ५० से ७५ टन तक तौला जा सकता है। तौल की यथार्थता ०·५ प्रतिशत होती है। सल्फेट जालियों की चलनी में छाना जाता है। ऐसी चलनी ४ × ८ फुट की होती है। प्रति घण्टा ८२·५ टन छन सकता है।

जल

सिन्दरी कारखाने को चालू रखने के लिए १२० लाख टन पानी की प्रति दिन आवश्यकता पड़ती है। पास में ही दामोदर नदी है। इस पर ८३० फुट लम्बा

बाँध बँध गया है जिसमें पानी उठाने और गिराने के फाटक, ३० फुट चौड़े और
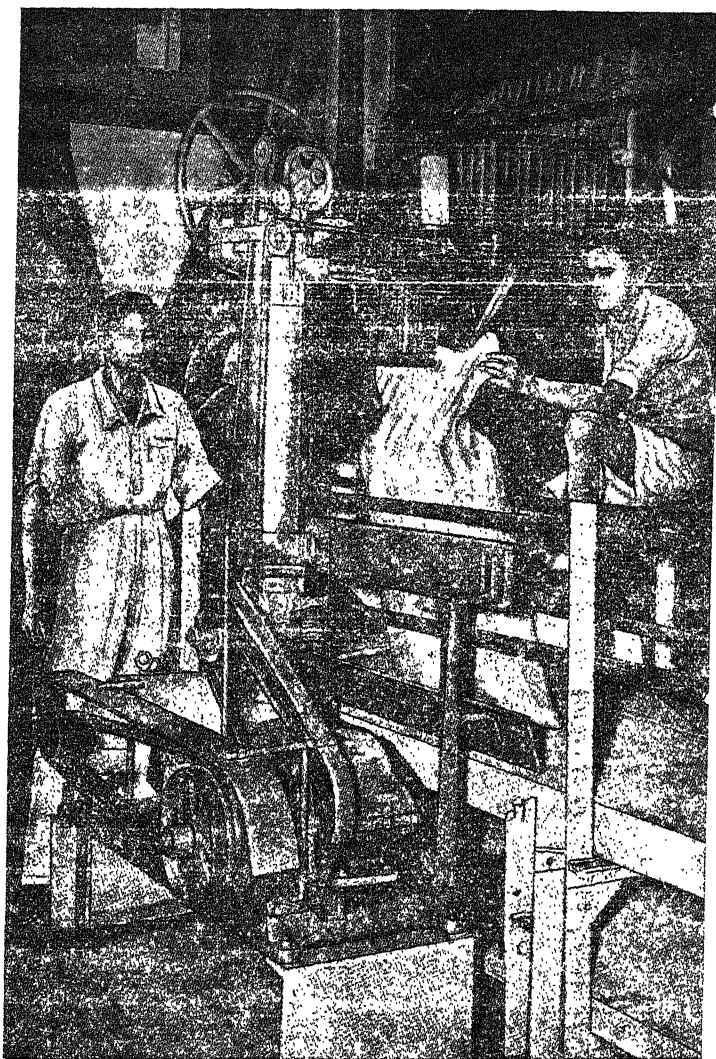
चित्र १७—उर्वरक की बोराबन्दी की आत्म-चालित मशीन

२४ फुट ऊँचे लगे हुए हैं। इस बाँध के कारण २६ फुट गहराई की एक कृत्रिम झील
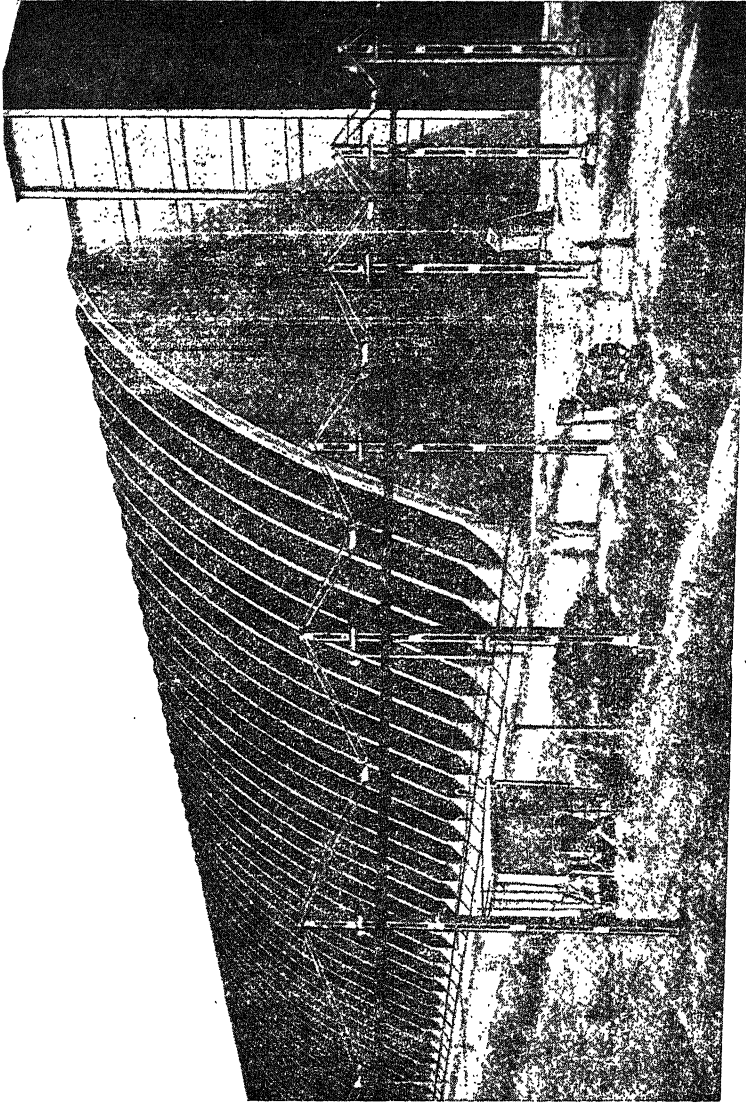
चित्र १८—उर्वरक संग्रह का सिलो (कोष्ठागार) जिसमें एक लाख टन अमोनियम सल्फेट रखा जा सकता है।

प्राय: ३ वर्गमील क्षेत्र में बन गयी है। इसमें १०,००० लाख गैलन पानी इकट्ठा हो सकता है। यहाँ से पम्प द्वारा पानी कारखाने में जाता है।

कारखाने में जो पानी संघनित्र में संघनित्र होता है वह भी फिर कारखाने में प्रयुक्त हो सकता है। दामोदर घाटी योजना से पानी का प्रश्न अब हल हो गया है।

गैस ईंधन

कार्बोनेटीकरण संयन्त्र में जो गैसें प्रयुक्त होती हैं और अमोनिया विभाग से अमोनिया निकाल लेने पर जो गैसें प्राप्त होती हैं वे ही ईंधन के लिए भी प्रयुक्त होती हैं। यदि इनके जलाने की आवश्यकता न हो तो ये वायु में छोड़ दी जाती हैं।

हर विभाग में वायु की आवश्यकता पड़ती है। वायु की प्राप्ति के लिए संपीडन पम्प लगे हुए हैं। उनसे आवश्यक वायु प्राप्त हो जाती है।

बिजली और भाप का प्रबन्ध

सिन्दरी कारखाने में एक लाख किलोवाट बिजली की आवश्यकता पड़ती है जो वहीं तैयार हो जाती है। इसमें से ४० हजार किलोवाट अनेक विभागों में खर्च हो जाती है।

कारखाने में भाप की भी ज़रूरत पड़ती है। प्रति घण्टा ३ लाख पौण्ड भाप की २५ दबाव (psig) पर और प्रति घण्टा ५ हजार पौण्ड भाप की १०० दबाव (psig) पर आवश्यकता पड़ती है। कारखाने में जो बायलर लगे हुए हैं उनसे आवश्यक भाप प्राप्त हो जाती है।

कोक चूल्हा

कारखाने में प्रति घण्टा ६०० टन कोक की ज़रूरत पड़ती है। कोक बनाने के चूल्हे बने हैं। इन चूल्हों का उद्‌घाटन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा १५ अगस्त १९५४ को हुआ था। जर्मनी के मेसर्स कार्ल स्टील ने इस प्लैण्ट को बैठाया है। इसमें ६० चूल्हे हैं और गैस के उप-उत्पादों, तारकोल, मोटर बेंज़ोल, शुद्ध बेंज़ीन आदि के निकालने के भी उपकरण लगे हुए हैं।

सीमेण्ट कारखाना

कारखाने में बड़ी मात्रा में, प्रायः ९०० टन, कैलसियम कार्बोनेट प्रतिदिन उप-जात के रूप में प्राप्त होता है। कैलसियम कार्बोनेट की इतनी मात्रा का क्या किया जाय, यह विकट समस्या थी। अब कैलसियम कार्बोनेट का उपयोग सीमेन्ट बनाने में होता है। एसोशियेटेड सीमेण्ट कम्पनी ने सीमेण्ट तैयार करने का प्लैण्ट बैठा दिया है।

उत्प्रेरक

कारखाने में उत्प्रेरक की आवश्यकता पड़ती है। उत्प्रेरक अमेरिका से आता था, पर अब वह कारखाने में ही बनने लगा है। यहाँ का उत्प्रेरक समान रूप से सक्रिय पाया गया है।

मेथेनोल और फार्मल्डीहाइड

गैस प्लैण्ट से कुछ गैसें प्राप्त होती हैं जिनका उपयोग कारखाने में नहीं होता। उन गैसों से मेथेनोल और फार्मल्डीहाइड तैयार करने के संयन्त्र, बैठाये जाने के लिए जर्मनी से प्राप्त हुए हैं। ऐसे संयन्त्र में १०,००० टन मेथेनोल और ३,५००टन फार्मल्डीहाइड प्रति वर्ष तैयार हो सकता है।

यूरिया और अमोनियम नाइट्रेट

यूरिया और अमोनियम नाइट्रेट सान्द्र खाद हैं। भारत का एक उर्वरक मिशन बाहर गया था। उस मिशन ने सिफारिश की है कि भारत में यूरिया और अमोनियम नाइट्रेट के कारखाने खुलने चाहिए। इसकी मशीनें बाहर से मँगाकर कारखाने में बैठायी गयी हैं। इनके निर्माण करने का कार्य भी अब वहाँ शुरू कर दिया गया है।

यूरिया का उपयोग प्लास्टिक बनाने में भी होता है।

कोयला राख

कारखाने में जो कोक जलता है उससे ४०० से ६०० टन राख निकलती है। इस राख का उपयोग अभी कुछ नहीं है। इस पर पर्याप्त अनुसन्धान हुआ है और हो रहा है। आशा की जाती है कि इस राख का उपयोग हल्के मकान बनाने में काँक्रीट के रूप में हो सकता है।

कारखाने के साथ एक अच्छी अनुसन्धानशाला है जिसमें अनेक रसायनज्ञ भिन्न-भिन्न प्रश्नों को लेकर अनुसन्धान कर रहे हैं। इन अनुसन्धानों के फलस्वरूप कारखाने में बहुत कुछ सुधार हुए हैं और अनेक नये नये आविष्कार होकर कारखाने की उपयोगिता को बढ़ाते जा रहे हैं।

अलवई का उर्वरक कारखाना

ट्रावनकोर के अलवई नामक स्थान में अमोनियम सल्फेट तैयार करने का एक कारखाना है। इस कारखाने का नाम है 'दी फर्टीलाइज़र एण्ड केमिकल्स ट्रावनकोर लिमिटेड'। इस कारखाने में निम्नांकित पदार्थों का निर्माण होता है।

१. हेबर विधि से अमोनिया	४० टन प्रति दिन
२. अमोनियम सल्फेट	१५० टन प्रति दिन
३. संस्पर्श विधि से सलफ्यूरिक अम्ल	१५० टन प्रति दिन
४. अमोनियम क्लोराइड	१५० टन प्रति दिन
५. सुपर-फास्फेट	

अमोनिया तैयार करने की विधि निम्नांकित है—

प्रोड्यूसर (उत्पादक) गैस संयन्त्र में लकड़ी जलायी जाती है। चूँकि लकड़ी से गैस के उत्पादन में पर्याप्त मात्रा में अलकतरा भी बनता है, अतः यह आवश्यक है कि गैस को अलकतरे से मुक्त किया जाय। इसके लिए गैस को मार्जक में ले जाते हैं जिसमें ऊपर से पानी गिरता और अधिकांश अलकतरे को निकाल लेता है। अलकतरे के जो कण मार्जक में नहीं निकलते और अब भी गैस में रह जाते हैं, उन्हें कौट्रेल अवक्षेपक (Cottrel precipitator) में ले जाकर निकाल लेते हैं। इससे अन्य निलम्बित अपद्रव्य भी निकल जाते हैं। मार्जक से अलकतरा निकालकर निथारक टंकी में ले जाया जाता है। यह टंकी मार्जक के समीप ही नीचे संतल पर स्थित होती है। चूँकि अलकतरा-जल में अब भी पर्याप्त अलकतरा रहता है अतः इसे बार-बार प्रयुक्त करते हैं। ऐसे अलकतरा वाले जल को नदी में बहा देने से नदी का पानी दूषित हो सकता है, इस कारण ऐसे जल का बार-बार उपयोग करना आवश्यक हो जाता है। इसे फिर प्रयुक्त करने के लिए शीतक में ठंडा करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए शीतक मीनार उपयुक्त होती हैं।

कौट्रेल अवक्षेपक के आधार पर जल-संमुद्रण (water seal) होता है जिससे जल अविराम रूप से निकलता रहता है। अलकतरे की पर्याप्त मात्रा उपजात के रूप में प्राप्त होती है। इसे किस काम में लाया जाय यह एक विकट समस्या है जिसका सन्तोषप्रद हल अभी नहीं निकल सका है। इसे जलाकर ऊष्मा उत्पन्न करने का प्रयत्न हुआ है। जलाने के लिए एक विशेष प्रकार का भट्ठा बना है, और इसमें कुछ उसका उपयोग हो रहा है।

इस प्रकार से शोधित उत्पादक गैस को गैस-धारी में ले जाकर इकट्ठा करते हैं और आवश्यकतानुसार खर्च करते हैं।

इस कारखाने में हाइड्रोजन प्राप्त करने का एक उत्कृष्ट कोटि का आत्म-चालित संयन्त्र है। इस संयन्त्र में हाइड्रोजन तैयार करने के दस जनित्र हैं। इन जनित्रों में लोहे के आक्साइड उत्प्रेरक के रूप में भरे रहते हैं। प्रत्येक जनित्र के शिखर और पेंदे में गैस-प्रवेश के नल या मार्ग होते हैं, जिनसे एक मार्ग से हाइड्रोजन, भाप और

प्रोड्यूसर गैस प्रवेश कर सकती और दूसरे मार्ग से निकल सकती है। इन नलों में कपाट (valves) लगे रहते हैं जो उद्याम[1] से कार्य करते हैं। इन कपाटों का नियंत्रण स्वतः होता रहता है। नियंत्रण के लिए प्रत्येक जनित्र के निकट एक महाचालक रहता है। दस-दस मिनटों के अवकाश पर एक निश्चित क्रम में प्रोड्यूसर गैस, भाप और हाइड्रोजन प्रवेश करते हैं।

संयन्त्र से जो गैसें बाहर निकलती हैं उनकी ऊष्मा व्यर्थ न जाय और उसका उपयोग हो सके इसका भी प्रबन्ध है। बायलरों में पानी गरम करने में इसका उपयोग हो सकता है। ऐसे अनेक बायलर लगे हुए हैं जिनमें प्रति बायलर प्रति घण्टा ४००० पौण्ड भाप १०० पौण्ड दबाव पर उत्पन्न की जा सकती है।

इस प्रकार जो हाइड्रोजन तैयार होता है उसकी शुद्धता का परीक्षण घण्टे-घण्टे पर होता है और यदि वह पर्याप्त शुद्ध है तो उसे हाइड्रोजन-धारी में जल-संमुद्रण द्वारा भेज देते हैं।

नाइट्रोजन का निर्माण एक दूसरे संयन्त्र में होता है। वायु में प्रोड्यूसर गैस को अत्यन्त ही सूक्ष्म-नियंत्रित दशा में जलाने से कार्बन डाइ-आक्साइड और नाइट्रोजन बनते हैं। वायु की मात्रा ठीक उतनी ही रहनी चाहिए जितनी प्रोड्यूसर गैस के कार्बन मनॉक्साइड के जलाने के लिए आवश्यक है। यहाँ भी जलना आत्म-चालित संयन्त्र में होता है। ज्यों ही जली गैसों में आक्सिजन पाया जाता है, उसकी सूचना मिल जाती है और वायु का प्रवेश आप से आप कम हो जाता है। नाइट्रोजन में आक्सिजन का न रहना बड़ा आवश्यक है क्योंकि आक्सिजन हाइड्रोजन के साथ विस्फोटक मिश्रण बनता है। बाद में नाइट्रोजन से आक्सिजन का निकालना भी बहुत कठिन होता है।

इस प्रकार प्रोड्यूसर गैस के जलने से प्रधानतया नाइट्रोजन और कार्बन डाइ-आक्साइड बनते हैं। बड़ी अल्प मात्रा में निष्क्रिय गैसें भी रह सकती हैं। इन गैसों को तब अवशोषक मीनार में ले जाते हैं। इस मीनार में मोनोइथेनोलेमिन (monoethanolamine) भरा रहता है। कार्बन मनॉक्साइड और कार्बन डाइ-आक्साइड दोनों इसमें घुल जाते हैं। केवल नाइट्रोजन बच रहता है। इस नाइट्रोजन को तब जल-संमुद्रण द्वारा नाइट्रोजन-धारी में ले जाकर रखते हैं और आवश्यकता पड़ने पर अमोनिया के निर्माण में प्रयुक्त करते हैं।

[1] Lever

आसवन-स्तम्भ वाले पात्रों में आसवन करने से कार्बन डाइ-आक्साइड निकल जाता है। इस कार्बन डाइ-आक्साइड की ऊष्मा को भी काम में ला सकते हैं। कार्बन डाइ-आक्साइड के निकल जाने पर जो अवशिष्ट अंश बच जाता है उसे फिर इस्तेमाल कर सकते हैं।

आसवन-स्तम्भ के शिखर से कार्बन डाइ-आक्साइड निकलता है और उसे दबाव में रखकर अमोनियम कार्बोनेट के निर्माण में प्रयुक्त कर सकते हैं। यदि इसकी आवश्यकता न हो तो सिलिंडर में भरकर बेच सकते अथवा हवा में छोड़ दे सकते हैं।

हेवर विधि से अब हाइड्रोजन और नाइट्रोजन से अमोनिया तैयार करते हैं। एक धारी से हाइड्रोजन और दूसरे धारी से नाइट्रोजन ३ : १ अनुपात में आकर मिश्रण बनता है। हाइड्रोजन का प्रवेश भी आत्म-चालित होता है। गैसें ठीक उसी अनुपात में प्रवेश करती हैं जिस अनुपात में उनकी आवश्यकता है। गैसों के मिश्रण का अनुपात आप से आप यन्त्रों में होता है।

यहाँ गैस-मिश्रण पाँच क्रमों में संपीडित होकर ऐसे दबाव पर पहुँचता है जिसका दबाव २००० होता है और तब परिशोधन विभाग में जाता है। यहाँ से गैस-मिश्रण अवशोषक मीनार में प्रविष्ट होता है। मीनार के शिखर से अमोनिया-क्यूप्रस फार्मेट का विलयन नीचे टपकता है। यह गैस के समस्त कार्बन मनॉक्साइड को अवशोषित कर लेता है। गैस तब एक दूसरी मीनार में जाती है जिसमें रोड़े भरे रहते हैं और ऊपर से सोडियम हाइड्राक्साइड का विलयन चूता रहता है। इस मीनार में समस्त कार्बन डाइ-आक्साइड अवशोषित हो जाता है। इस प्रकार शोधित गैस तब फिर दबायी जाती और दबाव ५१०० पौण्ड प्रति वर्गइंच माप बढ़ाकर संश्लेषण विभाग में गैस भेजी जाती है।

गैस के शोधन से जो द्रव प्राप्त होता है उसे ऊष्मक में ले जाकर गरम करते और एक टंकी में रखते हैं जहाँ इसका अवशोषित कार्बन मनाक्साइड निकल जाता है। क्यूप्रिक लवण का अवकरण न हो इसके लिए वायु को प्रवाहित करते हैं। गैसों के साथ यदि कोई अमोनिया निकल जाय तब उसे मार्जन द्वारा निकाल लेते हैं। ताम्र द्रव को फिर जल में ठंडा करते और फिर अमोनिया से ठंडे किये हुए ऊष्मा-विनिमायक में ठंडा करते हैं। अब इसका फिर उपयोग हो सकता है। इसे पम्प कर फिर अवशोषक मीनार के शिखर पर ले जाकर इस्तेमाल करते हैं।

सोडियम हाइड्राक्साइड के विलयन को बार-बार तब तक इस्तेमाल करते हैं जब तक सारा हाइड्राक्साइड समाप्त न हो जाय। फिर तब ताज़ा विलयन काम में लाते हैं।

सम्पीडित और शोधित गैस अब संश्लेषण विभाग में जाती है। यहाँ वह अन्य गैसों से मिलकर उत्प्रेरक पर आती है। उत्प्रेरक अन्य आक्साइडों से मिला हुआ लोहे का आक्साइड होता है। क्रिया परिवर्तकों[1] में सम्पादित होती है। परिवर्तक से निकली गैस प्रवेश करनेवाली गैस का पूर्व-तापन करती है ताकि निकली गैस की ऊष्मा कुछ सीमा तक काम में आ सके। परिवर्तक से निकली गैस में १५ प्रतिशत अमोनिया रहता है। इसे पहले जल से ठंडा करते, और फिर अमोनिया से ठंडा करते हैं। द्रवित अमोनिया को अब अलग कर लेते हैं, बची गैस को फिर अभिनव गैस के साथ मिलाकर परिवर्तक में ले जाते हैं।

द्रव अमोनिया की प्राप्ति के लिए जो ऊष्मा विनिमायक में उपयुक्त होता है एक शीतक संयन्त्र है। इसमें तीन सम्पीडक और तीन अमोनिया संघनित्र रहते हैं जिनसे अमोनिया गैस द्रवित होकर द्रव अमोनिया प्रदान करती है जो अमोनिया-गैस के तरली-करण में प्रयुक्त होता है।

अमोनिया से अमोनियम सल्फेट दो रीतियों से तैयार हो सकता है—

१. अमोनिया पर सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया से;

२. अमोनिया पर जिपसम की क्रिया से।

वस्तुतः दोनों विधियाँ इस कारखाने में साथ-साथ प्रयुक्त होती हैं। द्रव अमोनिया को वाष्पीभूत कर अवशोषक मीनार में ले जाते हैं। यहाँ अमोनिया गैस जल से मिलकर अमोनियम हाइड्राक्साइड बनता है। इस विलयन को फिर सर्पिल किस्म के शीतक में जल द्वारा ठंडा करते हैं। इसे फिर तीन और अवशोषकों में ले जाते हैं जहाँ अमोनियम हाइड्राक्साइड कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण करता है। पहले अवशोषक में जल से ठंडा किया जाता है, अन्य अवशोषकों में द्रव अमोनिया प्रयुक्त होता है।

इस कारखाने में त्रिची से जिपसम आता है। उसे चक्की में पीसते हैं और घूर्णक भट्ठी में सुखाते हैं। चूर्ण ऐसा होना चाहिए कि ४०–अक्षि चलनी से छन जाय। इस चूर्ण को तब श्रेणीबद्ध तीन प्रतिक्रिया-काठ-टंकियों में ले जाते हैं। ये तीनों टंकियाँ एक दूसरे से संबद्ध रहती हैं। एक टंकी के भर जाने पर द्रव दूसरी टंकी में और दूसरी के भर जाने पर तीसरी टंकी में जाता है। प्रथम टंकी में अमोनियम कार्बोनेट को भी ले जाते हैं। प्रत्येक टंकी में प्रक्षुब्ध करने के लिए विलोडक लगा रहता है

[1] Convertor

ताकि गारा (slurry) नीचे बैठ न जाय। द्रव के बहने का वेग ऐसा रखते हैं कि द्रव लगभग पाँच घण्टा एक दूसरे के सम्पर्क में रहे। इतने समय में गारा अन्तिम टंकी में पहुँच जाता है और प्रतिक्रिया प्रायः पूर्णतया सम्पन्न हो जाती है।

इस प्रतिक्रिया में जो गारा बनता है उसमें अमोनियम सल्फेट के विलयन में निलम्बित कैलसियम कार्बोनेट रहता है। इसे लर्गी अविराम छनने (फिल्टर) में छानते हैं जिससे मेघाभ द्रव प्राप्त होता है। फिल्टर प्रेस में छानने से यह बहुत कुछ स्वच्छ हो जाता है। अब स्वच्छ द्रव को संचय-टंकी में ले जाकर रखते हैं। कैल-सियम कार्बोनेट को तोड़कर धो लेते हैं और पानी को नदी में बहा देते हैं।

जब टंकी में विलयन स्वच्छ हो जाता है तब अमोनियम सल्फेट के स्वच्छ विलयन को पम्प करके मणिभीकारक में ले जाते हैं। तीन मणिभीकारक होते हैं जिनमें विल-यन का सान्द्रण और मणिभीकरण होता है। यहाँ उद्वाष्पन के लिए ऊष्मा की आव-श्यकता होती है। उद्वाष्पन निर्वात में होता है। दो रीतियों से इसके लिए ऊष्मा प्राप्त होती है—

१. अमोनिया गैस के सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा उदासीनीकरण से ऊष्मा का निष्का-सन होता है। इस उदासीनीकरण की ऊष्मा उपयुक्त हो सकती है।

२. ऊष्मा विनिमायक में भाप के उपयोग से जो अवशिष्ट भाप बच जाती है उसका उपयोग उद्वाष्पन में किया जा सकता है।

निर्वात के लिए नैश हाइटर वैक्ययम पम्प (Nash Hytor Vacuum Pump) का उपयोग होता है।

तलछट को निकालकर पम्प से केन्द्रापसारक में ले जाते हैं जहाँ से मातृ-द्रव फिर मणिभीकारक में भेज दिया जाता है और मणिभ को सीधे गिराकर घूर्णक टनेल शोषक में सुखाते हैं। इस शोषक में उष्ण वायु के द्वारा मणिभ सुखाया जाता है। यह उष्ण वायु बन्द भाप से गरम की जाती है। सूखे मणिभ को फिर बोरे में बन्द कर नावों या स्टीमर पर चढ़ाकर कोचीन बन्दरगाह को भेज दिया जाता है जहाँ गोदाम में रखा जाता और भिन्न-भिन्न स्थानों को भेजा जाता है।

यहाँ संस्पर्श विधि से सलफ्यूरिक अम्ल तैयार होता है। इसके दो संयन्त्र हैं जिनमें से प्रत्येक में प्रतिदिन ७५ टन अम्ल तैयार होता है। इसके लिए गन्धक अमेरिका से आता है। इसे जलाकर सल्फर डाइ-आक्साइड तैयार कर सलफ्यरिक अम्ल में परिणत करते हैं।

आठवाँ अध्याय

अमोनियम क्लोराइड

नाइट्रोजनीय खादों की माँग दिन-दिन बढ़ रही है। गोबर की खादों में नाइट्रोजन की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। इस कारण घरेलू खादों के साथ-साथ नाइट्रोजनीय उर्वरकों का उपयोग आज अधिकता से हो रहा है। इससे फसलों की पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है। नाइट्रोजनीय उर्वरकों में अमोनियम लवण महत्त्व के हैं। अमोनियम सल्फेट और अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट के उपयोग तो अनेक वर्षों से होते आ रहे हैं। इस देश में अमोनियम सल्फेट की जितनी माँग है उतना अमोनियम सल्फेट बनता नहीं है। आज भी वह बाहर से मँगाया जा रहा है। इस वर्ष कुछ अमोनियम सल्फेट पश्चिमी जर्मनी और रूस से भी मँगाया जा रहा है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि अमोनियम सल्फेट बनने के सिन्दरी सदृश तीन और कारखाने भारत में खुल जायँ तो देश की माँग की पूर्ति हो सकती है। इसका प्रयत्न भी हो रहा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में तीन और कारखाने खोलने का लक्ष्य रखा गया है। आज प्रति वर्ष लगभग ६१०,००० टन नाइट्रोजनीय खाद खपती है। अन्य देशों की अपेक्षा यह मात्रा बहुत कम है। खपत बढ़ाकर अगले पाँच वर्षों में इसको १६ लाख टन करने की योजना बनी है।

अमोनियम सल्फेट के निर्माण में गन्धक या किसी उपयुक्त सल्फेट की आवश्यकता पड़ती है। गन्धक इस देश में नहीं पाया जाता। बलूचिस्तान में कुछ गन्धक मिलता था पर वह अब पाकिस्तान में चला गया है। लोहे के सल्फाइड (आयर्न पिराइटीज़, लौह माक्षिक) से भी गन्धक प्राप्त हो सकता है। भारत में ऐसा सल्फाइड मिलता है पर अभी तक बड़ी मात्रा में उससे सलफ्यूरिक तैयार करने की चेष्टा नहीं हुई है। भारत में सल्फेट पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। ऐसा संचित सल्फेट कब तक मिलता रहेगा इसका ठीक-ठीक पता हमें नहीं है। सम्भव है कि यह सल्फेट सैकड़ों वर्ष तक मिलता रहे; इसके नये-नये निक्षेपों का पता लगता रहे। यह भी सम्भव है कि इसके निक्षेप शीघ्र ही समाप्त हो जायँ। अमोनियम सल्फेट के तैयार करने में भारत में कैलसियम सल्फेट का उपयोग होता है। कैलसियम सल्फेट भारत के

अनेक स्थलों में पाया जाता है। अमोनियम सल्फेट के निर्माण में सहायक एक उप-फल कैलसियम कार्बोनेट भी है जिसका उपयोग आजकल सीमेन्ट बनाने में होता है। सिन्दरी में भी कैलसियम कार्बोनेट का उपयोग सीमेन्ट के लिए करने का प्रयत्न हो रहा है और अब वहाँ सीमेन्ट का कारखाना चालू हो गया है।

अमोनियम सल्फेट के स्थान में यदि अमोनियम क्लोराइड का उपयोग हो तो इसके निर्माण से दो लाभ होंगे। अमोनियम क्लोराइड के तैयार करने में सामान्य लवण (नमक) का उपयोग होता है। नमक अब भारत में प्रचुरता से बनने लगा है। पहले नमक खानों से भी निकलता था पर भारत की समस्त नमक की खानें पाकिस्तान में चली गयी हैं। भारत के तीन ओर समुद्र हैं और समुद्री तटों पर समुद्र-जल से नमक तैयार करने का अब पूरा प्रबन्ध हो गया है इससे अमोनियम क्लोराइड तैयार करने में नमक के अभाव का अब कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता।

नमक से जो अमोनियम क्लोराइड तैयार होता है उसके विशिष्ट लक्षण इस प्रकार के पाये गये हैं—

अमोनियम क्लोराइड,	NH_4Cl	कम से कम	९८·० प्रतिशत
नमक,	$NaCl$	अधिक से अधिक	१·८ प्रतिशत
सोडियम बाइ-कार्बोनेट,	$NaHCO_3$	लगभग	०·४ प्रतिशत
अविलेय अंश		लगभग	०·१ प्रतिशत

अमोनियम क्लोराइड तैयार करने में दूसरा लाभ एक ऐसे उप-फल का प्राप्त करना है जो सामान्य रूप से बड़ा उपयोगी है और जिसकी माँग दिन-दिन बढ़ रही है। यह उप-फल सोडियम बाइ-कार्बोनेट है जिसको उत्तप्त करने से सोडियम कार्बोनेट, 'धोनेवाला सोडा' वाशिंग सोडा, प्राप्त होता है। सोडियम कार्बोनेट बड़ा उपयोगी पदार्थ है। इसका प्रयोग दिन-दिन बढ़ रहा है। इस विधि से जो कार्बोनेट बनता है उसके लक्षण इस प्रकार के होते हैं—

सोडियम कार्बोनेट,	Na_2CO_3		९८·८ प्रतिशत
सोडियम बाइ-कार्बोनेट,	$NaHCO_3$		लेश
सोडियम क्लोराइड,	$NaCl$	अधिक से अधिक	०·६ प्रतिशत
सोडियम सल्फेट,	Na_2SO_4	लगभग	०·०५ प्रतिशत
लोहे का आक्साइड	(Fe_2O_3)		०·००२५ प्रतिशत
जल में अविलेय अंश		लगभग	०·०५ प्रतिशत

वाशिंग सोडा की माँग और खपत आज क्या है और निकट भविष्य में क्या होगी यह निम्नलिखित आँकड़ों से ज्ञात होता है।

उद्योग	आज की माँग टन	निकट भविष्य की माँग टन
काँच	३५,०००	४०,०००
सिलिकेट	१०,०००	१२,०००
वस्त्र-व्यवसाय	६,०००	६,०००
कागज़	४,०००	४,०००
बाइक्रोमेट	३,०००	४,५००
कास्टिक सोडा	६,०००	९,०००
सोडियम बाइ-कार्बोनेट	१,६००	२,८००
अन्य रासायनिक द्रव्य, रंग और पेण्ट	१,०००	१,२००
अन्य मिश्र उपयोग	४,०००	५,०००
धोबी	५०,०००	५५,०००
जोड़	१२०,६००	१३९,५००

अभी वाशिंग सोडे का निर्माण ताता केमिकल्स लिमिटेड और ध्रांगध्रा केमिकल्स लिमिटेड में ९०,००० टन प्रति वर्ष की मात्रा में हो रहा है।

अमोनियम क्लोराइड के निर्माण में जो पदार्थ उप-फल के रूप में प्राप्त होते हैं उनके सामान्य रूप से उपयोगी होने के कारण अमोनियम क्लोराइड का उत्पादन-व्यय अमोनियम सल्फेट के उत्पादन-व्यय से कम हो सकता है। अतः यदि अमोनियम सल्फेट के स्थान में अमोनियम क्लोराइड का उपयोग उर्वरक के रूप में होने लगे तो किसानों को अमोनियम सल्फेट की अपेक्षा एक सस्ता उर्वरक भी प्राप्त होगा।

अब प्रश्न यह है कि मिट्टी की उर्वर शक्ति बढ़ाने और फसलों की पैदावार बढ़ाने में कहाँ तक अमोनियम क्लोराइड का उपयोग हो सकता है? कुछ लोगों का अनुमान है कि कुछ फसलों के लिए क्लोराइड विषाक्त हो सकता है और मिट्टी के कैलसियम की मात्रा में इसके उपयोग से कमी हो सकती है। सामान्यतः अमोनियम क्लोराइड में कुछ नमक भी रहता है। इस नमक की मात्रा दो प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। कुछ लोगों का विचार है कि इस नमक के रहने से भी फसलों को हानि पहुँच सकती है। इस सम्बन्ध में सुझाव दिया गया है कि अमोनियम क्लोराइड के उपयोग के सम्बन्ध में विस्तार से अनुसन्धान होना चाहिए, जिससे निम्नलिखित बातों का ठीक-ठीक पता लग सके——

१. फसलों की पैदावार पर अमोनियम क्लोराइड का क्या प्रभाव पड़ता है?

२. अमोनियम क्लोराइड से मिट्टी की प्रकृति में क्या फर्क पड़ता है? किस

मिट्टी के लिए अमोनियम क्लोराइड उपयुक्त उर्वरक है और किस मिट्टी के लिए अनुपयुक्त ?

३. मिट्टी का कैलसियम कहाँ तक अमोनियम क्लोराइड से कम हो जाता है ?

४. मिट्टी में कहाँ तक क्लोराइड संचित रहता और उसका विषैला प्रभाव कहाँ तक किस-किस पौधे पर पड़ता है ?

५. मिट्टी की भौतिक दशा और गुण में अमोनियम क्लोराइड से कहाँ तक परिवर्तन होता है ?

६. अमोनियम क्लोराइड में उपस्थित दो प्रतिशत लवण का फसलों पर कहाँ तक प्रभाव पड़ता है ?

७. भारत की मिट्टी के लिए अमोनियम क्लोराइड कहाँ तक उपयुक्त उर्वरक है ?

भारत के अनेक कृषि-फार्मों में अमोनियम क्लोराइड की उपयोगिता पर आज अनुसन्धान हो रहे हैं, जिनमें निम्नलिखित फार्म अधिक महत्त्व के हैं---

१. सेन्ट्रल राइस रिसर्च इन्स्टिट्यूट, कटक
२. सेन्ट्रल पोटैटो रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पटना
३. इण्डियन इन्स्टिट्यूट आफ शुगरकेन रिसर्च, लखनऊ
४. सेन्ट्रल टुबैको रिसर्च इन्स्टिट्यूट, राजमुन्द्री
५. सेन्ट्रल कोकोनट रिसर्च इन्स्टिट्यूट, कसरगोड
६. इन्स्टिट्यूट आफ प्लैण्ट इन्डस्ट्री, इन्दौर
७. टौकेलाइ एक्सपेरिमेण्टल स्टेशन ऑफ इण्डियन टी एसोशियेशन, सीनामारा
८. जूट एग्रिकल्चरल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, बैरेकपुर
९. ड्रग रिसर्च इन्स्टिट्यूट लैबोरेटरी, जम्मू

बिहार कृषि विभाग की ओर से १९५५–५६ में अमोनियम क्लोराइड के अनेक प्रयोग फसलों के प्रभाव पर हुए हैं। उत्तर प्रदेश के अनेक फार्मों में भी ऐसे प्रयोग हुए हैं। अभी तक ईख, छींटा धान, रोपा धान, मकई, गेहूँ, अरहर, चना, ज्वार, मडुआ, मिर्च, आलू, तम्बाकू, जूट, टमाटर, बैगन, प्याज, गोभी, मूली, शलगम, चाय इत्यादि फसलों पर प्रयोग हुए हैं। कुछ प्रयोग आम, लीची, नीबू, अमरूद, केला, पपीता, बेर, कटहल इत्यादि फल-वृक्षों पर भी हुए हैं। कुछ प्रयोगों में केवल अमोनियम क्लोराइड, कुछ में अमोनियम क्लोराइड और फास्फेट तथा कुछ में अमोनियम क्लोराइड, फास्फेट और पोटाश उर्वरक साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं।

सन् १९५६ में आगरे में इण्डियन सायंस कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर इण्डियन सोसायटी आफ सायंस की बैठक में अमोनियम क्लोराइड के उर्वरक के रूप

में उपयोग पर अनेक निबन्ध पढ़े गये थे। इन निबन्धों का संग्रह 'जर्नल आफ इण्डियन सोसायटी आफ सायन्स' के मार्च महीने के अंक में प्रकाशित हुआ है। उन निबन्धों का सारांश यहाँ दिया जा रहा है।

जापान में उर्वरक के रूप में अमोनियम क्लोराइड का उपयोग बहुत दिनों से होता आ रहा है। वहाँ इसके निर्माण की दो कम्पनियाँ पहले से कार्य कर रही हैं और इसका उत्पादन तेज़ी से बढ़ रहा है, जैसा कि नीचे लिखे आँकड़ों से पता लगता है।

वर्ष	उत्पादन मेट्रिक टन में
१९५०	२४,०००
१९५१	२४,०००
१९५२	२४ ०००
१९५३	४२,०००
१९५४	६६,०००
१९५५	७२,०००
१९५६	१०३,०००
१९५७	२९२,०००

जापान के अनेक कृषि-फार्मों में अमोनियम क्लोराइड की उर्वरक के रूप में उपयोगिता पर प्रयोग हुए हैं। आजकल पर्याप्त मात्रा में किसानों द्वारा इसका उपयोग हो रहा है। पैदावार के सम्बन्ध में विभिन्न फार्मों से जो परिणाम प्राप्त हुए हैं उनसे यह पता लगता है कि धान की खेती के लिए अमोनियम क्लोराइड अमोनियम सल्फेट से निकृष्ट नहीं है। कुछ फार्मों में अमोनियम क्लोराइड से पैदावार बहुत ही अच्छी हुई है। सन् १९५५ में जिस जापानी किसान, जोराकु, को सबसे अधिक धान उपजाने का प्रथम पुरस्कार मिला था, उसकी पैदावार फी एकड़ ८१९९ पौण्ड थी और नाइट्रोजनीय खादों में उसने अमोनियम क्लोराइड का ही उपयोग किया था। अमोनियम क्लोराइड के साथ-साथ पोटाश और फास्फेटों के उपयोग से पैदावार अपेक्षया और स्पष्ट रूप से बढ़ी हुई पायी गयी है। हाराडा (Harada) ने सन् १९५२ में यह मत व्यक्त किया था कि पैदावार बढ़ाने में अमोनियम सल्फेट और अमोनियम क्लोराइड सामान्य रूप से समर्थ हैं। सन् १९५४ में उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि अमोनियम क्लोराइड से अनाज और पयाल दोनों में वृद्धि होती है।

ए० डी० देसाई ने हैदराबाद की काली मिट्टी पर राजेन्द्रनगर के फार्म में अमो-

नियम क्लोराइड के उपयोग पर जो प्रयोग किये हैं उनसे निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं —

१. अमोनियम सल्फेट, अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट और अमोनियम क्लोराइड का प्रभाव, वर्षा से सींचे हुए गेहूँ, कपास और ज्वार पर प्रायः एक-सा ही होता है। इन तीनों की समान मात्रा के अलग-अलग उपयोग से पैदावार में विशेष अन्तर नहीं पाया गया है। बिना उर्वरक दिये खेत से पैदावार अवश्य ही बढ़ी हुई पायी गयी है।

२. पानी से भरे धान के खेत में सोडियम नाइट्राइट का उपयोग विशेष लाभप्रद नहीं सिद्ध हुआ है। पानी भरे खेत के लिए सोडियम नाइट्रेट बिलकुल अनुपयुक्त है। अमोनियम सल्फेट और अमोनियम क्लोराइड का प्रभाव अच्छा पड़ता है, प्रायः एक-सा पाया गया है। इन दोनों के प्रभाव में विशेष अन्तर नहीं देखा गया है। यह परिणाम केवल ३ या ४ फसलों पर किये गये प्रयोगों पर निर्भर करता है। अमोनियम क्लोराइड के लम्बे अरसे के उपयोग से फसलों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इस पर कोई निर्णय देने का अभी समय नहीं आया है। धान की पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है जब एक एकड़ भूमि में अमोनियम क्लोराइड के ४५ पौण्ड नाइट्रोजन के साथ-साथ फास्फरसीय खाद का भी प्रयोग हुआ था।

राजेन्द्रनगर (हैदराबाद) के कृषिक्षेत्र में पानी भरी हुई काली मिट्टी में धान की पैदावार का उत्पादन

वर्ष और मौसम	पैदावार प्रति एकड़ पौण्ड में			प्रति एकड़
	अमोनियम सल्फेट	अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट	अमोनियम क्लोराइड	
१९५२-५३ (जून से नवम्बर)	७१२	६५०	७८१	नाइट्रोजन (N) ४५ पौण्ड, फास्फरस $(P\ O_5)$ २५ पौण्ड
१९५२-५३ (दिसम्बर से मार्च)	९७६	९६१	९९४	नाइट्रोजन (N) ४५ पौण्ड, फास्फरस (P_2O_5) ४५ पौण्ड
१९५३-५४ (जून से नवम्बर)	२७५६	२७२५	२५६३	नाइट्रोजन (N) ४५ पौण्ड, फास्फरस $(P\ O_5)$ ९० पौण्ड

एम० वी० वच्छानी और एम० बी० राव ने उड़ीसा, कटक में स्थित "सेन्ट्रल राइस रिसर्च इन्स्टिट्यूट" में अमोनियम क्लोराइड की उपयोगिता के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये हैं। इन दोनों से पहले राय चौधुरी और घोष ने भी इसी सम्बन्ध में प्रयोग किये थे। प्रति एकड़ भूमि में २० पौण्ड नाइट्रोजनीय खाद (अमोनियम क्लोराइड के रूप में) देने से बिना खाद दिये खेत की अपेक्षा पैदावार १९·४ प्रतिशत बढ़ी हुई पायी गयी थी, जबकि अमोनियम सल्फेट के रूप में उतनी ही नाइट्रोजनीय खाद से पैदावार २१·५ प्रतिशत बढ़ी हुई पायी गयी। कटक में सन् १९५३ से ही अमोनियम क्लोराइड पर प्रयोग होते चले आ रहे हैं। वहाँ विभिन्न उर्वरकों का उपयोग हुआ है। नाइट्रोजन की मात्रा किसी प्रयोग में प्रति एकड़ २० पौण्ड और किसी प्रयोग में प्रति एकड़ ४० पौण्ड थी। प्रयोगों के परिणाम निम्नांकित हैं—

खेत में प्रति एकड़ धान की औसत पैदावार (पौण्ड में)

नाइट्रोजनीय खाद	१९५३–५४	१९५४–५५	१९५५–५६	औसत पैदावार	उत्पादन प्रतिशत
	(क) बिना खाद के				
नियंत्रण प्रयोग	२७९९	१७००	१५९८	२०३२	१००
	(ख) प्रति एकड़ २० पौण्ड नाइ-ट्रोजन उर्वरक				
अमोनियम सल्फेट	२८४४	२४०८	२१८८	२४८०	१२२·०
अमोनियम क्लोराइड	२५६१	२५६८	२०६७	२३९९	११८·१
यूरिया	२२९१	२१३६	१८३३	२०८७	१०२·७
अमोनियम नाइट्रेट	२९३२	२१६१	१७७८	२२९०	११२·७
	(ग) प्रति एकड़ ४० पौण्ड नाइ-ट्रोजन उर्वरक				
अमोनियम सल्फेट	२६००	२९५६	२६९३	२७५०	१३५·३
अमोनियम क्लोराइड	२३६७	३०३७	२५९३	२६६६	१३१·२
यूरिया	२४४०	२५०४	२३८९	२४४४	१२०·३
अमोनियम नाइट्रेट	२६२७	२१७८	२२४१	२३४९	११५·६

इन प्रयोगों में प्रति एकड़ २० और ४० पौण्ड नाइट्रोजन का उपयोग हुआ है। ४० पौण्ड नाइट्रोजन के उपयोग से पैदावार स्पष्ट रूप से बढ़ी हुई पायी गयी, यद्यपि अमोनियम सल्फेट और अमोनियम क्लोराइड के उपयोग से कोई विशेष अन्तर नहीं पाया गया है।

ईख

ईख की खेती में अमोनियम क्लोराइड के रूप में नाइट्रोजनीय उर्वरक का क्या प्रभाव पड़ता है; इस पर बिहार के शुगरकेन रिसर्च इन्स्टिटट्यूट, पूसा में प्रयोग हुए हैं। बिहार में ईख के अधिकांश खेतों में बरसात के दो तीन महीनों तक पानी भरा रहता है। बरसात शुरू होने से पहले सामान्यत: अमोनियायी उर्वरक को खेतों में डालकर मिट्टी को उलट-पलट कर छोड़ देते हैं। इस प्रकार अमोनियम वाले उर्वरकों के डालने से ईख पर क्या प्रभाव पड़ता है, किस गुण का रस प्राप्त होता है, ईख में कीड़े लगने और रोग होने से बचने में क्या सहायता मिलती है; इसका विस्तार से अध्ययन हुआ है।

प्रयोगों में मिट्टी को उटकेरने के समय अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम सल्फेट, अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट और यूरिया को अलग-अलग टुकड़ों में प्रयुक्त करते हैं। भिन्न-भिन्न किस्म की मिट्टी पर भी अलग-अलग प्रयोग हुए हैं। इनसे जो परिणाम अब तक निकले हैं वे इस प्रकार हैं—

१. पैदावार—अ-चूर्णीय मिट्टी में अमोनियम क्लोराइड से पैदावार स्पष्टत: बढ़ी हुई पायी गयी है। चूर्णीय मिट्टी[1] में पैदावार अमोनियम सल्फेट से अच्छी होती है। लवणमय चूर्णीय मिट्टी में पैदावार में दोनों के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं देखा गया है।

२. रस की प्रकृति—रस के गुण में अमोनियम क्लोराइड और अमोनियम सल्फेट से कोई विशेष अन्तर नहीं देखा गया है। पर चूर्णीय मिट्टी में यदि नाइट्रोजन की मात्रा प्रति एकड़ ४० और ८० पौण्ड रहे तो अमोनियम सल्फेट से रस में कुछ निकृष्टता अवश्य देखी जाती है।

३. कीड़ा और रोग—वेधक आक्रमण[2], चूर्णीय और लवणमय चूर्णीय मिट्टी में दोनों उर्वरकों से वेधक का आक्रमण एक-सा होता हुआ देखा गया है।

[1] Calcareous soil [2] Borer incidence

४. पीरिला आक्रमण[1]—अमोनियम सल्फेट के व्यवहार से पीरिला आक्रमण कुछ अधिक होता हुआ, विशेषतः चूर्णीय मिट्टी में, पाया गया है।

५. श्वेत-मक्खी कष्ट[2]—श्वेत-मक्खी-कष्ट दोनों से एक-सा होता हुआ पाया गया है।

६. दोनों से ही कोई विशेष रोग न होता हुआ पाया गया है।

उत्तर प्रदेश के १४ कृषिफार्मों में सन् १९५६–५७ में ईख पर अमोनियम क्लोराइड के प्रभाव के प्रयोग हुए हैं।

गेहूँ

गेहूँ की पैदावार पर अमोनियम क्लोराइड का अन्य अमोनियम लवणों की तुलना में क्या प्रभाव पड़ता है; इसका अध्ययन पंजाव के करनाल फार्म में हुआ है। जिस मिट्टी पर इस प्रभाव का अध्ययन हुआ है वह इस प्रकार की थी —

		प्रतिशतता
उत्ताप पर हानि		६·३२०
समस्त नाइट्रोजन		०·१०६
HCl में विलेय	P_2O_5	०·०८९
HCl में विलेय	K_2O	०·९७३
HCl में विलेय	CaO	१·०२३
HCl में विलेय	MgO	०·८१६
प्राप्य P_2O_5 (१% साइट्रिक अम्ल में विलेय)		०·०१२
उपलब्ध K_2O		०·००८
पी एच		७·१

इन प्रयोगों में जिस अमोनियम क्लोराइड का उपयोग हुआ उसका संगठन इस प्रकार था —

नाइट्रोजन (अमोनियावाला)	२५·८१ प्रतिशत
क्लोराइड	६६·२० प्रतिशत

[1] Pyrilla incidence [2] White-fly infestation

सोडियम क्लोराइड	१·६२ प्रतिशत
नमी	०·०८ प्रतिशत

अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट का संगठन इस प्रकार था—

नाइट्रोजन (अमोनियावाला)	१९·६२ प्रतिशत
नाइट्रोजन (नाइट्रेटवाला)	६·५४ प्रतिशत
समस्त नाइट्रोजन	२६·१६ प्रतिशत
नमी	०·३० प्रतिशत

गेहूँ की पैदावार के परिणाम इस प्रकार प्राप्त हुए हैं—

उपचार	प्रति एकड़ पैदावार मन में	
	सन् १९५३–५४	१९५४–५५
अमोनियम क्लोराइड		
२० पौण्ड नाइट्रोजन प्रति एकड़	२४·७७	१९·९
४० पौण्ड नाइट्रोजन प्रति एकड़	२३·८६	२१·५३
अमोनियम सल्फेट-नाइट्रेट		
२० पौण्ड नाइट्रोजन प्रति एकड़	२२·५०	१७·८०
४० पौण्ड नाइट्रोजन प्रति एकड़	२४·३१	२१·९२
अमोनियम सल्फेट		
२० पौण्ड नाइट्रोजन प्रति एकड़	२२·४५	१८·८९
४० पौण्ड नाइट्रोजन प्रति एकड़	२४·७०	२१·०८
बिना खाद के	१६·९०	११·०२

ऊपर के अंकों से स्पष्ट है कि उर्वरक देने से पैदावार बहुत बढ़ जाती है। अमोनियम क्लोराइड के प्रति एकड़ २० पौण्ड नाइट्रोजन से, पहले साल की प्राप्ति अन्य सब लवणों के प्रयोग की अपेक्षा अधिक होती है। प्राय: वैसा ही परिणाम ४० पौण्ड अमोनियम सल्फेट के नाइट्रोजन से प्राप्त होता है।

मकई

मकई और मड़ुए पर अमोनियम क्लोराइड के प्रभाव का अध्ययन पटना के फील्ड एक्सपेरिमेण्टल सर्विस फार्म में हुआ है। अनेक खेतों के छोटे-छोटे टुकड़ों में एक ही समय बीज बोये गये, उनमें एक ही समय और समान मात्रा में उर्वरक डाला गया और फसल की कटाई एक ही समय हुई। पैदावार निम्नांकित है—

मकई की औसत पैदावार

उपचार	अमोनियम क्लोराइड से प्रति एकड़ मन में		अमोनियम सल्फेट से प्रति एकड़ मन में	
	औसत पैदावार	बिना खादवाले से वृद्धि	औसत पैदावार	बिना खाद-वाले से वृद्धि
कन्ट्रोल	६·१५	०·००	५·१९	०·००
नाइट्रोजन २० पौण्ड प्रति एकड़	११·७०	५·५५	५·८६	४·६७
नाइट्रोजन ५० पौण्ड प्रति एकड़	१३·५५	७·४०	१२·८१	७·६२
नाइट्रोजन २५ पौण्ड फास्फरस २० पौण्ड (P_2O_5) (सिंगल सुपर फास्फेट)	१४·५०	८·३५	१२·११	६·९२
नाइट्रोजन २५ पौण्ड फास्फरस ४० पौण्ड (P_2O_5) (सिंगल सुपर फास्फेट)	१६·७०	१०·५५	१४·०८	८·८९
नाइट्रोजन २५ पौण्ड फास्फरस २० पौण्ड (सुपर-फास्फेट) पोटैसियम २० पौण्ड (पोटेसियम क्लोराइड के रूप में)	१५·७०	९·६०	१४·००	८·८१

इन अंकों से मालूम होता है कि अमोनियम क्लोराइड से पैदावार अधिक अवश्य होती है पर अमोनियम क्लोराइड और अमोनियम सल्फेट के प्रभाव में अधिक अन्तर नहीं है। फास्फरस के साथ अमोनियम क्लोराइड नाइट्रोजन का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। पैदावार की वृद्धि स्पष्ट देख पड़ती है।

नयी जलोढ (alluvial) मिट्टी पर अमोनियम सल्फेट और अमोनियम क्लोराइड में विशेष अन्तर नहीं देखा गया है, पर पुरातन जलोढ मिट्टी पर अमोनियम क्लोराइड का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। लेटेराइट (laterite) मिट्टी पर अमोनियम सल्फेट का प्रभाव अमोनियम क्लोराइड से अधिक प्रभावशाली है, पर फास्फेट की उपस्थिति में अमोनियम क्लोराइड का श्रेष्ठतर प्रभाव अधिक स्पष्ट है।

मड़ुआ (रागी)

मडुए पर जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि प्रति एकड़ २० पौण्ड नाइट्रोजन संतल पर उर्वरक देने से अमोनियम क्लोराइड और अमोनियम सल्फेट का प्रभाव प्रायः एक-सा ही होता है, पर अधिक मात्रा में, प्रति एकड़ ५० पौण्ड नाइट्रोजन उर्वरक देने से अमोनियम सल्फेट का प्रभाव श्रेष्ठतर है। फास्फेट के साथ मिलाकर देने से अमोनियम क्लोराइड से उतनी अच्छी पैदावार नहीं प्राप्त होती जितनी अच्छी अमोनियम सल्फेट के साथ फास्फेट देने से होती है। लेटेराइट मिट्टी में अमोनियम क्लोराइड से अमोनियम सल्फेट श्रेष्ठ है, पर पुरातन जलोढ मिट्टी में २५ पौण्ड नाइट्रोजन से अमोनियम क्लोराइड स्पष्ट रूप से अच्छा सिद्ध हुआ है। ५० पौण्ड नाइट्रोजन से ठीक इसका उलटा परिणाम प्राप्त हुआ है।

जूट

बैरकपुर में जूट पर प्रयोग हुए हैं। नाइट्रोजन वाली खादों में अमोनियम लवणों से जूट पर अन्य उर्वरकों की अपेक्षा अच्छा प्रभाव पड़ता है। पर ऐसा देखा गया है कि अमोनियम सल्फेट के बार-बार उपयोग से जूट के पौधों में रोग हो जाता है। अमोनियम क्लोराइड के उपयोग पर जो प्रयोग अब तक हुए हैं उनसे मालूम होता है कि प्रति एकड़ ३० पौण्ड नाइट्रोजन के संतल पर अमोनियम क्लोराइड अमोनियम सल्फेट से श्रेष्ठतर है, पर इस परिणाम की पुष्टि की आवश्यकता है। अनेक वर्षों के प्रयोगों से ही इसकी पुष्टि हो सकती है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत है कि जो फसल क्लोरीन से क्षतिग्रस्त होती है उसके लिए अमोनियम क्लोराइड अच्छा नहीं है। जो फसल क्लोरीन को सहन कर सकती है उसके लिए यह अच्छा है। रसेल (१८३२) का मत है कि आलू के लिए अमोनियम क्लोराइड से अमोनियम सल्फेट श्रेष्ठतर है। तम्बाकू के लिए भी अमोनियम क्लोराइड अच्छा नहीं है, पर जौ के लिए अमोनियम क्लोराइड ही श्रेष्ठतर है। स्किनर और बुई का (१९२६) मत है कि कपास की खेती के लिए दोनों एक-से हैं। धान के लिए अमोनियम क्लोराइड सर्वश्रेष्ठ है। अमोनियम क्लोराइड से मिट्टी का अम्लीय प्रभाव अधिक होता है; ऐसा कुछ लोगों का मत है और यह प्रमाण पर आधारित है।

बिहार की पूसा ईख अनुसन्धानशाला में अमोनियम क्लोराइड और अमोनियम सल्फेट का ईख के प्रभाव पर तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। इनके साथ-साथ सुपरफास्फेट और पोटेसियम क्लोराइड का भी व्यवहार हुआ है। कुछ प्रयोग सन् १९५५–

५६ में किसानों के खेतों में भी हुए हैं। उर्वरक का व्यवहार प्रति एकड़ २०, ४० और
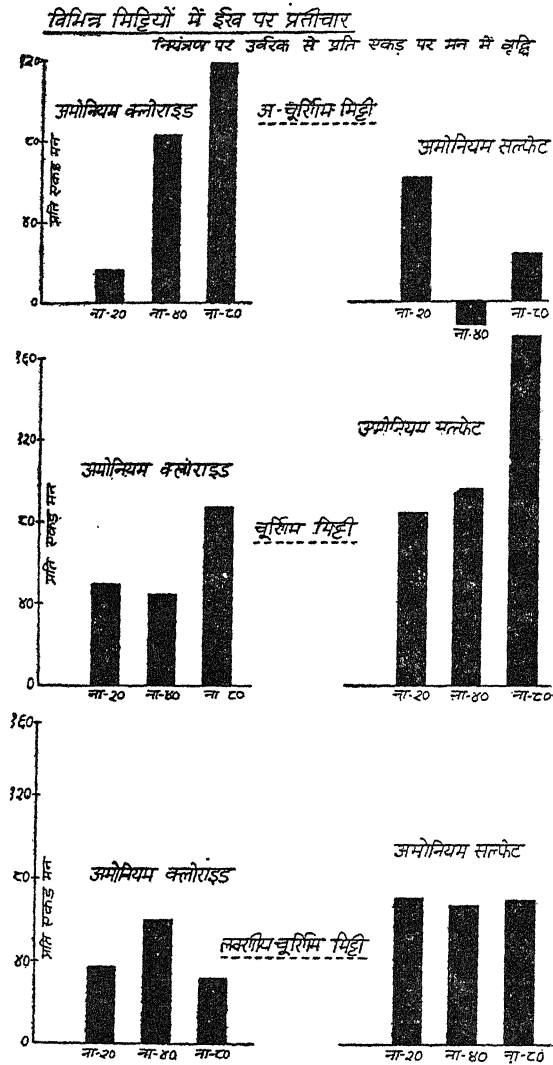
चित्र १९—अमोनियम क्लोराइड और अमोनियम सल्फेट का ईख पर तुलनात्मक अध्ययन

६० पौण्ड के साथ हुआ है। इससे जो परिणाम प्राप्त हुए हैं वे पिछले पृष्ठ में दिये हुए चित्र में दरसाये गये हैं (पृ० १३८ भी देखिए)।

अमोनियम क्लोराइड का निर्माण

अमोनियम क्लोराइड में २५·५ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। पर व्यापार के अमोनियम क्लोराइड़ में २४ प्रतिशत से अधिक नाइट्रोजन नहीं पाया जाता। नाइ-ट्रोजन की यह मात्रा अमोनियम सल्फेट में उपस्थित नाइट्रोजन की मात्रा से ५ प्रति-शत अधिक है।

'साल एमोनिएक' या 'नौसादर' के नाम से इसका ज्ञान बहुत प्राचीन है। इसे एक समय 'अमोनिया का म्युरिएट' भी कहते थे और वह नाम अब भी किसी-किसी पुस्तक में प्रयुक्त होता है। अमोनियम क्लोराइड की भौतिक दशा ऐसी रहती है कि सुपर फास्फेट और पोटाश खादों के साथ यह सरलता से मिश्रित हो जाता है और उससे पिण्ड नहीं बनता।

प्राचीन काल में ऊँटों की मेंगनी को जलाने से जो कजली बनती थी उसी से नौसा-दर प्राप्त होता था। कुछ स्थानों में विशेषकर 'एटना' में इसके निक्षेप पाये गये थे और वहाँ से कुछ वर्षों तक लवण निकाला जाता था।

अमोनिया और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के सीधे संयोग से अमोनियम क्लोराइड प्राप्त हो सकता है। पर यह विधि कुछ महँगी पड़ती है। आजकल इसके निर्माण की विधि कुछ सुधार के साथ वही है जो वाशिंग सोडा (सोलवे विधि) के निर्माण में प्रयुक्त होती है। यह विधि बहुत कुछ उस विधि से मिलती-जुलती है जिससे सिन्दरी उर्वरक कारखाने में आजकल अमोनियम सल्फेट तैयार होता है।

अमोनियम क्लोराइड तैयार करने का एक बड़ा कारखाना, जैसा कि हम पृ० ७८ में लिख आये हैं, वाराणसी और मोगलसराय के बीच खुल गया है। यह स्थान ग्रैण्ड ट्रंक रोड से प्रायः दो मील दक्खिन-पच्छिम में है। कारखाने का नाम 'साहु केमिकल्स' है। अपने किस्म का यह भारत में पहला ही कारखाना है। इसमें प्रति दिन १२० टन अमोनियम क्लोराइड (उर्वरक किस्म का) और १२० टन वाशिंग सोडा (हलका और भारी सोडा ऐश) साथ-साथ तैयार होंगे। इस कारखाने में प्रति दिन—१५० टन नमक, १२० टन कोयला ८० टन कोक, ८१०,००० गैलन जल और १२०,००० किलोवाट बिजली लगेगी।

यह कारखाना ४ करोड़ रुपये की लागत से ५०० बीघे भूमि पर निर्मित हुआ है। इसकी प्रमुख मशीनें जर्मनी से मँगायी गयी हैं। उनकी प्ररचना में पर्याप्त

संशोधन और संवर्धन भारतीय इंजीनियरों की सहायता से किया गया है। कारखाने की विशेषता यह है कि इसके दोनों ही उत्पाद, सोडा ऐश और अमोनियम क्लोराइड, उपयोगी और बहुमूल्य हैं।

इस कारखाने में जो विधि प्रयुक्त होती है वह हालैण्ड के लिम्बर्ग के एक इन्जीनियरिंग कारखाने का पेटेण्ट है। इस विधि का पूर्ण विकास द्वितीय विश्वयुद्ध काल में जर्मनी में हुआ था। जापान में इसी विधि से आज अमोनियम क्लोराइड का निर्माण हो रहा है। इस विधि से प्राप्त अमोनियम क्लोराइड अन्य सब विधियों से प्राप्त अमोनियम क्लोराइड से सस्ता होता है।

इस विधि में नमक से क्लोरीन प्राप्त होता है। वायु से नाइट्रोजन और जल से हाइड्रोजन प्राप्त होकर अमोनियम क्लोराइड बन जाता है। अमोनिया बनाने की रीति वही है जिससे सिन्दरी कारखाने में अमोनिया बनता है। नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के मिश्रण पर प्रति वर्गइंच पर ६४०० पौण्ड दबाव में हाइड्रोजन और नाइट्रोजन के संयोग से अमोनिया बनता है। ऐसा अमोनिया तब ऐसे पात्र में जाता है जहाँ नमक का विलयन रखा रहता है। उसी पात्र में एक मार्ग से अमोनिया आता और दूसरे मार्ग से कार्बन डाइ-आक्साइड आता है। इन पदार्थों—नमक विलयन, अमोनिया और कार्बन डाइ-आक्साइड के बीच क्रिया होकर अमोनियम क्लोराइड और सोडियम बाइ-कार्बोनेट बनते हैं। यहाँ जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं वे इस प्रकार की हैं—

(१) $N_2 + 3H_2 = 2NH_3$
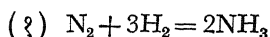
यह संश्लेषण प्रति वर्गइंच पर ६४०० पौण्ड दबाव से होता है।

(२) $NaCl + NH_3 + CO_2 + H_2O = NH_4Cl + NaHCO_3$

नमक + अमोनिया + कार्बन डाइ-आक्साइड + जल = अमोनियम क्लोराइड + सोडियम बाइ-कार्बोनेट

(३) $2\ NaHCO_3 = Na_2CO_3 + CO_2 + H_2O$
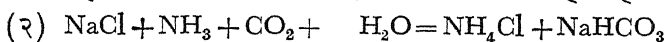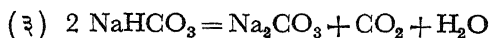
(Na_2CO_3 = वाशिंग सोडा)

सोडियम बाइ-कार्बोनेट विलयन में अविलेय होता है, इस कारण वह अवक्षिप्त होकर निकल जाता है। छानकर उसे निकाल लेते हैं। विलयन में अमोनियम क्लोराइड का संतृप्त विलयन और नमक का प्राय: ३० प्रतिशत रह जाता है। यदि अमोनियम क्लोराइड से अमोनिया प्राप्त करना है तो सीधे इस विलयन में चूना डालकर आसवन करते हैं। अमोनिया निकल जाता है और कैलसियम क्लोराइड तथा नमक रह जाता है।

यदि अमोनियम क्लोराइड के मणिभ प्राप्त करने हों तो विलयन को सान्द्रित कर ठंडा करते हैं। अब मणिभ पृथक् हो जाते हैं। ऐसे मणिभ का विश्लेषण पूर्व अध्याय में दिया गया है। इसके निर्माण के विभिन्न क्रमों का ज्ञान यहाँ दिये अनुक्रम रेखा-चित्र द्वारा सरलता से हो जाता है।

चित्र २०—अमोनियम क्लोराइड और सोडा ऐश विधि का अनुक्रम प्रदर्शन

अमोनियम क्लोराइड से मणिभ के पृथक् हो जाने पर जो मातृ-द्रव रह जाता है उसमें फिर अमोनिया और कार्बन डाइ-आक्साइड प्रवाहित करते हैं। यहाँ अर्ध-जल गैस से कार्बन डाइ-आक्साइड प्राप्त होता है। अर्ध-जल गैस का कार्बन मनॉक्साइड लौह-उत्प्रेरक की उपस्थिति में भाप की क्रिया से कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है। अब और सोडियम बाइ-कार्बोनेट अवक्षिप्त हो जाता और केन्द्रापसरण द्वारा द्रव से अलग कर लिया जाता है। सोडियम बाइ-कार्बोनेट के उत्तापन से सोडा ऐश या सोडा भस्म प्राप्त होता है। ऐसे सोडा-भस्म का विश्लेषण पहले दिया हुआ है।

इस विधि में अनेक लाभ हैं। इसमें नमक की मात्रा कम, एक टन सोडा भस्म के उत्पादन में १·२५ टन लगती है, जब कि अन्य विधियों में दो टन नमक लगता है। इस विधि में कार्बन डाइ-आक्साइड के लिए चूना-पत्थर की आवश्यकता नहीं होती। सोडियम बाइ-कार्बोनेट के उत्तापन से जो कार्बन डाइ-आक्साइड प्राप्त होता है उसी से काम चल जाता है। इस विधि से प्राप्त अमोनियम क्लोराइड सस्ता इस कारण पड़ता है कि इसके उपजात (उप-उत्पाद) के रूप में सोडियम कार्बोनेट से बहुत कुछ दाम निकल आता है। यही कारण है कि अमोनियम क्लोराइड अमोनियम सल्फेट से सस्ता पड़ता है।

सन् १९५९ से यह कारखाना कार्य करने लगा है। दूसरे वर्ष में इसका उत्पादन दुगुना हो जायगा; नाइट्रोजन का २०,००० टन और सोडा ऐश का ४०,००० टन। तीसरे वर्ष से जब रिहंद से विद्युत-शक्ति प्राप्त होने लगेगी तब कारखाने का पूर्ण वार्षिक उत्पादन, नाइट्रोजन उर्वरक का ४०,००० टन और सोडा ऐश का १२०,००० टन हो जायगा। अमोनियम क्लोराइड और सोडा ऐश से प्रायः साढ़े चार करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत होगी। कारखाने से प्रायः एक हजार व्यक्तियों को जीविका प्राप्त होगी। ४०,००० टन नाइट्रोजन उर्वरक के उपयोग से खाद्यान्नों की उपज में लगभग ३३,६०,००० मन की वृद्धि होगी।

अमोनियम क्लोराइड के अन्य लाभों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

१. धान की खेती के लिए एक उत्कृष्ट कोटि का उर्वरक प्राप्त होता है। इससे धान की जड़ों को क्षति नहीं पहुँचती, अमोनियम सल्फेट से धान की जड़ें क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। पानी के कारण अमोनियम सल्फेट का अवकरण होकर सल्फाइड बनता है। यह सल्फाइड ही जड़ों को क्षतिग्रस्त कर पैदावार को कम कर देता है।

२. अमोनियम क्लोराइड अपेक्षया अल्प अम्लीय उर्वरक है। इससे क्षारीय मिट्टी की पारगम्यता बढ़ जाती है, क्योंकि मिट्टी का क्षार क्लोरीन के साथ मिलकर क्लोराइड बनता है, जो जल में घुलकर सरलता से बहकर निकल जाता है, जिससे पारगम्यता बढ़ जाती है।

३. अमोनियम क्लोराइड से घास-पात और पयालों में क्लोराइड की मात्रा बढ़ जाती है। इन्हें खाने से पशुओं के स्वास्थ्य में सुधार होता है। ऐसी शाकसब्जी से मनुष्य को भी लाभ होता है।

४. कुछ विशेष पौधों के लिए क्लोराइड लाभकारी होता है। अमोनियम क्लोराइड के व्यवहार से उन्हें सरलता से क्लोराइड प्राप्त हो जाता है। क्लोराइड

से तन्तुवाले पौधों के तन्तु बड़े हो जाते हैं और जौ सदृश पौधों का पयाल अधिक दृढ़ होता है।

५. अमोनियम क्लोराइड में गन्धक या कोई सल्फेट नहीं प्रयुक्त होता। गन्धक या सल्फेट नमक से महँगे होते हैं। इस कारण अमोनियम क्लोराइड सस्ता होता है। अभी तक खाद के लिए इसका उपयोग इस कारण नहीं होता था कि यह महँगा पड़ता था। पर अब सस्ता प्राप्त होने के कारण इसका उपयोग बढ़ रहा है। इसके विशेष सस्ता होने का कारण यह है कि इसका उपजात वाशिंग सोडा पर्याप्त महँगा होता है।

नवाँ अध्याय

अन्य अकार्बनिक नाइट्रोजनीय उर्वरक

शोरा

शोरा पोटेसियम नाइट्रेट है। पोटेसियम नाइट्रेट में पौधों के पोषण के लिए दो आवश्यक तत्त्वों, पोटेसियम और नाइट्रोजन के रहने से खाद के लिए इसका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। भारत में मिट्टी से शोरा तैयार होता है। चिली के कालिके के परिष्कार से उप-उत्पाद के रूप में भी शोरा प्राप्त होता है। जर्मनी में पोटेसियम क्लोराइड पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से शोरा प्राप्त होता है। विलयन में अमोनिया के रहने से अमोनिया क्लोराइड भी बनता है। नारवे में समुद्र के जल से पोटेसियम नाइट्रेट प्राप्त हुआ है।

भारत में मिट्टी से शोरा तैयार करने का वर्णन पोटाश खाद प्रकरण में हुआ है। मिट्टी में शोरा देने से पोषक तत्त्वों को प्रदान करने के साथ-साथ मिट्टी की अम्लता दूर होती और वह क्षारीय हो जाती है। कुछ फसलें क्षारीय मिट्टी में अच्छी उपजती हैं। ऐसी फसलों के लिए शोरा अच्छी खाद है।

पोटेसियम नाइट्रेट में नाइट्रोजन प्रायः १४ प्रतिशत रहता है। यह आर्द्रताग्राही नहीं होता पर अपद्रव्यों के कारण जल का अवशोषण कर सकता है। इसके उपयोग के सम्बन्ध में अन्यत्र पोटासीय खाद प्रकरण में बताया गया है।

कैलसियम नाइट्रेट

कैलसियम नाइट्रेट को 'नारवे का शोरा' भी कहते हैं। वायु-शोरा (air saltpetre) के नाम से शुरू में यह बिकता था। चूना-पत्थर पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से अथवा चूने पर नाइट्रोजन के आक्साइडों की क्रिया से यह प्राप्त हो सकता है।

$$CaCO_3 + 2HNO_3 = Ca(NO_3)_2 + H_2O + CO_2$$
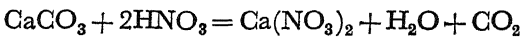
चूना-पत्थर के स्थान में यदि डोलोमाइट का उपयोग हो तो उत्पाद में कुछ मैगनीशियम नाइट्रेट भी रहता है।

शुद्ध कैलसियम नाइट्रेट का मणिभीकरण जल्द नहीं होता। मणिभीकरण जल्द होने के लिए विलयन में प्रायः ५ प्रतिशत अमोनियम नाइट्रेट डाल देते हैं। स्वच्छ विलयन को सम्पीडित वायु द्वारा सुखा भी लेते हैं। आज केवल नारवे में कैलसियम नाइट्रेट बनता और प्रधानतया यूरोपीय देशों में प्रयुक्त होता है। अन्य देशों में अल्प मात्रा में ही बनता है पर अमेरिका तथा अन्य देशों में प्रयुक्त नहीं होता। वास्तव में इसकी उपयोगिता सीमित है।

शुद्ध कैलसियम नाइट्रेट बड़ा आर्द्रताग्राही होता है। हाथ से छूने से भी यह द्रव बन जाता है। इसे आर्द्रताग्राही होने के कारण ही लकड़ी के वायुरुद्ध पीपों में बन्द कर बेचा जाता था। आज भी खेतों में डालने के पूर्व यह मिट्टी या जीर्णकी धूल या इसी प्रकार के अन्य पदार्थों के साथ मिला लिया जाता है। कभी-कभी इसके साथ **चूना** भी मिलाते हैं। चूना मिलाने से नाइट्रोजन की मात्रा कम हो जाती है। पोटेसियम सल्फेट और मैगनीशियम सल्फेट के साथ मिलाकर भी यह बेचा जाता है। इससे इसकी भौतिक दशा सुधर जाती है।

बाजारों में बिकनेवाला कैलसियम नाइट्रेट आजकल दानेदार होता है। पहले वह धूल सा चूरा होता था। चूरेदार कैलसियम नाइट्रेट से चमड़े पर फफोले पड़ जाते थे। दानेदार नाइट्रेट से फफोले नहीं पड़ते।

व्यापार का कैलसियम नाइट्रेट प्रायः सफेद या कुछ पीलेपन के साथ सफेद होता है। इसकी क्रिया क्षारीय होती है। यह जल में बहुत विलेय होता है। इसके संस्पर्श से जूते सिकुड़ जाते हैं। सिकुड़न रोकने के लिए जूतों में ग्रीज़ लगा लेते हैं। शुद्ध कैलसियम नाइट्रेट में १७ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। व्यापार के नाइट्रेट में नाइट्रोजन १५·५ प्रतिशत रहता है। इसमें १६ प्रतिशत जल-विलेय कैलसियम और ७ प्रतिशत जल-विलेय मैगनीशियम रहता है। कैलसियम नाइट्रेट आजकल टाट के बने बोरे में, जिसमें कागज का अस्तर एस्फाल्ट से जोड़ा रहता है, बिकता है, ताकि वह सूखा रहे और वायु की आर्द्रता को ग्रहण नहीं करे।

कैलसियम नाइट्रेट के नाइट्रोजन को पौधे जल्दी ग्रहण करते हैं। इसका प्रभाव अन्य नाइट्रोजनीय उर्वरकों के समान ही होता है। जिन फसलों को कैलसियम की भी आवश्यकता पड़ती है उनके लिए यह बहुत अच्छी खाद है। कुछ मिट्टियों के लिए, विशेषतः क्षारीय और चूर्णीय मिट्टियों के लिए, यह अच्छा पाया गया है। फ्रांस में कैलसियम नाइट्रेट और मैगनीशियम नाइट्रेट का मिश्रण बिकता है, जिसका संघटन ऊपर दिया हुआ है।

कैलसियम नाइट्रेट को खेतों में हाथों से बिखेरते हैं अथवा ड्रिल से डालते हैं। यदि फसलों पर बिखेरना हो तो ऐसे समय बिखेरना चाहिए जब पत्ते सूखे रहें।

भीगे पत्तों पर पड़ने से वह चिपका रह सकता है और इससे पत्ते सूख या मर जा सकते हैं। जब खेतों में बिखेरना हो तब ही बोरे को खोलना चाहिए। ४० प्रतिशत वायु की आर्द्रता तक यह सूखा रहता है और सरलता से हाथों से बिखेरा जा सकता अथवा ड्रिलों से डाला जा सकता है। यदि आर्द्रता ५० प्रतिशत हो तो यह गीला हो जाता और तब चिपकने के कारण ड्रिलों से नहीं डाला जा सकता। आर्द्रता ६० प्रतिशत होने से यह बिलकुल तरलीभूत हो जाता है। आर्द्रताग्राही होने के कारण अन्य उर्वरकों के साथ मिलाकर यह बेचा नहीं जाता। खेतों में डालने के समय इसे अन्य उर्वरकों के साथ तत्काल मिलाकर इस्तेमाल करने से कोई नुकसान नहीं है।

नाइट्रिक अम्ल

नाइट्रेटों के निर्माण में नाइट्रिक अम्ल लगता है। आजकल नाइट्रिक अम्ल वायुमंडल के नाइट्रोजन और आक्सिजन से प्राप्त होता है। पहले सोडियम नाइट्रेट पर सलफ्यूरिक अम्ल की प्रतिक्रिया से प्राप्त होता था। वायु के नाइट्रोजन और आक्सिजन से नाइट्रिक अम्ल तैयार करने की दो रीतियाँ हैं, एक बर्कलैण्ड-आइड विधि और दूसरी अमोनिया-आक्सीकरण विधि। बर्कलैण्ड-आइड विधि अब पुरानी पड़ गयी है। यह अब उपयोग में नहीं आती, केवल ऐतिहासिक महत्त्व की ही रह गयी है। अमोनिया-आक्सीकरण विधि ही आज प्रयुक्त होती है और इसीसे व्यापार का नाइट्रिक अम्ल तैयार होता है।

बर्कलैण्ड-आइड विधि

क्रूक्स ने पहले-पहल १८९८ में दिखलाया था कि विद्युत-चाप के ऊँचे ताप पर वायु के नाइट्रोजन और आक्सिजन मिलकर आक्साइड बनते हैं। उन्होंने १९०० में मांचेस्टर में एक छोटा कारखाना भी खोला पर वह सफल नहीं हुआ। इस विधि का विकास नारवे में हुआ जहाँ जल-विद्युत से बड़ी सस्ती बिजली प्राप्त होती है।

इस विधि में पानी से ठंडे किये गये ताम्र-विद्युत्-द्वारों के बीच विद्युत-चाप उत्पन्न किया जाता है। चाप को विद्युत-चुम्बक द्वारा मण्डलक (Disc) में फैलाते हैं जिससे चिपटा वृत्ताकार भ्राष्ट्र प्राप्त होता है। ऐसे भ्राष्ट्र का ताप ३०००° से ३५००° से० होता है। इसी चाप-भ्राष्ट्र में होकर वायु को खींचते हैं। इस ऊँचे ताप पर नाइट्रोजन आक्सिजन के साथ मिलकर नाइट्रिक आक्साइड (NO) बनता है।

$$N_2 + O_2 \rightarrow 2NO$$
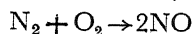
३२००° से० पर जो साम्य स्थापित होता है उसमें (आयतन में) ५ प्रतिशत तक NO रह सकता है। साधारणतया NO का केवल २ प्रतिशत रहता है। १५००°
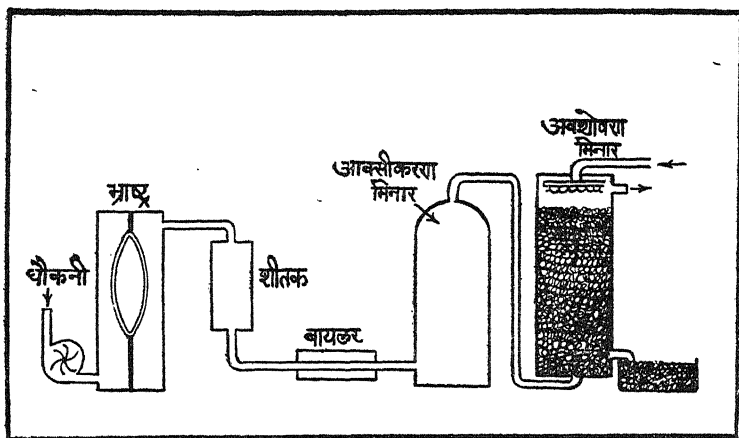
चित्र २१—चापविधि द्वारा वायु से नाइट्रिक अम्ल तैयार करने का संयन्त्र

से० पर केवल ०·४ प्रतिशत NO रहता है। ज्यों ही गैस बने, उसे जल्द से जल्द निकाल डालना अच्छा होता है, नहीं तो उसका विच्छेदन हो सकता है। १०००° से० पर NO की मात्रा केवल एक प्रतिशत रहती है।

चाप-भ्राष्ट्र में बनी गैसों को शीघ्र से शीघ्र भ्राष्ट्र से निकालकर ईंटों के अस्तर-लगे लोहे के नल द्वारा नलवाले बायलर के चूल्हे में ले जाते हैं। वहाँ ताप गिरकर १५०° से० पहुँच जाता है। बायलर में भाप बनती है। इस भाप से ही विलयन का उद्वाष्पन करते हैं। फिर गैसों को अलुमिनियम के नलों में ले जाकर ५०° से० तक ठंडा करते हैं।

जब गैस का ताप ६००° से० पहुँचता है तब नाइट्रिक आक्साइड आक्सिजन के साथ मिलकर नाइट्रोजन पेराक्साइड, NO_2 बनता है।

$$2\,NO + O_2 = 2\,NO_2$$
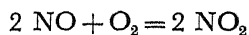
यह क्रिया अपेक्षया मन्द होती है क्योंकि यहाँ तीन अणुओं के बीच क्रिया होती है, जैसा कि ऊपर के समीकरण से प्रकट होता है। ये गैसें लोहे की बड़ी-बड़ी आक्सीकरण मीनारों में जाती हैं। साधारणतया ऐसी मीनारें चार होती हैं, ऊँचाई ६५ से ८० फुट और व्यास १५ फुट होता है। मीनारें ग्रेनाइट पत्थर की बनी होती हैं। उनमें स्फ-

टिक के टुकड़े भरे रहते हैं। ऊपर से स्फटिक पर पानी गिरता है और उससे नाइट्रिक अम्ल तथा नाइट्रिक आक्साइड बनते हैं।

$$2\ NO_2 + H_2O \rightarrow HNO_3 + HNO_2$$

$$3\ HNO_2 \rightarrow HNO_3 + H_2O + NO$$
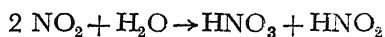
नाइट्रिक आक्साइड फिर वायु के आक्सिजन को लेकर नाइट्रोजन पेराक्साइड बनता है। यह क्रम चलता रहता है। पहली मीनार में प्राप्त नाइट्रिक अम्ल की प्रबलता ३० प्रतिशत रहती है। अन्तिम मीनार से प्राप्त दुर्बल अम्ल को पम्प द्वारा अन्य मीनारों में ले जाकर ऊपर से गिराने में इस्तेमाल करते हैं।

यदि तनु नाइट्रिक अम्ल को सीधे चूना-पत्थर पर ले जायँ तो 'कैलसियम नाइट्रेट' प्राप्त हो सकता है। यदि मन्द अम्ल को सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल के साथ आसुत करें तो सान्द्र नाइट्रिक अम्ल प्राप्त होता है।

कुछ समय के बाद गैसें बड़ी हलकी हो जाती हैं। ऐसी हलकी हो जाती हैं कि उनका आक्सीकरण बड़ा मन्द हो जाता है। अन्त की अवशोषण मीनार से निकली गैसों में कुछ NO और NO_2 अनवशोषित रह जाता है। प्रायः ८५ प्रतिशत गैसें अवशोषित हो जाती हैं। अनवशोषित गैस को फिर एक और मीनार में ले जाते हैं। इस मीनार में भी स्फटिक भरा रहता है और ऊपर से सोडियम कार्बोनेट का मन्द विलयन टपकता है। इससे गैसों और सोडियम कार्बोनेट के बीच क्रिया होकर सोडियम नाइट्राइट और अल्प सोडियम नाइट्रेट बनते हैं।

$$NO + NO_2 = N_2O_3$$

$$N_2O_3 + 2NaOH = 2NaNO_2 + H_2O$$
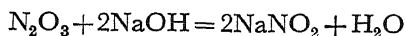
इस प्रकार सारा नाइट्रोजन का आक्साइड निकल आता है।

इस विधि का दोष यह है कि बिजली का खर्च बहुत अधिक होता है। पूँजी भी अधिक लगती है। साइनाइड विधि से नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में जितनी बिजली खर्च होती है उससे पाँचगुना अधिक बिजली इस विधि में खर्च होती है। इस दोष के होते हुए भी स्कैण्डीनेविया में इस विधि से ही नाइट्रिक अम्ल तैयार होता है क्योंकि वहाँ जल-विद्युत बड़ी सस्ती बनती है।

अमोनिया-आक्सीकरण विधि

मिलनर ने १७८८ ई० में देखा था कि तप्त मैंगनीज़ डाइ-आक्साइड पर अमोनिया के प्रवाहित करने से लाल धुआँ बनता है जो जल में घुलकर नाइट्रिक अम्ल में परिणत हो जाता है। फ्रांसीसी रसायनज्ञ कुहलमान (Kuhlmann) ने १८३९

में देखा कि अमोनिया को वायु के साथ मिलाकर प्लैटिनम पर प्रवाहित करने से **अमोनिया का आक्सीकरण** होता है। इससे जो वर्णहीन गैस बनती है उसे ठंडा करने से वह लाल हो जाती है। इसके लाल होने का कारण नाइट्रोजन पेराक्साइड का बनना है।

$$4\ NH_3+5O_2=4NO+6H_2O \quad 2NO+O_2=2NO_2$$
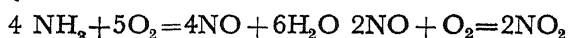
सबसे अधिक सन्तोषप्रद परिणाम तब प्राप्त होता है जब गैस को बड़ी शीघ्रता से प्लैटिनम उत्प्रेरक पर प्रवाहित करते हैं। यदि गैस का प्रवाह मन्द हो तो अधिक असंयुक्त नाइट्रोजन रह जाता है। यदि गैस का सम्पर्क ०·००१४ सेकंड हो तो ९५ प्रतिशत अमोनिया आक्सीकृत हो जाता है। प्लैटिनम बहुत महीन तार-जाली के रूप में रहना चाहिए। इसकी सूक्ष्मता रेशम रेशे की जैसी होनी चाहिए। प्लैटिनम तार-जाली का पूर्व-तापन बिजली द्वारा कर लेते हैं। सक्रियकरण (activation) की वृद्धि के लिए पहले गैस-मिश्रण में अमोनिया की मात्रा अधिक रखते हैं। सक्रियकरण के लिए यह आवश्यक नहीं कि अमोनिया की मात्रा अधिक ही रहे। सामान्य मिश्रण को भी कुछ घण्टों तक प्लैटिनम तार पर प्रवाहित करने से उसका सक्रियकरण हो जाता है।

अमोनिया का आक्सीकरण परिवर्तक[1] में होता है। जोन्स-पारसन परिवर्तक में एक सिलिन्डर होता है जिसका व्यास ९ इंच और पार्श्व में १३ इंच होता है। यह लटका हुआ रहता है ताकि इसका लम्बा अक्ष (एक्सिस) उर्ध्वाधार रहे। इसके नीचे का सूराख सिलिका से बन्द रहता है।

गैस-मिश्रण ऊपर से प्रविष्ट हो कर नीचे तार-जाली द्वारा जाता है। तार-जाली के छेद ०·००३ इंच व्यास के और प्रति इंच में ८०—अक्षि वाले होते हैं। गैस मिश्रण में अमोनिया और शुद्ध वायु रहती है। प्रति आयतन अमोनिया का ७·५ आयतन वायु रहती है। गैस मिश्रण को ५००° से० तक पूर्व-तापन कर परिवर्तक में प्रविष्ट कराते हैं। यहाँ जो प्रतिक्रिया होती है वह ताप-क्षेपक होती है। तार-जाली का ताप उठकर १०२५° से० पहुँच जाता है। परिवर्तक में दो प्लैटिनम की तार-जालियाँ रहती हैं। यदि तार-जाली एक वर्गफुट की हो तो उससे २४ घण्टे में ७ टन नाइट्रिक अम्ल बन सकता है।

आधुनिकतम परिवर्तक का प्रकोष्ठ अलुमिनियम का बना होता है। यहाँ ही गैसें मिश्रित होती हैं। परिवर्तक से निकली आक्सीकृत गैसें उष्मा-विनिमायक में

[1] Converter

होकर अवशोषण मीनार में प्रविष्ट होती हैं जिसमें जल और दुर्बल अम्ल प्रतिधारा सिद्धान्त पर गिरता रहता है। नाइट्रिक आक्साइड का यहाँ ही आक्सीकरण हो
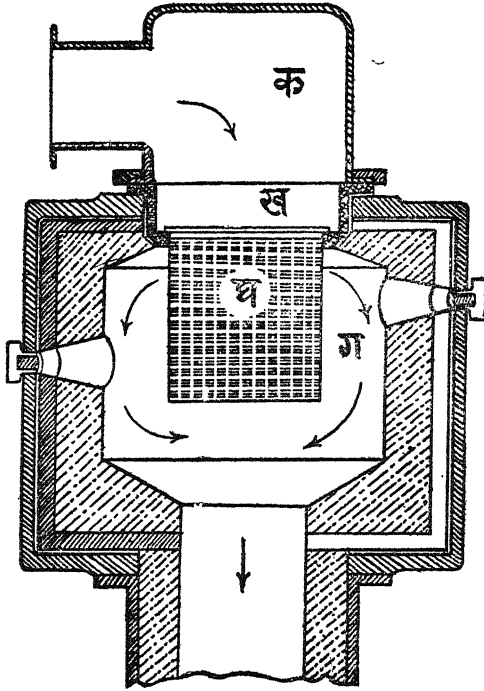
चित्र २२--केमिको-अमोनिया आक्सीकरण परिवर्त्तक

'क' एल्यूमिनियम का बना मिश्रक प्रकोष्ठ

'ख' निकेल का बना जालीधारक

'ग' प्लैटिनम की जाली

'घ' ठोस सिलिका-पट्ट

नाइट्रोजन पेराक्साइड बनता है। जल में घुलकर वह नाइट्रिक अम्ल और नाइट्रिक आक्साइड वनता है।

$$3\ NO_2 + H_2O = 2HNO_3 + NO$$
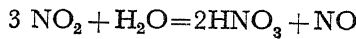
NO फिर आक्सीकृत हो NO_2 बनता है। अवशोषण मीनार से ५० प्रतिशत प्रबलता का अम्ल प्राप्त होता है।

उपर्युक्त समस्त क्रियाएँ वायु के सामान्य दबाव पर सम्पादित होती हैं। इससे लाभ यह होता है कि अवशोषण-मीनारें सीमेण्ट या ग्रेनाइट पत्थर से बन सकती हैं। ऊँचे दबाव के लिए क्रोम-लोह मीनार की आवश्यकता पड़ती है जो बहुत महँगा होता है।

उपर्युक्त प्रतिक्रियाएँ ऊँचे दबाव पर भी, १०० वायुमण्डल दबाव पर, सम्पादित हो सकती हैं। ऊँचे दबाव के लिए परिवर्तक क्रोम-लोह मिश्र धातु का और अवशोषण-मीनार भी मिश्र धातु की होनी चाहिए ताकि ऊँचे दबाव को वे सह सकें। ऐसे संयन्त्र के कुछ लाभ भी हैं। ४० फुट ऊँचे और ५½ फुट व्यास के पट्ट-मीनारवाले परिवर्तक से २५ टन नाइट्रिक अम्ल प्रति दिन तैयार हो सकता है। सामान्य वायुदबाव पर इतने ही अम्ल के उत्पादन के लिए ४ बर्नर और १० मीनारों की आवश्यकता पड़ेगी। प्रत्येक ख़ाने (shelf) पर पट्ट-मीनार को कूपजल से ठंडा करना पड़ता है। गैस-मिश्रण का ९३ प्रतिशत ऊँचे दबाव पर परिवर्तित हो जाता है और ६१ प्रतिशत प्रबलता का अम्ल प्राप्त होता है।

निम्न दबाव प्रतिक्रिया में प्रति मास ५ प्रतिशत की गति से प्लैटिनम का ह्रास होता है। यदि प्रतिक्रिया का ताप ऊँचा हो तो, यद्यपि दक्षता बढ़ जाती है पर, ह्रास की मात्रा भी बढ़ जाती है। यदि प्लैटिनम में १० प्रतिशत रोडियम मिला हो तो ह्रास घटकर आधा हो जाता है।

आक्सीकरण अधिक होने के लिए अमोनिया का शुद्ध होना आवश्यक है। आसवन से शुद्ध अमोनिया प्राप्त होता है। गैस छनी हुई और वायु का धूल से पूर्ण रूप से मुक्त रहना आवश्यक है।

अवशोषण मीनार से ५० से ६० प्रतिशत प्रबलता का अम्ल प्राप्त होता है। अनेक कामों के लिए यह पर्याप्त प्रबल होता है। यदि इसे नाइट्रीकरण के लिए इस्तेमाल करना है तो अधिक सान्द्र बनाना पड़ता है। उर्वरक के निर्माण के लिए सान्द्र अम्ल की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आक्सीकृत गैस-मिश्रण को सीधे चूने के दूध में ले जाने से कैलसियम नाइट्रेट प्राप्त हो सकता है। यहाँ क्रिया इस प्रकार होती है—

$$2\,Ca(OH)_2 + 2N_2O_4 = Ca(NO_3)_2 + Ca(NO_2)_2 + 2H_2O$$
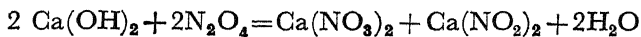
समस्त चूने के उदासीन हो जाने पर नाइट्रोजन के आक्साइडों से कैलसियम नाइट्राइट का विच्छेदन होकर नाइट्रोजन के आक्साइड बनते हैं जिन्हें चूने के दूधवाली मीनार में ले जाने से वे अवशोषित हो जाते हैं।

$$Ca(NO_2)_2 + 2HNO_3 = Ca(NO_3)_2 + NO + NO_2 + H_2O$$
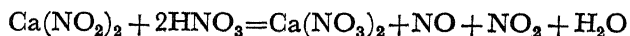
यदि आक्सीकरण पात्र से निकली आक्सीकृत गैसों में वायु मिलाकर अमोनिया को खींचें तो उससे ठोस अमोनियम नाइट्रेट का चूरा सीधे प्राप्त हो सकता है।

$$4NO_2 + O_2 + 2H_2O + 4NH_3 = 4NH_4NO_3$$
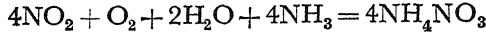
कैलसियम साइनेमाइड

कैलसियम साइनेमाइड अनेक नामों से, ऐरो-साइनेमाइड (aerocyanamide), लाइम-नाइट्रोजन, नाइट्रोलिम (nitrolim) और नाइट्रोलाइम (nitro-lime) आदि नामों से बाजारों में बिकता है। नाइट्रोजनीय खादों के ४ से ५ प्रतिशत की पूर्ति कैलसियम साइनेमाइड से होती है। पहले-पहल १९०१ में इसका व्यवहार उर्वरक के रूप में शुरू हुआ था, १९१० तक व्यापक हो गया और १९२५ तक नाइट्रोजनीय उर्वरकों में यह सबसे सस्ता था।

कैलसियम साइनेमाइड का निर्माण

इसके निर्माण की विधि का विकास जर्मनी में फ्रैंक और कैरो (Frank and Caro) द्वारा १८९७ से १९०५ के बीच हुआ। इसके विकास का श्रेय रौथ और फ्रायडेनबर्ग (Rothe and Freudenburg) को भी दिया जाता है जो फ्रैंक और कैरो के सह-कार्यकर्ता थे। प्रयोगशालाओं में यह पहले-पहल १८९८ में बना था। कैलसियम साइनेमाइड को अमोनिया में परिणत करने का पेटेंट फ्रैंक ने १९०० में लिया था। उर्वरक के रूप में इसके उपयोग की प्रथम चेष्टा १९०१ में हुई। निर्माण का पहला कारखाना १९०५ में जर्मनी के मागडेनबर्ग (Magdenburg) के निकट वेस्टेरेगेलन (Westeregelen) में बना। दूसरा कारखाना १९०६ में इटली के पियानो-डीओर्टो में और तीसरा कारखाना प्रशा के ब्रैमबर्ग में १९०८ में और चौथा कारखाना बवेरिया के ट्रौस्टबर्ग में १९०९ में खुला था। फिर तो संसार के अनेक भागों में इसके कारखाने खुले।

इसके निर्माण की विशेषता यह है कि इसमें बिजली बहुत कम खर्च होती है। इसका कच्चा माल कोयले और चूना-पत्थर हैं जो सब स्थान पर सस्ते मिलते हैं। यह ठोस दशा में प्राप्त होता है; जैसा प्राप्त होता है वैसा ही बिकता है। यह सरलता से अमोनिया में परिणत हो जाता है।

इसके निर्माण के चार क्रम हैं—

१. पहले क्रम में चूना-पत्थर को चूने में परिणत करते हैं। यह काम ऊर्ध्वाधर अथवा घूर्णक भट्ठी में लगभग ११००° से० पर होता है।

$$CaCO_3 + \text{उष्णता} = CaO + CO_2$$
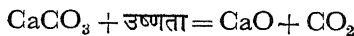
२. दूसरे क्रम में चूने को विद्युत्-भाष्ट्र में कोयला या कोक के साथ गरम करते हैं जिससे कैलसियम कारबाइड बनता है।

$$CaO + 3C = CaC_2 + CO$$
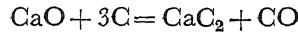
३. तीसरे क्रम में वायु का तरलीकरण करते हैं। वायु के प्रभाजित आसवन से शुद्ध नाइट्रोजन प्राप्त होता है।

४. चौथे क्रम में महीन पीसे हुए कारबाइड को शुद्ध नाइट्रोजन के साथ लगभग १०००° से० पर उपचारित करते हैं जिससे कैलसियम साइनेमाइड प्राप्त होता है।

$$CaC_2 + N_2 = CaCN_2 + C$$
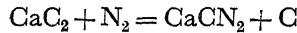
उत्तर अमेरिका में इसके निर्माण का कारखाना पहले-पहल १९०५ में बना था। कनाडा के नायगरा प्रपातों में पहला कारखाना खुला था। फिर और भी कारखाने अमेरिका में खुले। आज कैलसियम साइनेमाइड के निर्माण के लगभग ५० संयन्त्र संसार के विभिन्न देशों में लगे हुए हैं। इन कारखानों से लगभग ६००,००० मेट्रिक टन साइनेमाइड प्रति वर्ष तैयार होता है। भारत में साइनेमाइड के निर्माण का कोई कारखाना अभी नहीं खुला है। ऐसा कारखाना खुलने के पहले कैलसियम कारबाइड का कारखाना खुलना चाहिए। भारत में पाँच हजार से सात हजार टन कैलसियम कारबाइड बाहर से आता है जिसका मूल्य २६ लाख से ३५ लाख रुपया होता है।

कैलसियम साइनेमाइड के गुण

शुद्ध कैलसियम साइनेमाइड सफेद होता है। व्यापार का कैलसियम साइनेमाइड असंयुक्त कार्बन के कारण काला होता है। शुद्ध साइनेमाइड में ३५ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। यूरोप में मिलनेवाले व्यापार के साइनेमाइड में १० से २० प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। अमेरिकी साइनेमाइड में नाइट्रोजन २०·६ प्रतिशत रहता है।

अमेरिकी कैलसियम साइनेमाइड का औसत संघटन निम्नलिखित है—

	प्रतिशतता
कैलसियम साइनेमाइड	४५·९२
कैलसियम कार्बोनेट	४·०४
कैलसियम सल्फाइड़	१·७३
कैलसियम फास्फाइड	०·०४
कैलसियम हाइड्राक्साइड	२६·६०
असंयुक्त कार्बन	१३·१४

लोहे का आक्साइड और अलुमिना	१·९८
सिलिका	१·६२
मैगनीशिया	१·१५
संयुक्त जल	३·१२
मुक्त जल	०·३५
अनिश्चित	१·३१

विभिन्न नमूनों में अपद्रव्यों की मात्रा विभिन्न रह सकती है।

बाजारों में बिकनेवाला कैलसियम साइनेमाइड चूरा या दानेदार होता है। चूरा साइनेमाइड़ मजबूत दोहरे बोरों में बिकता है ताकि उसकी धूल निकलकर नष्ट न हो जाय। धूल को कम करने के लिए उस पर तेल से चिकनाहट कर देते हैं। ऐसी धूल सरलता से ड्रिल द्वारा खेतों में डाली जा सकती है। धूल में बाँधनेवाला कुछ पदार्थ मिलाकर दानेदार बनाते हैं। यह दानेदार अधिक पसन्द किया जाता है। सूखे सुपर-फास्फेट के साथ यह किसी भी अनुपात में मिलाया जा सकता है। सुपर-फास्फेट के साथ मिलाने के लिए चूरा अच्छा नहीं होता।

कैलसियम साइनेमाइड के रखे रहने से उसमें वृद्धि होती है। रिचार्डसन की रिपोर्ट है कि २७ महीने रखने से प्रायः १० प्रतिशत की वृद्धि होती है। वृद्धि का कारण जल और कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण है। इससे तल पर पपड़ी पड़ जाती है और आयतन तथा भार बढ़ जाते हैं। जल से कैलसियम साइनेमाइड पर रासायनिक क्रिया होकर कैलसियम हाइड्रोजन साइनाइड और कैलसियम हाइड्राक्साइड बनते हैं। ऐसे जल की मात्रा १००° से० तक गरम करने से निर्धारित नहीं हो सकती क्योंकि यह जल असंयुक्त न रहकर रासायनिक रीति से संयुक्त रहता है।

संग्रह पर परिवर्तन

कैलसियम साइनेमाइड के बहुत दिनों तक, एक वर्ष या इससे अधिक, रखने से साइनेमाइड का ह्रास होता है। इससे एक विषैला पदार्थ डाइसाइनो-डाइ-एमाइड बन सकता है। इसीसे कैलसियम साइनेमाइड का बोरा तभी खोलना चाहिए जब उसे इस्तेमाल करना हो। जहाँ तक हो सके उसे जल और वायु से दूर ही रखना चाहिए।

कभी-कभी कैलसियम साइनेमाइड से अमोनिया की मन्द गन्ध निकलती है। साइनेमाइड के कार्बन में अमोनिया अवशोषित रहता है। वही धीरे-धीरे निकलता है। कैलसियम साइनेमाइड में धातुओं का अल्प नाइट्राइड भी रहता है। कैलसियम कारबाइड के निकालने में जब जल डाला जाता है तब नाइट्राइड भी विच्छेदित होकर

अमोनिया निकालता है। यह अमोनिया कार्बन में अवशोषित रह जाता है। यही अमोनिया धीरे-धीरे निकलकर मन्द गन्ध उत्पन्न करता है।

मिट्टी पर कैलसियम साइनेमाइड का प्रभाव

मिट्टी में कैलसियम साइनेमाइड डालने से तीन प्रकार के प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं—(१) मिट्टी के जल के साथ मिलकर कैलसियम साइनेमाइड घुल जाता है। (२) कैलसियम साइनेमाइड फिर हाइड्रोजन साइनेमाइड मुक्त करता है। (३) मुक्त साइनेमाइड मिट्टी के साथ मिलकर उदासीन अथवा अम्लीय अवस्था में यूरिया में परिणत हो जाता है। यदि मिट्टी क्षारीय है तो वह डाइसाइनो-डाइ-एमाइड ($HN : C (NH_2) NH. CN$) बन सकता है। एलिसन (१९२९) की रिपोर्ट है कि कैलसियम साइनेमाइड के विच्छेदन से डाइसाइनो-डाइ-एमाइड और यूरिया ये ही दो प्राथमिक उत्पाद बनते हैं। अधिक आर्द्र मिट्टी में यूरिया ही बनता है। क्रियाएँ निम्नलिखित समीकरणों से प्रकट होती हैं—

$$2CaCN_2 + 2\,H_2O = Ca(OH)_2 + Ca(HCN_2)_2$$
$$2Ca\,(HCN_2)_2 + 2H_2O = (CaOH)_2CN_2 + 3H_2CN_2$$
$$H_2CN_2 + H_2O = CO(NH_2)_2$$
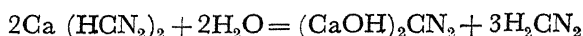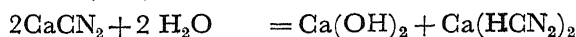
कैलसियम साइनेमाइड की अधिकता से निम्नलिखित प्रभाव भी उत्पन्न हो सकते हैं।

१. विलेय कैलसियम फास्फेट अविलेय कैलसियम डाइफास्फेट और सम्भवतः अविलेय कैलसियम ट्राइफास्फेट में परिणत हो सकता है।

२. अन्य उर्वरकों के साथ मिलाने से इतनी उष्णता उत्पन्न हो सकती है कि डाइ और ट्राइ-फास्फेट के बनने में तीव्रता आ जाय। ६०° से० पर यह क्रिया अधिक तीव्रता से होती है।

३. डाइसाइनो-डाइ-एमाइड अधिक बन सकता है।

यूरिया पर जीवाणुओं की क्रिया से अमोनियम कार्बोनेट बनता है।

$$CO(NH_2)_2 + 2\,H_2O = (NH_4)_2CO_3$$
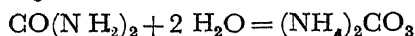
अमोनियम कार्बोनेट के नाइट्रेटीकरण से नाइट्रिक अम्ल बनता है जो चूना-पत्थर के साथ मिलकर कैलसियम नाइट्रेट और अन्य धातुओं के लवणों से अन्य नाइट्रेट भी बनता है।

यूरिया का बनना २ से ७ दिनों में होता है। यदि मिट्टी महीन है, कैलसियम साइनेमाइड महीन है और मिट्टी में आर्द्रता विद्यमान है तो क्रिया जल्द सम्पादित हो

जाती है। अन्यथा समय कुछ अधिक लगता है। यह परिवर्तन कैलसियम साइनेमाइड की मात्रा पर भी निर्भर करता है।

यूरिया बनता है या डाइसाइनो-डाइ-एमाइड बनता है यह मिट्टी की पी एच अवस्था पर निर्भर करता है। यदि मिट्टी का पी एच ७·० या इससे कम है तो सदा ही यूरिया बनता है। यदि मिट्टी स्पष्ट क्षारीय है तो यूरिया और डाइसाइनो-डाइ-एमाइड दोनों बनते हैं। यदि मिट्टी का पी एच ८ या ८ से ऊपर है तो डाइसाइनो-डाइ-एमाइड अधिक बनता है। साधारणतया मिट्टी का पी एच ७·० से नीचे ही रहता है, इससे यूरिया का ही उत्पादन सम्भव है। विसामान्य दशा में ही डाइसाइनो-डाइ-एमाइड बनता है। ऐसा तभी होता है जब कैलसियम साइनेमाइड मिट्टी के साथ भलीभाँति मिला नहीं रहता अथवा चूने की मात्रा किसी कारण से बहुत अधिक रहती है। कभी-कभी ग्वेनील-यूरिया ($H_2N.\ NH : CNH.\ CONH_2$) भी बनता है।

उर्वरक मिश्रण

साइनेमाइड को अन्य उर्वरकों के साथ मिलाने से कोई नुकसान नहीं होता। मिश्रण तब भी सूखा और चूर्णीय रहता है और ड्रिल द्वारा सरलता से वितरित किया जा सकता है।

कुछ उर्वरक जल के कारण पिंड बनते हैं। सुपर-फास्फेट असंयुक्त अम्ल के कारण पिंड बनता है। पिंड बनना रोकने के लिए सुपर-फास्फेट में कुछ अन्य पदार्थ, चूना-पत्थर, जिपसम आदि, डालते हैं। कैलसियम साइनेमाइड को सुपर-फास्फेट के साथ मिलाने से फिर अन्य किसी पदार्थ के डालने की ज़रूरत नहीं रह जाती। सुपर फास्फेट के असंयुक्त अम्ल को साइनेमाइड का चूना उदासीन बना देता है।

एक टन सुपर-फास्फेट में ३० से ६० पौण्ड पीसे हुए कैलसियम साइनाइड से सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त हुआ है। इतने साइनेमाइड से इतनी उष्णता उत्पन्न होती कि उससे मिश्रण सूख ज़ाता और अच्छी दशा में रहता है। अधिक डालने से सुपर-फास्फेट में परिवर्तन हो सकता है। प्रति टन ७५ से १०० पौण्ड तक कभी-कभी इस्तेमाल हुआ है। इतनी मात्रा उसी दशा में प्रयुक्त होती है जब अन्य उर्वरक, सूखी मछली, गोबर खाद और बिनौले की खली सदृश, अधिक हल्के रहें। एक टन सुपर-फास्फेट के साथ एक पौण्ड कैलसियम साइनेमाइड मिलाने से प्रायः ०·५ से० ताप की वृद्धि होती है। ६० पौण्ड मिलाने से ३० से ३५° से० की वृद्धि हो सकती है।

कैलसियम साइनेमाइड जब अमोनियम सल्फेट के सम्पर्क में आता है तब उससे अमोनिया मुक्त होता है। पर यदि उर्वरक में पर्याप्त सुपर-फास्फेट विद्यमान है तो

अमोनिया नहीं मुक्त होता। सुपर-फास्फेट इतना होना चाहिए कि उसमें ६ से १० प्रतिशत उपलब्ध फास्फरिक अम्ल विद्यमान हो। एसे मिश्रण में यदि प्रति टन में कैलसियम साइनेमाइड १५० पौण्ड से अधिक न रहे तो वह सदा ही अम्लीय होता है। अम्लीय मिश्रण से अमोनिया नहीं मुक्त होता। मिश्रण तैयार करने में अमोनियम सल्फेट को कैलसियम साइनेमाइड से अलग रखना ही अच्छा होता है। ऐसे उर्वरक मिश्रण में कैलसियम साइनेमाइड साइनेमाइड के रूप में नहीं रहता वरन् यूरिया में बदल जाता है और उससे बना चूना उदासीनीकरण में उपयुक्त होता है।

कैलसियम साइनेमाइड का विषैला प्रभाव

पौधों के लिए कैलसियम साइनेमाइड विषैला होता है। इससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं। डाइसाइनो-डाइ-एमाइड भी विषैला होता है। असंयुक्त साइनेमाइड की अपेक्षा यह अधिक स्थायी होता और उतनी सरलता से मिट्टी में विच्छेदित नहीं होता है। ग्वेनील-यूरिया पौधों के लिए विषैला नहीं होता।

यदि कैलसियम साइनेमाइड का उपयोग प्रति एकड़ ५०० पौण्ड या इससे अधिक हो, और यदि उसमें असंयुक्त चूना और असंयुक्त साइनेमाइड रहे तो उससे अनेक जीवाणु, कवक, फफूँद (mould) और नेमाटोड सदृश सूक्ष्म कीड़े मर जाते हैं। फसलों के अनेक सूक्ष्माणुओं के रोग इससे दूर हो जाते अथवा नियंत्रित हो जाते हैं। मोयेर (Moyer १९३७) ने देखा है कि पातगोभी और शलजम के क्लबरूट (clubroot) रोग के नियंत्रण में यह बहुत प्रभावकारी होता है।

घास-पातों के नष्ट करने और पत्तों के गिराने में कैलसियम साइनेमाइड का उपयोग हुआ है। चौड़े पत्तेवाले घासपातों के नाश करने में इसका विशेष हाथ है। तम्बाकू, शाक-सब्जी और अन्य पौधों की कियारियों में बीज बोने के ६० से ९० दिन पहले प्रति गज़ १ से २ पौण्ड की दर से इस्तेमाल करने से घास-पात नष्ट हो जाते हैं। घास-पातों के निकल आने पर प्रति एकड़ ७५ से १०० पौण्ड के उपयोग से मटर आदि के खेतों के घास-पात नष्ट हो जाते हैं। कुछ फसलों में घास-पात निकल आने के पहले ही उपयोग से घास-पातों का नियंत्रण होता पाया गया है।

कपास के खेतों में कैलसियम साइनेमाइड को विशिष्ट ग्रेड के पत्तों पर डालने से पत्ते गिर पड़ते और तब कपास चुनने में सहूलियत होती है। पत्तों को गिराने के लिए प्रति एकड़ १५ से ३० पौण्ड कैलसियम साइनेमाइड यन्त्रों से पत्तों पर छिड़का जाता है। अधिक देने से डोड़ा (bolls) खुलते नहीं। ५ से १० दिनों में पत्ते गिर जाते हैं।

कैलसियम साइनेमाइड के व्यवहार के बाद १५ से २० दिनों में कपास को चुन लेना आवश्यक होता है। कभी-कभी सेम, टमाटर, आलू, सोयाबीन के पत्तों को इस कारण गिरा देने की ज़रूरत होती है कि फसलें जल्दी पक जायँ। इसके लिए प्रति एकड़ ३० से १०० पौण्ड तक कैलसियम साइनेमाइड इस्तेमाल हो सकता है।

कैलसियम साइनेमाइड का व्यवहार

अनेक फसलों के लिए कैलसियम साइनेमाइड बहुत उत्कृष्ट उर्वरक पाया गया है। लेकिन इसका व्यवहार सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट के सदृश व्यापक नहीं है। इसका चूरा बहुत बारीक होता है और जब तक उसमें तेल न लगा हो उसको छूना अच्छा नहीं होता। बारबार छूने से चमड़ी पर फफोले पड़ जाते हैं। दानेदार कैलसियम साइनेमाइड से ऐसा नहीं होता। सब अवस्थाओं में इसका उपयोग सन्तोष-प्रद नहीं पाया गया है। इसमें यदि लाभ है तो यही कि यह बहुत सस्ता होता है। यदि इसे सोच-समझकर इस्तेमाल किया जाय तो इससे बहुत लाभ हो सकता है। मोयेर और ब्लेयर ((Moyer and Blair, १९३०) की रिपोर्ट है कि जई, जौ, तोरई और मकई इसके नाइट्रोजन को उतनी ही शीघ्रता से ग्रहण कर लेती हैं जितनी शीघ्रता से वे सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट के नाइट्रोजन को ग्रहण करती हैं। यह इंग्लैण्ड में जौ, आलू, चुकन्दर और साग-सब्जियों के लिए लाभप्रद पाया गया है। जर्मनी और हालैण्ड में सीरियल, घास और चुकन्दर के लिए अच्छा पाया गया है। अमेरिका में यह छोटे अनाजों, मकई, कपास और शाक-भाजियों तथा फलों के लिए अच्छा पाया गया है। भारत में वैद्यनाथन (१९३३) और सहस्रबुद्धे (१९३४) की रिपोर्ट है कि यह धान, मडुआ (रागी), जुवार, कपास, मूंगफली, मिर्च, गेहूँ और ईख में प्रयुक्त हो सकता है। इसके व्यवहार से इन सब फसलों में पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है और सोडियम नाइट्रेट तथा अमोनियम सल्फेट से कम नहीं पायी गयी है। धारवाड़ के फार्म में तो सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट की अपेक्षा जुवार की पैदावार इससे बढ़ी हुई पायी गयी है।

कैलसियम साइनेमाइड कैसे इस्तेमाल करना चाहिए इस पर विचार करना आवश्यक है। साधारणतया खेतों में बोने के कम से कम दस दिन पहले उर्वरक को बिखेर कर मिट्टी को भलीभाँति जोत देना चाहिए। मिट्टी के साथ कैलसियम साइनेमाइड का भलीभाँति मिल जाना बड़ा आवश्यक है। यह ऊपर की तीन चार इंच मिट्टी के साथ मिल जाना चाहिए। ऐसा न करने से साइनेमाइड और चूना मुक्त हो सकता है जिससे पौधों को हानि पहुँच सकती है। यदि किसी स्थल पर इसकी मात्रा बहुत अधिक हो जाय तो

उससे सूक्ष्माणुओं, बीजों और जड़ों को नुकसान पहुँच सकता है। इसको खेतों में डालकर कुछ समय के बाद बीज या पौधों को बोने से नुकसान की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। कुछ लोगों का सुझाव है कि प्रति १०० पौण्ड कैलसियम साइनेमाइड के व्यवहार के लिए प्रायः तीन दिन का समय रहना चाहिए।

दोमट मिट्टी में इसका प्रभाव सबसे अच्छा होता है, क्योंकि यूरिया, अमोनिया और नाइट्रेट बनने की अवस्था ऐसी मिट्टी में सबसे अच्छी रहती है। यदि मिट्टी बलुआर हो अथवा मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ न हो तो प्रतीक्षा-काल की अवधि दुगुनी हो जाती है। कैलसियम साइनेमाइड को अकेले इस्तेमाल करने में और सावधानी की आवश्यकता पड़ती है ताकि उर्वरक सीधे बीज या पौधों के सम्पर्क में न आये।

ईख और मकई को छोड़कर अन्य फसलों के लिए बगल से खाद देना अच्छा होता है। ड्रिल से खाद देकर खेत को जोतकर मिट्टी में खाद को मिला देना चाहिए। खाद को खेतों में छींटकर खेत जोता भी जा सकता है।

कितना कैलसियम साइनेमाइड इस्तेमाल करना चाहिए इस सम्बन्ध में एलिसन (Allison, १९२९) का मत है कि सामान्य मिट्टी में प्रति एकड़ २०० पौण्ड का व्यवहार पर्याप्त है। उनका विचार है कि प्रति एकड़ १०० पौण्ड से अधिक न प्रयुक्त करने पर भी सर्वोत्कृष्ट परिणाम प्राप्त होता है। यदि इसके उपयोग की अवस्था बड़ी सन्तोषप्रद हो तो प्रति एकड़ ५०० पाउण्ड तक इसका प्रयोग हो सकता है।

यूरिया

यूरिया यद्यपि कार्बनिक पदार्थ है पर इसकी गणना अकार्बनिक खादों में इस कारण होती है कि यह अकार्बनिक स्रोतों से प्राप्त हो सकता है। मनुष्य और अन्य पशुओं के मूत्र में यूरिया रहता है। वयस्क मनुष्य अपने मूत्र में प्रायः ३० ग्राम यूरिया प्रति दिन निकालता है। मूत्र से ही यूरिया पहले-पहल तैयार हुआ था, आज भी अल्प मात्रा में मूत्र से प्राप्त हो सकता है। खाद के रूप में मूत्र की उपयोगिता प्रधानतया यूरिया के कारण ही है। मूत्र के यूरिया और रसायनशाला में प्रस्तुत यूरिया में कोई भेद नहीं है। दोनों एक से पदार्थ, एक ही संगठन के और एक ही क्रिया के होते हैं।

उर्वरक के रूप में यूरिया का महत्व दिन-दिन बढ़ रहा है। अमेरिका और यूरोप में इसका उपयोग आज व्यापक रूप से हो रहा है। भारत में इसका उपयोग इस कारण नहीं होता कि यहाँ यह उपलब्ध नहीं है। सिन्दरी के उर्वरक के कारखाने में यूरिया निर्माण के संयन्त्र अब बैठाये गये हैं और उनसे यूरिया का निर्माण भी

पर्याप्त मात्रा में होने लगा है। फल स्वरूप इसका उपयोग बहुत बढ़ रहा है। इसमें नाइट्रोजन की मात्रा सबसे अधिक, प्राय: ४६ प्रतिशत तक रह सकती है।

व्यावसायिक नाम

यूरिया आज अनेक व्यावसायिक नामों से बाजारों में बिकता है। यह फ्लोरेनिड (Floranid), यूरियोर (Ureor), कासली यूरियोर (Kasli ureor), अग्रेमन (Agramon) और यूरेमन (Uramon) आदि नामों से पुकारा जाता है।

यूरिया का निर्माण

कैलसियम साइनेमाइड से यूरिया प्राप्त हो सकता है। कैलसियम साइनेमाइड के जलीय निलम्बन[1] को कार्बन डाइ-आक्साइड के साथ गरम करते हैं। कैलसियम कार्बोनेट का अवक्षेप बनता है। छानकर उसे निकाल लेते हैं। विलयन में साइनेमाइड रहता है। उसे सलफ्यूरिक अम्ल से अम्लीय बनाकर गरम करते हैं। खड़िया से अम्ल के आधिक्य को निकाल डालते हैं। विलयन से अब यूरिया के मणिभ बनते हैं। उन्हें छानकर सुखा लेते हैं। बड़ी मात्रा में यूरिया बनाने में यह विधि आज प्रयुक्त नहीं होती।

यूरिया की प्राप्ति आज ऊँचे दबाव पर अमोनिया और कार्बन डाइ-आक्साइड की प्रतिक्रिया से होती है। दोनों गैसें जब ऊँचे दबाव पर सम्पर्क में आती हैं तब पहले अमोनियम कार्बेमेट बनता है। इससे जल का एक अणु निकलकर यूरिया में परिणत हो जाता है। प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार की होती हैं—

$$2\,NH_2 + CO_2 = H_2N.COONH_4$$

अमोनियम कार्बेमेट

$$NH_2COONH = CO(NH_2)_2 + H_2O$$
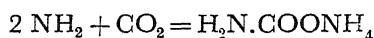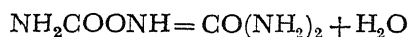
यूरिया

विलयन को निर्वात उद्वाष्पक में सान्द्रित करके फिर प्रकोष्ठ में फुहारे के रूप में छोड़ने से ठोस यूरिया की छोटी-छोटी गोलियां प्राप्त होती हैं।

यूरिया के विशिष्ट गुण

यूरिया सफेद मणिभीय पदार्थ है। जल में यह बहुत विलेय है। इसमें नाइट्रोजन ४६ प्रतिशत रहता है। इतना नाइट्रोजन किसी अन्य नाइट्रोजनीय खाद में नहीं

[1] Suspension

रहता। जितना नाइट्रोजन सोडियम नाइट्रेट में रहता है उसका प्रायः तिगुना नाइ-ट्रोजन यूरिया में रहता है।

यूरिया वायु के जल को अवशोषित करता है। अतः अन्य उर्वरकों के साथ मिलाने में सावधानी आवश्यक है। यूरिया की पोटाश लवणों से कोई क्रिया नहीं होती। पूर्णतया उदासीन सुपर-फास्फेट, डोलोमाइट, अमोनियम सल्फेट और अन्य उर्वरकों से भी कोई क्रिया नहीं होती। इसे केवल अमोनियम नाइट्रेट के साथ कभी नहीं मिलाना चाहिए। यदि सुपर-फास्फेट, डबल या ट्रिबल, के साथ मिलाना हो तो उसे पूर्णरूप से उदासीन बनाकर ही मुक्त सलफ्यूरिक अथवा फास्फरिक अम्ल को दूर कर मिलाना चाहिए, नहीं तो उससे मिश्रण गीला बन सकता है। यूरिया को ऊँचे ताप पर कभी भी नहीं रखना चाहिए, विशेषतः गीले मिश्र उर्वरकों में, क्योंकि ५५° से० से ऊपर ताप पर यूरिया अमोनिया और कार्बन डाइ-आक्साइड में विच्छेदित हो जाता है, यद्यपि विच्छेदन के उत्पाद हानिकारक नहीं हैं।

आज यूरिया का विलयन भी उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होता है। ठोस यूरिया के निर्माण का संयन्त्र सिन्दरी में बैठाया गया है।

अग्रेमन या युरेमन के नाम से जो यूरिया बिकता है उसमें यूरिया पर किसी निष्क्रिय खनिज या कार्बनिक पदार्थ का लेप चढ़ा होता है। यह अर्ध-दानेदार होता है। इसमें नाइट्रोजन ४२ प्रतिशत रहता है। सस्ता होने के कारण इसकी सर्वप्रियता बढ़ गयी है।

कैल-यूरिया में कैलसियम नाइट्रेट और यूरिया रहते हैं। इसमें नाइट्रोजन ३४ प्रतिशत और कैलसियम १० प्रतिशत रहता है। इसका पंचमांश नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में और चार-पंचमांश एमाइड के रूप में रहता है। यह सूखा और गंधहीन होता है। इसकी भौतिक दशा बड़ी अच्छी होती है।

यूरिया और फार्मल्डीहाइड के संयोजन से यूरिया-फार्म बनता है। यूरिया-फार्म एक प्लास्टिक है पर उर्वरक के रूप में भी इसका उपयोग होता है, पौधे इसके नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं। यूरिया-फार्म में ३६–३८ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है और जल में अपेक्षया कम विलेय होता है। मिट्टी की अम्लता की वृद्धि से इसकी विलेयता घट जाती है। इसका नाइट्रोजन पौधों के लिए उतना ही लाभदायक होता है जितना अन्य नाइट्रोजनीय उर्वरकों का नाइट्रोजन होता है।

पौधों के लिए यूरिया

यद्यपि यूरिया जल में विलेय है पर अनेक फसलें इसे सीधे ग्रहण नहीं कर सकतीं। इसके प्रमाण मिले हैं कि कुछ पौधे यूरिया को सीधे ग्रहण कर सकते हैं। मिट्टी में यह

अमोनिया अथवा अमोनिया और नाइट्रेट में परिणत हो जाता है और तब इसे अधिकांश पौधे ग्रहण करते हैं। सम्भवतः क्रियाएँ इस प्रकार की होती हैं—

$$CO\ (NH_2)_2 \times 2H_2O = (NH_4)_2\ CO_3$$
$$(NH_4)_2\ CO_3 + 3\ O_2 = 2\ HNO_2 + 3\ H_2O + CO_2$$
$$2\ HNO_2\ + O_2 = 2\ HNO_3$$
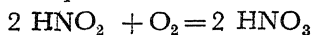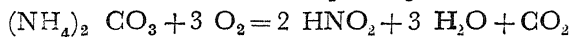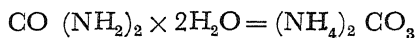
यह परिवर्तन पर्याप्त शीघ्रता से होता है। यदि ऐसा न हो तो संकर्षण से यूरिया नष्ट हो सकता है। संकर्षण से अमोनियम कार्बमेट की क्षति बहुत कम होती है।

मिट्टी की अम्लता पर यूरिया का प्रभाव

यूरिया में कोई धातविक क्षारीय मूलक नहीं होता। इससे इसके व्यवहार से मिट्टी कुछ अम्लीय हो जाती है, यद्यपि यूरिया का प्रारम्भिक प्रभाव तो मिट्टी को क्षारीय बनाना ही होता है। मिट्टी की अम्लता दूर करने के लिए यूरिया के साथ-साथ अल्प मात्रा में डोलोमाइट के व्यवहार से लाभ होता है।

मिट्टी के कुछ बैक्टीरिया की यूरिया पर क्रिया से कारबेमाइड बन सकता है। कारबेमाइड विषला होता है। अँकुरते हुए बीजों और पौधों की जड़ों को इससे नुकसान पहुँच सकता है। अतः बड़ी मात्रा में यूरिया का व्यवहार हानिकारक हो सकता है।

यूरिया का व्यावहारिक उपयोग

यूरिया एक आदर्श नाइट्रोजनीय उर्वरक है। यह छोटे पौधों के बोने के समय डाला जाता है। इसके नाइट्रोजन को पौधे जल्द ग्रहण कर लेते हैं। संकर्षण का यह प्रतिरोधक भी होता है।

पौधों के बोने के समय इसे खेतों में डालकर मिट्टी में भली भाँति मिला लेना चाहिए अथवा पौधे जब कुछ इंच के हो जायँ तब उसे ऊपर से डालना चाहिए। प्रति एकड़ यह ५० से २०० पौण्ड तक डाला जा सकता है। विशेष परिस्थितियों में इससे अधिक भी प्रयुक्त हो सकता है।

सब प्रकार की फसलों, धान्यों, घासों, साग-भाजियों और फलों में इसका व्यवहार हो सकता है। वैद्यनाथन (१९३३) ने इसे धान, सरसों और गेहूँ में प्रयुक्त किया है। ढाका फार्म में प्रति एकड़ १८६ पौण्ड औस-धान और सरसों में प्रयुक्त हुआ है पर परिणाम अमोनियम सल्फेट से अच्छा नहीं प्राप्त हुआ। लमराडी में गेहूँ की पैदावार में २८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है जब कि सोडियम नाइट्रेट से केवल २३ प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी थी। प्रति एकड़ २० पौण्ड नाइट्रोजन के हिसाब से इस्तेमाल करने पर धान की खेती में एक फार्म में १३·९ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।

दसवाँ अध्याय

कार्बनिक खाद

"गोबर, मैला, नीम की खली, यासे खेती दूनी फली।
गोबर, मैला, पानी सड़े, तब खेती में दाना पड़े।।"

मल-मूत्र का विच्छेदन

मूत्र में साधारणतया कोई जीवाणु नहीं रहते। मल में असंख्य जीवाणु रहते हैं। ये जीवाणु पाचक नाल से आते हैं। आहार द्वारा कुछ जीवाणु शरीर में प्रवेश करते और आँत में वृद्धि प्राप्त कर मल द्वारा बाहर निकलते हैं। कुछ जीवाणु बिछाली[1] से, कुछ जल से और कुछ वायु से मल-मूत्र में मिल जाते हैं। अनेक अन्वेषकों ने ताज़े गोबर की परीक्षा कर उनमें जीवाणु की उपस्थिति का पता लगाया है। वुटेनराइक और फ्रायडेनराइक (Wutenreich and Freudenreich) ने गायों को ताज़ी घास खिलाकर उनके गोबर का विश्लेषण कर देखा कि एक गाय के एक ग्राम गोबर में एक दिन एक करोड़ और दूसरे दिन एक करोड़ पचीस लाख और दूसरी गाय के एक ग्राम गोबर में १८ लाख और दूसरे दिन ४० लाख जीवाणु मौजूद थे। फिर सूखी घास पर पली उन्हीं गायों के प्रति ग्राम गोबर में, एक के में १८ करोड़ ७० लाख और दूसरी के में ३८ करोड़ ७० लाख जीवाणु पाये गये।

सैवेज़ (Savage) ने तीन घोड़ों की लीद में १५ से २० लाख, चार गायों के गोबर में १० लाख से एक करोड़ और एक सूअर की विष्ठा में १ करोड़ से १० करोड़ जीवाणु प्राप्त किये थे।

पयाल-बिछाली में अणु-जीवों की संख्या प्रति ग्राम एक करोड़ से चालीस करोड़ तक पायी गयी है। जीर्णकी में प्रति ग्राम २० लाख से ३० लाख अणु-जीव पाये गये हैं।

[1] वह चारा, पत्ते आदि जो जानवरों के नीचे बिछा दिया जाता है।

मूत्र और पशु-बिछाली के मिश्रण में भी बहुत बड़ी संख्या में अणु जीव पाये जाते हैं। १४ वर्ष पुरानी गोबर की खाद में, जिसका कोई रासायनिक उपचार न हुआ था और जिसका आयतन बहुत कम हो गया था, प्रति ग्राम एक करोड़ पचीस लाख अणु जीव पाये गये थे, जब कि उसी गोबर की खाद में केनाइट और जिपसम से उपचारित होने पर अणु जीवों की संख्या ३७ लाख पचास हजार थी।

गोबर में पाये जानेवाले अणु जीवों में जीवाणु-कवक, किरण कवक (actinomycetes) और श्लेष्मोर्णिका (myxomycetes) उपलक्षक (type) के अणुजीवी रहते हैं। इनमें जीवाणु सबसे अधिक महत्त्व के हैं और उनकी संख्या भी सबसे अधिक रहती है। वे अनेक प्रकार के होते हैं। गोबर के विघटन होने के वे ही प्रमुख कारण हैं।

अ-नाइट्रोजनीय पदार्थों का विच्छेदन

मल में नाइट्रोजनीय और अ-नाइट्रोजनीय दोनों प्रकार के पदार्थ रहते हैं। इन दोनों का विच्छेदन जीवाणुओं द्वारा होता है। अ-नाइट्रोजनीय पदार्थों में कार्बोहाइड्रेट और वसा रहते हैं। कार्बोहाइड्रेटों में सेल्यूलोस, शर्कराएँ और पेन्टोसन रहते हैं। कार्बोहाइड्रेटों का ह्रास १० प्रतिशत से कम नहीं होता और बहुधा ५० प्रतिशत से अधिक हो जाता है। कुछ अन्वेषकों की धारणा थी कि कार्बोहाइड्रेटों में प्रधानतया सेल्यूलोस का ही ह्रास होता है पर इधर मिलर ने जो खोजें की हैं उनसे पता लगता है कि शर्कराओं का २१·७ प्रतिशत, पेन्टोसन का १८·६ प्रतिशत और सेल्यूलोस का ८·७ प्रतिशत नाश होता है।

कार्बोहाइड्रेटों का अधिकांश विच्छेदन वायुजीवी और अवायुजीवी जीवियों के द्वारा होता है। अवायुजीवियों में ऐरोबैक्टर और एमाइलोबैक्टर[1] समूह के जीवी हैं जो अवाष्पशील और वाष्पशील वसा-अम्ल तथा गैसें बनाते हैं। ये गैसें ही नष्ट हो जानेवाले अंश हैं।

सेल्यूलोस का विच्छेदन

पयाल और सूखी घास में जो सेल्यूलोस रहते हैं और जिन्हें पशु खाते हैं उनका प्रायः ५० से ७० प्रतिशत भाग पाचक नाल में जाते हुए पचकर नष्ट हो जाता है और

[1] Aerobacter and amylobacter

उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति दोनों दशाओं में शीघ्रता से होता है। इस प्रकार्य के फलस्वरूप ग्लिसरिन बनता है जो फिर विच्छेदित हो मेथिल अल्कोहल, ब्युटिरिक, ऐसिटिक और फार्मिक अम्ल बनाता है। वसा और मोम का यह विच्छेदन यदि उत्सर्ग को ठीक प्रकार से रखा जाय तो बड़ी मन्द गति से होता है। खाद की दृष्टि से इस परिवर्तन का कोई महत्त्व नहीं है।

नाइट्रोजनीय पदार्थों का विच्छेदन

नाइट्रोजनीय पदार्थ प्रधानतया मूत्र में रहते हैं। ऐसे पदार्थ यूरिया, यूरिक और हिप्पूरिक अम्ल हैं। मल में अल्प नाइट्रोजनीय पदार्थ रहते हैं। पशुओं के चारे में जो प्रोटीन रहता है उसका कुछ अंश बिना पचा रह जाता है। अणुजीवियों द्वारा भी कुछ प्रोटीन का संश्लेषण होता है। ये प्रोटीन मल में रहते हैं।

मूत्र का अमोनिया-किण्वन

मूत्र में नाइट्रोजन रहता है। मूत्र का अधिकांश नाइट्रोजन यूरिया के रूप में रहता है। जब मूत्र शरीर से बाहर निकलता है तब उसमें कोई जीवाणु नहीं रहता पर शीघ्र ही धूल, बिछाली अथवा मल से जीवाणु उसमें आ जाते और उनका विच्छेदन-कार्य शुरू हो जाता है।

यूरिया के विच्छेदन से पहला उत्पाद अमोनियम कार्बोनेट बनता है।

$$CO(NH_2)_2 + 2H_2O = (NH_4)_2CO_3$$
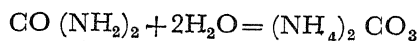
यूरिया

अमोनियम कार्बोनेट फिर अमोनिया, कार्बन डाइ-आक्साइड और जल में परिणत हो जाता है।

$$(NH_4)_2CO_3 = 2NH_3 + CO_2 + H_2O$$
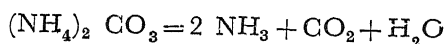
यह विच्छेदन चार से पाँच दिनों में प्रायः पूर्ण हो जाता है। यह कार्य कुछ जीवाणुओं के द्वारा होता है। इन्हें 'यूरो-बैक्टीरिया' (यूरो-जीवाणु) कहते हैं। ये जहाँ-तहाँ वायु में, गन्दे पानी में, धूल में, मिट्टी में और खाद में पाये जाते हैं। इनमें कुछ तो गोलाणु (Coccus) और कुछ दण्डाणु (bacillus) होते हैं। दण्डाणुओं की संख्या अधिक रहती है। ये सब के सब वायुजीवी होते हैं। ये अल्प क्षारीय तनु विलयन (२ से ५ प्रतिशत यूरिया के विलयन) में ३० से ३२° से० ताप पर सबसे अच्छा पनपते हैं।

इनमें कुछ जीवाणु बीजाणु (Spore) उत्पन्न करते हैं जो अपेक्षया स्थायी होते हैं और घण्टे भर या इससे अधिक काल तक ९५ से १००° से० ताप को सहन कर सकते

हैं। पर कुछ जीवाणु बीजाणु नहीं उत्पन्न करते और वे ७०° से० पर अल्प काल तक भी गरम करने से सरलता से नष्ट हो जाते हैं। यूरिया के विच्छेदन की क्षमता इन जीवाणुओं में विभिन्न होती है। कुछ तो ३०° से० ताप पर अनुकूल परिस्थितियों में जल्दी विच्छेदित कर देते और कुछ अधिक समय लेते हैं। यूरिया के विच्छेदन के लिए जीवाणुओं की बड़ी अल्प मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। ड्यू क्लैक्साइ (Duclaxii) नामक यूरो-दण्डाणु का एक भाग यूरिया के ४००० भाग को और यूरिया-लिक्विफेसियस सूक्ष्म गोलाणु (Urea Lique facius micro-coccus) का एक भाग यूरिया के २०० से १२०० भाग को अमोनियम में विच्छेदित कर सकता है।

यूरिक और हिप्पूरिक अम्लों का भी जीवाणुओं द्वारा विच्छेदन होकर अमोनिया बनता है। पर यह कैसे बनता है इसका ठीक-ठीक ज्ञान हमें नहीं है। कुछ लोगों ने यूरिक अम्ल को सीधे अमोनियम कार्बोनेट और कार्बन डाइ-आक्साइड में परिणत होते देखा है। कुछ लोगों ने यूरिक अम्ल को यूरिया और टार्ट्रोनिक अम्ल में परिणत होते देखा है जो फिर पीछे यूरो-जीवाणु द्वारा अमोनियम लवण में परिणत हो जाता है।

हिप्पूरिक अम्ल के अम्लों या क्षारों द्वारा जल-विश्लेषण से बेंज़ोइक अम्ल और एमिनो-ऐसिटिक अम्ल प्राप्त होते हैं। ऐसा ही विच्छेदन यूरो-गोलाणु (Urococcus) द्वारा भी हो सकता है। ऐसा समझा जाता है कि कैलसियम हिप्पूरेट का जीवाणुओं द्वारा किण्वन होकर बेंज़ोइक अम्ल और एमिनो-ऐसिटिक अम्ल बनते हैं।

पशुओं के आहार का प्रोटीन कुछ तो पच जाता है पर कुछ अपरिवर्तित अथवा अंशतः परिवर्तित उत्सर्ग द्वारा निकल जाता है। ऐसे निकले प्रोटीन पदार्थों का अपक्षय (decay) और सड़ान (putrefaction) होती है। वायुजीवी जीवाणुओं से अपक्षय होता है। अपक्षय तभी होता है जब परिस्थितियाँ अनुकूल रहती हैं। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल न रहें तो अपक्षय रुक जाता है और तब विच्छेदन बड़ा मन्द होता है। अपक्षय रुक जाने पर भी सड़ान हो सकती है। सड़ान में प्रोटीन का विच्छेदन जल्दी-जल्दी होता है। सड़ान से दुर्गन्धयुक्त गैसें निकलती हैं। सड़ान अवायुजीवी जीवाणुओं से होती है। अपक्षय और सड़ान साथ-साथ चल सकती हैं। बाह्य तल पर जहाँ आक्सिजन रहता है अपक्षय होता, और आभ्यन्तर भाग में जहाँ आक्सिजन का अभाव रहता है सड़ान होती है। दोनों कार्यों के साथ-साथ चलने से विच्छेदन में तीव्रता आ जाती है। विच्छेदन द्वारा कार्बन से कार्बन डाइ-आक्साइड, हाइड्रोजन से जल और नाइट्रोजन से अमोनिया और सम्भवतः असंयुक्त नाइट्रोजन बनते हैं।

अपक्षय अपेक्षया तीव्र होता है और सड़ान मन्द। सड़ान से अनेक माध्यमिक पेचीले यौगिक बनते हैं। कुछ उत्पाद विषैले भी होते हैं। कुछ में तीव्र दुर्गन्ध होती है। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो इन उत्पादों का भी फिर अपक्षय अथवा सड़ान हो सकती है और उनके विषैले गुण और दुर्गन्ध दूर हो सकती है।

सड़ान अनेक प्रकार के जीवाणुओं द्वारा होती है। उत्पाद का बनना जीवाणु और सड़नेवाले पदार्थ पर निर्भर करता है। लिगनिन और प्रोटीन के विच्छेदन से अलब्युमोज़, पेप्टोन और एमिनो-अम्ल तथा उनसे फिर इन्डोल, स्केटोल और कैडेवेरिन (Cadaverine) बनते हैं। यदि आक्सिजन अथवा कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में हों तो ये पदार्थ वहाँ नहीं बनते। इनके सिवा अन्य कई गैसें भी, जैसे कार्बन डाइ-आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, मिथेन, फास्फिन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि बनती हैं।

एमोनियाकरण

नाइट्रोजनीय कार्बनिक पदार्थों से अमोनिया बनने की क्रिया को 'एमोनियाकरण' कहते हैं। गोबर के अपक्षय और सड़ान से अमोनिया बनता है। यह कार्य अनेक स्पीसीज़ (जाति) के जीवाणुओं द्वारा होता है। कुछ जीवाणु एमोनिया-करण जल्द करते, कुछ देर से करते, कुछ अंशतः करते और कुछ पूर्णतया करते हैं।

ठोस उत्सर्ग में जो नाइट्रोजनीय पदार्थ रहता है उसके सामान्य कि वन से बड़ा अल्प अमोनिया प्राप्त होता है। वायु के अभाव में ही अमोनिया बनता है। जेन्टी के प्रयोगों से मालूम हुआ है कि ठोस उत्सर्ग का केवल एक प्रतिशत ही खुली वायु में एक मास में अमोनिया बनता है, जब कि नाइट्रोजन के कृत्रिम वातावरण में उतने ही समय में नाइट्रोजन का ११ प्रतिशत अमोनिया में परिणत हो जाता है।

डीट ज़ेल (Diet zell) ने गोबर और पयाल के मिश्रण पर प्रयोग किये हैं। ऐसे मिश्रण को खुली वायु में ६ मास तक रखने से उसका केवल ३ प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनिया में परिणत हो पाया था, जब कि वायु के अभाव में नाइट्रोजन का २० प्रतिशत अमोनिया में परिणत हो गया था। यूरिया का अमोनिया में परिणत होना ठीक इसकी प्रतिकूल स्थिति में होता है। लेकिन कुछ लोग इस मत को स्वीकार नहीं करते।

ठोस उत्सर्ग से अधिक अमोनिया न बनने के अनेक कारण बतलाये जाते हैं। उत्सर्ग में नाइट्रोजन की कमी एक कारण हो सकता है। उत्सर्ग में ऐसे प्रकिण्व की उपस्थिति, जो एमोनियाकरण में बाधा पहुँचाते हैं, दूसरा कारण हो सकता है। उसमें

ऐसे नाइट्रोजनीय यौगिकों की उपस्थिति भी हो सकती है जो जल्दी विच्छेदित नहीं होते। उसमें कुछ ऐसे जीव भी रह सकते हैं जो प्रकिण्व की क्रिया में बाधा पहुंचाते हों।

नाइट्रीकरण

गोबर जब ढेर में रखा होता है तब उसका नाइट्रीकरण नहीं होता। ऊपरी तह पर सम्भवतः थोड़ा नाइट्रीकरण होता हो, पर ज्यों ही वह खेतों में डाला जाता है उसका नाइट्रीकरण शीघ्रता से होकर नाइट्रेट बनता है। ढेर में नाइट्रेट न बनने का कारण कार्बनिक पदार्थों का अतिरेक और वायु प्रवेश का अभाव कहा जाता है। वायु के अभाव की क्रिया निरोधक समझी जाती है।

मल का नाइट्रोजन पहले अमोनिया में परिणत होता है। पीछे अमोनिया का आक्सीकरण हो पहले नाइट्रस अम्ल और फिर नाइट्रिक अम्ल बनता है। ये अम्ल मिट्टी के क्षारों से मिलकर नाइट्रेट बनते हैं।

$$2\ NH_3 + 3\ O_2 = 2\ HNO_2 + 2\ H_2O$$
$$2\ HNO_2 + O_2 = 2\ HNO_3$$
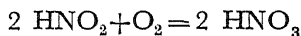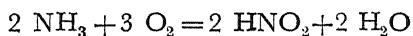
मिट्टी में साधारणतया सोडियम, पोटेसियम, मैगनीशियम और कैलसियम के नाइट्रेट बनते हैं। सामान्यतः कैलसियम नाइट्रेट की मात्रा ही अधिक रहती है। इनका बनना विशिष्ट जीवाणुओं के द्वारा होता है। नाइट्रस अम्ल ज्यों ही बनता, नाइट्रिक अम्ल में आक्सीकृत हो जाता है।

विनाइट्रीकरण

मिट्टी और जल में कुछ ऐसे भी जीवाणु होते हैं जो नाइट्रेट का विच्छेदन करते और वायु में नाइट्रोजन मुक्त करते हैं। ऐसे जीवाणु पयाल, लीद, गोबर और अन्य शाकाहारी पशुओं के उत्सर्ग में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। मनुष्य की विष्ठा और मांसाहारी पशुओं के मल में ये शायद ही कभी पाये जाते हैं। विनाइट्रीकरण-जीवाणुओं की संख्या बहुत बड़ी, नाइट्रीकरण-जीवाणुओं की संख्या से अधिक है।

ढेर में या कम्पोस्ट में विनाइट्रीकरण नहीं होता अथवा बड़ा अल्प होता है। वहाँ नाइट्रोजन का ह्रास नहीं होता। नाइट्रेट नहीं बनते या रहते हैं। कार्बनिक पदार्थों का अतिरेक रहता है। वातन का अभाव रहता है जिससे नाइट्रेट नहीं

बनते। यदि कुछ बनते भी हैं तो केवल बाह्य तल पर ही बनते हैं जहाँ कुछ वायु मिलती है।

यदि खाद का ढेर अथवा कम्पोस्ट ऐसा ढीला-ढाला रखा हो कि उसमें वायु सरलता से प्रविष्ट हो सके तो ऐसी दशा में उसका विनाइट्रीकरण भी हो सकता है, यदि वह बरसात के पानी से ओतप्रोत हो।

गोबर के खनिज पदार्थ में परिवर्तन

आहार का अधिकांश फास्फरस मल में ही निकलता है। फास्फरस कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों रूपों में रहता है। जीवाणुओं द्वारा मल के विच्छेदन से कार्बनिक फास्फेट अकार्बनिक फास्फेट में परिणत हो जाता है। पौधे अकार्बनिक फास्फेट को ही ग्रहण करते हैं। ऐसे परिवर्तन में फास्फरस का ह्रास नहीं होता। फास्फरस की मात्रा ज्यों की त्यों बनी रहती है।

उत्सर्ग का पोटाश अधिकांश मूत्र में ही रहता है। यह पोटाश लवण-विलेय होता और पौधे इसे सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। मूत्र का पोटाश सरलता से कार्बोनेट में परिणत हो जाता है और कार्बोहाइड्रेट के विच्छेदन से जो अम्ल बनते हैं उनका यह निराकरण कर सकता है।

उत्सर्ग में पोटेसियम, मैगनीशियम और कैलसियम के जो लवण रहते हैं उनका अविलेय अंश अल्प मात्रा में रहता है। ये अविलेय लवण ऐसे रूप में बदल जाते हैं कि पौधे इन्हें सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार के विच्छेदन में इनका कोई ह्रास नहीं होता, मात्रा ज्यों की त्यों बनी रहती है।

सड़ान

रखने से गोबर सड़ता है। सड़ना वायु की उपस्थिति में जीवाणुओं और सूक्ष्म जीवाणुओं के कारण होता है। इन जीवाणुओं की वृद्धि गोबर के किण्वन से होती है। सड़ने की गति और सड़ान के उत्पाद स्थितियों पर निर्भर करते हैं। स्थितियाँ निम्नलिखित हैं—

ताप—ताप का असर सड़ान पर बहुत पड़ता है। यदि ताप ऊँचा है तो सड़ान जल्दी-जल्दी होती अन्यथा धीरे-धीरे होती है। अधिक सड़ान से ह्रास अधिक होता है।

गोबर की सघनता—यदि गोबर ढीला-ढाला रखा हुआ है ताकि उसमें वायु स्वच्छन्दता से प्रविष्ट हो सकती है तो किण्वन अधिक तेज़ी से होता है। गोबर को वायु में खुला रखने से उसे वायु अधिक मिलती है जिससे वायुजीवी जीवाणु बढ़ते और

किण्वन में शीघ्रता लाते हैं। यदि गोबर सघन रखा हुआ है, तो उसमें वायु अन्दर प्रवेश नहीं करती, जिससे ताप ऊपर नहीं उठता और तब किण्वन धीरे-धीरे होता और तब अवायुजीवी जीवाणु अपना कार्य करते हैं। गोबर ठीक तरह से सड़े इसके लिए आवश्यक है कि वायुजीवी और अवायुजीवी दोनों प्रकार के जीवाणु कार्य करें। अच्छी खाद बनने के लिए दोनों प्रकार का किण्वन होकर गोबर को ठीक-ठीक सड़ना चाहिए।

गोबर ढेर की सील (dampness)—गोबर में पानी रहने से उसका ताप नीचा रहता है और किण्वन में बाधा पहुंचती है। वायु के प्रविष्ट होने में भी रुकावट होती है, जिससे वायुजीवी किण्वन का काम रुक जाता है। किण्वन की गति बहुत कुछ विलेय नाइट्रोजनीय यौगिकों पर निर्भर करती है। अतः जल की मात्रा के नियन्त्रण से किण्वन पर नियंत्रण रखा जा सकता है। यदि गोबर बहुत गरम हो जाय तो उस पर पानी डाल और कुचलकर ताप नीचा रखा जा सकता और उससे किण्वन की चाल कम की जा सकती है।

गोबर का संगठन—गोबर में किण्वन की चाल बहुत कुछ उसमें उपस्थित विलेय नाइट्रोजनीय पदार्थों पर निर्भर करती है। अधिक विलेय नाइट्रोजनीय यौगिकों के रहने से किण्वन जल्दी-जल्दी होता है। इसका कारण है कि किण्वन करनेवाले जीवाणु उन्हीं नाइट्रोजनीय यौगिकों को खाकर बढ़ते और किण्वन करते हैं। ऐसे नाइट्रोजनीय यौगिक प्रधानतया मूत्र में रहते हैं। मूत्र को सुरक्षित रखने और उसे गोबर में मिला देने से किण्वन जल्दी-जल्दी होता है।

सड़ान से परिवर्तन

सड़ान से कार्बन डाइ-आक्साइड निकलता है। इससे गोबर की मात्रा में कमी हो जाती है। आंशिक सड़ान से उत्सर्ग का लगभग २० प्रतिशत, अधिक सड़ान से ४० प्रतिशत और पूरी सड़ान से ६० प्रतिशत तक नष्ट हो सकता है। इसका मतलब यह है कि १००० ग्राम गोबर सड़ाने से क्रमशः ८० ग्राम, ६० ग्राम और ४० ग्राम सड़ी खाद प्राप्त होती है।

सड़ान में कुछ नाइट्रोजन का भी ह्रास होता है। नाइट्रोजनीय यौगिक और लवण संकर्षण से भी नष्ट हो सकते हैं, पर सबसे अधिक ह्रास कार्बन डाइ-आक्साइड के निकल जाने से होता है। यह ह्रास इतना अधिक होता है कि अवशिष्ट अंश में नाइट्रोजन और खनिज पदार्थों की प्रतिशतता बढ़ जाती है। वोल्फ (Wolf) के प्रयोगों के परिणाम ये हैं—

ताजा और सड़ी हुई खाद का संघटन

	ताज़ा मल-मूत्र प्रतिशत	सड़ा हुआ मलमूत्र प्रतिशत
राख	३·८१	४·७६
नाइट्रोजन	०·३९	०·४९
पोटाश	०·४५	०·५६
चूना	०·४९	०·६१
मैगनीशिया	०·१२	०·१५
फास्फरिक अम्ल	०·१८	०·२३
सलफ्यूरिक अम्ल	०·१०	०·१३

ये परिणाम ऐसी सड़ी खाद के हैं जो बड़ी सावधानी से रखी हुई थी। असावधानी से रखी खाद में नाइट्रोजन, पोटाश और फास्फरस की मात्रा बड़ी अल्प रह सकती है।

वोलेकर (Volecker) ने जो आँकड़े इस सम्बन्ध में दिये हैं वे इस प्रकार हैं:—

	ताजा मल-मूत्र प्रतिशत	सड़ा हुआ मल-मूत्र प्रतिशत
विलेय कार्बनिक पदार्थ	७·३३	१५·०९
विलेय अकार्बनिक पदार्थ	४·५५	५·९८
अविलेय कार्बनिक पदार्थ	७६·१४	५१·३४
अविलेय अकार्बनिक पदार्थ	११·९८	२७·५९

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि सड़ान से खाद का मूल्य बढ़ जाता है, यद्यपि कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में स्पष्ट कमी हो जाती है।

ह्यूमस

कार्बनिक पदार्थों के विच्छदन से एक काला, महीन और कोमल कलिल कार्बनिक पदार्थ बनता है जिसे ह्यूमस कहते हैं। सम्भवतः ह्यमस लिगनिन और प्रोटीन

के संयोग से बनता है। इसके लिए प्रोटीन का संश्लेषण प्रधानतया अणुजीवी क्रियाओं के कारण होता है। ह्यूमस की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान हमें नहीं है। खाद के निर्माण में कार्बनिक पदार्थों का एक बड़ा अंश विच्छेदन के कारण नष्ट हो जाता है। कार्बन और हाइड्रोजन, गैसीय पदार्थ बनकर निकल जाते हैं। गोबर का प्रायः आधा कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस के रूप में रह सकता है। गोबर के सड़ने से ह्यूमस बनता है। गोबर में पर्याप्त लिगनिन रहता है। सड़ने से जीवाणुओं द्वारा ह्यूमस बनता है। अतः सड़ी हुई खाद में ह्यूमस की मात्रा बढ़ी हुई रह सकती है।

ह्यूमस की मात्रा बढ़ जाने पर भी समस्त कार्बनिक पदार्थों की मात्रा सड़ी खाद में कम हो जाती है। ताज़ा गोबर में भी कुछ ह्यूमस रहता है। सड़ने से यद्यपि अधिक ह्यूमस बनता है पर साथ-साथ अधिक कार्बनिक पदार्थ भी नष्ट हो जाता है। इस कारण सड़ी खाद में ह्यूमस की प्रतिशतता अधिक रहने पर भी समस्त ह्यूमस की मात्रा बढ़ती नहीं बल्कि कम हो जाती है।

ताजा गोबर और सड़ी खाद

१. ताज़े मल-मूत्र की अपेक्षा सड़ी खाद में पौधों के पोषक तत्त्व अधिक रहते हैं, क्योंकि ताज़े मल-मूत्र के सड़ने से आधा भाग नष्ट हो जाता है। नष्ट हो जानेवाले भाग में अधिक अंश कार्बनिक पदार्थों का रहता है। नाइट्रोजनीय कार्बनिक पदार्थ उसमें नहीं होता या बड़ा अल्प होता है। इससे अवशिष्ट अंश में पोषक तत्त्वों की प्रतिशतता बढ़ जाती है।

२. ताज़े मल-मूत्र में विलेय नाइट्रोजनीय यौगिकों की मात्रा अधिक रहती है। सड़ने से नाइट्रोजनीय पदार्थों की मात्रा कम हो सकती है यदि विशेष सावधानी न रखी जाय। क्योंकि मल-मूत्र का कुछ नाइट्रोजनीय अंश तो सूक्ष्म जीवाणु स्वयं खा जाते और कुछ नाइट्रोजन, विशेषतः मूत्र का नाइट्रोजन, पेचीदे प्रोटीन के निर्माण में लग सकता है।

३. सड़ी खाद में विलेय फास्फेट की मात्रा बढ़ जाती है। संकर्षण द्वारा यदि फास्फेट निकल न जाय तो सड़ी खाद में फास्फरस की मात्रा बढ़ी हुई पायी जाती है। पोटाश की भी ठीक यही दशा है।

गोबर की खाद

"गोबर, चोकर, चकवँड़, रूसा;
इनके छोड़े होय न भूसा।"

गोबर की खाद बड़ी पुरानी खाद है। इसका व्यवहार बहुत समय से होता आ रहा है। उन स्थानों में जहाँ खेती होती है और पशु पक्षी पाले जाते हैं वहाँ गोबर या बीट की खाद सरलता से प्राप्त हो सकती है। इस खाद के मूल स्रोत घास-पात और सागसब्जियों के अवशिष्ट अंश हैं जिनमें वे सब तत्त्व विद्यमान रहते हैं जो पौधों के पोषण के लिए आवश्यक हैं। इसमें ऐसा कोई तत्त्व नहीं होता जो पौधों को कोई नुकसान पहुँचाये। इस खाद के व्यवहार से उन सब तत्त्वों के कुछ अंश मिट्टी में लौट आते हैं जो फसल के उगाने से मिट्टी से निकल गये हैं। अवश्य ही सब के सब तो नहीं लौटते।

गोबर की खाद एकमात्र गोबर से ही बनती है। गोबर के साथ-साथ इस में पशुओं का मूत्र भी मिला रहता है। मूत्र में कुछ आवश्यक तत्त्व गोबर से अधिक रहते हैं। मूत्र नष्ट न हो जाय इस उद्देश्य से पशुओं के रहने के स्थान पर पुआल, सूखे पत्ते अथवा इसी प्रकार के अन्य कुछ पदार्थ बिछा दिये जाते हैं। इन्हें पशु-बिछाली (litter) कहते हैं। खाद की प्रकृति बहुत अंश में गोबर और पशु-बिछाली की प्रकृति तथा उनकी आपेक्षिक मात्रा पर निर्भर करती है। इस बात पर भी वह निर्भर करती है कि इन पदार्थों से खाद कैसे तैयार हुई है। पशु-बिछाली से केवल कुछ पोषक तत्त्व की ही प्राप्ति नहीं होती वरन् उससे मिट्टी की भौतिक दशा भी बहुत कुछ सुधर जाती है। खाद की दृष्टि से विष्ठा, मूत्र और पशु-बिछाली का कुछ सीमा तक वियोजन या विघटन होना आवश्यक है ताकि वे ऐसे रूप में परिणत हो जायँ कि पौधे उनसे पूरा-पूरा और जल्द लाभ उठा सकें।

गोबर की प्रकृति एक सी नहीं होती। पशु की उम्र, उसके आहार और किस्म पर यह बहुत कुछ निर्भर करती है। विभिन्न पशुओं का मूत्र और विष्ठा एक सी नहीं होती। एक ही पशु की विष्ठा भी आहार की विभिन्नता से बदलती है। कुछ विभिन्नता होते हुए भी अनेक विश्लेषणों के आधार पर मल-मूत्र का औसत संघटन निकाला गया है। यथार्थतया गाय, बैल और भैंस की विष्ठा को हम 'गोबर', घोड़े की विष्ठा को 'लीद', भेड़, ऊँट और बकरी की विष्ठा को 'मेंगनी' और कहीं-कहीं 'लेंड़ी' कहते हैं। पर गोबर शब्द किसी भी पशु की विष्ठा के लिए इस्तेमाल हो सकता है। इसी कारण इस प्रकरण का शीर्षक 'गोबर की खाद' है, यद्यपि इसके अन्तर्गत सभी पशुओं की विष्ठा और पक्षियों के मल-मूत्र का भी समावेश है।

सामान्य पशुओं के मल-मूत्र का औसत संघटन

पशु	मल-मूत्र	जल	नाइट्रोजन	फास्फरिक अम्ल	पोटाश
गाय	ठोस गोबर ७० प्रतिशत	८५	०·४०	०·२०	०·१०
	द्रव अंश ३० प्रतिशत	९२	१·००	लेश	१·३५
	(समस्त गोबर और मूत्र)	८६	०·६०	०·१५	०·४५
घोड़ा	ठोस लीद ८० प्रतिशत	७५	०·५५	०·३०	०·४०
	द्रव अंश २० प्रतिशत	९०	१·३५	लेश	१·२५
	(समस्त लीद और मूत्र)	७८	०·७०	०·२५	० ५५
भेड़	ठोस मेंगनी ६७ प्रतिशत	६०	०·७५	०·५०	०·४५
	द्रव अंश ३३ प्रतिशत	८५	१·३५	०·०५	२·१०
	(समस्त मेंगनी और मूत्र)	६८	०·९५	०·३५	१·००
सूअर	ठोस विष्ठा ६० प्रतिशत	८०	०·५५	०·५०	०·४०
	द्रव अंश ४० प्रतिशत	९७	०·४०	०·१०	०·४५
	(समस्त विष्ठा और मूत्र)	८७	०·५०	०·३५	०·४०

ऊपर के आँकड़ों से हमें निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं—

१. सूअर-विष्ठा के द्रव अंश को छोड़कर अन्य पशु-ब्रिष्ठा के द्रव अंश में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक रहती है।

२. पशु-विष्ठा के द्रव अंश में पोटाश की मात्रा अधिक रहती है।

३. ठोस विष्ठा अंश में फास्फरिक अम्ल अधिक रहता है। द्रव अंश में फास्फरिक अम्ल का लेश अथवा बड़ा अल्प अंश रहता है। केवल सूअर के द्रव अंश में फास्फरिक अम्ल कुछ अधिक रहता है।

इससे मालूम होता है कि खाद की दृष्टि से मल से मूत्र अधिक मूल्यवान् है।

मूत्र

आहार के पचने पर पेशियों और अन्य ऊतकों के उच्छिष्ट अंश में कुछ द्रव पदार्थ बनते हैं जो मूत्र के रूप में बाहर निकलते हैं। इन द्रवों में द्रव की मात्रा ९६ प्रतिशत तक रह सकती है। शेष अंश ठोस पदार्थ होते हैं। ठोस पदार्थ जल में घुले रहते हैं। ऐसे ठोस पदार्थों में सबसे अधिक मात्रा, लगभग आधी, यूरिया की रहती है। प्रोटीन के विच्छेदन से यूरिया बनता है। आहार का प्रोटीन कुछ रुधिर में अवशोषित

हो जाता और कुछ आँत में पचकर एमिनो-अम्ल बनाता है जिसके विच्छेदन से भी यूरिया बनता है। शरीर के विभिन्न अंगों के वियोजन या टूट-फूट से भी कुछ यूरिया बनता है। यूरिया के सिवा कुछ अन्य ठोस पदार्थ भी मूत्रों में रहते हैं। ऐसे पदार्थों में यूरिक और हिप्पुरिक अम्लों के सोडियम लवण, पोटेसियम हिप्पुरेट, नमक, कैलसियम और मैगनीशियम के फास्फेट तथा सोडियम और पोटेसियम के सल्फेट हैं।

पशुओं के मल-मूत्र की प्रतिशतता और उनके अवयवों के सम्बन्ध में जो आँकड़े स्टोएक हार्ड्ट (Stoekhardt) ने दिये हैं वे इस प्रकार हैं —

पशुओं के मल-मूत्र का औसत संघटन, प्रतिशतता में

अवयव	ठोस मल				द्रव मूत्र			
	गाय	घोड़ा	सूअर	भेड़ी	गाय	घोड़ा	सूअर	भेड़ी
जल	८४	७६	८०	५८	९२	८९	९७·५	८६·५
ठोस पदार्थ	१६	२४	२०	४२	८·०	११·०	२·५	१३·५
राख	२·४	३	३	६	२·०	३·०	१·०	३·६
कार्बनिक पदार्थ	१३·६	२१	१७	३६	६·०	८·०	१·५	९·९
नाइट्रोजन	०·३	०·५	०·६	०·७५	०·८	१·२	०·३	१·४
फास्फरस (P_2O_5)	०·२५	०·३५	०·४५	०·६	—	—	०·१२	०·०५
क्षार	०·१	०·३	०·५	०·३	१·४	१·५	०·२	२·०
चूना और मैगनीशिया	०·४	०·३	०·३	१·५	०·१५	०·८	०·०५	०·६
सल्फर ट्रायक्साइड (SO_3)	०·०५	०·०५	०·०५	०·१५	०·१५	०·१५	०·०५	०·४
नमक	०·००५	लेश	०·०५	०·०२५	०·१	०·२	०·५	०·२५
सिलिका	१·६	२·०	१·६	३·२	०·०१	०·०२५	लेश	लेश

विभिन्न पशुओं से विभिन्न मात्रा में मल-मूत्र प्राप्त होते हैं। यदि गाय को भर पेट खिलाया जाय तो उससे साधारणतया ७० से ९० पौण्ड गोबर और २० से ३८ पौण्ड मूत्र प्रति दिन प्राप्त हो सकते हैं। घोड़े से ४५ से ५५ पौण्ड लीद और १० से ११ पौण्ड मूत्र प्रति दिन और भेड़, बकरी और सूअर से विभिन्न मात्राओं में मल-मूत्र प्राप्त होते हैं।

आहार की मात्रा की विभिन्नता से मल-मूत्र की मात्रा में भी विभिन्नता होती है। तुलनात्मक अंक प्राप्त करने के लिए पशुओं के १००० पौण्ड भार के आधार पर मल-मूत्र की गणना हुई है। इससे कम से कम यह पता लगता है कि विभिन्न पशुओं से प्राप्त विष्ठा और मूत्र में कैसी विभिन्नता रहती है।

१००० पौण्ड भार के आधार पर गणित मल-मूत्र की मात्रा

पशु	प्रतिदिन की विष्ठा (पौण्ड में)	प्रतिदिन का मूत्र (पौण्ड में)	प्रतिदिन के विष्ठा और मूत्र (पौण्ड में)	वार्षिक उत्पादन मल-मूत्र का टन में
गाय (दूध देनेवाली)	५०	२०	७०	१२·७
घोड़ा	४०	१०	५०	९·१
हरिन	२९	१२	४१	७·५
सूअर	४८	३४	८२	१५·०
भेड़	२२	११	३३	६·०
कुक्कुट आदि (poultry)	—	—	२३	४·३

इन आँकड़ों से पता लगता है कि बराबर भार की दृष्टि से गाय और सूअर सबसे अधिक विष्ठा प्रदान करते हैं। पर यह स्मरण रखना चाहिए कि ये पशु सबसे अधिक खाते भी हैं।

मल-मूत्र की वास्तविक मात्रा अधिक यथार्थता से उस आहार से गणित की जा सकती है जो पशुओं को खिलाया जाता है। इस दृष्टि से जर्मनी के एक अन्वेषक हाइडन (Heiden) ने एक सूत्र निकाला है। इस सूत्र का आधार वे प्रयोग हैं जो उन्होंने पशुओं को सूखे पदार्थ खिलाकर उनसे प्राप्त मल-मूत्र को नापकर किये हैं। गाय के लिए उनका अंक ३·८०, घोड़े के लिए २·१० और भेड़ के लिए १·८० है। इसका आशय यह है कि यदि १ पौण्ड सूखा पदार्थ खिलाया जाय तो गाय से

३ˑ८ पौण्ड, घोड़े से २ˑ१ पौण्ड और भेड़ से १ˑ८ पौण्ड मल-मूत्र प्राप्त होगा। उनका सूत्र है—

$$\frac{\text{सूखा पदार्थ}}{३} + (\text{सूखी पशु-बिछाली}) \times ४ = \text{खाद की समस्त मात्रा}$$

पाचन से सूखे पदार्थ का प्रायः दो-तृतीयांश भाग पशुओं में नष्ट हो जाता है। अतः केवल एक-तृतीयांश भाग ही मल में निकलता है। इसी कारण सूखे पदार्थ को तीन से भाग देते हैं। पशु-बिछाली में जो सूखा पदार्थ प्रयुक्त होता है वह जल से भरा रहता है। उसमें प्रत्येक २५ भाग में (एक चतुर्थांश भाग में) जल का अंश ७५ (तीन-चतुर्थांश) रहता है। इस कारण सूखी बिछाली को चार से गुणा करना पड़ता है।

गोबर

गोबर गाय, बैल और भैंस का होता है। गोबर में जल की मात्रा अधिक और पोषक तत्त्व कम रहते हैं। यदि गाय दूध देनेवाली और दुबली-पतली है तो गोबर में पोषक तत्त्व और कम हो जाते हैं। नाइट्रोजन की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। गोबर का किण्वन होता है और वह धीरे-धीरे गरम हो जाता है। सभी पशुओं से प्राप्त गोबर एक सा नहीं होता। मासाचुसेट में ७९ विश्लेषणों से पता लगा है कि गोबर में नाइट्रोजन की मात्रा १ˑ३६ से ०ˑ२१ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल की ०ˑ७५ से ०ˑ१० प्रतिशत और पोटाश की १ˑ४० से ०ˑ१३ प्रतिशत रहती है। स्नाइडर (Snyder) की रिपोर्ट के अनुसार नाइट्रोजन की मात्रा ०ˑ८ से ०ˑ४ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल की ०ˑ९ से ०ˑ३ प्रतिशत और पोटाश की ०ˑ९ से ०ˑ३ प्रतिशत रहती है।

वोएलेकर (Voelecker) **के अनुसार गोबर और मूत्र के अवयव**

	दुबला-पतला पशु	दाना पर पला गाड़ी का बैल	दुबला-पतला पशु	दाना पर पला गाड़ी का बैल
	वायु शुष्क गोबर		मूत्र	
जल	१९ˑ५९	१७ˑ८६	९१ˑ७७	९०ˑ६२
नाइट्रोजन	१ˑ३४	१ˑ०८	०ˑ९५६	१ˑ१६८
फास्फरिक अम्ल	०ˑ४७	०ˑ५४	०ˑ०२२	०ˑ०२२
पोटाश	१ˑ१६	०ˑ६०	१ˑ५२८	०ˑ६४३

यद्यपि गोबर में पोषक तत्त्व कम रहता है पर गोबर की मात्रा अधिक रहती है। इससे पोषक तत्त्व की कमी अधिक मात्रा से कुछ सीमा तक संतुलित हो जाती है। गोबर के एक टन में साधारणतया १० पौण्ड नाइट्रोजन, १० पौण्ड पोटाश और ६·६ प ण्ड फास्फरिक अम्ल रहता है।

लीद

गोबर से लीद अधिक मूल्यवान् होती है, यदि उसको ठीक तरह से सुरक्षित रखा जाय। लीद में नाइट्रोजन, फास्फरिक अम्ल और पोटाश अपेक्षया अधिक रहता है। जल अपेक्षया कम रहता है। लीद का किण्वन शीघ्रता से होता है। किण्वन से ताप बहुत उठ जाता है। यदि लीद सघन और भींगी न हो तो झुलस सकती है। जल्दी फसल उगाने में यह अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। ठंडी मिट्टी के लिए भी यह अच्छी सिद्ध हुई है।

इसके संघटन में उतनी विभिन्नता नहीं होती जितनी अन्य पशुओं की विष्ठाओं में होती है। वानस्लाइक ने इसका संघटन इस प्रकार दिया है—

लीद का संघटन

	लीद	मूत्र	समस्त
जल	७५	९०	७८
नाइट्रोजन	०·५५	१·३५	०·७५
फास्फरिक अम्ल	०·३०	लेश	०·२५
पोटाश	०·४०	१·२५	०·५५

एक घोड़ा प्रति दिन प्रायः २८·११ पौण्ड लीद प्रदान करता है जिसमें सूखा पदार्थ लगभग ६·३७ पौण्ड रहता है। १०० ग्राम सूखा चारा देने से २१० पौण्ड लीद प्राप्त होती है। यदि पशु-बिछाली की मात्रा प्रति घोड़ा ६·५ पौण्ड रखी जाय और यह भी विचार रखा जाय कि दिन में अस्तबल से बाहर भी घोड़ा लीद करता है, तो प्रति घोड़ा प्रति वर्ष ५$\frac{1}{8}$ से ६$\frac{1}{3}$ टन लीद प्राप्त हो सकती है। इसमें ६९ से ७३ पौण्ड नाइट्रोजन और ४२० से ४६० पौण्ड खनिज पदार्थ प्राप्त होगा।

भेड़ की मेंगनी

भेड़ की मेंगनी मूल्यवान् खाद प्रदान करती है। एक भेड़ प्रति दिन लगभग ३·७८ पौण्ड मेंगनी देती है जिसमें सूखा पदार्थ लगभग ०·९७ पौण्ड होता है। भेड़ से मूत्र कम प्राप्त होता है। जल की कमी के कारण मेंगनी का किण्वन शीघ्रता से होता है। इससे इसका कुछ नाइट्रोजन अमोनिया के रूप में निकलकर नष्ट हो जाता है।

फूलों, घासों और साग-सब्जियों के लिए मेंगनी बड़ी अच्छी खाद समझी जाती है। इससे मिट्टी की भौतिक दशा भी सुधर जाती है।

वानस्लाइक ने मेंगनी का विश्लेषण इस प्रकार दिया है—

मेंगनी का विश्लेषण; प्रतिशता में

	मेंगनी	मूत्र	समस्त
जल	६०	८५	६८
नाइट्रोजन	०·७५	१·३५	०·९५
फास्फरिक अम्ल	०·५०	०·०५	०·३५
पोटाश	०·४५	२·१०	१·००

बकरी की मेंगनी

बकरी की मेंगनी को कहीं-कहीं 'लेंड़ी' भी कहते हैं। यह बड़ी मूल्यवान् खाद समझी जाती है। इसमें पौधों का पोषक तत्त्व अधिक रहता है। एक बकरी प्रति दिन लगभग १·२५ पौण्ड मेंगनी प्रदान करती है। मूत्र बड़ी अल्प मात्रा में देती है। मेंगनी से पोषक तत्त्व का ह्रास अपेक्षया कम होता है। इसका विश्लेषण रमैया और सैलगेडो ने अलग-अलग किया है। उनके आँकड़े इस प्रकार के हैं—

बकरी की मेंगनी का विश्लेषण

	रमैया के अंक		सैलगेडो के अंक	
	जल के साथ	शुष्क	नं० १	नं० २
जल	१६·३६	—	१४.४९	१३·१३
नाइट्रोजन	२·४०	२·८७	३·२०	२·७२
फास्फरिक अम्ल	१·०१	१·२१	१·५४	१·५७
पोटाश	५·०१	५·९९	१·५६	०·७७

बकरी की मेंगनी कड़ी होती है। यह जल्द विच्छेदित नहीं होती। इस कारण जल्द प्रभाव के लिए इसे पीसकर और मिट्टी के साथ मिलाकर डालना चाहिए। यदि जल्द प्रभाव आवश्यक न हो तो बिना पीसे भी इस्तेमाल हो सकती है। पीसने से विच्छेदन जल्दी होकर पोषक तत्त्व पौधों को शीघ्र प्राप्त होता है। पुदीने के लिए यह बड़ी अच्छी खाद समझी जाती है। लंका में तम्बाकू और नारियल के लिए बड़ी उपयुक्त खाद समझी जाती है। आसाम में साग-सब्जियों और अनन्नास के लिए यह निश्चित रूप से उत्कृष्ट खाद है। सभी फसलों और साग-सब्जियों के लिए इसका उपयोग हो सकता है। इसमें पोषक तत्त्व अपेक्षया अधिक रहता है।

सूअर की विष्ठा

सूअर की विष्ठा एक सी नहीं होती। आहार की विभिन्नता और रहन-सहन की विभिन्नता के कारण विष्ठा में विभिन्नता आ जाती है। यदि उनके आहार में पोषक तत्त्व अधिक है तो विष्ठा में भी पोषक तत्त्व अधिक रहता है, अन्यथा पोषक तत्त्व की कमी रहती है।

एक सूअर प्रति दिन लगभग ८·३५ पौण्ड विष्ठा प्रदान करता है जिसमें शुष्क पदार्थ प्रायः १·६ पौण्ड रहता है। इतनी विष्ठा में नाइट्रोजन ०·०५ पौण्ड और खनिज पदार्थ ०·३१३ पौण्ड रहते हैं। यदि इसके मल-मूत्र को सोख रखने के लिए ४ से ८ पौण्ड पयाल का उपयोग किया जाय तो उससे प्राप्त खाद में नाइट्रोजन ०·०६ से ०·०७४ पौण्ड और खनिज पदार्थ ०·५४५ से ०·७७२ पौण्ड होंगे। साल में इससे २२ से २७ पौण्ड नाइट्रोजन और २०० से ३०० पौण्ड सूखा पदार्थ प्राप्त होगा।

सूअर की विष्ठा में जल का अंश अधिक रहता और नाइट्रोजन की मात्रा कम, पर फास्फरिक अम्ल की मात्रा अधिक रहती है। इसका विच्छेदन बड़ा मन्द होता है। इसकी विष्ठा ठंडी खाद में गिनी जाती है।

वान स्लाइक (Von Slyke) ने इसका विश्लेषण इस प्रकार किया है—

सूअर की विष्ठा का विश्लेषण

	विष्ठा	मूत्र	समस्त
जल	८०	९७	८७
नाइट्रोजन	०·५५	०·४०	०·५०
फास्फरिक अम्ल	०·५०	०·१०	०·३५
पोटाश	०·४०	०·४५	०·४०

कुक्कुटादि की विष्ठा

भिन्न-भिन्न पक्षियों की विष्ठा बहुत विभिन्न होती है। खाद की दृष्टि से इसमें पोषक तत्त्व अधिक रहते हैं। इसका कारण यह है कि इनके आहार में पोषक तत्त्व अधिक रहते हैं। इनका मूत्र-भाग अर्ध ठोस होता है और मल के साथ ही बाहर निकलता है। इनकी विष्ठा में नाइट्रोजन और फास्फरिक की मात्रा अधिक रहती है पर पोटाश की मात्रा कम रहती है। कुछ पक्षियों की विष्ठा में पोटाश की मात्रा अपेक्षया अधिक रहती है। कई अन्वेषकों ने इनकी विष्ठा का विश्लेषण किया है और उनके विश्लेषण के अंक ये हैं—

कुक्कुटादि विष्ठा के संघटन

	जल	नाइट्रोजन	फास्फरिक अम्ल	पोटाश
मुर्गी की ताजी विष्ठा (स्टोरर)	५६·००	१·६०	१·५० से २·००	०·८ से ०·९
मुर्गी की ताजी विष्ठा (गोएसमान)	५२·३५	०·९९	०·७४	०·२५
मुर्गी की सूखी विष्ठा (गोएसमान)	८·३५	२·१३	२·०२	०·९९४
बतख की ताज़ी विष्ठा (स्टोरर)	५६·६०	१·००	१·४०	०·६२
हंस की ताज़ी विष्ठा (स्टोरर)	७७·१०	०·५५	०·५४	०·९५
कबूतर की विष्ठा (स्टोरर)	५२·००	१·७५	१·७५ से २·००	१·०० से १·२५

इनकी विष्ठाओं का किण्वन शीघ्रता से होता है और उनसे अमोनिया निकलकर नष्ट हो जाता है। नष्ट होने से बचाने के लिए उनमें केनाइट, अम्ल फास्फेट, सुपर फास्फेट आदि पदार्थों के मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। सूखी मिट्टी अथवा सूखी प्रजीर्णकी (muck) का उपयोग भी इस काम के लिए उत्तम है। प्रति मुर्गा ३० से ४५ पौण्ड विष्ठा प्रति वर्ष प्राप्त हो सकती है।

पशु-बिछाली

गोबर खाद की प्रकृति बहुत कुछ पशु-बिछाली की किस्म और मात्रा पर निर्भर करती है। बिछाली के व्यवहार का प्रमुख उद्देश्य मूत्र और गैसों को सोखकर उन्हें निकल जाने से बचाने का भी होता है। बिछाली में पौधों के पोषक तत्त्व रहते हैं।

वे भी मल-मूत्र के साथ खाद के लिए प्राप्त होते हैं। गोबर को अच्छी भौतिक दशा में रखने में भी उससे सहायता मिलती है।

भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न किस्म की बिछाली प्रयुक्त होती है। ऐसे पदार्थों में महत्त्व के पदार्थ पयाल, घास, पत्ता, मकई, जुवार और बाजरे के डंठल, लकड़ी का बुरादा और छीलन तथा जीर्णकी सैवाल[1] हैं। कहीं-कहीं मिट्टी भी बिछाली के लिए प्रयुक्त होती है। ऐसी मिट्टी केवल मूत्रों को रोक रखने में समर्थ होती है, अन्यथा पोषक तत्त्व के रूप में उसका कोई महत्त्व नहीं है।

विभिन्न पशु-बिछालियों का विश्लेषण

पशु-बिछाली	प्रतिशतता		
	नाइट्रोजन	फास्फरिक अम्ल	पोटाश
गेहूँ-पयाल	०·४८	०·२५	०·९
जौ-पयाल	०·५७	०·२६	१·२
जई-पयाल	०·७२	०·१९	१·२
राई-पयाल	०·५७	०·२८	१·४
जीर्णक	२·३६	०·२०	०·१७
पत्ता	०·६५	०·१५	०·३०
लकड़ी का बुरादा और छीलन	०·१०	०·२०	०·४०

पोषण की दृष्टि से लकड़ी का बुरादा या छीलन किसी काम का नहीं है। इनमें पोषक तत्त्व बड़ा अल्प रहता है और वह भी बड़ी मन्द गति से विच्छेदित होता है, अतः हलकी मिट्टी में वह और भी किसी काम का नहीं होता। यह वास्तव में तनु कारक का काम करता है। पत्ता तो बड़ा जल्द विघटित हो जाता है पर उससे भी उर्वरता में विशेष सहायता नहीं मिलती। पयालों में नाइट्रोजन साधारणतया अधिक नहीं रहता।

[1] Peat moss

उत्सर्ग खाद की विभिन्नता निम्नलिखित कारणों पर निर्भर करती है—

१. **बिछाली की विभिन्नता**

२. **पशु की किस्म**—विभिन्न पशुओं के उत्सर्ग का विश्लेषण ऊपर दिया हुआ है। कुछ पशु आहार के पोषक तत्त्वों को अधिक खींचकर कम मात्रा में उत्सर्ग में उन्हें निकालते हैं। जो पशु पोषक तत्त्व कम ग्रहण करते हैं उनके उत्सर्ग में पोषक तत्त्व अधिक रहते हैं।

३. **पशु की उम्र**—यदि पशु कम उम्र का और दुबला-पतला है तो वह पोषक तत्त्व अधिक ग्रहण करता है। बढ़ती उम्र में अधिक पोषक तत्त्व की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे पशुओं के उत्सर्ग में पोषक तत्त्व कम रहता है। यदि पशु पूरा बढ़ गया है और आगे बढ़ने की सम्भावना नहीं है, और मोटा-ताज़ा है, तो ऐसे पशु के उत्सर्ग में पोषक तत्त्व अधिक रहता है। पोषक तत्त्वों में नाइट्रोजन और फास्फरस अधिक रहते हैं। जिन पशुओं को प्रचुर मात्रा में चारा प्राप्त होता है उनके उत्सर्ग में भी पोषक तत्त्व अधिक रहते हैं।

४. **पशु का चारा**—चारे की प्रकृति पर उत्सर्ग की भी प्रकृति निर्भर करती है। यदि चारे में पर्याप्त पोषक तत्त्व, नाइट्रोजन, फास्फरस, पोटाश और चूना है, जैसे गेहूँ के चोकर, बिनौले की खली और अलसी की खली में पाया जाता है, तो ऐसे पशु के उत्सर्ग में पोषक तत्त्व, नाइट्रोजन और फास्फरस, अधिक रहते हैं। जिस पशु को हलका चारा, केवल पुआल, डंठल या ट्रिमोथी (trimothy) घास खिलायी जाती है, उसके उत्सर्ग में पोषक तत्त्व कम रहते हैं।

ह्वीलर (Wheeler) ने मुर्गियों को विभिन्न आहार खिलाकर जो उत्सर्ग प्राप्त किया था वह इस प्रकार का था—

	प्रतिशतता			
	जल	नाइट्रोजन	फास्फरस	पोटाश
मुर्गी का उत्सर्ग जिसे नाइट्रोजनीय आहार खिलाया गया था	५९·७	०·८०	०·४१	०·२७
मुर्गी का उत्सर्ग जिसे केवल कार्बनिक आहार खिलाया गया था	५५·३	०·६६	०·३२	०·२१

ओहियो फार्म में इस सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनके परिणाम ये हैं—

	प्रतिशतता		
	नाइट्रोजन	फास्फरस	पोटाश
मक्का और मिली हुई सूखी घास	१·४९	०·२३	१·११
मक्का, तेलहन खली और सूखी घास	१·५५	०·२४	१·०२
मक्का, तेलहन खली और संजी	१·६८	०·२६	१·०४

५. **पशुओं का उपयोग**—उत्सर्ग पर पशुओं के उपयोग का भी प्रभाव पड़ता है। जो पशु दूध देते हैं उनके दूध में पर्याप्त नाइट्रोजन, फास्फरस और सामान्य मात्रा में पोटाश निकल जाते हैं। ऊन देनेवाले पशुओं में ऊन में पर्याप्त नाइट्रोजन निकल जाता है। अंडा देनेवाले पक्षियों में अंडे में नाइट्रोजन, फास्फरस और पर्याप्त पोटाश निकल जाते हैं। इन पोषक तत्त्वों के निकल जाने से उनके उत्सर्ग में इनकी कमी हो जाती है। दूध देनेवाली गाय का गोबर उतना उत्कृष्ट इसी कारण नहीं होता।

६. **उत्सर्ग का समुचित ढंग से रखना**—उत्सर्ग को यदि ठीक ढंग से न रखा जाय तो उसके पोषक तत्त्व कुछ तो वायु में और कुछ जल द्वारा घुलकर निकलकर नष्ट हो जाते हैं। उत्सर्ग का पोषक तत्त्व नष्ट न हो जाय इसके लिए आवश्यक है कि उसे सावधानी से इकट्ठा कर सुरक्षित रखा जाय। खेद है कि अंशतः अज्ञानता के कारण और अंशतः असावधानी के कारण उत्सर्ग के ठीक तरह से न रखने से पोषक तत्त्व बहुत कुछ नष्ट हो जाते हैं।

शुट्ट (Schutt) ने गाय और घोड़े के उत्सर्गों पर प्रयोग कर ह्रास होने के अंश का निर्धारण किया है। उनके आँकड़े ये हैं—

	छः मास पर ह्रास (प्रतिशतता)		बारह मास पर ह्रास (प्रतिशतता)	
	सुरक्षित	वायु में खुला	सुरक्षित	वायु में खुला
कार्बनिक पदार्थों में ह्रास	५८	६५	६७	६९
नाइट्रोजन में ह्रास	१९	२०	२३	४०
फास्फरिक अम्ल में ह्रास	—	१२	४	१६
पोटाश में ह्रास	३	२९	३	३६

ठीक तरह से उत्सर्ग के न रखने से उसका ह्रास क्यों होता है और कैसे होता है, इसका वर्णन आगे के अध्याय में किया जायगा।

गोबर की खाद का व्यवहार

गोबर की खाद हर स्थान पर मिल सकती और तैयार की जा सकती है। सभी किसान कोई न कोई पशु पालते हैं। कोई दूध के लिए गाय, भैंस और बकरी पालता है, कोई खेत जोतने के लिए बैल, भैंसा और ऊँट रखता है, कोई ऊन के लिए भेड़, और बकरी पालता है तो कोई बोझ ढोने के लिए बैल, घोड़ा, खच्चर या ऊँट रखता है। कोई मांस के लिए भेड़ और सूअर पालता है। जहाँ पशु रहते हैं वहाँ पशुओं के मल और मूत्र अनायास ही प्राप्त होते हैं और उनसे गोबर या घूरे की खाद तैयार हो सकती है।

खेद का विषय है कि भारत के किसान समस्त गोबर को खाद न बनाकर उससे गोहरी या उपला बनाकर ईंधन के रूप में जलाकर एक बहुमूल्य पदार्थ को नष्ट कर देते हैं। गोबर के कुछ पोषक तत्त्व तो राख में रह जाते हैं पर अधिकांश नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। अतः गोबर को उपला बनाने में इस्तेमाल करना ठीक नहीं है। जलावन के लिए अन्य पदार्थ विशेषतः लकड़ी और कुछ फसलों के डंठल इस्तेमाल हो सकते हैं।

गोबर की खाद से लाभ

गोबर की खाद से फसलों का आवश्यक पोषक तत्त्व, नाइट्रोजन, फास्फरिक अम्ल और पोटाश प्राप्त होते हैं। फास्फरिक अम्ल की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। गोबर की खाद का नाइट्रोजन विशेष रूप से अमोनिया एवं नाइट्रेट के रूप में रहता है जिसे पौधे बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। कुछ नाइट्रोजन ऐसे रूप में भी रह सकता है जिसे पौधे जल्दी ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते पर धीरे-धीरे जैसे-जैसे समय बीतता है वह ऐसे रूप में परिणत होता है कि पौधे उसे जल्द ग्रहण कर लें। इस कारण गोबर की खाद का प्रभाव तत्काल ही समाप्त नहीं हो जाता वरन् अनेक वर्षों तक चलता रहता है। साधारणतया गोबर की खाद में नाइट्रोजन की औसत मात्रा ०·६ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल की ०·३ प्रतिशत और पोटाश की ०·६ प्रतिशत रहती है।

अन्य आवश्यक तत्त्व, जैसे कैलसियम, मैगनीशियम, गन्धक, लोहा, मैंगनीज़, ताँबा आदि भी उसमें मौजूद रहते हैं। अतः

(१) गोबर की खाद से फसलों को आवश्यक तत्त्व प्राप्त होते हैं।

(२) गोबर की खाद से मिट्टी की भौतिक दशा सुधरती है। मटियार और कड़ी मिट्टी हलकी तथा भुरभुरी हो जाती है और बलुआर मिट्टी बँधती और दानेदार हो जाती है। दोनों दशाओं में खाद से जोताई सुधरकर उन्नत हो जाती है।

(३) मिट्टी में ह्यूमस की मात्रा बढ़ जाती है। गोबर की खाद जैसे-जैसे मिट्टी में सड़ती है ह्यूमस की मात्रा बढ़ती जाती है। इससे भूमि की जल-अवशोषण क्षमता बढ़ जाती है। सूखा पर भी मिट्टी से पानी बिल्कुल निकल नहीं जाता। वातन में भी इससे वृद्धि होती है। पानी के निकास में सहायता मिलती है। इससे फसलों के उगने और पनपने में सहायता मिलती है।

(४) गोबर की खाद से कार्बनिक अम्लों, विशेषतः कार्बोनिक अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है। कुछ खनिज लवण कार्बोनिक अम्ल में घुलते हैं। ऐसे घुले हुए खनिज लवणों को ग्रहण करने में पौधों को सहूलियत होती है। ह्यूमिक अम्ल भी बनता है जो खनिजों के साथ मिलकर लवण बनता है। ऐसे लवणों को पौधे जल्द ग्रहण कर लेते हैं।

(५) गोबर की खाद से भूमि के उद्भिद्-जात (flora) में सुधार होता है। खाद से केवल लाखों जीवाणु ही मिट्टी में नहीं मिलते वरन् जो जीवाणु पहले से भूमि में मौजूद हैं उनकी सक्रियता का बहुत अभिवर्धन हो जाता है। नाइट्रीकरण, एमोनियाकरण और नाइट्रोजन-स्थिरीकरण बहुत अधिक बढ़ जाता है।

(६) ऐसा समझा जाता है कि गोबर की खाद में कुछ वृद्धि-अभिवर्धक[1] तत्त्व रहते हैं। ये ऐसे ही पदार्थ हैं जैसे जीवों में विटामिन और हारमोन होते हैं। विश्लेषण से गोबर की खाद और कम्पोस्ट में न्यूक्लियिक अम्ल और उनके संजात पाये गये हैं। किण्वन से न्यूक्लियिक अम्ल डाइन्यूक्लियोटाइड और प्यूरिन तथा पिरिमीडिन क्षारों में परिणत हो जाते हैं। ऐसे ही पदार्थ वृद्धि-अभिवर्धक समझे जाते हैं। बौटमली (Bottomley) ने ऐसे वृद्धि-अभिवर्धक तत्त्व का नाम 'आक्सीमोन' (auximones) दिया है।

पोषक तत्त्व की उपलब्धि

गोबर की खाद के तरल अंश का नाइट्रोजन उतनी ही शीघ्रता से पौधों को प्राप्य होता है जितनी शीघ्रता से अमोनियम सल्फेट और सोडियम नाइट्रट का नाइट्रोजन

[1] Growth-promoting

प्राप्य होता है। पर खाद के ठोस अंश का नाइट्रोजन जल्दी प्राप्य नहीं होता। इस संम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि ठोस अंश के नाइट्रोजन का केवल १० प्रतिशत ही पहले वर्ष में पौधों को प्राप्य होता है, जब कि मूत्र का ७० प्रतिशत नाइट्रोजन पहले वर्ष में पौधों को प्राप्य होता है। इस कारण ठोस अंश का अवशिष्ट प्रभाव अधिक होता है। विशिष्ट नाइट्रोजन उर्वरकों का जितना नाइट्रोजन पौधों को प्राप्य होता है उसका केवल २० से ३० प्रतिशत नाइट्रोजन ही गोबर की खाद से प्राप्त होता है। वास्तविक मात्रा खाद की किस्म, उसके तैयार करने और रखने के ढंग पर निर्भर करती है।

गोबर की खाद के फास्फरिक अम्ल और पोटाश की उपलब्धि प्रायः वैसी ही होती है जैसी उर्वरकों के फास्फरिक अम्ल और पोटाश की होती है। कुछ अन्वेषकों की रिपोर्ट है कि गोबर की खाद के फास्फरिक अम्ल और पोटाश अधिक मात्रा में प्राप्य होते हैं।

बीज पर खाद का प्रभाव

अनेक लोगों ने बीज पर गोबर की खाद के प्रभाव का अध्ययन किया है। कोयम्बटोर के फार्मों में विश्वनाथ और सूर्यनारायण ने जो प्रयोग किये हैं वे स्पष्ट रूप से बताते हैं कि गोबर की खाद की सहायता से उगे बीज की अगली फसलों के लिए उत्पादन-क्षमता अधिक होती है। ऐसे उगे बीजों को सामान्य मिट्टी में भी बोने से फसलें अच्छी उपजती हैं। ऐसी अच्छी फसलें बिना खाद दिये खेतों से प्राप्त अथवा उर्वरक प्रयोग किये जानेवाले खेतों से प्राप्त बीजों से नहीं उपजतीं।

खाद के व्यवहार की विधि

खाद को खेतों में डालकर मिट्टी में तुरन्त मिला देना अच्छा होता है। यदि ऐसा न किया जाय तो कुछ पोषक तत्त्वों के नष्ट हो जाने का भय रहता है। यदि खाद को अच्छे प्रकार से ढेर में रखा जाय तो पोषक तत्त्वों की हानि अपेक्षया कम होती है।

यदि मिट्टी बलुई है तो ऐसे खेतों में पूर्ण रूप से सड़ी हुई खाद ही डालनी चाहिए और वह भी फसल बोने के ठीक पहले। इससे लाभ यह होता है कि पूरी सड़ी हुई खाद के छोटे-छोटे टुकड़े बलुई मिट्टी को बाँधकर रखने में समर्थ होते हैं। यदि खाद पूरी सड़ी हुई नहीं है तो उसके बड़े-बड़े टुकड़े मिट्टी को बाँध रखने में समर्थ नहीं होते। बलुई मिट्टी खुली हुई ही रहती है।

मिट्टी में गोबर की खाद को डालकर तत्काल मिलाकर और जोतकर बो न दिया जाय तो सम्भव है कि खाद के पोषक तत्त्व वर्षा होने से पानी में घुलकर निकल जायँ। यदि मिट्टी मटियार, चिकनी, कड़ी और भारी है तो ऐसे खेतों में फसल बोने के बहुत पहले सड़ी खाद के स्थान में ताजा गोबर डालकर जोत देना अच्छा होता है। इससे गोबर के अविघटित अंश कड़ी मिट्टी के साथ मिलकर उसे भुरभुरी बनाते, वातन पैदा करते और पानी के निकास में सहायक होते हैं। यहाँ गोबर का विघटन मिट्टी में ही होता है। इससे मिट्टी के खनिज लवण और कार्बनिक पदार्थ पर प्रभाव पड़ता है जिससे वे सुषुप्तावस्था से सक्रियावस्था में आ जाते हैं।

खाद डालने का समय

खाद डालने के समय के सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि बीज बोने अथवा पौधा लगाने के बहुत पहले खेतों में खाद डाली जाय तो उसका प्रभाव कुछ कम हो जाता है। इसका कारण यह समझा जाता है कि संकर्षण (leaching) द्वारा कुछ पोषक तत्त्व निकलकर नष्ट हो जाता है और कुछ पोषक तत्त्व ऐसे अविलेय रूप में परिणत हो जाता है कि पौधा उसे जल्द ग्रहण नहीं कर सकता। यदि खाद ठीक तरह से संचित कर रखी हुई है और उसके समस्त पोषक तत्त्व उसमें विद्यमान हैं और उसे बीज बोने या पौधा लगाने के ठीक पहले खेतों में डाला जाय तो उससे सबसे अधिक लाभ होता है। यदि खाद के विलेय पोषक तत्त्व कुछ नष्ट हो गये हैं तो उसके सम्बन्ध में फिर यह विचार करने की जरूरत नहीं है कि उसे खेतों में कब डाला जाय। जभी सुभीता हो उसे खेतों में डाल सकते हैं।

सामान्य नियम तो यह होना चाहिए कि खेतों में बीज बोने अथवा पौधा लगाने के लिए खेतों को तैयार करने के समय ही गोबर की खाद डालकर खेतों को तैयार करें। मध्यम या भारी पोतवाली (texture) मिट्टी में साल में कभी भी खाद डाली जा सकती है। उससे कोई क्षति नहीं है पर बलुई या पहाड़ी मिट्टी में ऐसा करना ठीक नहीं है, क्योंकि भारी वर्षा के कारण संकर्षण और कटाव (erosion) से पोषक तत्त्व का बहुत कुछ विनाश हो सकता है।

गोबर की खाद को बिखेरना चाहिए या कतार में डालना चाहिए या ऊपर से डालना चाहिए; यह खाद की मात्रा और कुछ सीमा तक फसल की किस्म पर निर्भर करता है। यदि काफी खाद मौजूद है तो बिखेरना ही अच्छा होता है। खेतों में खाद को एक सा बिछाकर तल की मिट्टी से भली-भाँति मिला देना चाहिए। सब ही फसलों के लिए यह ढंग अच्छा समझा जाता है।

यदि खाद की मात्रा काफी नहीं है और पौधे कतार में बोये हुए हैं तो खाद को कतार में ही डाल सकते हैं। यदि फल के पेड़ों में खाद डालनी है तो प्रत्येक पेड़ की जड़, तने से कुछ दूरी पर पेड़ के चारो ओर खाद डालनी चाहिए। तने से दूरी इतनी रहनी चाहिए कि पेड़ की जड़ें वहाँ तक पहुँच जायँ। खाद डालकर मिट्टी में मिला देनी चाहिए।

कुछ फसलों के लिए विशेषतः फलीदार और अन्नवाली फसलों के लिए ऊपर से खाद डालने की सिफारिश की गयी है। इससे जल को रोक रखने की क्षमता बढ़ी हुई पायी जाती है और तल की मिट्टी का टिल्थ (tilth) सुधरा हुआ पाया जाता है। पर इससे पैदावार में विशेष वृद्धि नहीं पायी जाती। ऊपर से खाद डालने के स्थान में खाद को बिखेरकर मिट्टी में जोत देने से ही पैदावार बढ़ी हुई पायी जाती है।

खाद की मात्रा

खेतों में गोबर की खाद कितनी डालनी चाहिए यह बहुत कुछ खाद्य की प्राप्यता पर निर्भर करता है। खाद इतनी होनी चाहिए कि सारा खेत पतली परत में उससे ढँक जाय। खेत के कुछ ही हिस्सों को खाद की मोटी परत से ढकना और शेष को वैसे ही छोड़ देना अच्छा नहीं है। सारे खेत को पतले स्तर से ढकना ही अच्छा होता है। ५० टन खाद को पाँच एकड़ भूमि में डालने की अपेक्षा उसे १०० एकड़ भूमि में डालने से फसलें अच्छी उगती हैं। यदि काफी खाद न मिल सके तो जितनी मिले उतनी ही समस्त भूमि में डालकर मिट्टी में मिला देना अच्छा होता है।

खाद को एक बार में बहुत अधिक मात्रा में न देकर अल्प मात्रा में बारबार देना अधिक अच्छा होता है। इससे पैदावार अधिक अच्छी होती है। सामान्य मिट्टी में प्रति एकड़ यदि ८ टन खाद डाली जाय तो ऐसी खाद हलकी समझी जाती है। प्रति एकड़ १५ टन डालने से खाद मध्यम समझी जाती और २५ टन डालने से भारी समझी जाती है। साग-भाजियों के उगाने में प्रति एकड़ ५० से १०० टन तक खाद डाली जा सकती है।

खाद का वितरण

खेतों में खाद का वितरण एक-सा होना चाहिए ताकि समस्त खेत में फसल की उपज एक-सी हो। एक-से वितरण के लिए खाद महीन होनी चाहिए। यदि मिट्टी मध्यम या भारी है तो एक बार खाद न डालकर कई बार डालना अच्छा होता है। पहली बार अधिक मात्रा में और बाद में यह मात्रा धीरे-धीरे कम करते जाना अच्छा

होता है। यदि खेत में २० टन खाद डालनी हो तो एक बार में न डालकर दो बार में दस-दस टन करके डालना अच्छा होता है। इससे पैदावार अच्छी होती है। ओहियो के फार्म में इस सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनसे इसकी पुष्टि हो जाती है। वहाँ ये प्रयोग १८ वर्षों तक ऐसे खेतों में हुए थे जिनमें गेहूँ, सेंजी और आलू बारी-बारी से बोये गये थे। इन प्रयोगों से प्राप्त आँकड़े नीचे की सारणी में दिये गये हैं। इस सारणी में एक टन खाद के उपयोग से उत्पादन में जितनी वृद्धि हुई उसी का उल्लेख है।

उत्पादन पर खाद का प्रभाव

प्रति एकड़ पर खाद की मात्रा	प्रति टन प्रति एकड़ उत्पादन (बुशेल)		
	गेहूँ	सेंजी	आलू
प्रति एकड़ ४ टन	८·०	१७७	३७·३
प्रति एकड़ ८ टन	४·१	१५०	१९·३
प्रति एकड़ १६ टन	२·४	९९	११·६

प्रति एकड़ ४ टन खाद डालने से एक टन में गेहूँ का उत्पादन ८·० बुशेल हुआ है, जब कि ८ टन खाद डालने से एक टन में ४·१ बुशेल और १६ टन खाद डालने से एक टन में २·४ बुशेल हुआ है। दूसरे शब्दों में ४ टन से जहाँ उत्पादन ३२ बुशेल हुआ है वहाँ ८ टन से उत्पादन ३२·८ बुशेल और १६ टन से उत्पादन ३८·४ बुशेल हुआ है। अधिक खाद से उत्पादन अवश्य बढ़ा है पर प्रति टन उत्पादन की मात्रा कम होती गयी है।

ओहियो फार्म में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि यदि प्रति एकड़ १६ टन खाद का उपयोग हो तो जितना पोषक तत्त्व प्रथम वर्ष में निकल जाता है उससे २५ से ३० प्रतिशत अधिक पोषक तत्त्व ८ टन खाद के उपयोग से निकल जाता है।

खेतों में खाद का वितरण एक-सा हो इसके लिए आवश्यक है कि हाथों से वितरण करने के स्थान में यंत्रों से वितरण करने का प्रबन्ध हो। इसके लिए जो यंत्र बने हैं उन्हें 'स्प्रेडर' (वितरक) कहते हैं। स्प्रेडर से वितरण एक-सा और शीघ्रता से होता है। एक आदमी अधिक खेतों में वितरण कर सकता है। इससे वितरण का खर्च कम हो जाता है।

खेतों में खाद को फैलाकर जोत देना चाहिए या नहीं, यह फसल की किस्म पर निर्भर करता है। साधारणतया खाद को बिखेरकर जोत देना ही अच्छा होता है।

जोतना उस दशा में और अच्छा होता है जब खाद बहुत महीन न हो और न बहुत सड़ी हुई ही हो। जोतने में इतना गहरा न जोतना चाहिए कि उसके सड़ने में कठिनता हो। यदि खाद महीन और भली-भाँति सड़ी हुई है तो खेतों में फैलाकर हेंगा कर देना काफी है। वस्तुतः खाद को कैसे व्यवहार करना चाहिए यह मिट्टी की प्रकृति, खाद की प्रकृति और फसल की प्रकृति पर निर्भर करता है।

जोताई

खाद से पूरा लाभ उठाने के लिए खेत की जोताई अच्छी होनी चाहिए। यदि जोताई अच्छी न हो तो अधिक खाद से पैदावार अच्छी नहीं होती। अच्छी जोताई से मिट्टी के पोषक तत्त्व पौधों को प्राप्य होते हैं। मिट्टी में पोषक तत्त्व रहने पर भी यदि जोताई अच्छी न हो तो वे पौधों को प्राप्य नहीं होते और तब पैदावार अच्छी नहीं होती।

खाद का अवशेष परिणाम

मूत्र का परिणाम (प्रभाव) पहले वर्ष में ही सबसे अधिक होता है पर गोबर का प्रभाव पहले वर्ष में अधिक नहीं होता। इसका प्रभाव अनेक वर्षों तक चलता रहता है। कारण यह है कि गोबर के कार्बनिक पदार्थ बड़े धीरे-धीरे सड़ते और विच्छेदित होते हैं। सड़ान और विच्छेदन पर ही वे पौधों को प्राप्य होते हैं।

इस सम्बन्ध में रौथमस्टेड फार्म में जो प्रयोग हुए हैं वे महत्त्व के हैं। जौ के खेत में लगातार १५ वर्षों तक प्रति एकड़ १५ टन की दर से गोबर की खाद डाली गयी थी। १५ वर्षों के बाद खाद का डालना बन्द कर दिया गया। खाद बन्द कर देने पर जौ की पैदावार धीरे-धीरे कम होती गयी पर २० वर्षों तक पैदावार उस खेत से अधिक ही रही जिस खेत में कभी कोई खाद डाली नहीं गयी थी।

हौल ने वर्णन किया है कि घास के एक खेत में लगातार ८ वर्षों तक (१८५६–१८६३) प्रति साल १४ टन की दर से खाद डाली गयी थी। उसके बाद फिर ४० वर्षों तक उस खेत में कोई खाद नहीं डाली गयी। इस खेत की घास के उत्पादन की तुलना उस खेत की घास के उत्पादन से की गयी थी, जिसमें कभी भी खाद नहीं डाली गयी थी। खाद डालना बन्द कर देने के दो वर्षों के बाद खादवाले खेत के उत्पादन में सबसे अधिक वृद्धि लगभग १२० प्रतिशत हुई थी। प्रथम दशक (१८६६–१८७५) में वृद्धि ५७ प्रतिशत की और बाद के तीन दशकों में औसत वृद्धि क्रमशः २४, १६ और १५ प्रतिशत हुई थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि खाद का अवशेष परिणाम कई वर्षों तक चलता है।

सूरत के फार्म में इसी प्रकार के प्रयोग हुए हैं। कपास की खेती में सन् १९१५–१६ में २० गाड़ी गोबर की खाद डाली गयी। उसके बाद खाद का डालना बन्द कर दिया गया। ऐसे खेत की पैदावार की तुलना उस खेत की पैदावार से की गयी है जिसमें खाद बिल्कुल नहीं डाली गयी थी। सन् १९२५–२६ तक कपास के खेत और सन् १९२४–२५ तक जुआर के खेत की पैदावार स्पष्ट रूप से बढ़ी हुई पायी गयी थी।

खाद के साथ अन्य उर्वरक

गोबर की खाद में फास्फरस की कमी रहती है। यदि इसके साथ फास्फरीय उर्वरक मिला दिया जाय तो कमी की पूर्ति हो सकती है। गोबर की खाद के साथ ही फास्फरीय खाद मिलाकर डाल सकते हैं अथवा ऊपर से फास्फरीय उर्वरक का उपयोग भी कर सकते हैं।

गोबर की खाद में इतना पोषक तत्त्व नहीं होता कि फसल के रूप में जितना पोषक तत्त्व निकलता है, उसकी पूरी पूरी पूर्ति हो जाय। अतः गोबर की खाद के साथ नाइट्रोजनीय खाद, सोडियम नाइट्रेट अथवा अमोनियम सल्फेट का उपयोग सदा ही लाभप्रद होता है। जहाँ खेत में चना डालने की ज़रूरत हो वहाँ चूना ज़रूर डालना चाहिए।

गोबर की खाद की उर्वरकों से तुलना

कभी-कभी लोग नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटाश के दृष्टिकोण से गोबर की खाद की उर्वरकों से तुलना करते हैं। पर यह तुलना ठीक नहीं है, क्योंकि गोबर की खाद में इन पोषक तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य पदार्थ भी रहते हैं जो पौधों के बढ़ने और पनपने के लिए बड़े आवश्यक हैं। गोबर की खाद वस्तुतः एक बड़ा पेचीला पदार्थ है। इसमें अल्प मात्रा में वे सब तत्त्व भी रहते हैं जिनका रहना पौधों की वृद्धि के लिए नितान्त आवश्यक है और जिनका उल्लेख आगे होगा। सबसे ऊपर गोबर की खादमें कार्बनिक पदार्थ रहते हैं। इनसे ह्यूमस बनता है। मिट्टी के लिए ह्यूमस मूल्यवान् है। उर्वरकों से ह्यूमस नहीं प्राप्त होता।

फसल की वृद्धि और अच्छे उत्पादन के लिए मिट्टी में ह्यूमस का रहना बड़ा आवश्यक है। यदि गोबर की खाद का उपयोग न हो तो ह्यूमस के लिए बीच-बीच में हरी खाद का व्यवहार अथवा धरती को परती रख छोड़ना आवश्यक होता है। यह ज़रूर है कि कुछ महत्त्व के पोषक तत्त्व उर्वरक में गोबर की खाद की अपेक्षा अधिक मात्रा में रहते हैं और उन्हें पौधे बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेते हैं; पर उनसे पोषक तत्त्वों के नष्ट हो जाने का भय भी अधिक रहता है। यह सच है कि कुछ नाइट्रोजनीय खाद से

फसलों की पैदावार बहुत बढ़ जाती है। इतनी बढ़ जाती है जितनी गोबर की खाद से नहीं बढ़ती। पर गोबर की खाद से मिट्टी में कुछ ऐसे गुण अवश्य आ जाते हैं जो उर्वरक के व्यवहार से नहीं आते। अतः किसानों और मालियों के लिए गोबर की खाद का महत्त्व उर्वरकों के महत्त्व से कहीं अधिक है। इसके अतिरिक्त गोबर की खाद में वृद्धि–अभिवर्द्धन वाला पदार्थ 'आक्सीमोर' भी रहता है, जो उर्वरकों में नहीं होता।

गोबर की खाद और फसल

गोबर की खाद सब फसलों के लिए साधारणतया प्रयुक्त हो सकती है। इसमें नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटाश रहते हैं जो सब फसलों के लिए आवश्यक हैं। इसके उपयोग से सब फसलों को लाभ होता है।

अन्नवाली फसलें––अन्नवाली फसलों में मकई को गोबर की खाद से बहुत लाभ होता पाया गया है। प्रति एकड़ ६ से १० टन खाद प्रयुक्त हो सकती है। हरी खाद का उपयोग भी मकई के लिए अच्छा पाया गया है।

छोटे अनाजों में धान, गेहूँ और जौ की पैदावार भी गोबर की खाद से अच्छी होती है। जहाँ डाल-पात अधिक नहीं बनते वहाँ ऐसी खाद की विशेष आवश्यकता पड़ती है। डाल-पात के बहुत अधिक बढ़ जाने से भी अन्न अधिक नहीं पैदा होता। किसानों का यह सामान्य अनुभव है कि जिस फसल का डंठल बहुत बढ़ जाता है उसमें अनाज कम पैदा होता है। डंठल के बढ़ जाने से उसके गिर जाने का भी भय रहता है। हवा के झोंके से ऐसी फसलें जल्दी गिर जाती हैं। फसल का गिरना अच्छा नहीं है।

यदि भूमि पर्याप्त उपजाऊ है तो प्रति एकड़ दो से तीन टन खाद का उपयोग काफी होता है। गेहूँ और मकई की अपेक्षा जई और राई में गोबर की खाद की कम ज़रूरत पड़ती है। यदि बरसात में मकई के खेत में गोबर की खाद डाली गयी हो और यदि उसी खेत में जई बोना है तो फिर खाद डालने की कोई ज़रूरत नहीं है। ऐसे खेत में बिना खाद डाले जई की पैदावार अच्छी हो सकती है। अधिक खाद से पौधे भारी होकर गिर सकते हैं। राई और कुट्टक (buckwheat) की फसलों में कदाचित् ही खाद डालने की आवश्यकता होती है।

साग-भाजी––प्रायः सब ही साग-भाजियों में गोबर की खाद डालने से लाभ होता है। बहुत अधिक खाद के व्यवहार से डाल-पात अधिक बनते हैं जिससे जड़वाली फसलों की पैदावार कम हो सकती है। आलू के खेतों में आलू बोने से पहले गोबर की

खाद डालने से आलू में कीड़े और कलंकिका[1] रोग लग सकते हैं। इस कारण आलू बोने से पहले खेत में जो फसल बोयी गयी हो उसमें ही गोबर की खाद डालना अच्छा होता है। इस से लाभ यह होता है कि खाद पूरी सड़कर मिट्टी में मिल जाती है जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाती है जो आलू की फसल के लिए बड़ी आवश्यक है। गोबर के सड़ जाने से कीड़े नहीं लगते और खाद का अवशिष्ट प्रभाव ही आलू को प्राप्त होता है। कीड़ों से बचाने के लिए कहीं कहीं नीम की खली भी मिला देते हैं।

यदि गोबर की खाद को आलू के खेत में डालना ही हो तो बरसात में ही डालना अच्छा है क्योंकि खाद को सड़ने के लिए पूरा समय और पानी मिल जाता है। खाद को डालकर मिट्टी में भली भाँति मिला देना ज़रूर चाहिए। इससे शीघ्र सड़ने में सहायता मिलती है।

साग-भाजी के लिए साधारणतया १२ से २० टन गोबर की खाद इस्तेमाल करनी चाहिए। इससे पोषक तत्त्वों के साथ-साथ कार्बनिक पदार्थ भी मिल जाते हैं। खाद को एक-सा खेतों में फैलाकर जोत देना चाहिए। ऐसा होने से भूमि की भौतिक दशा भी सुधर जाती है जिससे साग-सब्जी के लिए खेत बहुत उपयुक्त हो जाता है।

साग-सब्जी के लिए गोबर की खाद के साथ-साथ अथवा पौधा लगाने के पहले ऊपर से फास्फेट उर्वरक अथवा मिश्रित उर्वरक का उपयोग भी लाभप्रद होता है। यदि खेत में पातगोभी और टमाटर बोना है तो प्रति एकड़ १० से १५ टन गोबर की खाद डाली जा सकती है। साधारणतया फलीदार फसल, मटर और सेम, में खाद डालना ठीक नहीं है, सिवा उस दशा के जब मिट्टी बड़ी हलकी हो।

सब साग-सब्जियों में सुपर फास्फेट और अन्य उर्वरकों का व्यवहार विशेष रूप से करना चाहिए। गोबर की खाद के साथ कुछ पोटाश खाद, कुछ सोडियम नाइट्रेट या अमोनियम सल्फेट मिला देना विशेष लाभप्रद होता है।

कपास—कपास को अधिक नाइट्रोजन की आवश्यकता पड़ती है। इस कारण गोबर की खाद से कपास में विशेष लाभ होता है। कपास के खेत में १० टन प्रति एकड़ की दर से यह खाद डाली जा सकती है।

तम्बाकू—गाढ़े रंग का तम्बाकू चुरुट और हुक्के के लिए अच्छा होता है। ऐसा तम्बाकू गोबर की खाद से उन्नत होता है पर हलके रंग के तम्बाकू में जो सिगरेट और

[1] Scab

पाइप के लिए अच्छा होता है, गोबर की खाद अच्छी नहीं होती। ऐसे तम्बाकू में अल्प मात्रा में ही गोबर की खाद डालनी चाहिए। गाढ़े रंग के तम्बाकू में १० से १५ टन खाद डाल सकते हैं।

फल—फलवाले पौधों के लिए गोबर की खाद लाभप्रद होती है। ऐसे पौधों को नाइट्रोजन की आवश्यकता पड़ती है, यह नाइट्रोजन गोबर की खाद से प्राप्त होता है। इससे फल की उपलब्धि अधिक मात्रा में होती है। इससे डाल-पात भी बहुत बढ़ते और काष्ठ तथा मधुदीर्घा[1] का उद्दीपन होता है। फल-वृक्षों में तने से एक से दो फुट के अन्दर पेड़ों के चारो ओर खाद डालनी चाहिए। फलों के बगीचों में पेड़ों से ८ से १० फुट तक खाद को छींटकर फैला देना चाहिए। कितनी मात्रा में खाद डालनी चाहिए यह पेड़ों की उम्र, पेड़ों के विस्तार और किस्म पर निर्भर करता है। प्रति पेड़ दो से चार मन तक खाद डाली जा सकती है।

अन्य फसलें—अन्य फसलों में भी, जिनका उल्लेख ऊपर नहीं हुआ है, गोबर की खाद का उपयोग हो सकता है। जिस खेत में बीज लगाना हो उसमें खाद का हलका उपयोग अच्छा होता है। प्रति एकड़ तीन से चार टन खाद प्रयुक्त हो सकती है।

भारत में गोबर की खाद के प्रयोग

भारत के अनेक फार्मों में गोबर की खाद की उपयोगिता पर अनेक प्रयोग हुए हैं। उन प्रयोगों का संकलन और विवेचन वैद्यनाथन् ने किया है। उन प्रयोगों से पता लगता है कि जिस मिट्टी में ह्यूमस नहीं है अथवा कम है उस मिट्टी पर गोबर की खाद का प्रभाव बहुत अच्छा पड़ता है। अन्यथा उसका प्रभाव बड़ा मन्द होता है। कितने वर्षों तक इसका अवशेष परिणाम भारत में रहता है इसका अध्ययन अभी काफी नहीं हुआ है। साधारण रूप से कहा जा सकता है कि विभिन्न फसलों पर गोबर की खाद, विष्ठा की खाद और खली का परिणाम प्रायः एक-सा ही होता है।

यदि गोबर की खाद को अमोनियम लवण या सोडियम नाइट्रेट और सुपर फास्फेट के साथ मिलाकर इस्तेमाल किया जाय तो प्रायः सब फसलों पर अच्छा परिणाम प्राप्त होता है। एक मात्र गोबर की खाद से मिश्रण उत्तम होता है। ऐसी मिश्रित खाद का अवशेष परिणाम क्या होता है, इसका नियमित रूप से अध्ययन अभी तक नहीं किया गया है।

[1] Spur

कम्पोस्ट

१९२१ ई० में इंग्लैण्ड के रौथमस्टैड फार्म में हटचिन्सन और रिचार्ड्स ने देखा कि पयालों से, बिना पशुओं के मल-मूत्र की सहायता के, ऐसी खाद प्राप्त हो सकती है जो गोबर की खाद से बहुत कुछ मिलती जुलती है और जिसके उपयोग से फसलों की पैदावार वैसी ही अच्छी होती है जैसी गोबर की खाद के उपयोग से।

इसके लिए उन्होंने पयालों के साथ एक ऐसे जीव का संवर्धन (Culture) किया जो सेल्यूलोस को विच्छेदित कर सकता है। इसका नाम उन्होंने 'सेप्टोफेज हटचिन्सोनी' (Septophase Hutchinsoni) रखा। इस जीव की सक्रियता संवर्धिनी तरल के खनिज पदार्थों पर निर्भर करती है। इस खाद के तैयार करने में पयाल के अतिरिक्त अन्य आवश्यक पदार्थ वायु, उपयुक्त ताप और अल्प मात्रा में विलेय नाइट्रोजन यौगिक हैं। यहाँ वायुजीवी किण्वन होता है। सेल्यूलोस का उत्तम विच्छेदन उदासीन अथवा अल्प क्षारीय विलयन में पर्याप्त प्राप्य नाइट्रोजन की उपस्थिति में होता है। नाइट्रोजन के लिए मूत्र, यूरिया, अमोनियम कार्बोनेट और पेपटोन (कुछ सान्द्रण का) उपयुक्त हो सकता है। अमोनियम सल्फेट इस कारण उपयुक्त नहीं है कि इससे विलयन अम्लीय हो जाता है। संयुक्त नाइट्रोजन का सान्द्रण यहाँ बड़े महत्त्व का है। अधिक सान्द्रण से नाइट्रोजन नष्ट हो जाता है। कम सान्द्रण से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। इस प्रकार खाद तैयार करने की विधि का जब प्रकाशन हुआ तब अनेक उच्छिष्ट वानस्पतिक पदार्थों पर परीक्षण हुए और उनसे खाद तैयार करने की चेष्टाएँ हुईं।

इस प्रकार से तैयार हुई खाद को 'कम्पोस्ट' कहते हैं। कम्पोस्ट वानस्पतिक पदार्थों के विच्छेदन से प्राप्त होता है। विच्छेदन करनेवाले जीवाणु और कवक हैं। विशिष्ट परिस्थितियों में ही ये अपना कार्य करते हैं। इस प्रकार जो खाद प्राप्त होती है वह भूरे रंग की होती है। ठीक तरह से तैयार की जाय तो यह ठीक गोबर की खाद जैसी देख ही नहीं पड़ती वरन् गुण में भी वैसी ही होती है। इस प्रकार से खाद तैयार करने को 'कम्पोस्ट' बनाना कहते हैं।

कम्पोस्ट बनाने का सिद्धान्त

कम्पोस्ट बनाने में पयाल तथा खलिहानों के अन्य ऐसे व्यर्थ पदार्थ जो अन्य किसी काम में नहीं आते प्रयुक्त हो सकते हैं। ऐसे पदार्थों में प्रधान रूप से सेल्यूलोस और हेमिसेल्यूलोस ६० प्रतिशत अथवा इससे अधिक, लिगनिन १५ से २० प्रतिशत, जल-विलेय पदार्थ ५ से १२ प्रतिशत और प्रोटीन १·२ से ३·० प्रतिशत रहते हैं।

सेल्यूलोस और हेमिसेल्यूलोस नाइट्रोजन तथा अन्य खनिज लवणों की उपस्थिति में जल्द विच्छेदित हो जाते हैं। लिगनिन का विच्छेदन इतनी शीघ्रता से नहीं होता। प्रोटीन और खनिज द्रव्य यद्यपि अल्प मात्रा में रहते हैं पर इनकी प्रतिशतता विच्छेदन की प्रगति से शनैः-शनैः बढ़ती जाती है।

कम्पोस्ट बनने में कार्बनिक पदार्थों का अधिक सेल्यूलोस और हेमिसेल्यूलोस विघटित होकर निकल जाता है। यह विघटन अनेक कवकों और वायुजीवी जीवाणुओं के द्वारा होता है। विघटन के समय अनेक जीवाणु अणुजीवी (microbial) कोशा-पदार्थ का निर्माण करते हैं। निर्माण करने में जीवाणुओं (micro-organism) को नाइट्रोजन, फास्फरस और अनुकूल परिस्थिति की आवश्यकता होती है। जीवाणुओं की कोशाओं के निर्माण में प्रोटीन और न्यूक्लीन की आवश्यकता पड़ती है। विघटित सेल्यूलोस और नव-निर्मित कार्बनिक पदार्थों के बीच सीधा सम्बन्ध होता है। ऐसा सम्बन्ध वास्तव में पाया गया है। ४० से ५० ग्राम सेल्यूलोस और हेमिसेल्यूलोस के विघटन में एक ग्राम उपलब्ध नाइट्रोजन की आवश्यकता पड़ती है।

चूँकि वनस्पतियों के अवशिष्ट अंश में नाइट्रोजन की मात्रा कम रहती है, इससे अकार्बनिक नाइट्रोजन के बाहर से डालने की आवश्यकता पड़ती है। यदि उपलब्ध नाइट्रोजन पर्याप्त न हो तो विघटन ठीक तरह से नहीं होता। इससे कम्पोस्ट बनाने में बाहर से नाइट्रोजन देना पड़ता है और इससे कम्पोस्ट में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है।

कम्पोस्ट बनाने में वनस्पतियों का कोई भी उच्छिष्ट अथवा व्यर्थ अंश प्रयुक्त हो सकता है। कम्पोस्ट के निर्माण में सेल्यूलोस के विघटन में ताप और जल का नियंत्रण आवश्यक है। इसमें नाइट्रोजन, फास्फरस, पोटेसियम और कैलसियम कार्बोनेट भी आवश्यक मात्रा में रहना चाहिए।

कम्पोस्ट बनाने के सामान

१. बृहत्काय (bulky) कार्बनिक पदार्थ —ऐसे पदार्थों में घास, पयाल, घास-पात, जुआर, मकई और बाजरे के डंठल तथा खुँखड़ी,[1] कपास, एरंड, तम्बाकू, सरसों, चना, मटर, सनई और पटुआ के डंठल, पशु-बिछाली, ईख का सूखा पत्ता, चाय का छाँटन,[2] अनन्नास का व्यर्थ अंश, चीड़ का सूच्याकार पत्ता, ढैंचा, खेत-खलिहानों

[1] Stubble [2] Prunings

का कचरा, बाजारों का कचरा, नगरों का कचरा, सड़कों का कूड़ा-करकट, मूँग-फली का डंठल और छिलका, दलहन का छिलका, जल-नीलारुणा[1] और सेवार आदि हैं।

२. कोई उपयुक्त आरम्भक — आरम्भक के लिए गोबर, विष्ठा, मल-प्रवाह[2], अवपंक[3], सक्रियकृत अवपंक या अकार्बनिक नाइट्रोजनीय पदार्थ, जैसे कैलसियम-साइनेमाइड, अमोनियम सल्फेट, सोडियम नाइट्रेट या 'ऐडको' इस्तेमाल हो सकता है।

आरम्भक की मात्रा कितनी रहनी चाहिए यह कार्बनिक पदार्थों के नाइट्रोजन की मात्रा पर निर्भर करता है। पयाल में नाइट्रोजन ०·५ प्रतिशत के लगभग रहता है। उसमें इतना आरम्भक डालना चाहिए कि नाइट्रोजन की मात्रा ०·७ से ०·७५ प्रतिशत हो जाय। ईख का सूखा पत्ता, कपास का डंठल, जुआर की खुँखड़ी आदि में इतना ही नाइट्रोजन रहना चाहिए।

घास, पत्ता या घास-पात में पर्याप्त नाइट्रोजन रहता है। इसमें ऊपर से नाइ-ट्रोजन डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अच्छी बात तो यह होगी कि विभिन्न पदार्थों को मिलाकर ऐसा मिश्रण तैयार किया जाय कि उसमें नाइट्रोजन की मात्रा १ से १·२५ प्रतिशत के लगभग रहे। तब बाहर से नाइट्रोजन डालने की आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसी दशा में केवल गोबर का कुछ काढ़ा (decoction) डालने की ज़रूरत पड़ती है ताकि उसमें पर्याप्त मात्रा में जीवाणु मिल जायँ।

३. जल की मात्रा — यह प्रायः ५० प्रतिशत रहनी चाहिए। जल की मात्रा कम रहने से जीवाणुओं की सक्रियता कम हो जाती है और कम्पोस्ट ठीक नहीं बनता। उद्वाष्पन से जो पानी निकल जाय उसकी पूर्ति बीच-बीच में करते रहना चाहिए। उद्वाष्पन को कम करने या रोकने के लिए एक सप्ताह के बाद जब प्रारम्भिक वायुजीवी किण्वन शुरू हो जाय तब उस पर मिट्टी का लेप चढ़ा देना चाहिए।

४. वायु की मात्रा – यह पर्याप्त मिलनी चाहिए, विशेष रूप से विच्छेदन की प्रार-म्भिक अवस्था में। कारण यह है कि अधिकांश अणु जीव वायु-जीवी होते हैं। पर्याप्त वायु के लिए ढेर को उलट-फेर करते रहना चाहिए। किसी यन्त्र की सहायता से भी उसमें वायु प्रविष्ट करायी जा सकती है। ऐसी दशा में पेंदे में पत्थर या कंकड़ का या ईंट का टुकड़ा रखना अच्छा होता है क्योंकि इससे वायु के अन्तःप्रवेशन में सहूलि-

[1] Water hyacinth [2] Sewage [3] Sludge

यत होती है। कम्पोस्ट बनाने के पात्र या गड्ढे के पेंदे में छेदवाली नली भी रखी जा सकती है, जिससे वायु प्रविष्ट करायी जा सके।

ऐसा करना उस दशा में अधिक आवश्यक हो जाता है जब ऐसे पदार्थों से कम्पोस्ट बनाया जा रहा है जिनका विघटन जल्द न होता हो अथवा जिनमें नाइट्रोजन की मात्रा कम रहती हो। पर सब पदार्थों के साथ ऐसा करना अच्छा नहीं है। जल्दी से विघटित होनेवाले पदार्थों के साथ ऐसा करने से कार्बनिक पदार्थों का ह्रास बहुत अधिक होता है।

यदि कम्पोस्ट वनाने का वायुजीवी उपचार ३ से ४ मास चलता रहे, जैसा कि मिश्रित पदार्थों के उपयोग से साधारणतया होता है, तो कार्बनिक पदार्थों का ह्रास ५० प्रतिशत से अधिक हो सकता है। इससे कचरे का जल्दी आक्सीकृत होनेवाला अंश निकल जाता है, पर साथ ही जल्दी आक्सीकृत न होनेवाला अंश भी कुछ निकल जाता है। इससे नाइट्रीकरण में बाधा पहुँचानेवाला अंश तो निकल जाता ही है पर कुछ ऐसा अंश भी निकल जाता है जिसका मिट्टी के नाइट्रेटों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। पौधों की वृद्धि में इससे सहायता इस कारण मिलती है कि मिट्टी की ऊपरी तह पर कार्बन डाइ-आक्साइड का सान्द्रण बढ़ जाता है।

'ऐडको' विधि

हटचिन्सन और रिचार्ड्स ने १९२१ ईसवी में 'ऐडको विधि' निकाली थी। कम्पोस्ट तैयार करने की विधि के आविष्कारक ये ही दोनों व्यक्ति हैं। यह विधि सबसे पुरानी है। इस विधि में पयाल, डंठल, घास, सूखी घास आदि खेत-खलिहानों के पदार्थ, जिनका अन्य कोई उपयोग नहीं है, उपयुक्त होते हैं।

इसके तैयार करने में एक चूर्ण प्रयुक्त होता है जिसको 'ऐडको' चूर्ण कहते हैं। ऐडको चूर्ण एक मिश्रण है जो कचरे के विघटन के लिए इस्तेमाल होता है। इंग्लैण्ड के हरपेन्डेन (Harpenden) नामक स्थान की एक कम्पनी 'एग्रिकल्चरल डेवेलोपमेन्ट कम्पनी' ऐडको तैयार करती और बेचती है। इसके संगठन का ठीक-ठीक पता हमें नहीं है। फाउलर का विचार है कि ऐडको चूर्ण अमोनियम सल्फेट, साइनेमाइड और यूरिया सदृश पदार्थों के मिश्रण से बना है। कोलिसन और कौन (Collison and Coun) ने एक मिश्रण तैयार किया है जिसके उपयोग से वैसी ही खाद बनती है जैसी ऐडको चूर्ण से बनती है। एक टन सूखे कचरे के लिए इस मिश्रण में ६० ग्राम अमोनियम सल्फेट, ३० ग्राम सुपर फास्फेट, २५ ग्राम म्युरियेट आफ पोटाश और ५० ग्राम पीसा हुआ चूना-पत्थर रहता है।

इस विधि से कम्पोस्ट तैयार करने की रीति यह है—

१० वर्ग गज क्षेत्र में सूखी घास या पयाल या इसी प्रकार का अन्य मोटा कचरा १२ इंच मोटी तह में एक-सा बिछा देते हैं। उसे फिर पानी से पूरा भिगा देते हैं। भींगे पदार्थ पर ही ऐडको चूर्ण आवश्यक मात्रा में एक-सा फैला देते हैं। ऐडको कम्पनी की सिफारिश है कि प्रति १००० पौण्ड सूखे पदार्थ के लिए ७० पौण्ड ऐडको चूर्ण इस्तेमाल करना चाहिए। ऐडको चूर्ण के बाद फिर सूखा कचरा या पयाल बिछाकर भींगा करके उसके ऊपर ऐडको चूर्ण फिर डाल देते हैं। इस प्रकार ढेर को पूरा करने के लिए एक स्तर के बाद दूसरा स्तर रखते हुए बीच-बीच में ऐडको चूर्ण बिछाते जाते हैं। एक गड्ढे में लगभग एक टन सूखा कचरा रखते हैं। ढेर की मोटाई ६ फुट से अधिक नहीं रहनी चाहिए। इससे अधिक मोटी तह होने से वातन[1] में कठिनाई होती है। तीन सप्ताह तक उसे ज्यों का त्यों छोड़ देना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो पानी दे सकते हैं। एक टन सूखे कचरे के लिए तीन बार पानी देने की आवश्यकता पड़ती है और प्रति बार २०० गैलन पानी देना चाहिए। इतना पानी देने के बाद फिर और पानी देने की ज़रूरत नहीं रहती। ४ से ६ मास में कम्पोस्ट तैयार हो जाता है। यदि सड़ान तेज़ी से न चलती हो तो ६ सप्ताह के बाद ढेर को उलट-फेर करने की आवश्यकता पड़ सकती है। उलट-फेर से ऊपर का बिना सड़ा भाग नीचे चला जाता है। यदि कचरा जल्द सड़नेवाला है तो उसे उलट-फेर की आवश्यकता नहीं पड़ती। इंग्लैण्ड के लिए यह विधि ठीक है पर भारत के लिए इस कारण ठीक नहीं है कि यह गरम देश है, पानी यहाँ जल्दी सूख जाता है जिससे किण्वन रुक जाता, ताप पर्याप्त ऊँचा नहीं उठता या उठता और गिरता रहता है।

सक्रियित कम्पोस्ट विधि

इस विधि के आविष्कारक बंगलोर के फाउलर और रेगे हैं। इन्होंने १९२३ ई० में इस पर खोज शुरू की, प्रयोग किये और अनेक स्थलों, कानपुर, नासिक, मैसूर और बंगलौर में अनेक प्रयोगों को सम्पादित कर विधि को विकसित करके परिपूर्णता प्राप्त की। इन लोगों ने मैसूर नगर में नगर के कचरे और विष्ठा से बड़े पैमाने पर कम्पोस्ट तैयार किया था। प्रस्तुत लेखक जब बंगलोर में था, तब इस विषय पर प्रयोग हो रहे थे।

[1] Aeration

आरम्भक के रूप में फाउलर ने गोबर, मूत्र, विष्ठा, मलप्रवाह और सक्रियित अवपंक[1] का उपयोग किया था। इनके अंशतः किण्वन से सक्रियित संचारण-द्रव्य[2] प्राप्त होता है। इस संचारण-द्रव्य को सूखे कचरे में डालकर और पानी से भिगा कर रखते हैं। अन्य लोगों ने इस विधि पर जो काम किया है उससे पता लगता है कि संचारण-द्रव्य के अभाव में भी कम्पोस्ट बन सकता है। कम्पोस्ट बनने के लिए संचारण-द्रव्य की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। पौधों के अवशेष और मिट्टी में पर्याप्त जीवाणु रहते हैं। ऐडको चूर्ण में कोई अणु-जीवी संचारण-द्रव्य नहीं होता तो भी उससे किण्वन होता है। यह ज़रूर है कि अणुजीवी संचारण-द्रव्य से कम्पोस्ट बनने में समय कम लगता है।

इस विधि से कम्पोस्ट तैयार करने की रीति निम्नलिखित है—

घास, घास-पात, पत्ते, बाग-बगीचों, खेत-खलिहानों और घर के कचरे को एक गड्ढे में इकट्ठा करते हैं। जब खेतों का काम कम हो जाय तब इस ढेर से कुछ निकाल कर ६ फुट लम्बे-चौड़े और २ फुट ऊँचे एक स्थान में इकट्ठा करते हैं। यदि कचरा बड़ा-बड़ा और कड़ा हो तो काटकर उसे छोटा-छोटा कर लेते हैं।

अब एक मन ताज़ा सान्द्र गोबर लेकर पानी डालकर उसका पतला इमलशन बना लेते हैं। इस इमलशन से कचरे के ढेर को भिगा देते हैं। समय-समय पर उसे उलट-फेर करके बराबर भींगा रखते हैं। पहले ढेर का ताप ऊपर उठेगा और पीछे गिरेगा। जब ढेर भुरभुरा (friable) हो जाय तब उसका रंग भूरा हो जायगा और अब उससे कोई गन्ध नहीं निकलेगी। ऐसा ही किण्वित पदार्थ आरम्भक के रूप में उपयुक्त होता है। आरम्भक में पर्याप्त जीव रहने चाहिए ताकि उनकी सहायता से अन्य पदार्थों का किण्वन शीघ्रता से हो सके।

ऊपर दी हुई रीति से तैयार आरम्भक का एक तृतीयांश लेकर छोटे-छोटे कटे हुए कचरे में डालकर भली भांति मिलाकर और गोबर के इमलशन से भिगाकर छोड़ देते हैं।

गोबर के इमलशन के स्थान में मूत्र के उपयोग से अधिक अच्छा फल प्राप्त होता है। इन दोनों से भी अधिक अच्छी मनुष्य की विष्ठा होती है पर सामान्य मजदूर विष्ठा के छूने से इनकार कर सकता है। यदि कचरे में कुछ हड्डी का चूरा भी मिला दिया जाय तो अधिक लाभप्रद कम्पोस्ट प्राप्त होता है।

[1] Activated sludge [2] Inoculants

यदि ऊपर दिया हुआ आरम्भक न मिल सके तो उसके स्थान में अमोनियम सल्फेट का विलयन कंकड़ के साथ मिलाकर इस्तेमाल हो सकता है। कंकड़ के इस्तेमाल से अमोनियम सल्फेट की अम्लता रोकी जा सकती है। ऐडको चूर्ण का भी उपयोग हो सकता है। ऐडको चूर्ण में नाइट्रोजन और फास्फरस दोनों रहते हैं।

सभी दशाओं में यहाँ नाइट्रोजनीय पदार्थ इतना रहना चाहिए कि सूखे पदार्थों में नाइट्रोजन की मात्रा दो प्रतिशत के लगभग रहे। ज्यों ही किण्वन समाप्त हो जाय ढेर का एक-तृतीयांश निकालकर एक गड्ढे में सुरक्षित रखना चाहिए और शेष दो-तृतीयांश में और ताजा सूखा कचरा मिलाकर विधि को दोहराना चाहिए।

इन्दौर विधि

इन्दौर के फार्म में काम करनेवाले हाउवर्ड और वाड इस विधि के निकालने वाले हैं। इस विधि में गोबर की अपेक्षया अल्प मात्रा से काम चल जाता है। बचा हुआ गोबर अन्य कामों में इस्तेमाल हो सकता है। यह विधि बड़ी अच्छी समझी जाती है। इस का व्यवहार आज सारे संसार में हो रहा है।

इसके तैयार करने के लिए उपयुक्त स्थान की आवश्यकता पड़ती है। इन्दौर में इसके लिए गड्ढे इस्तेमाल हुए थे। ये गड्ढे ३० फुट लम्बे, १४ फुट चौड़े और २ फुट गहरे थे। इनका किनारा ढालदार था ताकि बैलगाड़ियाँ गड्ढे में जा-आ सकें। गड्ढे दो-दो साथ थे। प्रत्येक जोड़े गड्ढों के बीच १२ फुट की दूरी रहती थी।

एक टंकी में जल रहता है। टंकी में ३२०० गैलन पानी अँट सकता है। टंकी ज़मीन से ४ फुट की ऊँचाई पर रहती है ताकि उसी से पानी बहकर गड्ढे में सरलता से आ सके। टंकी से टोंटी तक पानी आने के लिए डेढ़ इंच का पाइप लगा रहता है। एक टंकी से छः गड्ढों में पानी लिया जा सकता है।

खाद बनाने के लिए जो पदार्थ प्रयुक्त होते हैं वे ये हैं—

(१) पेड़-पौधों के वे अंश ज़ो अन्य किसी उपयोगी काम में नहीं आते, घास-पात, हरी खाद, ईख का सूखा पत्ता, पेड़ से गिरा पत्ता, हलका छाँटन, सेवार, जल-नीलारुणा, झाड़ियों और पेड़ों की कतरन, पयाल, भूसा, लकड़ी की छीलन, लकड़ी का बुरादा, रद्दी कागज, पुराना सड़ा गला बोरा आदि।

इनमें यदि कोई पदार्थ कड़ा और काष्ठ-सा कठोर हो तो उसे काट-कूट अथवा कुचलकर छोटा या मुलायम बना लेते हैं। हरे पदार्थों को कुछ सुखाकर तब इकट्ठा करते हैं। यदि वे एक से न हों तो बिछाली के रूप में प्रयुक्त कर एकसे और मुलायम बना लेते हैं।

(२) गाय, बैल या भैंस का गोबर अथवा घोड़े की लीद। अस्तबल या गोशाला का कचरा भी इसमें मिला रह सकता है।

(३) मूत्रवाली मिट्टी। जहाँ पशु रहते हैं वहाँ की मिट्टी तीन-तीन महीने पर करीब ६ इंच गहराई तक खोद कर निकाल लेनी चाहिए। उसे चक्की में पीसकर भुरभुरी बना लेनी चाहिए, तब कम्पोस्ट के गड्ढे के समीप इकट्ठा करना चाहिए। जहाँ से मिट्टी निकाली गयी है वहाँ फिर ताज़ी मिट्टी डाल देनी चाहिए।

(४) काठ की राख। काठ की राख से अम्लता दूर होती और खाद में पोटाश की मात्रा बढ़ती है।

(५) जल और वायु। इससे खाद में ह्यूमस बनता है। जीवाणु और कवक ही ह्यूमस बनाते हैं। जीवाणुओं और कवकों के लिए जल और वायु आवश्यक है।

कम्पोस्ट के लिए गड्ढा भरना

गड्ढे के ऊपर एक तख्ता आर-पार रख देते हैं ताकि गड्ढे के कचरे को बिना कुचले उसे भर सकें। कचरे को पहले ३ इंच गहरा रखकर पंजा (rake) से फैलाकर गड्ढे में समतल कर लेते हैं। उस पर फिर राख और मूत्र की मिट्टी को छिड़क देते हैं। ऊपर से फिर दो इंच गहराई को कूटे गोबर और मैली की हुई बिछाली से भर देते हैं। फिर होज पाइप से पानी लाकर उसे भिगा देते हैं, पानी से भरते नहीं हैं। उसके ऊपर फिर से कचरे और पानी को क्रम क्रम से डालकर ३० इंच मोटाई तक भरकर ऊपर गोबर और बिछाली का एक स्तर और उसके ऊपर मूत्र-मिट्टी और राख छींटकर पानी छिड़क देते हैं। गड्ढे को साँझ को और फिर दूसरे दिन प्रातः भिगाते हैं। पहली बार तीन क्रमों में पानी देने से उसमें इतना पानी रहता है कि उसका तीव्र किण्वन जल्द शुरू हो जाता है। तब उसका सिकुड़ना जल्दी होता और गड्ढे का कचरा सिकुड़कर पेंदे में चला जाता है। उसके बाद हफ्ते में एक बार सींचना चाहिए। पहली बार, दूसरी बार और तीसरी बार; तीन बार ऐसे सिंचाई होती है। पीछे की सिंचाई सबसे अधिक महत्त्व की है।

कचरे में जीवों द्वारा भली भाँति सड़ने और अपक्षय के लिए वायु और जल का रहना बड़ा आवश्यक है। वायु और जल की प्राप्ति के लिए उसका तीन बार उलट-फेर करते हैं। पहला उलट-फेर १० से १४ दिनों के बाद करते हैं। आधे गड्ढे को पंजा द्वारा खोदते और उस पर पानी देकर भिगाते और बिना खोदे आधे भाग

पर फिर बिछा देते हैं। आधे उलटे हुए ढेर की फिर अच्छी तरह सिंचाई कर देते हैं।

दूसरा उलट-फेर पहले उलट-फेर के १४ दिनों के बाद करते हैं। उसे फिर उलट-कर पानी से भिंगाकर गड्ढे के दूसरे खाली अंश में ढीला-ढाला रख देते हैं। तीसरा उलट-फेर गड्ढे के तीन मास पुराना हो जाने पर करते हैं। टूटते हुए काले पदार्थों को पानी से भिंगाकर सतह पर आयताकार ढेर में, पेंदे में १० फुट चौड़ा, ऊपर ९ फुट चौड़ा और ३·५ फुट ऊँचा, इकट्ठा करते हैं और परिपक्व होने के लिए एक मास छोड़ देते हैं। एक मास के बाद वह इस्तेमाल करने के योग्य हो जाता है।

बरसात के दिनों में जब गड्ढे के पानी से भर जाने की आशंका हो तब ढेर को सतह पर लगाते हैं। यदि वर्षा सामान्य है तो ढेर नीचे ८ फुट+८ फुट, ऊपर ७ फुट+ ७ फुट और गहरा २ फुट होता है। यदि वर्षा अधिक है तो ढेर के ऊपर छप्पर डालना चाहिए। यदि छप्पर डालना सम्भव न हो तो बरसात में कम्पोस्ट बनाना बन्द कर देना ही अच्छा है।

बंगलोर विधि

इस विधि के निकालनेवाले बंगलोर इंण्डियन इंस्टिट्यूट आफ सायंस के एक आचार्य हैं। इस विधि में कचरे को उलट-फेर करने की आवश्यकता नहीं होती। केवल कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात और शुरू में जल की दशा देखनी पड़ती है। कम्पोस्ट का निर्माण खाई में होता है। इससे नाइट्रोजन और जल का ह्रास कम से कम मात्रा में होता है। कचरे के ढेर को ऊपर मिट्टी से ढँक देते हैं ताकि ह्रास कम से कम हो।

कम्पोस्ट बनाने के लिए जो खाइयाँ खोदी जाती हैं वे श्रेणीबद्ध होती हैं। इनका बड़ा बाजू समानान्तर होता है और छोटा बाजू एक लकीर में होता है। दो खाइयों के बीच में कम से कम ३ फुट खुला स्थान रहता है। खाई के दोनों बाजुओं में बैलगाड़ी के लिए पर्याप्त स्थान रहता है। कचरे को बैलगाड़ी पर लाकर खाई में डालते हैं। नयी खाई खोदने पर जो मिट्टी निकलती है उसे बड़े बाजू में इकट्ठा करते हैं ताकि छोटे बाजू में बैलगाड़ी के आने जाने में कोई रुकावट न हो।

खाई कितनी लम्बी, चौड़ी और गहरी होनी चाहिए यह कचरे की मात्रा पर निर्भर करता है। कचरे की मात्रा नगर की आबादी पर निर्भर करती है। जनसंख्या के विचार से खाई का आयाम यह हो सकता है—

चित्र २३—प्रंवातन के लिए कंपोस्ट का उलटफेर (कंपोस्ट गोबर, लीद, मूत्र, पत्ते और घरेलू कचरे से वन रहा है), पृ० २१०
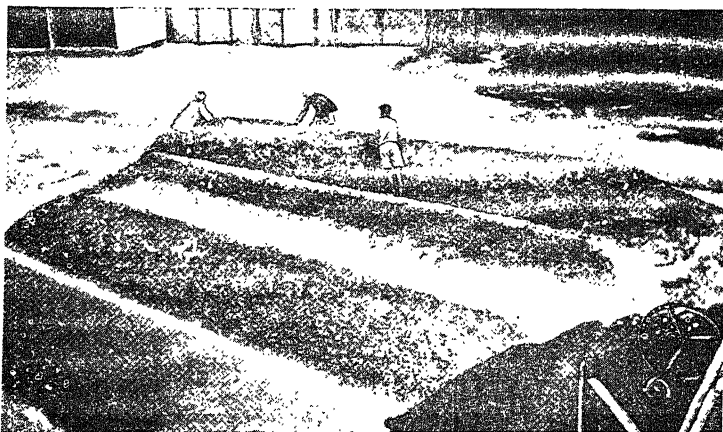
चित्र २४—सक्रियित कंपोस्ट का उलटफेर (कंपोस्ट के विच्छेदन की विभिन्न अवस्थाएँ), पृ० २१२

जनसंख्या	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई
१०,००० से नीचे	२० फुट	६ फुट	३½ फुट
१०,००० से २०,०००	२५ फुट	७ फुट	४ फुट
२०,००० से ३०,०००	३० फुट	८ फुट	४ फुट
३०,००० से ५०,०००	३५ फुट	८ फुट	४ फुट
५०,००० से ऊपर	४० फुट	९ फुट	४ फुट

४०′ × ९′ × ४′ से अधिक बड़ी खाई सुविधाजनक नहीं होती। आवश्यकता पड़ने पर एक से अधिक खाई इस्तेमाल हो सकती है।

कम्पोस्ट तैयार करने की विधि यह है। खाई के पेंदे में ९ से १० इंच मोटा कचरे का एक स्तर रखते हैं। उसके ऊपर विष्ठा का एक ३ इंच स्तर बिछाते हैं। ऐसा करने के लिए कितनी गाड़ी कचरा लगेगा और कितनी गाड़ी विष्ठा लगेगी, इसकी गणना कर लेते हैं। गणना निम्नलिखित आँकड़ों के आधार पर करते हैं—

एक घनफुट कचरे की तौल २० पौण्ड,

एक घनफुट विष्ठा की तौल प्रायः ६० पौण्ड,

एक गैलन विष्ठा की तौल प्रायः १० पौण्ड,

एक घनफुट कम्पोस्ट खाद की तौल प्रायः ४० पौण्ड,

एक गाड़ी कचरा (३० घनफुट) की तौल ५००–६०० पौण्ड,

अच्छी कम्पोस्ट खाद में जल की मात्रा ३० से ४० प्रतिशत

और सूखी कम्पोस्ट खाद में नाइट्रोजन १ प्रतिशत रहता है।

कचरा और विष्ठा का स्तर एक के बाद दूसरा रखते हुए ज़मीन से प्रायः एक फुट ऊंचा कर लेते हैं। सबसे ऊपर कचरे का ९ इंच मोटा स्तर देते हैं। यदि मिट्टी मिलती हो तो दिन के अन्त में खाई को आध इंच से एक इंच मोटी भुरभुरी मिट्टी से ढँक देते हैं। इससे मक्खियाँ उस पर अंडे नहीं देतीं और दुर्गंध नहीं फैलती।

बड़े-बड़े नगरों में दो या तीन खाइयाँ एक दिन में भरी जा सकती हैं। ९ से १० इंच मोटा कचरा और ३ इंच विष्ठा से उनकी तौल प्रायः बराबर-बराबर रहती है। कुछ नगरों में कचरे की मात्रा अधिक भी रह सकती है। ऐसी दशा में स्तर में दो भाग कचरा और एक भाग विष्ठा (भार में) इस्तेमाल हो सकती है। इसके लिए पहले ही निश्चय कर लेना चाहिए कि कितनी गाड़ी कचरे पर कितनी गाड़ी विष्ठा का उपयोग करना चाहिए।

खाई भर जाने के ४ या ५ दिनों के बाद स्तर गरम हो जाता है। उसका ताप ७०° से० से ऊपर उठ जाता है। खाई को एक या डेढ़ फुट गहरी खोदकर उसके ताप को देखना चाहिए। ऐसा ऊँचा ताप ३ से ४ सप्ताह रहता है। इससे कचरा और विष्ठा दोनों विच्छेदित हो जाते हैं। कचरा या विष्ठा में उपस्थित समस्त रोगाणु (pathogenic) जीव नष्ट हो जाते हैं। चार मास के बाद कम्पोस्ट खेतों में डालने के योग्य हो जाता है। कम्पोस्ट में कोई गन्ध नहीं रहती। यह बिलकुल सड़ा हुआ रहता है। सामान्य गोबर की खाद से यह अधिक मूल्यवान् खाद होती है।

खेत-खलिहानों के निरर्थक पदार्थों, गोबर और मूत्र से भी इसी प्रकार कम्पोस्ट तैयार हो सकता है। ऐसे कम्पोस्ट तैयार करने की विधि यह है—

सूखे मौसम में घास-पात, साग-सब्जियों से प्राप्त निरर्थक अंशों को एक गड्ढे में जमा करते हैं। गड्ढा २० से ३० फुट लम्बा, ४ से ६ फुट चौड़ा और ३ से ३½ फुट गहरा हो सकता है। गड्ढे के पेंदे में ६ इंच मोटा कचरा बिछा देते हैं। यदि वह सूखा हो तो २० से ३० गैलन पानी से भिंगा देते हैं। उसके ऊपर २ इंच मोटी गोबर की खाद अथवा पशु-शाला की बिछाली, गोबर और मूत्रवाली मिट्टी बिछा देते हैं। उसके ऊपर फिर ½ इंच मोटी मिट्टी बिछा देते हैं। यदि यह कम्पोस्ट ऐसी फसल के उगाने के लिए प्रयुक्त करना है जिससे रुपया मिल सकता है, जैसे आलू और ईख, उसमें कुछ खली या हड्डी का चूरा या नाइट्रोजनीय उर्वरक या फास्फेट मिला सकते हैं ताकि उससे जो खाद बने उसमें ०·५ प्रतिशत नाइट्रोजन और ०·५ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल (P_2O_5) रहे। कचरा, पशुओं का गोबर, बिछाली, मूत्रवाली मिट्टी आदि एक स्तर के बाद दूसरा इतना रहना चाहिए कि ढेर ज़मीन से १½ से २ फुट ऊँचा हो जाय। अब ऊपर से एक इंच मोटी मिट्टी से ढँक देना चाहिए। ८ से ९ मास में कम्पोस्ट तैयार हो जाता है यदि उसे ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाय। यदि कम्पोस्ट जल्दी तैयार करना हो तो ३ मास सड़ने के बाद गड्ढे से निकालकर जमीन पर गोलार्धीय (hemispheroid) आकार में इकट्ठा कर मिट्टी से ढँक देना चाहिए। ऐसा करने से एक से दो महीने में वह इस्तेमाल करने के योग्य हो जाता है।

यदि बरसात में कम्पोस्ट तैयार करना हो तो गड्ढा न खोदकर जमीन की सतह पर ही कम्पोस्ट तैयार करना अच्छा होता है। इसके लिए ज़मीन पर १० फुट × १० फुट पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े रखकर उनके ऊपर एक के बाद दूसरा स्तर गोलार्ध आकार में चार फुट ऊंचा स्तर बनाना चाहिए। उसे फिर १ से २ इंच मिट्टी की तह से ढँक देना चाहिए। यदि कचरा बहुत कड़ा हो तो दो मास के बाद उसे उलट-पलट देना चाहिए ताकि सड़ान जल्दी हो जाय।
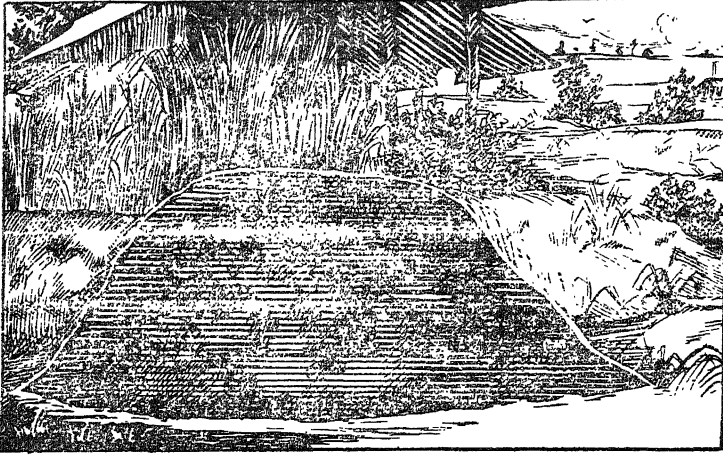
चित्र २५—बरसात में कंपोस्ट बनाना (सामग्री की ढेरी के ऊपर मिट्टी लेप दी गयी है।)

कम्पोस्ट बनाने के लिए गड्ढा अच्छा है अथवा ढेर, इस पर विचार करने में स्मरण रखना चाहिए कि प्रमुख बात यहाँ वायु का प्रवेश, वातन (aeration) है। ढेर में वातन अधिक होता है, गड्ढा या खाई में उतना अच्छा नहीं होता। पर जमीन के ऊपर ढेर में पानी अधिक सूखता है। उससे ताप ऊँचा नहीं उठता। खाई या गड्ढे में कचरा का विच्छेदन एक-सा और भली भाँति होता है। इससे खाई या गड्ढे का तैयार कम्पोस्ट अधिक अच्छा होता है। गड्ढे या खाई में एक और दोष है। इसमें बरसात के दिनों में पानी जमा हो जाने का संकट रहता है। पानी जमा हो जाने से सड़ कर पोषक तत्व के नष्ट हो जाने का भय रहता है। पानी जमा हो जाने का संकट अधिक वहाँ रहता है जहाँ पृथ्वी के अन्दर पानी का तल ऊँचा होता है। इससे बरसात के दिनों में, विशेषतः ऐसे स्थानों में जहाँ पानी बहुत अधिक बरसता अथवा पानी का तल ऊँचा रहता है, कम्पोस्ट न बनाना ही अच्छा है। यदि बनाना जरूरी ही हो तो ज़मीन पर चौड़ा ढेर बनाकर ऊपर पतला कर देना चाहिए और उसका आकार '∧' ऐसा बना देना चाहिए कि ऊपर का अंश कम से कम आयाम का हो और उस पर भी मिट्टी का लेप कर देना चाहिए, ताकि वर्षा का पानी ऊपर टिके नहीं, बल्कि बहकर निकल जाय। ढेर का पार्श्व जमीन से पर्याप्त ऊँचा रखना चाहिए और ऐसा ढालू बना देना चाहिए कि पानी जल्द बह जाय।

कम्पोस्ट का कचरा

कम्पोस्ट बनाने के लिए एक ही किस्म का कचरा अच्छा नहीं होता। इस सम्बन्ध में एक ही किस्म के कचरे से कम्पोस्ट बनाने के अनेक प्रयोग हुए हैं। कपास का डंठल, दलहन की भूसी, ईख का सूखा पत्ता, हरा और सूखा घास-पात, सनई का डंठल आदि सब एक-एक करके इस्तेमाल हुए हैं। इनमें किण्वन एक-सा नहीं होता। ताप अनियमित रहता है। उसमें जल नहीं ठहरता। कम्पोस्ट तैयार होने में अधिक समय लगता है। कुछ अंशतः अविच्छेदित अंश रह जाता है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि एक ही प्रकार के आहार पर जीवाणु और कवक अच्छे नहीं बढ़ते हैं। यहाँ वातन की भी कठिनाई होती है। नाइट्रोजन का ह्रास भी हो सकता है। यदि जीवाणुओं और कवकों को मिश्रित आहार मिले तो वे अपना कार्य अधिक अच्छे प्रकार से करते हैं। अन्वेषकों का निश्चित मत है कि मिश्रित कचरे का उपयोग कम्पोस्ट के लिए श्रेष्ठतर है।

कचरा

खेत-खलिहानों, बाग-बगीचों और पेड़-पौधों का वह अंश जो अन्य किसी काम में न आता हो कम्पोस्ट बनाने में लग सकता है। ऐसे पदार्थों में जौ, गेहूँ, धान, कोदो, साँवाँ आदि का पयाल, कपास, सनई, चना, मकई, ज्वार, कुसुम और बाजरे आदि के डंठल, दलहन के छिलके, ईख का सूखा पत्ता, पेड़ से गिरा पत्ता, साग-सब्जियों का व्यर्थ अंश, सूखी घास, गोड़ाई से प्राप्त घास-पात, पशुओं की बिछाली, गाय-बैल के चारे का बचा हुआ अंश, मूँगफली के छिलके और डंठल, लकड़ी का बुरादा या छीलन, चिथड़े, कैनवास और फटे बोरे, चमड़े के टूटे-फूटे भाग, सेवार आदि जल के पौधे हैं जिनसे अच्छा कम्पोस्ट बन सकता है। पशु-बिछाली कम्पोस्ट के लिए अच्छा पदार्थ है। इनमें कार्बन नाइट्रोजन का अनुपात ३२ : १ होना अच्छा है। ये सब ऐसी दशा में रहने चाहिए कि जीवाणु और कवक उनमें प्रविष्ट होकर तन्तुओं को जल्द से जल्द तोड़ फोड़ सकें।

ऐसे कुछ पदार्थों का विश्लेषण हुआ है। उनके आँकड़े इस प्रकार हैं—

पदार्थ	कार्बनिक पदार्थ	विलेय कार्बो-हाइड्रेट	राख	प्रोटीन	नाइ-ट्रोजन,	वसा	तन्तु
गेहूँ पयाल	८४·७०	३७·९३	१५·३०	३·०१	०·५८	०·९८	३५·६९
धान पयाल	८०·९०	४०·४०	१९·१०	२·२५	०·३६	१·०५	३५·१०

पदार्थ	कार्बनिक पदार्थ	विलेय कार्बो-हाइड्रेट	राख	प्रोटीन	नाइ-ट्रोजन	वसा	तन्तु
मकई डंठल	८९·९०	५१·५७	१०·१०	२·२४	०·७०	—	२५·४२
मकई साइलेज	८९·२०	५१·१०	१०·८०	४·५३	०·७९	१·५५	२६·८७
ईख का पत्ता	९४·०९	४८·७३	५·९१	२·००	०·३२	१·२५	४२·१६
चना डंठल	८५·७०	४५·८६	१४·३०	४·६८	०·७५	२·२७	२६·७१
सनई डंठल (१२ सप्ताह पुराना)	९६·३०	३७·६४	३·७०	४·००	०·६४	१·०६	५३·६१
सनई पत्ता (१२ सप्ताह पुराना)	९०·६४	५२·८०	९·३६	१४·२६	२·२९	२·९०	२०·७०
मूँगफली डंठल	८६·६०	३९·२४	१३·४०	१२·०६	१·९३	२·२०	१६·६०
मूँगफली छिलका	८५·८०	१३·७३	१४·२०	७·५७	१·२१	२·८०	५५·३५
मिश्रित सूखी घास	८३·८०	४०·४०	१६·२०	४·२५	०·६८	१·५५	२६·२०
मिश्रित घास-पात	६९·४८	३४·६४	३०·५२	१०·८३	१·७४	२·०५	२१·९२
पीपल पत्ता	८१·३७	५८·१८	१८·६३	३·००	०·४८	१·३३	२६·८९
वट पत्ता	८२·०८	५०·३९	१७·९२	२·१८	०·३५	१·१२	२८·३८
कपास पत्ता	८७·४५	५६·१९	१२·५५	१४·०६	२·२५	८·४९	८·७१
कपास बीज कोष	९५·२६	२९·०७	४·७४	११·४४	१·८३	९·८१	४५·२१
अरहर डंठल	९१·०८	४५·१७	८·९२	४·३७	०·७०	१·९०	३९·६४
अरहर अवशेष	८६·८०	४४·६७	१३·२०	११·०१	१·९९	४·४०	१९·२३

कम्पोस्ट का संगठन

भिन्न-भिन्न रीतियों से तैयार कम्पोस्ट के गुण एक से नहीं होते। वायुजीवी जीवाणुओं द्वारा बना कम्पोस्ट कुछ भूरा रंग लिये काला महीन चूरा होता है। इसका ८० प्रतिशत ६–अक्षि चलनी में छन जाता है। बार-बार उलट-फेर करने से ही ऐसा कम्पोस्ट इन्दौर-विधि से प्राप्त होता है। ऐसा महीन कम्पोस्ट मिट्टी में जल्दी मिल जाता और पौधे उसे जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। इस कम्पोस्ट में कुछ दोष भी हैं। इसका कार्बनिक अंश अधिक मात्रा में नष्ट हो जाता है। महीन रूप में प्राप्त करने के लिए इसे बार-बार उलट-फेर करना पड़ता है। इससे खर्च अधिक पड़ता है।

अन्य विधियों से प्राप्त कम्पोस्ट उतना महीन नहीं होता। उसका प्रारम्भ में छः सात दिनों तक तीव्र वायुजीवी आक्सीकरण होता है। उसके बाद मन्द अवायुजीवी किण्वन बहुत समय तक होता रहता है। इससे कम्पोस्ट महीन नहीं होता। खेतों

में डालने पर ही वह टूटता और जोतने पर मिट्टी में मिलता है। इसके कार्बनिक अंश अधिक नष्ट नहीं होते। इसका नाइट्रोजन भी सुरक्षित रहता है। इसके बनाने में खर्च कम पड़ता है। कम्पोस्ट के महीन न होने से उसके खाद-मान में कोई कमी नहीं होती।

कम्पोस्ट का गुण बहुत कुछ प्रारम्भिक कचरे और आरम्भक पर निर्भर करता है। इन्दौर-विधि से तैयार कम्पोस्ट में नाइट्रोजन प्रायः एक प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल प्रायः आधा प्रतिशत और पोटाश ३ प्रतिशत के लगभग रहता है। फाउलर की रिपोर्ट है कि घास-पात से बने कम्पोस्ट में नाइट्रोजन २·०९ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल ०·८६ प्रतिशत रहता है। त्रिवांकुर के चाय के बागों में इन्दौर-विधि से तैयार कम्पोस्ट में नाइट्रोजन १·३ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ०·५ प्रतिशत और पोटाश ०·४५ प्रतिशत पाया गया है। केले के निरर्थक अंशों से प्राप्त कम्पोस्ट में फाउलर की रिपोर्ट है कि नाइट्रोजन १·८७ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ०·४३ प्रतिशत और पोटाश ०·४५ प्रतिशत रहता है। इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि गोबर खाद की अपेक्षा कम्पोस्ट में पोषक तत्व अधिक रहते हैं।

कम्पोस्ट का प्रभाव

खेतों में कम्पोस्ट डालने से मिट्टी पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं—

१. मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार होता है। बलुआर मिट्टी सघन हो जाती है और मटियार मिट्टी खुल जाती है। भूमि की जल रोक रखने की क्षमता बढ़ जाती है। उष्मा-अवशोषण क्षमता भी बढ़ जाती है। मिट्टी की प्रवेश्यता (permeability) और जल के वहाव में भी सुधार होता है। मिट्टी की जोताई अब अच्छी हो सकती है। क्षारीय और लवणीय मिट्टियों को कम्पोस्ट से विशेष लाभ होता है, उनके हानिकारक प्रभाव बहुत कुछ कम हो जाते हैं। फसलों के लिए मिट्टी सुधर जाती है।

२. पौधों के पोषण-तत्त्वों की पूर्ति होती है। कम्पोस्ट पौधों के अवशेषों से बनाया जाता है, अतः इसमें वे सब तत्त्व मौजूद रहते हैं जो पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक हैं। इससे कम्पोस्ट के डालने से मिट्टी के पोषक तत्त्वों की मात्रा बढ़ जाती है। कम्पोस्ट में पोषक तत्त्व नाइट्रोजन, फास्फरस, पोटाश और कैलसियम ऐसे रूपों में कार्बनिक पदार्थों के साथ संयुक्त रहते हैं कि पौधे उन्हें जल्दी ग्रहण कर लेते हैं।

कम्पोस्ट के विच्छेदन से कार्बन डाइ-आक्साइड मुक्त होता है। यह कार्बन डाइ-आक्साइड मिट्टी के जल के साथ मिलकर कार्बोलिक अम्ल बनता है। यह कार्बोलिक

अम्ल मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्त्वों को घुलाकर पौधों के अधिक सुगमता से ग्रहण करने के योग्य बना देता है।

३. मिट्टी की जीव-सक्रियता बढ़ जाती और वनस्पति हारमोन बनते हैं। कम्पोस्ट में असंख्य जीवाणु और कवक रहते हैं। खेतों में कम्पोस्ट डालने से मिट्टी में जीवाणुओं और कवकों की संख्या बढ़ जाती है। उसमें ह्यूमस पदार्थों के कारण जीवाणुओं और कवकों की सक्रियता बढ़ जाती है। पेड़-पौधों की जड़ों में कम्पोस्ट के घनिष्ठ सम्बन्ध में रहने के कारण कवकों की सक्रियता में उत्तेजना मिलती है। इनसे पौधों के पोषक तत्त्वों और अन्य सहायक आहारों को पौधों तक पहुँचाने में मदद मिलती है।

कम्पोस्ट में कुछ ऐसे पदार्थ भी अल्प मात्रा में रहते हैं जो पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं। वृद्धि के लिए ये पौधों में कुछ पदार्थों को बनाते हैं, इन्हें 'फीटो हारमोन' (phyto hormone) कहते हैं। ये हैं औक्सिन-ए (auxin-a), औक्सिन-बी (auxin-b), हेटेरो-औक्सिन (hetero-auxin) (इण्डोल-ऐसिटिक अम्ल), नैफ्थील ऐसिटिक अम्ल यौगिक, थायमिन (Thiamin Vitamin-B), बायोस (Bios) इत्यादि। इन पदार्थों का बनना ही कार्बनिक खादों की विशेषता है। शुद्ध अकार्बनिक खादों से ये फीटो-हारमोन नहीं बनते। इससे अकार्बनिक खाद, रासायनिक खाद, उर्वरक आदि उतने उत्कृष्ट नहीं समझे जाते। इनमें कार्बनिक पदार्थों के अभाव के कारण ही इनके प्रयोग से मिट्टी की दशा बिगड़ जाती है।

कम्पोस्ट का उपयोग

कम्पोस्ट गोबर की खाद से बहुत मिलता जुलता है। देखने और अन्य गुणों में यह ऐसा ही होता है जैसी सड़ी हुई गोबर की खाद। सभी फसलों के लिए बिना किसी रुकावट के गोबर की खाद के स्थान में इसका उपयोग हो सकता है। इसके उपयोग की मात्रा और विधि वही है जो गोबर की खाद की है। कम्पोस्ट के साथ-साथ उर्वरकों, नाइट्रोजनीय और फास्फरीय उर्वरकों, का उपयोग स्वच्छन्दता से हो सकता है। कुछ फसलों के लिए नाइट्रोजनीय और फास्फरीय उर्वरकों के साथ-साथ कम्पोस्ट का उपयोग सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। सब प्रकार की भूमि के तैयार करने में इसका उपयोग मूल्यवान् समझा जाता है। इससे फसलें अच्छी उगती और पैदावार बहुत बढ़ जाती है। यह हर गाँव और स्थान में बिना अधिक मूल्य के और बिना अधिक परिश्रम के तैयार किया जा सकता है। यही कारण है कि कम्पोस्ट का व्यवहार आज दिन-दिन बढ़ रहा है।

ग्यारहवाँ अध्याय

हरी खाद

कार्बोनिक पदार्थों के लिए हरी फसलों को खेत में जोतना एक सामान्य व्यवहार है। प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। रोमन लोग सेम, लूपिन और मूँग-मोठ (vetches) का प्रयोग इस काम के लिए करते थे। बीच में इसका व्यवहार प्रायः बन्द हो गया था। जर्मनी के शुल्टिशे-ल्युपिट्श ने १८८० ई० में उत्तर जर्मनी की बलुआर मिट्टी में लूपिन के उगाने से मिट्टी के सुधार के साथ-साथ उपजाऊ शक्ति बढ़ी हुई पायी। इसके बाद अनेक देशों और अनेक फार्मों में हरे पौधों को उगाकर मिट्टी की दशा सुधारने और उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के प्रयत्न हुए। अब निश्चित रूप से मालूम हो गया है कि कुछ पौधों को भूमि में उगाकर उसमें जोत देने से भूमि की उर्वरता बहुत कुछ बढ़ जाती है। इस प्रकार से हरे पौधों के उपयोग को 'हरी खाद' का व्यवहार कहते हैं और इसकी उपयोगिता आज दिन-दिन बढ़ रही है।

हरी खाद से लाभ

हरी खाद के अनेक लाभ बताये जाते हैं। इसके उपयोग से मिट्टी में ऐसे तत्त्व मिलते हैं जिनका पौधों की उपज के लिए होना अत्यावश्यक समझा जाता है। पौधों में प्रधान रूप से कार्बन और आक्सिजन रहते हैं। ये दोनों तत्त्व प्रधानतया वायु से आते हैं। हरी खाद के पौधों को खेतों में जोतने से ये मिट्टी में मिल जाते हैं। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है।

पौधों में कुछ फलीदार पौधे होते हैं। इनकी जड़ों में ग्रन्थियाँ या गाँठें होती हैं। इन ग्रन्थियों में कुछ जीव—जीवाणु—रहते हैं। ये जीवाणु वायु के असंयुक्त नाइट्रोजन को लेकर उसे नाइट्रोजन के यौगिकों में परिणत करते हैं। इसे नाइट्रोजन का 'स्थिरीकरण' (fixation of nitrogen) कहते हैं। इससे ऐसे पौधों को खेतों में उगाने से खेतों में संयुक्त नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। पौधों को बढ़ने फूलने-फलने के लिए ऐसा नाइट्रोजन नितान्त आवश्यक है।

पौधों के खनिज अंश तो सब के सब मिट्टी से ही आते और खेतों में पौधों के जोतने

से फिर मिट्टी में मिल जाते हैं। इससे मिट्टी के खनिज अंश की मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होती पर उससे दो लाभ होते हैं। मिट्टी का विलेय नाइट्रोजन संकर्षण से निकल कर नष्ट हो जाने से बच जाता है। पौधों के न उगाने से संकर्षण से नष्ट हो जाने की सम्भावना बराबर बनी रहती है। दूसरा जो नाइट्रोजन पौधों के उगाने से मिट्टी में मिलता है वह ऐसे रूप में रहता है कि पौधे उसे जल्द ग्रहण कर लेते हैं। हरी खाद से मिट्टी में नाइट्रोजन की वृद्धि के साथ-साथ नाइट्रोजन ऐसे रूप में बदल जाता है कि पौधे उसे जल्दी ग्रहण कर लेते हैं।

मिट्टी का नाइट्रोजन पानी में अधिक विलेय होता है। यदि खेतों में कोई फसल न उगी हो तो वह पानी में घुलकर खेतों से निकल जा सकता है। उसे निकल जाने से बचाने के लिए हरी खाद उपयोगी सिद्ध हुई है। पौधे विलेय नाइट्रोजन को ग्रहण कर लेते है और जब उन्हें फिर मिट्टी में जोत दिया जाता है तब वे मिट्टी में मिल जाते और इस तरह संकर्षण से नष्ट होने से बच जाते हैं।

हरी खाद के लिए जो फसलें बोयी जाती हैं उनकी जड़ें साधारणतया गहरी अवमृदा[1] तक जाती हैं। ये जड़ें अवमृदा से आहार को लाकर जड़ों की पृष्ठभूमि पर इकट्ठी करती हैं। इससे पृष्ठभूमि में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके बाद यह नाइट्रोजन उन पौधों के काम आता और लाभ पहुँचाता है जिनकी जड़ें गहरी नहीं जातीं।

मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ जीवाणुओं के आहार होते हैं, जीवाणओं से मिट्टी की दशा सुधरती है। कार्बनिक पदार्थों के अपक्षय से ह्यूमस भी बनता है। ह्यूमस से मिट्टी के अवशोषण की क्षमता बढ़ जाती है। वातन में वृद्धि होती है और मिट्टी भुर-भुरी न होकर दानेदार हो जाती है। दानेदार मिट्टी से पौधों के वर्धन में सहायता मिलती है।

हरी खाद की फसलें

हरी खाद के लिए जो फसलें बोयी जाती हैं वे दो प्रकार की, फलीदार और अफलीदार, फसलें हैं।

अफलीदार फसलें मिट्टी के नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाती नहीं हैं, ये विलेय नाइट्रोजन का संरक्षण अवश्य करती हैं। हरी खाद के अन्य गुण मिट्टी की भौतिक दशा

[1] Subsoil

का सुधार और जल-अवशोषण की क्षमता आदि इसमें अवश्य रहते हैं। अफलीदार फसलें बड़ी उर्वर भूमि के लिए अच्छी हैं। ये ऐसी मिट्टी के लिए अच्छी हैं जिसमें नाइट्रोजनीय खाद या उर्वरक की प्रचुरता है। इनसे कार्बनिक पदार्थ अवश्य प्राप्त होते हैं। इनका उपयोग इस कारण अधिक होता है कि ये जल्दी-जल्दी बढ़ती हैं और इनके बीज सस्ते होते हैं। ये शीत से जल्दी मरती भी नहीं हैं।

अफलीदार हरी खादों का व्यवहार अधिकता से इंग्लैण्ड, यूरोप और अमेरिका में होता है। भारत में अफलीदार हरी खादें व्यवहृत नहीं होतीं। ऐसी फसलों में गेहूँ, राई, तोरिया, सरसों, कुट्टक (buckwheat) और शलजम हैं।

फलीदार पौधों में वायु के नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की क्षमता रहती है। इससे मिट्टी की भौतिक दशा और जल-अवशोषण की क्षमता के साथ-साथ मिट्टी के नाइट्रोजन की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि होती है। हरी दशा में रसयुक्त (succullent) होने के कारण मिट्टी में जल की मात्रा इनसे बढ़ जाती है। ये मिट्टी में बड़ी जल्द विच्छेदित भी होते हैं। फलीदार फसलें हलकी मिट्टी में, जिसमें नाइट्रोजन कम हो, भी अच्छी उपजती हैं। मिट्टी में अन्य पोषक तत्त्वों का रहना आवश्यक है।

ऐसी फसलों में सब प्रकार की सेंजी (clover,) मूँग-मोठ, अल्फाल्फा, सेम-बोड़ो, लोबिया, सोयाबीन, लूपिन, मूँगफली (peanut), सनई, ढैंचा, अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ (herbs,) झाड़ियाँ और पेड़ हैं।

फलीदार और अफलीदार फसलों का हरी खाद की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन बहुत विस्तार से अनेक अन्वेषकों द्वारा अनेक वर्षों तक हुआ है। अध्ययन के लिए फलीदार फसलों में किरमजी सेंजी और विशाल सेंजी तथा अफलीदार फसलों में राई का व्यवहार हुआ है। बिना खाद डाले खेतों में जहाँ पैदावार २० बुशेल थी वहाँ राई के उपयोग से पैदावार ३८ बुशेल और सेंजी से ४८ बुशेल पायी गयी है। एक दूसरे फार्म में बिना खाद डाले जहाँ पैदावार २३ और ३६ बुशेल थी वहाँ हरी खाद के उपयोग से पैदावार क्रमशः ३० और ४० बुशेल हो गयी थी।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक सम्भव हो, फलीदार फसलों को ही हरी खाद के रूप में उगाना अच्छा होता है। इससे अन्य लाभों के साथ-साथ मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा पर्याप्त बढ़ जाती है।

राई—हरी खाद के रूप में राई का उपयोग अमेरिका के अनेक भागों में होता है। बड़ी जल्दी उगना इसकी विशेषता है। यह उत्तम चारा होता है, कड़े शीत को सहन कर सकता है। जल्दी उगता और देर तक ठहरता है। इससे मिट्टी के पोषक तत्त्व सुरक्षित रहते हैं। प्रति एकड़ डेढ़ से दो बुशेल बीज बोया जाता है।

सरसों—जर्मनी और अन्य देशों में मिट्टी के संरक्षण के रूप में गरमी के दिनों में सरसों अधिकता से उगायी जाती है। यह अपेक्षया जल्दी बढ़ती और हलकी मिट्टी में भी अच्छी उपजती है। यह अवमृदा से पोषक तत्त्व लाकर पृष्ठभूमि पर एकत्र करती है। पृष्ठभूमि से अन्य फसलें पोषक तत्त्व को जल्दी ग्रहण कर लेती हैं। प्रति एकड़ १० से २० पौण्ड बीज लगता है।

गेहूँ—हरी खाद के लिए गेहूँ के भी वैसे ही गुण हैं जैसे राई के, पर राई से कुछ कम। इसका बीज महँगा पड़ता और अच्छी उपज के लिए भूमि को अच्छा तैयार करना पड़ता है और मिट्टी में खाद देनी पड़ती है। सहनशीलता इसमें राई-सी नहीं होती। यह राई से अच्छा नहीं होता। डेढ़ से दो बुशेल बीज प्रति एकड़ बोया जाता है।

कुट्टक (Buckwheat)—हलकी मिट्टी के सुधारने में कुट्टक का उपयोग अमेरिका में अधिकता से होता है। यह गरमी, या जुलाई और अगस्त में उपजता है। हल्की मिट्टी में भी उपज अच्छी होती है। गरमी के दिनों में धरती को छेंके रहने के कारण मिट्टी की भौतिक दशा अच्छी सुधरी रहती है और मिट्टी को कार्बनिक पदार्थ मिल जाते हैं। प्रति एकड़ एक से डेढ़ बुशेल बीज लगता है।

शलजम—शीत काल में शलजम पोषक तत्त्व का संग्रह करता है, पोषक तत्त्व को नीचे की मिट्टी से लाकर ऊपर के वल्ब में संग्रह करता है। इस कारण गहरी जड़-वाले शलजम का उपयोग अच्छा होता है। इसके उपजाने से मिट्टी भुरभुरी हो जाती है। इससे वायु के प्रवेश में सुविधा होती है जिससे मिट्टी की दशा सुधर जाती है। प्रति एकड़ १२ से २० पौण्ड बीज लगता है।

फलीदार फसलें

लाल सेंजी—बहुत दिनों से मालूम है कि लाल सेंजी मिट्टी को सुधारती है। यदि केवल इसकी जड़ें और खूँटियाँ ही मिट्टी में मिल जायँ तो उससे स्पष्ट लाभ होते पाया गया है। इसके दो कारण हैं। लाल सेंजी की जड़ें मिट्टी में बहुत अधिक फैली हुई रहती हैं। इसकी जड़ें बहुत गहरी भी जाती हैं। लाल सेंजी के बोने से मिट्टी की भौतिक दशा पर्याप्त परिवर्तित हो जाती है और इसकी मूसल जड़ों में पोषक तत्त्व संचित रहता है। मूसल जड़ें ऐसे कार्बनिक पदार्थों की बनी होती हैं कि वे जल्दी सड़ जाती हैं। यह वायु के नाइट्रोजन का भी स्थिरीकरण करती है। यदि सेंजी की फसल को काटकर निकाल लिया जाय तो भी मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा घटती नहीं वरन् बढ़ी ही रहती है। सेंजी के बाद खेतों में अन्य फसल के बोने से उसे पर्याप्त नाइट्रोजन प्राप्त होता है। भूमि की उर्वरता को कायम रखने के लिए सेंजी को बार बार बोना

चाहिए। प्रति एकड़ १५ पौण्ड बीज बोया जाता है। इसे छींटकर बोते और फिर हलकी मिट्टी से ढँक देते हैं।

अन्य सेंजी—अन्य सेंजी भी, जैसे विशाल सेंजी (mammoth clover), अलसाइक सेंजी (alsike clover) और किरमिजी सेंजी, हरी खाद के रूप में प्रयुक्त हुई हैं। विशाल सेंजी वैसी ही अच्छी पायी गयी है जैसी लाल सेंजी। लाल सेंजी के स्थान में इसका उपयोग हो सकता है। पर भीगी मिट्टी के लिए लाल सेंजी से विशाल सेंजी अच्छी समझी जाती है। प्रति एकड़ १५ पौण्ड बीज बोया जाता है।

अलसाइक सेंजी अर्ध-बेल किस्म की फसल है। यह लाल या विशाल सेंजी के साथ-साथ साधारणतया बोयी जाती है। शीत और भीगी मिट्टियों के लिए यह अच्छी समझी जाती है। यह अधिक सहनशील होती है। यह एसा शीत सहन कर सकती है जिसमें अन्य सेंजी मर जाती हैं। इसका बीज लाल सेंजी से ड्योढ़ा बड़ा होता है। एक एकड़ के लिए ५ पौण्ड लाल सेंजी और ५ पौण्ड अलसाइक सेंजी पर्याप्त समझी जाती है।

किरमिजी सेंजी शीतकाल के लिए अच्छी होती है। पर लाल सेंजी का स्थान यह नहीं ले सकती।

रिजका (अल्फाल्फा)—रिजका हरी खाद के लिए उतनी अच्छी नहीं है। यह जल्दी बढ़ती नहीं है। प्रारम्भ में तो इसका बढ़ना और मन्द होता है। इसके पूरा बढ़ने में दो या तीन वर्ष का समय लग जाता है। इसका बीज भी महँगा होता है। छिटाई में २५ से ३५ पौण्ड बीज प्रति एकड़ लगता है जब कि ड्रिल से बोने में १५ से २५ पौण्ड से ही काम चल जाता है।

लोबिया (cowpea)—लोबिया सबसे अधिक गरम जल-वायु में बढ़ता है। जल्दी बढ़ने के कारण इससे मिट्टी की दशा जल्दी सुधरती है और इसी लिए इसका व्यवहार अधिक और लाभप्रद होता है। बीज के अँकुरने के लिए मिट्टी में पर्याप्त आर्द्रता हो तो यह बराबर सालों भर उपज सकता है। बरसात के शुरू में यह सबसे अधिक बढ़ता है, पर जाड़े में भी इससे पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ प्राप्त होते हैं। इसकी मूसल जड़ लम्बी होती है और मिट्टी में दूर तक फैलकर मिट्टी को भुरभुरी बना देती है। यदि फसल को चारे के लिए प्रयुक्त करना है तो केवल जड़ें और खूँटियाँ ही मिट्टी में रह जाती हैं, पर ये भी बड़ी अच्छी समझी जाती हैं। यह वायु के नाइट्रोजन को अवशोषित कर उसका स्वांगीकरण[1] कर लेता है। आसाम के चाय बागानों में

[1] Assimilation

इसका उपयोग करना अच्छा समझा जाता है। ८० से ९० पौण्ड बीज प्रति एकड़ लगता है।

सोयाबीन—सोयाबीन लोबिया से बहुत कुछ मिलता जुलता है। पर सोयाबीन का उगाना उतना सरल नहीं है और उपज भी उतनी अच्छी नहीं होती। इसमें नाइट्रोजन की मात्रा अधिक रहती है। अमेरिका के कुछ भागों में जहाँ लोबिया का बीज प्राप्य नहीं है, हरी खाद के रूप में सोयाबीन का उपयोग हुआ है। लोबिया से यह इस कारण अच्छा समझा जाता है कि इसकी जोताई में लोबिया से अधिक सुविधा होती है। इसका अपक्षय भी लोबिया जैसा ही शीघ्रता से होता है। इसका नाइट्रोजन भी सामान्य रूप से धान्यों को प्राप्त होता है। प्रति एकड़ १०० से १२० पौण्ड बोया जाता है।

बोगा-मेडेलोया (boga-medeloa) (tephrosia candida)—एक फलीदार झाड़ी है जो हरी खाद के लिए चाय के बगीचों में बोयी जाती है। दो से तीन वर्षों में इससे अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। इसकी जड़ों में ग्रन्थियाँ होती हैं जो वायु के नाइट्रोजन को शीघ्रता से स्थिरीकरण करती हैं। बढ़ी हुई झाड़ी की कतरन (prunning) में नाइट्रोजन की मात्रा पर्याप्त रहती है। ३ वर्ष पुराने पौधे से जो कतरन प्राप्त हुई थी उसमें सूखे पदार्थ की गणना से नाइट्रोजन ३·४७ प्रतिशत पाया गया था।

यह सब प्रकार की भूमि में उग सकता है। हलकी भूमि में भी अच्छा उपजता है, जहाँ अन्य हरी खादें अच्छी नहीं उपजतीं। इसकी जड़ों में ग्रन्थियाँ बड़ी जल्दी निकल आती हैं, ६ इंच बड़ा होने पर ही ग्रन्थियाँ निकल आती हैं। ८० से १०० पौण्ड बीज प्रति एकड़ लगता है।

कोलिंजी (kolinji)—दक्षिण मद्रास में हरी खाद के रूप में कोलिंजी का व्यवहार होता है। ज्यों ही पिशानम धान की कटाई, फरवरी मार्च या अप्रैल मास में हो जाती है, धरती को जोतकर अप्रैल या मई की पहली वर्षा में कोलिंजी का बीज बो दिया जाता है। अगस्त या सितम्बर तक बढ़ने देते हैं, फिर उसे एक बार जोत देते हैं। जोतने से घास-पात तो मर जाते पर कोलिंजी नहीं मरती क्योंकि इसकी जड़ें गहरी जाती हैं। जोतने से वातन होता है जिससे कोलिंजी का बढ़ना उन्नत हो जाता है। अक्तूबर में खेतों में पानी भरकर कोलिंजी को कीचड़ में जोत देते हैं। कोलिंजी हलकी मटियार मिट्टी में बहुत अच्छी उपजती है। कड़ी मिट्टी में या ऐसी भूमि में, जिसमें पानी भरा रहता है, यह अच्छी नहीं उपजती। प्रति एकड़ ८० से १०० पौण्ड बीज लगता है।

ढैंचा (sesbania connabina)—ढैंचा हरी खाद के लिए बड़ा अच्छा समझा जाता है। यह सूखा को सहन कर सकता है। पानी लगी भूमि में भी उपज सकता है। अल्प लवणीय मिट्टी में भी उपजता है। यदि मिट्टी में पर्याप्त आर्द्रता रहे ताकि बीज अँकुर जाय, तो यह अच्छा बढ़ता है और सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। तीन मास के अन्दर इसे धरती में जोत दे सकते हैं अथवा पाँच छः मास तक खेतों में छोड़ दे सकते हैं।

यदि खेतों में दो फसल बोनी हैं तो तीन मास के बाद जोतकर बो सकते हैं, नहीं तो पाँच छः मास उसे खेतों में छोड़कर रबी की एक फसल बो सकते हैं। इसकी जड़ों में अनेक ग्रन्थियाँ रहती हैं। यह बहुत जल्दी उगता है। जुलाई के शुरू में एक बार गोड़ाई कर सकते हैं। आसाम में यह मई में बोया जाता है। मई के तीसरे सप्ताह में गोड़ा जाता है जब इसकी ऊँचाई तीन साढ़े तीन फुट की हो जाती है। बिहार में पहली वर्षा में यह बोया जाता है। प्रति एकड़ ५० से ८० पौण्ड बीज बोया जाता है।

सनई (crotalaria juncea)—सनई ढैंचा जैसी उत्तम हरी खाद नहीं है, पर हलकी मिट्टी में जहाँ पानी जमता नहीं, यह अच्छी उपजती है। कड़ी भूमि और अधिक वर्षा होनेवाले स्थानों के लिए यह ढैंचा (धैंचा) से उत्तम नहीं है।

यह वहाँ ही अच्छी उपजती है जहाँ पानी बरसता है। इसके अपक्षय के लिए पर्याप्त पानी मिलना चाहिए। उत्तर बिहार के लिए यह बहुत उपयुक्त हरी खाद है। यह बड़ी जल्दी उगती और घास-पातों की वृद्धि को रोक देती है। इसके उगाने के लिए खेतों को तैयार करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। यह बहुत जल्दी अँकुरती है और इसकी मूसल जड़ बड़ी जल्दी बढ़कर अवभूमि में पहुँच जाती है। पानी न बरसने पर भी यह मरती नहीं है। प्रति एकड़ ७० से ८० पौण्ड बीज छींटा जाता है।

हरी खाद के उपयोग को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार ने एक योजना बनायी है। इस योजना के अनुसार किसानों को सनई के बीज की प्रति एकड़ एक-एक औन्स की पुड़िया दी जायगी। इन पुड़ियों के बीजों को किसान अपने खेतों के किनारे बोयेंगे। उनसे जो बीज तैयार होगा उसको हरी खाद के उगाने में प्रयुक्त करेंगे। ऐसी पचीस लाख पुड़ियाएँ उत्तर प्रदेश में, दस-दस लाख पुड़ियाएँ बिहार, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में वितरित की जायँगी। यदि इस प्रकार से उत्पन्न बीज को काम में लायें तो पैदावार दुगुनी हो जायगी, ऐसी आशा की जाती है।

सामान्य मुंग, मती कलाई (mati kalai, phaseolus mungo)—मती कलाई का उपयोग आसाम के कुछ चाय के बागों में शुरू हुआ है और उससे अच्छा

परिणाम प्राप्त हुआ है। अप्रैल या मई में ज्यों ही कुछ वर्षा होने के बाद मिट्टी भींग जाती है, मिट्टी को हलकी खोदकर बीज बो दिया जाता है। ६ से ८ सप्ताह में वह इतना बढ़ जाता है कि उसे जोतकर मिट्टी में मिला सकते हैं। प्रति एकड़ ८० से १०० पौण्ड बीज बोया जाता है।

भारत में हरी खाद

हरी खाद के सम्बन्ध में भारत में बड़ी संख्या में अनेक फार्मों में प्रयोग हुए हैं, अनेक फसलें बोयी गयी हैं और कहाँ तक वे खाद के लिए उपयोगी हो सकती हैं इसका पता लगाया गया है। ऐसी फसलों में सनई, ढैंचा, नील, जंगली नील, मती कलाई, कुलथी (horse gram) और लोबिया हैं। इन सबों की वास्तविक तुलना इस कारण सम्भव नहीं है कि ये विभिन्न अवस्थाओं में उगते हैं। पर यह स्पष्ट है कि सनई सबसे अधिक उपयुक्त हरी खाद पायी गयी है। व्यवहार में भी सनई और मती कलाई का उपयोग अधिक होता है। भारी और अल्प लवणीय मिट्टी के लिए ढैंचा और हलकी मिट्टी के लिए जंगली नील अच्छा समझा जाता है। मती कलाई भी अच्छी हरी खाद पायी गयी है।

मध्य प्रदेश में सनई, ढैंचा, तरोता (cassia occidentalis) और कदो-जिरा अच्छा पाया गया है। पहले तीन फलीदार हैं और चौथा संग्रथित-कुल (Compositea) का है। पहले, तीसरे और चौथे से प्रायः एक-सा ही परिणाम प्राप्त हुआ है।

पूसा में सनई, ढैंचा, लोबिया, मेथ (phaseolus aconitifolium) और ग्वार प्रयुक्त हुए हैं। इनमें सनई सबसे अच्छी पायी गयी है।

मैसूर में कवाछ (velvet bean) का उपयोग, जो जल्दी उपजता और जल्दी सड़ता भी है, हुआ है। crotalarea striata, C. trifoliata (तीनपतिया) and Tephrosia condida पलवार के लिए उपयुक्त हुए हैं। पहले दो अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में धान की खेती के लिए अच्छी हरी खाद साबित हुए हैं।

बंबई में कुलथी (dolichos biflorus) और रामतिल (नाइगर) से ईख, धान तथा मकई में सनई से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। ढैंचा (धैंचा) भी कुछ खेतों के लिए अच्छा पाया गया है।

आसाम में अम्लीय मिट्टी के लिए ढैंचा और लोबिया अच्छा समझा जाता है। सामान्य या चूनेवाली मिट्टी के लिए सनई और लोबिया अच्छे हैं। ढैंचा का लाभ संदिग्ध है।

पंजाब में क्षारीय मिट्टी के लिए सांगी (sangi) और हलकी मिट्टी के लिए ग्वार अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

हरी खाद-फसलों की विशेषता

जो फसलें हरी खाद के लिए प्रयुक्त होती हैं उनकी निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए—

१. फसलें अधिक डाल-पातवाली और अधिक बढ़नेवाली हों।

२. फसलों के डाल-पात मुलायम हों और बिना रेशेवाले हों ताकि वे जल्द सड़-गलकर मिट्टी में मिल जायँ।

३. फसलों की जड़ें गहरी जायँ ताकि नीचे की मिट्टी को भुरभुरी बना सकें और नीचे की मिट्टी से पोषक तत्त्व लाकर ऊपर की जड़ों में इकट्ठा कर सकें।

४. फसल की जड़ों में बहुत ग्रन्थियाँ हों ताकि वायु के नाइट्रोजन का वे अधिक मात्रा में स्थिरीकरण कर सकें।

५. फसलें जल्दी उगनेवाली हों।

इस दृष्टि से विचार करने से ढैंचा, बाकुची (बावची psoralea corylifolia) और लोबिया पहली शर्त, लोबिया, कुलथी और कदोजिरा दूसरी शर्त, सनई, ढैंचा और जंगली नील चौथी शर्त तथा सनई, कदोजिरा, तरोता पांचवीं शर्त को पूरी करते हैं।

हरी खाद की मात्रा

प्रति एकड़ पाँच से दस टन हरी खाद खेतों में जोती जाती है। इसमें ४ से ८ टन तो केवल पानी रहता है, शेष एक से दो टन सूखे पदार्थ रहते हैं। सूखे पदार्थों में कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सिजन मिट्टी में मिल जाते हैं और अपनी मात्रा बढ़ाते हैं। नाइट्रोजन की मात्रा विभिन्न मिट्टियों और विभिन्न फसलों में विभिन्न पायी जाती है। अमेरिका के अनेक फार्मों में प्रयोगों से यह जानने की चेष्टा हुई है कि नाइट्रोजन का कितना स्थिरीकरण होता है। लायन और बिजेल (Lyon and Bizzel) ने दस वर्षों के प्रयोगों से जो परिणाम निकाला है वह यह है—

यदि रिज़का के नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की मात्रा को हम १०० पौण्ड मान लें तो मीठे सेंजी की मात्रा ६७, लाल सेंजी की ६०, अलसाइक सेंजी की ५६, सोयाबीन की ४२, कवाक्ष की २७, क्षेत्र सेम (field bean) की २३ और क्षेत्र मटर (field pea) की १९ पौण्ड होगी। अच्छी अनुकूल परिस्थितियों में रिज़का के बोने से प्रति एकड़ प्रति वर्ष २५१ पौण्ड नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। कौलिसन

(Collison) के अनुसार रिज़का से प्रति वर्ष प्रति एकड़ १८८ से २६० पौण्ड नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। सामान्य रूप से मान लिया जा सकता है कि रिज़का से प्रतिवर्ष प्रति एकड़ २०० से २५० पौण्ड नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। ऐसी दशा में लाल सेंजी से प्रति एकड़ १०० से १५० पौण्ड नाइट्रोजन का स्थिरीकरण मान लिया जा सकता है।

स्थिरीकरण के समस्त नाइट्रोजन का एक तृतीयांश मिट्टी से आता और शेष दो तृतीयांश वायु से आता है। नाइट्रोजन का एक तृतीयांश जड़ों में रहता और शेष भाग डाल-पातों में रहता है। अतः मिट्टी के जीवाणु से स्थिरीकृत होनेवाले नाइट्रोजन का ज्ञान डाल-पात में उपस्थित नाइट्रोजन की मात्रा से हो सकता है। सामान्यतः विभिन्न फसलों में नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थों की मात्रा इस प्रकार पायी गयी है——

कुछ हरी खादों में नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थों की मात्रा

हरी खाद	हरी खाद प्रति एकड़ (टन में)	नाइट्रोजन (पौण्ड में)	कार्बनिक पदार्थ (पौण्ड में)
लोबिया	६	४८	१९२०
सोयाबीन	६	६०	२६४०
किरमिजी सेंजी	६	६०	२१६०
अलसाइक सेंजी	६	६०	२६४०
लाल सेंजी	६	६०	२४००
कनाडा क्षेत्र मटर	५	५०	२२००

हरी खाद से मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। यह मात्रा इतनी बढ़ती है जितनी प्रति एकड़ ३२० से ४०० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट डालने से अथवा ६ से ८ टन गोबर की खाद डालने से बढ़ती है।

फलीदार फसलें

साधारणतः लोगों की धारणा है कि फलीदार फसलों से मिट्टी के नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है, पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। यदि नाइट्रोजन की मात्रा पहले से ही अधिक है और फसलें काट ली गयी हैं तो सम्भव है कि इन फसलों से मिट्टी का नाइट्रोजन कम हो जाय। सेम और मटर से, विशेष रूप से देखा गया है कि मिट्टी का नाइट्रोजन कम हो जाता है। क्योंकि इनसे नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कम होता

और फसल काटकर हटा लेने से जड़ें भी उखड़कर निकल जाती हैं। कानसास में रिज़का की फसल से भी नाइट्रोजन की मात्रा कम होती हुई पायी गयी है। कौलिसन का भी ऐसा ही मत है।

पर, नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ सकती है यदि फलीदार फसल को जड़-डाल-पातसहित कुल को मिट्टी में जोत दिया जाय। लाल सेंजी को बार-बार उगाकर मिट्टी में जोत देने से नौ वर्षों में सौंडर्स और शट्ट (Saunders and Shutt) ने प्रति एकड़ ५२ पौण्ड नाइट्रोजन की वृद्धि देखी है। हौल की रिपोर्ट है कि खेतों में फलीदार और अफलीदार फसलों को आप से आप उगते हुए २० वर्षों तक छोड़ देने से नाइट्रोजन में ९८ पौण्ड की वृद्धि देखी गयी है। यह वृद्धि वर्षा और असह-जीवी (non-symbiotic) जीवाणुओं और वाष्पशीलता तथा संकर्षण से हानि होते हुए भी हुई है।

यह सदा ही सच नहीं है कि फलीदार पौधों को खेतों में जोत देने से नाइट्रोजन की वृद्धि होती है। खेतों में प्रति वर्ष बारी-बारी से गेहूँ और लोबिया १० सालों तक बोया गया था। एक खेत में लोबिया की बेल जोत दी जाती थी। दूसरे खेत में लोबिया की बेल को उखाड़कर तब खेत जोता जाता था। जिस खेत में लोबिया बेल जोत दी जाती थी उसमें नाइट्रोजन के २८८ पौण्ड की क्षति हुई थी, जब कि दूसरे खेत में जिसमें लोबिया उखाड़ दिया गया था, ३८८ पौण्ड की क्षति हुई थी। क्षति दोनों खेतों में हुई थी। एक में कुछ कम और दूसरे में अधिक। लोबिया के बोने के कारण क्षति रोकी नहीं जा सकती थी।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि फलीदार फसलों के कारण मिट्टी के नाइट्रोजन की मात्रा पर जो प्रभाव पड़ता है वह अनिश्चित है। यदि फलीदार फसल को खेतों से हटा लिया जाय तो नाइट्रोजन की मात्रा में अवश्य ही कमी हो जाती है। पर फलीदार पौधे मिट्टी के नाइट्रोजन को अफलीदार पौधों की अपेक्षा कम खींचते हैं। इससे मिट्टी का नाइट्रोजन बहुत कुछ सुरक्षित रहता है। फलीदार फसलें वस्तुतः नाइट्रोजन रक्षक हैं। इससे खेतों में बारी-बारी से फलीदार और अफलीदार फसलों की बोआई अच्छी समझी जाती है।

हरी खाद में कार्बनिक पदार्थ

हरी खाद में पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ रहते हैं। विभिन्न फसलों में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा विभिन्न रहती है। यह बहुत कुछ मिट्टी के संवातन, जलवायु और फसल की प्रकृति पर निर्भर करती है। कार्बनिक पदार्थों का एक बड़ा अंश सड़कर कार्बन डाइ-आक्साइड और जल के रूप में निकल जाता है। यह सड़ना उष्ण स्थानों

में अधिकता से होता है। इससे उष्ण स्थानों में हरी खाद के व्यवहार से कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि अपेक्षया कम और बड़ी मन्द गति से होती है। प्रति वर्ष २००० पौण्ड सूखा कार्बनिक पदार्थ लगातार दस वर्षों तक डालते रहने से सतह की मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि केवल एक प्रतिशत होती हुई पायी गयी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हरी खाद से मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि विशेष रूप से नहीं होती। यह कहा जा सकता है कि इससे कार्बनिक पदार्थों की मात्रा मिट्टी में बनी रहती है, कम नहीं होती।

हरी खाद और खनिज लवण

हरी खाद से तभी लाभ हो सकता है जब मिट्टी में पौधों के अन्य आहार, फास्फरिक अम्ल, पोटाश आदि मौजूद रहें। यदि आवश्यक खनिज लवण मिट्टी में मौजूद न हों तो उससे हरी खाद अच्छी उगती नहीं है और मिट्टी की दशा सुधरती नहीं है। अतः मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्त्वों, खनिज लवणों, का रहना बड़ा आवश्यक है। हलकी मिट्टी को हरी खाद से विशेष लाभ नहीं होता। ऐसी मिट्टी में पहले खनिज लवणों को डालकर अच्छी बना लेना चाहिए, क्योंकि पौधों के उगने और पनपने के लिए खनिज लवण उतने ही आवश्यक हैं जितना नाइट्रोजन। खनिज लवणों की प्राप्ति का अन्य कोई साधन नहीं है। बाहर से डालकर ही उनकी वृद्धि की जा सकती है।

हरी खाद और मिट्टी

हलकी मिट्टी के लिए हरी खाद अच्छी होती है। भारी मिट्टी के लिए, जिसमें दरारें फटती हैं, हरी खाद अच्छी नहीं समझी जाती। मध्य प्रदेश की काली मिट्टी, मद्रास के धान के खेत, उत्तर प्रदेश के गेहूँ और ईख के खेतों में जो प्रयोग हुए हैं, उनसे साफ मालूम होता है कि भारी मिट्टी की अपेक्षा हलकी मिट्टी में हरी खाद से पैदावार की वृद्धि अधिक होती है।

हरी खाद की जोताई

हरी खाद को जोतकर मिट्टी में कब मिलाना चाहिए, यह महत्त्व का प्रश्न है। हरी खाद की उपयोगिता बहुत कुछ इसी पर निर्भर करती है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि हरी खाद जब सबसे अधिक रसयुक्त हो तब ही उसे जोतकर मिट्टी में मिलाना चाहिए। ऐसी दशा में हरी खाद का विघटन शीघ्रता से होता है

और विघटन से पौधों के पोषक तत्त्व ऐसे रूप में रहते हैं कि आनेवाली फसलें उससे अधिक लाभ उठा सकती हैं। यदि हरी खाद की फसल को पूरा परिपक्व होने के लिए छोड़ दिया जाय तो वह मिट्टी से बहुत अधिक पोषक तत्त्व खींच लेती है और मिट्टी के पानी को भी सुखा देती है। इससे हरी खाद के विघटन का पूरा अवसर नहीं मिलता। यदि उसके बाद सूखा मौसम आ जाय तो अपक्षय और भी मन्द होता और आनेवाली फसलों को पोषक तत्त्व और जल दोनों की कमी हो जाती है।

महत्तम रसयुक्त हरी खाद को भूमि में जोतने से मिट्टी को पर्याप्त जल मिलता है। पर्याप्त जल से अपक्षय में प्रोत्साहन मिलता है। अधिक से अधिक मात्रा में ह्यूमस बनता है। हरी खादों को खेतों में तभी जोतना चाहिए जब खेतों को पर्याप्त पानी मिलता हो। इससे हरी खाद का प्रभाव बढ़ जाता है।

हरी खाद और चूना

हरी खाद के विघटन से मिट्टी में कार्बनिक अम्ल बनते हैं। यदि मिट्टी में पर्याप्त पानी मौजूद है तो किण्वन अधिक शीघ्रता से होता और कार्बनिक अम्ल अधिक बनते हैं। अम्लों को दूर करने के लिए भूमि में चूना डालने की आवश्यकता पड़ती है। हरी खाद के बीज बोने के समय ही चूना डाला जाता है। प्रति वर्ष चूना डालना ज़रूरी नहीं है। चार-चार वर्ष पर प्रति एकड़ २५ मन की दर से चूना डालना पर्याप्त होता है।

हरी खाद और आगामी फसल

हरी खाद प्रभावशाली हो इसके लिए आवश्यक है कि हरी खाद को खेतों में जोतने और आगामी फसल बोने के बीच कम से कम आठ सप्ताह का अन्तर रहे। हरी खाद को खेतों में जोतने पर उसके विघटन और मिट्टी में मिल जाने की क्रियाएँ शुरू होती हैं। यह क्रिया बड़ी पेचीली होती है। क्रिया का सम्पादन अनेक कारकों (factors) पर निर्भर करता है।

निम्नलिखित कारक महत्त्व के हैं—

१. हरी खाद की प्रकृति—यह हरी खाद के लिए प्रयुक्त होनेवाले पौधों की किस्म और उम्र पर निर्भर करती है।

२. विभिन्न जीवों से पौधों के विभिन्न अंगों के विघटन की प्रकृति की विभिन्न जीवों की सक्रियता जल, संवातन और उपलब्ध नाइट्रोजन तथा उपलब्ध फास्फेट पर निर्भर करती है।

३. हरी खाद के विघटन और अपक्षय में भाग लेनेवाले अणु-जीवों का उपापचय।

जब हरी खाद की फसलें भूमि में जोत दी जाती हैं तब पहले कवकों द्वारा उनका अपक्षय शुरू होता है। अपक्षय के लिए पर्याप्त जल, वायु, संयुक्त नाइट्रोजन और टूटने-फूटनेवाले कार्बोहाइड्रेट रहने चाहिए। यदि हरी खाद में नाइट्रोजन की मात्रा पर्याप्त नहीं है तो अपक्षय शीघ्रता से सम्पादित नहीं होता। कवकों की सारी शक्ति लगकर प्रोटोप्लाज्म का बड़ी मात्रा में सर्जन होता है। इस समय मौजूद नाइट्रोजन की अधिक मात्रा कवकजाल (mycelial) ऊतकों के बनने में खर्च होती है। फसलों की वृद्धि के लिए वह उपलब्ध नहीं होता।

इसके बाद विभिन्न जीवाणुओं के द्वारा हरी खाद के अंग और कवकजाल ऊतक भी मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों में मिल जाते हैं। इस प्रकार मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ बनते हैं। हरी खाद से लाभ हो सके इसके लिए नाइट्रोजन का नाइट्रीकरण आवश्यक है। नाइट्रीकरण के लिए वायु की प्रचुरता और जल का नियमित अनवरत संभरण (supply) रहना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो हरी खाद से कोई लाभ न होगा। मिट्टी में पौधों के पोषक तत्व ऐसे रूप में नहीं रहेंगे कि फसलों को उनसे लाभ हो सके। ऐसी मिट्टी में फसल उगाने से पैदावार में कोई वृद्धि नहीं होती। अतः हरी खाद को भूमि में जोतने और आगामी फसल के बीज बोने के बीच पर्याप्त समय का अन्तर रहना बड़ा आवश्यक है।

हरी खाद और जल

हरी खाद का जल से क्या सम्बन्ध है इस पर अनेक प्रयोग, अनेक देशों में और अनेक हरी खादवाली फसलों के साथ हुए हैं। यह देखा गया है कि हरी खाद से लाभ होने के लिए जल की प्रचुरता रहनी चाहिए। जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ हरी खाद से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। पर जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ हरी खाद से सन्तोषजनक फल नहीं प्राप्त हुए हैं। भारत के अनेक क्षेत्रों में वर्षा अनिश्चित होती है। यदि हरी खाद के जोत देने के बाद पानी न बरसे तो हरी खाद के विघटन और अपक्षय रुक जाते हैं। ऐसे अधसड़े खादवाले खेतों में फसल बोने से कोई लाभ नहीं होता। ऐसे खेतों की फसल बिना हरी खाद डाले खेतों की फसल से अच्छी नहीं होती। इस संबन्ध में शाहजहाँपुर में क्लार्क ने जो प्रयोग किये हैं उनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। हरी खाद खेतों में जोतने के बाद एक पखवारे में यदि पाँच इंच वर्षा न हो तो खेतों में सिंचाई की ज़रूरत पड़ती है। इससे कवकों के द्वारा पहला

अपक्षय सम्पादित हो जाता है। खाद का प्रायः समस्त नाइट्रोजन कवकजाल ऊतकों में परिणत हो जाता है। उसके बाद पतझड़ (शरत्) में आर्द्रता के अभाव में नाइट्रीकरण बन्द रहता है। ज्यों ही माघ-फाल्गुन में ईख की बोआई और फिर सिंचाई होती है, नाइट्रीकरण शुरू होता है और उससे ईख को संयुक्त नाइट्रोजन प्राप्त होता है।

बिना किसी अन्य खाद के व्यवहार के, केवल सनई के उपयोग से प्रति एकड़ ३० टन से अधिक पैदावार पायी गयी है।

विघटन और नाइट्रोजन रूपान्तर

सनई के बढ़ने की विभिन्न अवस्थाओं और विभिन्न मिट्टियों में उसका विघटन कैसा होता है, इसका अध्ययन विस्तार से पूसा में हटचिन्सन और मिलिगन ने किया है। इन दोनों ने केवल नाइट्रोजन के रूपान्तर मात्रात्मक अध्ययन किया है। जोशी ने पूसा में ही हरी खाद के विभिन्न पौधों के नाइट्रीकरण का अध्ययन किया है। उनका परिणाम है कि यदि ऊतक अधिक कोमल और सरलता से विघटित होनेवाले हैं तो उनका नाइट्रीकरण मन्दतर होता है। वाक्समैन के प्रयोगों से मालूम होता है कि हरी खाद की फसलें परिपक्व हो जाने की अपेक्षा प्रारम्भावस्था में अमोनिया के रूप में अधिक शीघ्रता से विघटित होती हैं। प्रारम्भावस्था में जल-विलेय अंश और प्रोटीन अधिक रहते हैं और लिगनिन कम रहता है। जैसे-जैसे पौधा प्रौढ़ होता है, विलेय अंश और प्रोटीन कम होते जाते और लिगनिन बढ़ता जाता है। जल-विलेय अंश, प्रोटीन, पेन्टोसन और सेल्यूलोस अधिक शीघ्र विघटित होते हैं यदि जीवाणुओं के लिए पर्याप्त नाइट्रोजन और खनिज लवण उपलब्ध हों। एक या दो मासों में लिगनिन का विघटन नहीं होता। चूँकि लिगनिन और सेल्यूलोस रसायनतः अथवा भौतिकतः संयुक्त रहते हैं, इससे सेल्यूलोस के विघटन में भी लिगनिन के कारण कठिनता होती है। पर्याप्त नाइट्रोजन और खनिज के रहने पर भी जितना ही अधिक लिगनिन पौधों में मौजूद हो उतना ही मन्द उसका विघटन होता है।

जो कवक और जीवाणु सेल्यूलोस को विघटित करते हैं उनको प्रोटोप्लाज्म के संश्लेषण के लिए निश्चित मात्रा में नाइट्रोजन की ज़रूरत पड़ती है। कोशिका (cell) के जीवित और मृत प्रोटोप्लाज्म में नाइट्रोजन की मात्रा विभिन्न, पर निश्चित रहती है। विघटित सेल्यूलोस और संश्लिष्ट प्रोटोप्लाज्म के बीच एक निश्चित अनुपात रहता है, जो जीवों की प्रकृति और आस-पास की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इस प्रकार विघटित सेल्यूलोस और जीवों के आवश्यक नाइट्रोजन के बीच निश्चित अनुपात रहता है। अकार्बनिक नाइट्रोजन कार्बनिक नाइट्रोजन में परिणत होता है।

सामान्य मिट्टी में अनेक प्रकार के जीव रहते हैं। जीवों की कोशिकाएँ विघटित होकर उनका नाइट्रोजन कुछ तो विघटित हो अमोनिया के रूप में निकलता है और कुछ मिट्टी में ही रह जाता है जो विघटन का प्रतिरोध करता है। पौधों के विघटन से मुक्त नाइट्रोजन और जीवाणुओं से अवशोषित नाइट्रोजन के बीच जो अन्तर रहता है वही नाइट्रोजन मिट्टी में उपलब्ध होता है। ये वही जीवाणु हैं जो नाइट्रोजन वाले और अनाइट्रोजन वाले अंशों को विघटित करते हैं। यदि पौधा छोटा है तो नाइट्रोजन की मात्रा अधिक रहती है और उसका विघटन अधिक शीघ्रता से होता है। तब उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है। यदि नाइट्रोजन की मात्रा कम रहे तो नाइट्रोजन कम मुक्त होता है और जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन का स्वांगीकरण अधिक होता है।

वाल ने जो प्रयोग किये हैं उनसे पता लगता है कि यदि सनई का प्रारम्भ में ही हरी खाद के रूप में उपयोग किया जाय तो उसके कार्बनिक और नाइट्रोजनीय अवयवों का विघटन अधिक शीघ्रता से होता है। ढैंचा में पौधे के अपेक्षया जीर्ण हो जाने पर भी नाइट्रीकरण की दर में कोई स्पष्ट कमी नहीं देखी जाती, यद्यपि कार्बनिक अवयवों के विघटन में कुछ कमी अवश्य पायी जाती है। उन्होंने यह भी देखा है कि सनई के पत्ते का नाइट्रीकरण डंठल के नाइट्रीकरण से अधिक सरलता से होता है।

हरी खाद और फसल

हरी खाद देने के बाद खेतों में ईख, तम्बाकू, कपास, मकई और आलू बोना अच्छा होता है। अनाजवाली फसलों में धान, राई और जई से भी अच्छा परिणाम प्राप्त होता है। गेहूँ और जौ में हरी खाद से पहले वर्ष में विशेष लाभ होता नहीं देखा गया है।

हरी खाद और पैदावार

अनेक फसलों की पैदावार हरी खाद से बढ़ी हुई पायी गयी है। यह प्रभाव बहुधा कई वर्षों तक देखा जाता है। बिहार, वम्बई, मद्रास और मध्य प्रदेशों में हरी खाद से पैदावार की वृद्धि स्पष्ट रूप से बढ़ी हुई पायी गयी है। शाहजहांपुर में ईख का उत्पादन ३३ प्रतिशत बढ़ा हुआ पाया गया है। हरी खाद के बार-बार व्यवहार से ढाका के फार्म में फसलों की पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। मद्रास में कपास के उत्पादन में हरी खाद से वृद्धि हुई है।

ईख और कच्ची चीनी के उत्पादन में हरी खाद का प्रभाव

	प्रति एकड़ ईख (मन में)	प्रति एकड़ कच्ची चीनी (मन में)	प्रति एकड़ सूखा पदार्थ (मन में)
बिना खाद	६४९·०±२२·०	६७·०±२·६	२००·०±६·६
हरी खाद	८४७·०±३२·०	८७·०±३·६	२४६·०±८.०

अमेरिका के विभिन्न फार्मों में हरी खाद के व्यवहार से जो परिणाम प्राप्त हुए हैं उनसे स्पष्ट रूप से पता लगता है कि उससे उत्पादन में वृद्धि होती है। शीत काल की कुछ फलीदार फसलों में ६ से ६० प्रतिशत, कपास की फसल में २२ से १०० प्रतिशत, मकई की फसल में २४ से ७८ प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है।

हरी खादवाली फसलों का तुलनात्मक प्रभाव

विभिन्न हरी खादवाली फसलों के प्रभाव का अध्ययन अमेरिका के कौर्नेल फार्मों में हुआ है। इन प्रयोगों में फसलों की जड़ों और खूँटियों का ही उपयोग हुआ है। ऊपर के अंश काटकर हटा लिये गये थे। फलीदार पौधों की अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए मिट्टियों में आवश्यक चूना, फास्फरिक अम्ल और पोटाश डाले गये थे। विभिन्न फलीदार फसलों के हरी खाद के रूप में उपयोग से जो परिणाम प्राप्त हुए वे निम्नलिखित हैं—

विभिन्न फलीदार फसलों का तुलनात्मक प्रभाव

फसल	लगातार तीन वर्षों का अनाज और पयाल का समस्त उत्पादन, एक जौ और दूसरी राई की फसलें थीं टन में
अल्फाल्फा	८·७५
मीठी सेंजी	८·५७
लाल और अलसाइक मिश्रित सेंजी	८·२१
अलसाइक सेंजी	८·०८
लाल सेंजी	७·९५
सोयाबीन	४·४४
क्षेत्र-सेम	४·२५
अफलीदार (राई, जई)	२·६८

हरी खाद का सुदूर प्रभाव

हरी खाद का तत्काल प्रभाव पैदावार की वृद्धि है। खेतों में हरी खाद डालने के बाद जो फसलें बोयी जाती हैं उनकी पैदावार स्पष्ट रूप से बढ़ जाती है। पर यह प्रभाव एक ही फसल तक सीमित नहीं रहता, अनेक फसलों तक हरी खाद का प्रभाव पड़ सकता है। प्रभाव कब तक पड़ेगा, यह हरी खाद की किस्म, मिट्टी की दशा और जल-वायु पर निर्भर करता है। उष्ण देशों में हरी खाद का प्रभाव बहुत समय तक नहीं टिकता। शीत देशों अथवा शीत दशा में प्रभाव अधिक दिन तक कायम रहता है। अमेरिका के शीत स्थानों में प्रभाव आठ से दस वर्षों तक देखा गया है। मद्रास के धान के खेतों में हरी खाद के प्रभाव का दो वर्षों तक अध्ययन हुआ है। परिणाम निम्नांकित है—

धान की पैदावार पर हरी खाद का सुदूर प्रभाव

	पहला वर्ष १९३६—३७		दूसरा वर्ष १९३७—३८		तीसरा वर्ष १९३८—३९	
	अनाज पौण्ड	पयाल पौण्ड	अनाज पौण्ड	पयाल पौण्ड	अनाज पौण्ड	पयाल पौण्ड
बिना खाद का	२९५५	३२९४	२७३९	२७८२	३३०१	४०४४
हरी खाद						
२००० पौण्ड	२९८७	३७४७	३००३	३११७	३४१२	४२२६
४००० पौण्ड	२७९०	३२१४	२८३५	३८५४	३६९६	४५८९
६००० पौण्ड	३०९५	३४९५	२८७७	२९२५	३४३८	४७६९
८००० पौण्ड	३१२३	३४८६	२८९३	२९६८	३४५५	४४२६
१०००० पौण्ड	३१५५	३३४५	२४८४	२७३७	३४७४	४६२९

फलीदार और अफलीदार हरी खादों का तुलनात्मक मान

फलीदार और अफलीदार हरी खादों का अध्ययन अनेक वर्षों तक अमेरिका में हुआ है। फलीदार हरी खादों में किरमिजी सेंजी, विशाल लाल सेंजी और अफलीदार हरी खादों में राई का उपयोग हुआ है। बिना खाद डाले खेतों की पैदावार जहाँ ३० बुशेल थी, वहाँ राई के उपयोग से ३८ बुशेल और फलीदार हरी खाद के उपयोग से ४८ बुशेल हो गयी थी। एक दूसरे फार्म में जहाँ बिना खाद डाले खेत में उपलब्धि

२३ और ३६ बुशेल थी वहाँ अफलीदार और फलीदार हरी खाद के उपयोग से उपलब्धि ३० और ४० बुशेल हो गयी थी।

हरी खाद के उपयोग के सम्बन्ध में कुछ याद रखने की बातें

१. यदि सिंचाई का प्रबन्ध हो तो गरमी में ही हरी खाद बो देनी चाहिए। यदि सिंचाई का प्रबन्ध न हो तो बरसात की पहली वर्षा ज्यों ही हो, हरी खाद का बीज बो देना चाहिए।

२. हरी खाद तैयार हो जाने पर उसे खेतों में जोतकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। जब वह मिट्टी में पूर्ण रूप से सड़ जाय अथवा विघटित हो जाय तब आगामी फसल बोनी चाहिए। जब तक वह पूरी सड़े या विघटित न हो तब तक उसमें फसल बोना ठीक नहीं है।

३. जहाँ खेतों को पर्याप्त जल नहीं मिलता हो वहाँ हरी खाद के व्यवहार से विशेष लाभ नहीं होता। मिट्टी में इतना पानी रहना चाहिए कि हरी खाद विघटित होकर अगली फसल को पोषक तत्त्व प्रदान कर सके।

४. खेतों में हरी खाद के जोतने और आगामी फसल के बीज बोने के बीच कितना अन्तराल होना चाहिए; यह हरी खाद पर निर्भर करता है। अन्तराल इतना अवश्य रहना चाहिए कि हरी खाद का विघटन ठीक-ठीक हो जाय। अविघटित हरी खाद से विशेष लाभ नहीं होता।

बिहार में फलीदार फसल उगाने की प्रथा

बिहार में किसान एक साल जौ-गेहूँ बोने के बाद उसी खेत में दूसरे साल अरहर बोते हैं अथवा कहीं-कहीं दो साल लगातार जौ-गेहूँ बोने के बाद एक साल अरहर बोते हैं। इस प्रथा से अफलीदार फसल के उगाने से जो नाइट्रोजन मिट्टी से निकल जाता उसकी बहुत कुछ पूर्ति हो जाती है। वहाँ अरहर का उगाना हरी खाद के रूप में नहीं होता। अरहर एक स्वयं बहुत आवश्यक फसल है और उसके उगाने से हमें एक आवश्यक आहार की सामग्री दलहन प्राप्त होती है। अरहर की फसल उगाने से भूमि में वायु के नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। इस सम्बन्ध में भारत और अन्य देशों, विशेषकर अमेरिका में बहुत अनुसन्धान हुए हैं और उनसे पता लगता है कि फलीदार फसल उगाना नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की दृष्टि से बड़ी अच्छी प्रथा है। मद्रास में देखा गया है कि खेतों में मूँगफली की फसल उगाने से भी रबी की फसल की पैदावार ३० प्रतिशत बढ़ी हुई पायी गयी है।

पेन्सिलवेनिया के एक्सपेरिमेण्टल फार्मों में भी इस सम्बन्ध में प्रयोग हुए हैं। वहाँ खेतों में बारी-बारी से मकई, जई, गेहूँ और घास बोयी गयी है। चार-चार वर्षों पर फसलों का हेर-फेर होता रहता है। बिना किसी प्रकार के नाइट्रोजन उर्वरक, हरी खाद अथवा गोबर खाद, इस्तेमाल किये ४० वर्षों तक खेत की उर्वरता कायम रखी जा सकी है और पैदावार में कोई कमी नहीं पायी गयी है।

घास के रूप में लाल सेंजी और यूथ-घास (Timothy) को उपजाया गया है। यहाँ सब फसलें काटकर खेतों से निकाल ली गयी हैं। आवश्यक खनिज लवणों के देने पर पैदावार में अनेक वर्षों तक कोई कमी नहीं देखी गयी है।

ओहियो के फार्म में आलू, गेहूँ और सेंजी बारी-बारी से बोयी गयी है। सुपर-फास्फेट और म्युरियेट आफ पोटाश का उपयोग हुआ है। ऐसे फार्म में ३० वर्षों तक गेहूँ की पैदावार प्रति एकड़ ३५ बुशेल की दर से कायम रही है। कौर्नेल फार्मों में भी इसी प्रकार के प्रयोग हुए हैं और वैसा ही परिणाम प्राप्त हुआ है। भारत में भी इस सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनसे फलीदार फसल उगाने की श्रेष्ठता सिद्ध होती है। अतः एक या दो सालों पर खेतों में फलीदार फसलों का उगाना अच्छी प्रथा है और इससे नाइट्रोजन की कमी कुछ सीमा तक दूर की जा सकती है।

बारहवाँ अध्याय

अन्य कार्बनिक खाद

ग्वानो

ग्वानो शब्द स्पेनीय भाषा के 'ह्वानो' शब्द से निकला समझा जाता है। ह्वानो का अर्थ है पशुओं की विष्ठा। ग्वानो समुद्री मुर्गों का उत्सर्ग है। कभी-कभी उसमें समुद्री कछुवा और 'सील' मछली का उत्सर्ग भी मिला रहता है। समुद्री मुर्गे हजारों की संख्या में टापुओं पर इकट्ठे होते और वहाँ मरते हैं। अतः उत्सर्ग के साथ-साथ पक्षियों के अवशेष, हड्डियाँ और पंख भी मिले रहते हैं। समुद्री मुर्गों में बृहच्चंचु (pelican), जलकाक (पनकौआ),(cormorant) और शूलकाक (garnet) होते हैं।

ग्वानो के उद्गम

संसार के अनेक भागों के अधिकांश टापुओं में ग्वानो पाया जाता है। महाद्वीपों में भी यत्र-तत्र ग्वानो के निक्षेप पाये जाते हैं। पेरू तट के आस-पास के द्वीपों में यह विशेष रूप से पाया जाता है। इस कारण यहाँ के ग्वानो को 'पेरू ग्वानो' कहते हैं। इन टापुओं में चंचोस, ग्वानेप, बलेस्टास, लोबोस, पेलिट्टोस और मकाबी आदि हैं। पेरू के आदिवासी इस खाद से पूरे परिचित थे और इसे बहुत दिनों से इस्तेमाल करते थे। वेनेजुएला, इक्वेडर और कोलम्बिया के निकट के टापुओं से भी एक समय ग्वानो का चालान होता था। ऐसे ग्वानो को 'कोलम्बिया ग्वानो' कहते थे।

मैक्सिको और कैलिफोर्निया के तटों के द्वीपों और मैक्सिको खाड़ी के द्वीपों में भी ग्वानो पाया जाता है। वेस्ट इण्डीज़ में भी ग्वानो पाया गया है। अफ्रीका के पश्चिमी तटों के अनेक स्थलों में, आस्ट्रेलिया, चीन और जापान के आस-पास तथा यूरोप में भी ग्वानो पाया जाता है।

ग्वानो का व्यवहार

पेरू के आदिवासी ग्वानो के व्यवहार की आवश्यकता समझते थे और उसको खाद के लिए प्रयुक्त करते थे। हम्बोल्ट (Humboldt) पहला यूरोपीय मालूम

होता है जो सन् १८०४ में ग्वानो का नमूना यूरोप में लाया, यद्यपि पहले से भी इसके उपयोग का पता लगता है। उस समय भी अनेक जहाज ग्वानो से लदकर पेरू से बाहर जाते थे। सन् १८१० में पहले-पहल जहाज पर लदकर ग्वानो यूरोप आया। सन् १८२४ में दो बैरेल ग्वानो अमेरिका आया और उसके बाद तो आयात जल्दी से बढ़ने लगा। सन् १८४० में पहला जहाज ग्वानो से लदकर लिवरपूल आया था। सन् १८४५ में २८३,३०० टन ग्वानो ग्रेट ब्रिटेन में आया और सन् १८४८ में १६,४०० टन अमेरिका आया। सन् १८४४ में ग्वानो ढोने के लिए ३०० जहाज टापू में इकट्ठे हुए थे।

धीरे-धीरे ग्वानो का उपयोग बढ़ने लगा और हर उन्नत देश में यह प्रयुक्त होने लगा। इसकी खपत कुछ वर्षों में इतनी बढ़ गयी कि पेरू सरकार को इसके निर्यात पर रोक लगानी पड़ी ताकि पेरू के लिए पर्याप्त ग्वानो प्राप्त हो सके। पीछे तो ऐसा प्रबन्ध किया गया कि विभिन्न टापुओं से बारी-बारी से ग्वानो निकाला जाय, ताकि उसका संभरण नियमित रूप से होता रहे। उर्वरक तैयार करने के कारखानों के खुलने के बाद ग्वानो का उपयोग धीरे-धीरे कम हो रहा है। सन् १९३८ में केवल १५,००० टन ग्वानो अमेरिका गया, जबकि सन् १९३९ में इसकी मात्रा केवल ५,००० टन हो गयी। उसके बाद तो ग्वानो का अमेरिका में आयात प्रायः बन्द-सा ही हो गया।

ग्वानो के गुण

ताजा ग्वानो का रंग हलका धूसर होता है। धीरे-धीरे इसका रंग बदलता है, तब यह भूरा या गाढ़ा भूरा हो जाता है। इसकी भौतिक दशा समय के साथ-साथ धीरे-धीरे बदलती है। इसमें बहुधा कंकड़-पत्थर और अधसड़े पंख रहते हैं। यह भुरभुरा चूर्ण होता है। इसमें अमोनिया जैसी प्रबल गन्ध होती है। गन्ध अमोनिया और वाष्पशील कार्बनिक पदार्थों के कारण होती है। अमोनिया कार्बोनेट के कारण यह क्षारीय प्रतिक्रिया वाला होता है। ग्वानो ऐसी चिड़ियों का उत्सर्ग है जो अधिकांश मछलियों पर बसर करती हैं। अतः उत्सर्ग में नाइट्रोजन और फास्फरस की मात्रा अधिक रहती है। कुछ लोग तो इसी कारण ग्वानो को 'मछली की खाद' कहते हैं, ग्वानो में पौधों के पोषक तत्त्व घरेलू मुर्गों के उत्सर्ग के पोषक तत्त्वों से अधिक रहते हैं क्योंकि घरेलू मुर्गे अनाज पर बसर करते हैं जबकि समुद्री मुर्गे मछली पर बसर करते हैं। जलवायु के कारण भी ग्वानो के संगठन में अन्तर आ जाता है। सूखे स्थानों के ग्वानो में कोई परिवर्तन नहीं होता। भींगे स्थानों के ग्वानो में पानी के कारण कुछ

किण्वन होता है जिससे कुछ नाइट्रोजन नष्ट हो जाता है और कुछ लवण घुलकर निकल जाते हैं।

कारमरोड्ट ने ग्वानो का विश्लेषण इस प्रकार दिया है—

ग्वानो का संगठन

अवयव	प्रतिशत
समस्त नाइट्रोजन	१६·३४
अमोनिया	१४·०८
ट्राइकैलसियम फास्फेट	३२·३०
पोटाश	१·९४
चूना	५·११
मैगनीशिया	३·६९
सलफ्यूरिक अम्ल	०·६२
क्लोरीन	१·०४
सोडा	०·१८
बालू और सिलिका	१·४५
जल	१७·१३

चिन्चास ग्वानो के एक नमूने का विश्लेषण

अवयव	प्रतिशत
समस्त नाइट्रोजन	१६·०९
नाइट्रेट नाइट्रोजन	०·३२
अमोनियम नाइट्रोजन	३·९४
यूरिक अम्ल नाइट्रोजन	८·८५
अन्य कार्बनिक नाइट्रोजन	२·९८
समस्त फास्फरिक अम्ल, कैलसियम ट्राइफास्फेट के रूप में	२०·२८
जल विलेय फास्फरिक अम्ल	२·६३
अमोनियम सिट्रेट विलेय फास्फरिक अम्ल	६·२९
अविलेय फास्फरिक अम्ल	०·३७
१ प्रतिशत सिट्रिक अम्ल में विलय समस्त फास्फरिक अम्ल	९·२७

पेरू-ग्वानो में यूरिक अम्ल बड़ा अल्प रहता है। समय के बढ़ने के साथ-साथ यूरिक अम्ल धीरे-धीरे अमोनियम कार्बोनेट में परिणत हो जाता है। ग्वानो का नाइट्रोजन ऐसे रूप में रहता है कि पौधे उसे जल्द ग्रहण कर लेते हैं। जो ऐसा नहीं होता वह मिट्टी के संसर्ग से जल्द उपलभ्य रूप में परिणत हो जाता है। जिस ग्वानो का कुछ नाइट्रोजन किण्वन द्वारा नष्ट हो जाता है उसमें फास्फरस की प्रतिशतता बढ़ जाती है। ऐसे ग्वानो को बहुधा 'फास्फरस खाद' कहते हैं। इसका उपयोग सुपर-फास्फेट के निर्माण में होता है।

ग्वानो में फास्फरस कैलसियम, पोटेसियम अथवा अमोनियम फास्फेट के रूप में रहता है। कुछ ग्वानो में विशेषत: दक्षिण अफ्रीकी ग्वानो में फास्फेट की मात्रा कम रहती है। पेरू-ग्वानो में फास्फरस सबसे अधिक मात्रा में रहता है।

ग्वानो का नाइट्रोजन कुछ अमोनिया, कुछ नाइट्रेट, कुछ यूरिक अम्ल और कुछ अन्य कार्बनिक नाइट्रोजन यौगिकों के रूप में रहता है। इन विभिन्न रूपों की आपेक्षिक मात्रा घटती बढ़ती रहती है।

ग्वानो को यदि सलफ्यूरिक अम्ल से उपचारित किया जाय तो उससे जो ग्वानो प्राप्त होता है उसे 'प्रविलीन ग्वानो' (dissolved guano) कहते हैं। इस उपचार से अमोनियम कार्बोनेट तत्काल अमोनियम सल्फेट और अविलेय फास्फेट विलेय फास्फेट में परिणत हो जाता है। ऐसे प्रविलीन ग्वानो में ट्राइकैलसियम और डाइकैलसियम फास्फेटों की प्रतिशतता ऊँची रहती है। प्रविलीन ग्वानो में नाइट्रोजन ६ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल १० प्रतिशत रहता है। १० प्रतिशत में ९ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल जल में विलेय होता है।

ग्वानो में अन्य उर्वरक भी मिलाये जा सकते हैं। नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटेसियम वाले उर्वरक मिलाने से जो ग्वानो प्राप्त होता है उसे 'परिशोधित ग्वानो' (rectified guano) कहते हैं। इसको कभी-कभी 'बल-वर्धित ग्वानो' भी कहते हैं। ग्वानो को साधारणतया बल-वर्धन की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ग्वानो को यदि आर्द्र वायु में रखा जाय तो वह पानी का अवशोषण कर किण्वन उत्पन्न करता है। इससे अमोनिया निकलता है। किण्वन से यूरेट अमोनियम कार्बोनेट बनता और उसके विघटन से अमोनिया निकलता है। सलफ्यूरिक अम्ल के उपचार से अमोनिया का निकलना रुक जाता है। क्योंकि वाष्पशील अमोनियम कार्बोनेट अवाष्पशील अमोनियम सल्फेट में बदल जाता है।

ग्वानो अच्छी खाद समझा जाता है। इसमें नाइट्रोजन और फास्फरस दोनों अच्छी मात्रा में रहते हैं। अल्प पोटाश भी रहता है। इसके इस्तेमाल से पौधों को

कोई हानि नहीं होती। सब फसलों के लिए समान रूप से इसका व्यवहार हो सकता है। कम या अधिक देने से कोई हानि नहीं होती। फल और साग-भाजियों के लिए यह विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध हुआ है। इससे ग्वानो की माँग अधिक रहती है। अन्य उर्वरकों से इसकी कुछ अधिक कीमत देने के लिए भी लोग तैयार रहते हैं।

चमगादड़ ग्वानो

चमगादड़ एक जन्तु होता है। झुंड के रूप में यह पेड़ों पर बैठता अथवा गुफाओं और अन्य अँधेरी सुनसान जगहों में इकट्ठा होता है। इसका उत्सर्ग बैठने के स्थान पर प्राप्त होता है। हजारों टन चमगादड़ के निक्षेप मिस्सौरी, वेस्ट इण्डीज़, सार्डिनिया, स्पेन, फ्रांस और भारत के टापुओं में पाये जाते हैं। एक समय इण्डियाना के ग्वानो निक्षेप से शोरा तैयार हुआ था। इस उत्सर्ग में अन्य जन्तुओं, शृगाल और भेड़ियोंके उत्सर्ग तथा उनकी हड्डियाँ भी पायी जाती हैं।

चमगादड़ कीड़े खाते हैं और बहुत अधिक खाते हैं। अतः उनका उत्सर्ग पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। कीड़ों के पंख पचते नहीं, इस कारण चमगादड़ का उत्सर्ग चमकता रहता है। सूखने पर उत्सर्ग गाढ़ा भूरे रंग का और भींगने पर काला होता है। चमगादड़ कीड़े और समुद्र-पक्षी मछलियां खाते हैं, इस कारण चमगादड़-ग्वानो उतनी उत्कृष्ट खाद नहीं होता जैसा पेरू-ग्वानो।

चमगादड़-ग्वानो में जल की मात्रा १२ से २५ प्रतिशत रहती है। नाइट्रोजन २ से १२ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल २.५ से १६ प्रतिशत। इसका संगठन समुद्री-मुर्गों के ग्वानो से भिन्न होता है। चमगादड़-ग्वानो के एक नमूने का विश्लेषण इस प्रकार है—

जल ४० प्रतिशत, नाइट्रोजन ८.२ प्रतिशत, पोटाश १.३ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल ३.८ प्रतिशत।

चमगादड़-ग्वानो का अधिक नाइट्रोजन अमोनियम लवण के रूप में रहता है। नाइट्रेट नाइट्रोजन अथवा कार्बनिक नाइट्रोजन की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। चमगादड़-ग्वानो में मिट्टी भी मिली रहती है।

चमगादड़-ग्वानो सब फसलों के लिए इस्तेमाल हो सकता है। इसे बीज बोने के पहले खेतों में डालना चाहिए। ऊपर की ३ इंच मिट्टी के साथ ग्वानो को भली भाँति मिला देना चाहिए। हवाई टापू और बरमा में धान के खेतों में इसके व्यवहार से विशेष लाभ होता पाया गया है। प्रति एकड़ ३० पौण्ड, ५० पौण्ड और ७० पौण्ड नाइट्रोजनवाली खाद उपयुक्त हो सकती है।

भारत में विष्ठा का उपयोग अपेक्षया बड़ी अल्प मात्रा में होता है। बड़े-बड़े नगरों में ही कूड़ा-करकट के साथ मिलाकर विष्ठा का कम्पोस्ट बनता है। सबसे अधिक इसका उपयोग बम्बई राज्य में होता है, अन्य राज्यों में भी अब थोड़ा-बहुत उपयोग होने लगा है और दिन-दिन इसकी वृद्धि हो रही है। गाँवों में खाद के लिए विष्ठा का उपयोग साधारणतया नहीं होता। पर अधिकांश ग्रामवासी, पुरुष तो प्रायः सब ही और अधिकांश महिलाएँ भी, खेतों में ही मल-मूत्र त्याग करते हैं। इससे मल-मूत्र खेतों को मिलता रहता है।

यूरोप के देशों में भी विष्ठा का उपयोग आज कुछ सीमा तक हो रहा है। उत्तरी फ्रांस के कुछ बड़े-बड़े नगरों के आस-पास खाद के लिए यह प्रयुक्त होता है। वहाँ मल-मूत्र को गड्ढे में तीन-चार मास तक रखकर सुखा दिया जाता है। इस सूखे पदार्थ को अन्य अवशिष्ट कार्बनिक पदार्थों के साथ मिलाकर चरागाहों और साग-भाजियों के खेतों में डालते हैं।

चीन में गेहूँ और धान दोनों के लिए विष्ठा की खाद सामान्य रूप से प्रयुक्त होती है। पर गेहूँ में प्रयुक्त होनेवाली विष्ठा की खाद धान में प्रयुक्त होनेवाली विष्ठा की खाद से कुछ भिन्न होती है।

विष्ठा की मात्रा

ठोस मल—विष्ठा का ठोस अंश विभिन्न मात्राओं में प्राप्त होता है। लावेस और गिलबर्ट (Lawes and Gilbert) के अनुसार १६ वर्ष से कम उम्र के बालकों की विष्ठा का ठोस अंश प्रति दिन १०६ ग्राम, १६ से ५० वर्ष के वयस्क की दैनिक विष्ठा का ठोस अंश लगभग १५० ग्राम और ५० वर्ष से अधिक उम्र के मनुष्यों की दैनिक विष्ठा लगभग २२६ ग्राम होती है। इसमें बिल्कुल सूखा अंश २७·४ से ४२·३ प्रतिशत रहता है। वृद्ध की विष्ठा में सूखा अंश सबसे अधिक रहता है।

मूत्र—प्रति दिन मनुष्य विभिन्न मात्राओं में मूत्र निकालता है। २४ घण्टों में मूत्र की मात्रा ५२० से २२६० ग्राम होती है। लेहमान ने १४ दिन के परीक्षण से पता लगाया कि शाकाहारी व्यक्तियों से मूत्र ७२० से १२१२ ग्राम और मिश्रित आहारवाले व्यक्तियों से ८७९ से १३८४ ग्राम प्राप्त होता है।

मूत्र में ठोस की मात्रा ३४·५ से ८७·४ ग्राम प्रति दिन रहती है। विभिन्न देशों के लोगों में ठोस की मात्रा विभिन्न पायी जाती है। इसका कारण विभिन्न जलवायु और विभिन्न ताप है।

विष्ठा का विश्लेषण

ठोस मानव उत्सर्ग में नाइट्रोजन की दैनिक मात्रा—बालक के उत्सर्ग में २·३४ ग्राम, वयस्क के उत्सर्ग में १·९४ ग्राम और वृद्ध के उत्सर्ग में ०·३२१ ग्राम रहती है। राख की मात्रा क्रमशः ३·६९, ४·२३ और ८·३२ रहती है। राख में फास्फरिक अम्ल प्रायः ३१ से ४३ प्रतिशत, पोटाश ६ से २१ प्रतिशत, चूना १७ से २७ प्रतिशत और मैगनीशिया प्रायः १०·५ से १५·५ प्रतिशत रहता है।

मूत्र का विश्लेषण

८ मास के बच्चे के मूत्र में नाइट्रोजन की मात्रा ०·१५ प्रतिशत, २१ वर्ष के युवक के मूत्र में १·०२ प्रतिशत और ४६ वर्ष के वयस्क के मूत्र में १·५७ से १·८४ प्रतिशत रहती है। यदि मूत्र की औसत दैनिक मात्रा १२०० ग्राम मान लें तो हर व्यक्ति प्रति दिन लगभग १३·३६ ग्राम नाइट्रोजन निकालता है।

बच्चे के मूत्र में लवण की मात्रा सबसे कम, उससे अधिक स्त्री के मूत्र में और उससे अधिक वृद्ध के मूत्र में और सबसे अधिक वयस्क के मूत्र में रहती है। मूत्र की राख में क्लोराइड, सोडा, पोटाश, फास्फेट, सल्फेट, चूना, मैगनीशिया, लोहे के आक्साइड और अल्प मात्रा में अविलेय पदार्थ रहते हैं।

वोल्फ और लेहमान ने विष्ठा का विश्लेषण यह दिया है—

मानव-उत्सर्ग का विश्लेषण

	मल		मूत्र	
	प्रतिशत	प्रतिवर्ष पौण्ड	प्रतिशत	प्रतिवर्ष पौण्ड
जल	७७·२	—	९६·३	—
कार्बनिक पदार्थ	१९·८	—	२·४	—
राख	३·०	—	१·३	—
नाइट्रोजन	१·०	१·०४	०·६	६·९
फास्फरिक अम्ल	१·१	१·३	०·१७	३·२
पोटाश	०·२५	०·३	०·२	३·४

ऊपर सारणी में जो मात्रा दी हुई है वह सब उम्र के मनुष्यों की औसत मात्रा है। बालकों में मात्रा कम और वयस्कों में अधिक; प्रायः डेढ़ गुनी होती है।

विष्ठा की खाद का व्यवहार

विष्ठा में नाइट्रोजन, फास्फरिक अम्ल और पोटाश रहते हैं। फसलों के लिए ये आवश्यक पोषक तत्त्व हैं, इस कारण विष्ठा का उपयोग खाद के लिए हो सकता है। कानपुर के फार्मों में मकई और गेहूँ के खेतों में विष्ठा के साथ प्रयोग हुए हैं। देखा गया है कि विना खाद डाले खेतों की अपेक्षा प्रति एकड़ ६ टन विष्ठा की खाद के उपयोग से मकई की पैदावार ५०० से १००० पौण्ड और गेहूँ की पैदावार ४०० से ६०० पौण्ड बढ़ी हुई पायी गयी है। बराबर तादाद में गोबर की खाद से विष्ठा की खाद श्रेष्ठतर पायी गयी है। इलाहाबाद में घास के खेतों में १० वर्षों में एक बार प्रति एकड़ १६८ टन विष्ठा का उपयोग हुआ था। ऐसे खेतों की घास की पैदावार प्रति वर्ष प्रति एकड़ १० से ३० टन पायी गयी है। बम्बई के फार्मों में विष्ठा के उपयोग से कपास और ज्वार की उपज बढ़ी हुई पायी गयी है। देशी और विलायती साग-भाजियों के लिए भी यह खाद अच्छी पायी गयी है। ज्वार के खेत में प्रति एकड़ ४० गाड़ी ताज़ी विष्ठा के उपयोग से अनाज में ७५३ पौण्ड, भूसा में १८३ पौण्ड और चारे में ५९१४ पौण्ड की वृद्धि पायी गयी है। भड़ोंच के कपास के खेत में ४९ रुपये कीमत की ७० गाड़ी विष्ठा से १५९ रुपये कीमत की अधिक रूई पैदा हुई थी। रतनागिरी में प्रति एकड़ ३००० पौण्ड विष्ठा के उपयोग से धान-अन्न की पैदावार में ४८० पौण्ड और पुआल में ६३५ पौण्ड की वृद्धि हुई थी। इन्दौर के फार्म में और किसानों के खेतों में भी इसका उपयोग गेहूँ, कपास, ईख, ज्वार, आलू, साग-भाजियों और फूलों में लाभप्रद हुआ है। सोडियम नाइट्रेट और बेसिक स्लैग के साथ मिलाकर इस्तेमाल करने से मिरचों की पैदावार स्पष्ट रूप से बढ़ जाती है तथा पोटेसियम सल्फेट और सुपर-फास्फेट के साथ मिलाकर इस्तेमाल से आलू की पैदावार बढ़ जाती है।

विष्ठा के दोष

विष्ठा के उपयोग से चीन में अनेक रोग फैले हुए पाये जाते हैं। विष्ठा द्वारा अनेक रोगों के कीटाणु फैलकर मनुष्य को आक्रान्त कर सकते हैं। ऐसे रोगों में हैजा, आन्त्रज्वर, पेचिश, अमीबा पेचिश, टायफायड, पारा टायफायड, अतिसार, प्रोटोज़ोया रोग, कृमि रोग, अंकुश कृमि, गोल कृमि आदि हैं। इन रोगों से बचने के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है। रोग-कीटाणुओं के नाश करने या उनसे बचने के प्रयत्नों में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

१. विष्ठा को मक्खियों से बचाकर रखना चाहिए, ताकि मक्खियाँ उन पर अण्डे न दें।

२. विष्ठा को ऐसा रखना चाहिए कि वह पीने के पानी के संसर्ग में न आये।

३. रोग-कीटाणुओं और रोग-कृमियों के अण्डों को नष्ट करके ही विष्ठा को खेतों में डालना चाहिए।

जापान और चीन में बन्द पात्रों में ही विष्ठा को संग्रह करते और बन्द पात्रों में ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। उसे बन्द टंकी अथवा ढँके हुए गड्ढे में एकत्रित करते हैं ताकि मक्खियाँ उसपर न बैठें।
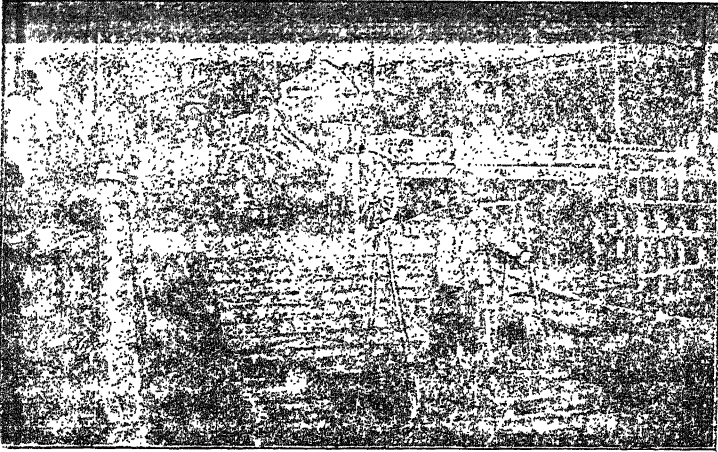
चित्र २६—चीन में बंद पात्र के अंदर विष्ठा की ढोवाई

ऐसा समझा जाता है कि विष्ठा को कई सप्ताह तक रखने से रोग-कीटाणु और प्रोटोज़ोया परजीवी मर जाते हैं। कई मास तक रखे रहने से अंकुश और गोल कृमि के अण्डे भी मर जाते हैं। भारत, जापान और दक्षिण अफ्रीका में विष्ठा को वातापेक्षी अवस्था में रखकर कम्पोस्ट बनाया जाता है। चीन में धान के पयाल के साथ मिलाकर कम्पोस्ट बनाने से रोग-कीटाणु और कृमि-अण्डे मर जाते हैं। ऐसे मिश्रण का ताप इतना ऊँचा उठता है कि रोग-कीटाणु और कृमि-अण्डे सब नष्ट हो जाते हैं।

विष्ठा की दुर्गन्ध इसका दूसरा भारी दोष है। भारत के किसान दुर्गन्ध के कारण ही विष्ठा के उपयोग से भागते हैं, भरसक वे विष्ठा का उपयोग करना नहीं चाहते।

दुर्गन्ध के दूर करने के अनेक प्रयत्न हुए हैं। आज विष्ठा का कम्पोस्ट ऐसा तैयार हो सकता है जिसमें जरा भी गंध न हो।

विष्ठा की खाद का निर्माण

विष्ठा की खाद तैयार करने की अनेक रीतियाँ आज काम में लायी जा रही हैं। सुविधानुसार इन रीतियों का उपयोग किया जा सकता है।

चीनी रीति—चीन देश में विष्ठा को मिट्टी के बड़े-बड़े पात्रों में इकट्ठा करते हैं। उसका किण्वन होता है और कुछ दिनों में समस्त ठोस पदार्थ द्रव बन जाता है। इस द्रव को ही पौधों की जड़ों में डालकर मिट्टी से ढँक देते हैं। ऐसा साधारणतया साग-भाजियों और फल के बागों में करते हैं।

उत्तरी चीन में विष्ठा को गोबर और कूड़ा-करकट के साथ मिलाकर खेतों में डालते हैं। बड़े-बड़े नगरों में गोहरी (उपला) के जैसा विष्ठा को पाथकर जमीन पर रखकर सुखाते हैं। कभी-कभी अल्प मात्रा में उसमें गोबर, मिट्टी या राख भी मिला देते हैं। एक सप्ताह में यह सूख जाता है। इसे इकट्ठा कर इस्तेमाल के लिए दुकानों पर बेचते हैं। ऐसी सूखी गोहरी में जल लगभग ९ प्रतिशत, राख ५९ प्रतिशत, नाइट्रोजन १·७ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल १·६ प्रतिशत और कार्बन १९ प्रतिशत रहते हैं। सुखाने के समय पर्याप्त नाइट्रोजन नष्ट हो जाता है। उत्तर चीन में मल के साथ-साथ मूत्र का संरक्षण नहीं होता। इससे मूत्र के सब पोषक तत्त्व—नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटाश—नष्ट हो जाते हैं।

दक्षिण चीन में विष्ठा और मूत्र दोनों का प्रयोग करते हैं। फार्मों में इन्हें गड्ढे में इकट्ठा करते हैं। गड्ढे ईंट और चूने से बने होते हैं। वहाँ से काठ की बाल्टियों में उठाकर ले जाते और खेत के किनारों में छोटे-छोटे गड्ढों में इकट्ठा करते हैं। ये गड्ढे खुले रहते अथवा हलकी छत से ढँके रहते हैं। इन गड्ढों में पेड़-पौधों के अवशिष्ट अंश फेंकते जाते हैं जिससे एक प्रकार का कम्पोस्ट बन जाता है। ऊपर के द्रव-अंश को अलग से प्रयुक्त करते अथवा द्रव और ठोस दोनों को मिलाकर ऐसा मिश्रण प्रयुक्त करते हैं। चीन के गाँवों की समस्त विष्ठा लकड़ी की बाल्टी या मिट्टी के भांड या गड्ढेदार पाखाने में इकट्ठा कर किसानों को या व्यवसायियों को बेंचते हैं। पयाल के साथ तैयार कम्पोस्ट अच्छा होता है। पर कम्पोस्ट के लिए पयाल कम मिलता है। पयाल के और अनेक उपयोग, छप्पर बनाने, मवेशियों को खिलाने और जलाने में होते हैं जिससे कम्पोस्ट के लिए पयाल बचता नहीं है।

अनुभव से पता लगा है कि खेतों में इस्तेमाल करने से पूर्व विष्ठा को किण्वन के
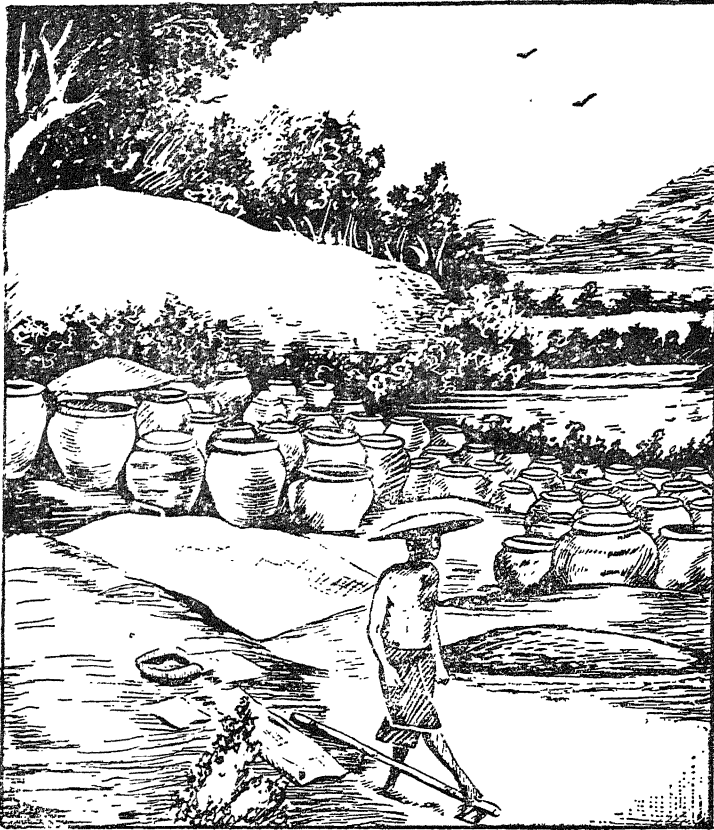
चित्र २७—चीन में भांडों म विष्ठा खाद का निर्माण

लिए रख छोड़ने से पौधों या बीजों को कोई हानि नहीं होती। किण्वन का समय कुछ दिनों से लेकर कई मास तक का हो सकता है। साधारणतया खाद का व्यवहार चीन में वसन्त में या पतझड़ में होता है। इससे विष्ठा को कुछ समय तक किण्वन के लिए रख छोड़ने में कोई हर्ज नहीं है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कुछ दिनों तक उसे संगृहीत रखने से रोग के कीटाणु एवं परजीवी मर जाते हैं।

इकट्ठा कर रख छोड़ने से नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थ कुछ नष्ट हो जाते हैं। अन्य पोषक तत्त्वों में कोई कमी नहीं होती। कार्वनिक नाइट्रोजन यौगिक विघटित

हो अमोनियम यौगिक बनकर वाष्पशील होने के कारण निकल जाते हैं। बहुत दिनों तक रखे रहने और वायु-धूप में खुला रहने से प्रायः आधा नाइट्रोजन नष्ट हो सकता है।

खाई—भारत में विष्ठा का संग्रह खाई में होता है। खाई गहरी हो सकती है अथवा छिछली। खाई में विष्ठा रखकर मिट्टी से ढँक देते हैं। गहरी खाई में विष्ठा का विघटन देर से होता है। उससे दुर्गन्ध निकलती रहती है। दुर्गन्ध का निकलना लगभग पन्द्रह दिनों तक चल सकता है। छिछली खाई में विघटन जल्दी होता है और कुछ ही दिनों में दुर्गन्ध का निकलना बन्द हो जाता है।

बम्बई रीति—बम्बई के जलगाँव फार्म में जो रीति प्रयुक्त होती है वह इस प्रकार की है—जिस खेत में कच्ची विष्ठा डालनी होती है उसमें हैरो चलाकर ऊपर की ३ इंच मिट्टी एक-सी बराबर कर लेते हैं। तब समस्त खेत में चौड़ी छिछली हराई (furrows) किसी भारी देशी हैरो से बनाते हैं। यह हराई २० इंच चौड़ी होनी चाहिए और दोनों ओर ३ से ४ इंच ऊँची मेंड़ होनी चाहिए। आधार पर मेंड़ एक फुट चौड़ी होती है। हराई के पेंदे में जैसे-जैसे विष्ठा रखी जाती है वैसे-वैसे ही एक आदमी मेंड़ की मिट्टी से विष्ठा को ढँकता जाता है ताकि मक्खियाँ उस पर न बैठें और न अण्डे दें। तब खेत को आड़ा जोत देते हैं। एक सप्ताह के बाद फिर जैसे पहले जोता था वैसे ही जोत देते हैं। अब खेत बोने के लिए तैयार हो जाता है। जहाँ-जहाँ नगरपालिका विष्ठा को इकट्ठा करती है वहाँ-वहाँ यह रीति काम में आ सकती है।

मिट्टी शौच-कुंड रीति—इस रीति में मल-मूत्र को सूखी मिट्टी के साथ मिलाकर रखते हैं। शीघ्र ही उसकी दुर्गंध पूरी निकल जाती है। फिर उसे उठाकर एक स्थान पर ढेर लगाते हैं। जीवाणुओं द्वारा उसका अपक्षय कुछ दिनों में पूर्ण हो जाता है। अब ऐसी मिट्टी को खेतों में फैलाकर उसमें फसल उगाते हैं।

चूना-उपचार रीति—इस रीति में ताजी विष्ठा को जल्द से जल्द चूने के साथ उपचारित करते हैं। मोसेलमान (Mosselman) ने जले चूने के दो भाग (भार से) को एक भाग आर्द्र विष्ठा के साथ उपचारित किया था। मिश्रण का आयतन चूने के आयतन का अढ़ाई गुना बढ़ गया था। इस उपचार में १०० भाग चूने से २५ भाग जल उड़ जाता है। चूना ५० भाग जल से रसायनतः और भौतिकतः संयुक्त होता है। उत्पाद इतना सूख जाता है कि इसे सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जा सकते हैं। इसमें उष्णता इतनी उत्पन्न होती है कि समस्त रोग-कीटाणु मर जाते हैं। इसके विश्लेषण निम्नलिखित हैं—

चूना	११·२८ प्रतिशत
नाइट्रोजन	०·४२ प्रतिशत

फास्फरिक अम्ल	०·९१ प्रतिशत
पोटाश	०·०९ प्रतिशत

इसमें कोई दोष है तो यही कि इसमें चूने की मात्रा अधिक रहती है। नियमित रूप के व्यवहार से मिट्टी में चूने की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है।

ए० बी० सी० रीति––जले हुए चूने के स्थान में यदि ऐलम (A; फिटकरी), ब्लड (B; रक्त) और क्ले (C; मिट्टी) का व्यवहार हो तो इस प्रकार से विष्ठा की खाद तैयार करने को (ए० बी० सी०) रीति कहते हैं। थौन (Thon) ने इस प्रकार से तैयार खाद को सूखी अवस्था में प्राप्त किया था। इसका विश्लेषण इस प्रकार था––

नाइट्रोजन	४·५ से ६ प्रतिशत
फास्फरिक अम्ल	१० से १२ प्रतिशत
पोटाश	१·५ से ३ प्रतिशत

पाउडरेट खाद––विष्ठा को पर्याप्त सलफ्यूरिक अम्ल से उपचारित कर पाउडरेट तैयार करते हैं। यहाँ सलफ्यूरिक अम्ल से अमोनिया का स्थिरीकरण हो जाता है। कभी-कभी उसमें घास भी मिला देते हैं। घास से खाद की भौतिक दशा सुधर जाती है। उसे फिर निर्वात में उद्वाष्पित कर पूर्ण रूप से सुखा देते हैं। सूख जाने पर उसे पीसते हैं। ऐसी खाद का विश्लेषण निम्नलिखित है––

जल	१३·९ प्रतिशत
कार्बनिक पदार्थ	६३·७ प्रतिशत
नाइट्रोजन	६·७४ प्रतिशत
फास्फरिक अम्ल	३·१२ प्रतिशत
पोटाश	२·१६ प्रतिशत
अविलेय राख	३·४५ प्रतिशत

कम्पोस्ट––आजकल अनेक नगरों की नगरपालिकाएँ नगर की विष्ठा और कूड़ा-करकट से कम्पोस्ट तैयार करती हैं। मद्रास में एक भाग विष्ठा में ४ भाग कूड़ा-करकट मिलाकर इन्दौर-रीति से कम्पोस्ट तैयार करते हैं। ऐसे कम्पोस्ट में नाइट्रोजन ०·४० प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल १·०० प्रतिशत और पोटाश ०·९८ प्रतिशत रहते हैं। कम्पोस्ट ३ से ८ सप्ताह में तैयार होता है। कम या अधिक समय का लगना कूड़ा-करकट की मात्रा पर और जल तथा वायु के नियंत्रण पर निर्भर करता है।

सुब्रह्मण्यम ने बंगलोर में जो प्रयोग किये हैं उनसे पता लगता है कि नगर के सब प्रकार के कूड़ा-करकट और तरलीभूत विष्ठा के उपयोग से दो मास में अच्छा कम्पोस्ट

तैयार हो सकता है। ऐसा तैयार कम्पोस्ट गोबर की खाद से अच्छा होता है। पैदावार गोबर की खाद से सदा बढ़ी हुई पायी गयी है।

विष्ठा का अवशेष परिणाम

ऐसा कहा जाता है कि विष्ठा का प्रभाव कई वर्षों तक होता रहता है। इस सम्बन्ध में सूरत में १२ वर्षों तक प्रयोग हुए हैं। खेतों में बारी-बारी से कपास और ज्वार उगा कर उससे गोबर की खाद और विष्ठा की खाद के अवशेष परिणामों की तुलना की गयी है। खादों का उपयोग एक बार १९०४–०५ में हुआ। प्रति एकड़ ८४½ गाड़ी विष्ठा की खाद एक खेत में और ४० गाड़ी गोबर की खाद दूसरे खेत में डाली गयी थी। उसके परिणाम निम्नलिखित हैं—

विष्ठा और गोबर की खाद का कपास और ज्वार पर अवशेष परिणाम

पैदावार पौण्ड में दी गयी है

वर्ष	विष्ठा का खेत			गोबर-खाद का खेत		
	ज्वार	पयाल	बीज समेत कपास	ज्वार	पयाल	बीज समेत कपास
१९०४–०५	२७२३	७८८८	—	२१५६	६५३७	—
१९०५–०६	—	—	५२	—	—	१६१
१९०६–०७	१२२०	३९६४	—	९३१	१८७६	—
१९०७–०८	—	—	८९८	—	—	६३८
१९०८–०९	१५६९	३०५२	—	७६९	१४८४	—
१९०९–१०	—	—	७८९	—	—	४६५
१९१०–११	१४२०	२८७६	—	१०६७	१८१३	—
१९११–१२	—	—	५१	—	—	५२
१९१२–१३	५८८	१६३५	—	७६७	१७६७	—
१९१३–१४	—	—	५९१	—	—	३२३
१९१४–१५	९९२	१९६१	—	८५६	१३८०	—
१९१५–१६	—	—	९९२	—	—	८५६
६ वर्ष का औसत	१४१८	३५६२	५६२	१०९१	२४७६	४१६

इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि गोबर की खाद की अपेक्षा विष्ठा का अवशेष परिणाम बहुत अधिक होता है।

पनाले का पानी

जैसे-जैसे बड़े-बड़े नगर बसने लगे और नगरवासियों की संख्या बढ़ने लगी, उनके मल-मूत्र से छुटकारा पाने की समस्या खड़ी हुई। जहाँ लाखों मनुष्य रहते हैं वहाँ उनके मल-मूत्र को क्या किया जाय, यह एक विकट समस्या सामने आयी और इसे हल करने का प्रयास शुरू हुआ।

ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन काल में भारत में कुछ वर्षों तक एक गाँव में रहने के बाद लोग उस गाँव को छोड़कर दूसरे स्थान में चले जाते थे। इससे कुछ हद तक मल-मूत्र की समस्या सुलझ जाती थी। प्राकृतिक साधनों से, परित्यक्त गांव की कुछ दिनों में सफाई हो जाती थी। ऐसे गाँव की मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा पर्याप्त पायी जाती थी और जमीन उपजाऊ होती थी।

जैसे-जैसे समय बढ़ता गया, मल-मूत्र को पानी द्वारा बहाकर दूर करने का प्रयत्न शुरू हुआ और इसके लिए नालियाँ बनीं। नालियाँ पहले खुली रहती थीं। ऐसी नालियों से मच्छर-मक्खियों की वृद्धि होती थी। फिर बन्द नालियाँ बनीं और पीछे नल लगे। इन नालियों अथवा नलों के द्वारा पानी बहाकर नगर या गाँव के बाहर ले जाया जाता था और वहाँ छोड़ दिया जाता था। जिस स्थान पर ऐसा पानी छोड़ दिया जाता था वहाँ सड़न होती थी और दुर्गंध निकलती थी। इस आपत्ति से बचने के लिए प्रयास शुरू हुआ और आज यह समस्या पाश्चात्य देशों में तो बिल्कुल सुलझ गयी है, पर भारत में अभी इसके सुलझाने का प्रयास हो रहा है। अनेक बड़े-बड़े नगरों में यह सुलझ भी गयी है।

इंजीनियरों का काम है कि पनाले के पानी को निर्दोष बनाने का उपाय बतायें। उसे ऐसे रूप में परिणत करें कि उससे कोई नुकसान न हो और न उससे कोई अरुचिकर और अस्वास्थ्यकर गन्ध निकले। पर प्रत्येक मनुष्य को यह देखना आवश्यक है कि उससे मनुष्य को कोई हानि तो नहीं होती। यदि वह किसी उपयोगी पदार्थ में परिणत किया जा सके तो और अच्छा होगा। यह देखा गया है कि पनाले के पानी में फसलों की पैदावार बढ़ाने की क्षमता है। इससे कृषकों के लिए पनाले का पानी आज बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है।

पनाले के पानी का उपयोग किया जा सके, इसके लिए इसके विद्यमान पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है। पनाले के पानी में निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते हैं।

१. **कुछ घुले हुए पदार्थ**—ये पदार्थ प्रधानतया मूत्र से आते हैं। इनमें नाइट्रोजनीय पदार्थ, यूरिया या इसी प्रकार के अन्य पदार्थ रहते हैं। नमक और फास्फेट के सदृश कुछ खनिज लवण भी घुले रहते हैं।

२. **कुछ निलम्बित पदार्थ, पायस या कलिल विलयन**—ये प्रधानतया पेचीले नाइट्रोजनीय और गन्धकवाले पदार्थ होते हैं। ये प्रधानतया विष्ठा से आते हैं। सेल्यूलोस और औद्भिदी-कण, साबुन और वसा भी कुछ रहते हैं।

३. **तलछट पदार्थ**, मिट्टी, बालू और साद (Silt) आदि।

इन तीनों प्रकार के पदार्थों के बीच स्पष्ट विभाजन कुछ कठिन है। कुछ साबुन घुला हुआ रहता है और कुछ निलम्बित। कुछ तलछट लटका हुआ रहता है और कुछ नीचे बैठ जाता है। साधारणतया जहाँ पानी की कल है वहाँ हर एक व्यक्ति प्राय: २० गैलन पानी प्रति दिन खर्च करता है। जहां जल-कल नहीं है वहाँ पानी का उपयोग कुछ कम होता है।

यदि जीवाणुओं के द्वारा इस पानी के पूर्णरूप से शोधन की चेष्टा की जाय तो उससे निम्नलिखित पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं :—

१. **गैसें**—गैसों में मेथेन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और कार्बन डाइ-आक्साइड रहती हैं।

२. **विलेय लवण**—विलेय लवणों में नाइट्रेट, फास्फेट, सल्फेट और क्लोराइड रहते हैं।

३. **विलेय अवशेष**—इसमें 'ह्यूमस' रहता है। ह्यूमस के संगठन का पूरा-पूरा ज्ञान हमें अभी नहीं है। ह्यूमस के साथ-साथ कुछ कार्बनिक पदार्थ भी इसमें रहते हैं।

पनाले के पानी का उपचार

तनुता द्वारा—पनाले के पानी को यदि वायु की उपस्थिति में जीवाणुओं द्वारा उपचित किया जाय तो उससे ह्यूमस के कुछ भूरे रंग के कण और कुछ कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है। यहाँ कोई हानिकारक या दुर्गंधवाली गैस नहीं बनती। इनका बनना तभी सम्भव होता है जब पर्याप्त आक्सिजन वायु के रूप में मौजूद हो। यहाँ उपचयन पूर्ण रूप से वातापेक्षी दशाओं में होता है। यह तभी सम्भव है जब पनाले के पानी को और पानी के साथ मिलाया जाय, जिसमें पर्याप्त मात्रा में आक्सिजन घुला हुआ है। इस विषय पर एडेने (Adeney) ने व्यापक अनुसन्धान किया है—और उसके परिणामों को उन्होंने पुस्तिका रूप में प्रकाशित किया है जिसका शीर्षक है, "The Dilution Method of Sewage Disposal".

इन परिणामों को समझने के लिए जल में आक्सिजन की विलेयता का ज्ञान आवश्यक है। आक्सिजन जल में बड़ा अल्प विलेय है। समुद्र-जल में तो यह और भी अल्प विलेय है। २०° से० पर वायुमण्डल के दबाव पर १००,००० घ० से० ताज़े पानी में आक्सिजन का केवल एक ग्राम घुलता है और इसी ताप तथा दबाव पर इतने ही समुद्रजल में आक्सिजन का केवल ०.८ ग्राम घुलता है। यदि जल में संवातन किया जाय तो जल को आक्सिजन से संतृप्त रखा जा सकता है। ताज़े और समुद्र-जल का वातन निम्नलिखित पाँच कारणों पर निर्भर करता है—

१. वायु में खुला हुआ जल का तल,
२. वायु और जल का ताप,
३. वायु की आर्द्रता,
४. जल की लवणता,
५. वायु का वेग, जिससे खुले तल का क्षेत्र बढ़ जाता और प्रति इकाई क्षेत्र का वाष्पन बढ़ जाता है।

यदि उपर्युक्त कारण अनुकूल हों तो वातन से पानी के पदार्थों का उपचयन शीघ्रता से होता है। जल में विद्यमान अपेक्षया बड़े-बड़े जीवों के द्वारा निलम्बित अथवा कलिल पदार्थ भी आक्रान्त हो जाते हैं और उनके उपचयन में आक्सिजन की मात्रा अपेक्षया कम खर्च होती है।

ऐसे बड़े-बड़े जीवों में नीचे लिखे पदार्थ रहते हैं—

१. **"प्लैंक्टन"** (plankton)—ये सेवार (algae), प्रोटोज़ोया और क्रुसटेसी सदृश सूक्ष्माणु होते हैं जो जल में बहते रहते हैं।

२. **"बेन्थोस"** (benthos)—ये ऐसे जन्तु हैं जो पानी के पेंदे में रहते हैं।

३. **"नेक्टन"** (nekton) ये मछलियां और पानी के अन्य जीव हैं।

मछलियाँ प्लैंक्टन खाती हैं। प्रोटोज़ोया बैक्टीरिया खाते हैं। मछलियों में विलेय नाइट्रोजन फिर अविलेय रूप में आ जाता है और तब मनुष्य उसे प्रयुक्त कर सकता है।

पनाले के पानी को यदि उसके ५०० गुना (आयतन में) पानी में डालकर छोड़ दिया जाय तो वह बिल्कुल निर्दोष हो जाता है। पर यदि इतने पानी में डालना सम्भव न हो तो उसका कुछ प्रारम्भिक उपचार होना आवश्यक है। उपचार कैसा होना चाहिए यह बहुत कुछ किस पानी से और कितने पानी से वह हलका बनाया जाता है, उस पर निर्भर करता है। पनाले का पानी पूर्णतया निर्दोष हो जाय इसके लिए आवश्यक है कि ऐसे पानी के १००,००० घ० से० में निलम्बित पदार्थ की मात्रा ३ भाग से अधिक

नहीं रहनी चाहिए और २०° से० पर पाँच दिनों में १००,००० घ० से० पानी २ ग्राम से अधिक घुले हुए आक्सिजन को नहीं ग्रहण करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में अनेक इंजीनियरों ने अनेक नगरों के पनाले के पानी से व्यापक खोजें की हैं और उनके परिणाम पुस्तिका रूप में प्रकाशित हुए हैं। इस विषय पर जर्मनी के रूर नदी के पानी से भी प्रयोग हुए हैं। नगर का पानी नदी में बहाने के पहले अनेक निथारक टंकियों में ले जाया जाता है और अन्त में नदी में बहाने के पूर्व यह एक बड़ी टंकी में जाता है जहाँ उसका विश्लेषण कर उसकी जाँच कर ली जाती है। ये टंकियाँ बड़ी-बड़ी १०० से ५९० एकड़ क्षेत्र में बनी हुई हैं। पम्प द्वारा यह पानी ऊपर की टंकी में पम्प किया जाता है। वहाँ से पानी गिरकर बिजली उत्पन्न करता और वहाँ से बहकर एक झील में इकट्ठा होता है, जिसमें स्नान करने और नाव खेने के घाट बने हुए हैं और लोग उसमें विहार करते हैं।

टंकी उपचार

पनाले के पानी का टंकियों में उपचार होता है। वहाँ पानी का भारी निलम्बित पदार्थ पेंदे में बैठ जाता है। बैठने की प्रगति बहुत कुछ टंकी की प्रकृति, पानी के बहाव की गति और रासायनिक स्कंदक (coagulants) के व्यवहार पर निर्भर करता है। यहाँ नीचे लिखे क्रमों में पानी के अपद्रव्य निकलते हैं—

१. सरल अवसाद (sedimentation),
२. रासायनिक विमलीकरण (clarification),
३. वातनिरपेक्षी विघटन,
४. वातापेक्षी विघटन।

सरल अवसाद

पनाले के पानी के भारी पदार्थ—बालू, साद, कागज, साबुन आदि—नीचे बैठ जाते हैं और द्रव बहकर निकल जाता है। पानी के बहते रहने के कारण उसका कुछ पायसीकरण भी होता है। मूत्र के यूरिया का यहाँ अमोनिया-किण्वन भी होता है। यह कार्य किस सीमा तक होता है वह नाली की लम्बाई और नाली की प्रकृति पर निर्भर करता है। यदि नाली चिकनी है तो पानी जल्द बहकर टंकी में चला जाता, अन्यथा देर लगती और किण्वन अधिक होता है। टंकी तक पानी पहुँचने में किण्वन अधिक नहीं होता। ऐसे पानी से दुर्गंध नहीं निकलती। सरल अवसाद के लिए टंकी ऐसी होनी चाहिए कि पानी वहाँ अधिक काल तक न रहे, वहाँ केवल कुछ प्रारम्भिक विघटन ही हो।

टंकी में जो अवमल बैठे उसको शीघ्र ही हटा लेने का प्रबन्ध होना चाहिए ताकि उससे कोई दुर्गंध न पैदा हो। अवसाद को खाई में गाड़ देना चाहिए अथवा खेतों में बिछाकर मिट्टी में जोत देना चाहिए।

रासायनिक विमलीकरण

पनाले के पानी में कुछ रासायनिक द्रव्य डालकर उसका विमलीकरण किया जा सकता है। ऐसे रासायनिक द्रव्यों में एल्यूमिनियम सल्फेट (एल्यूमिनो-फेरिक सल्फेट), फेरिक सल्फेट अथवा फेरस सल्फेट और चूने का मिश्रण रह सकता है। रासायनिक द्रव्य का चुनाव उसके मूल्य पर निर्भर करता है।

आजकल बिना किसी रासायनिक द्रव्य के उपयोग के भी पानी का विमलीकरण हो सकता है। ये विधियाँ सजीव रासायनिक विधियां हैं। इन दोनों विधियों से अवमल प्राप्त होता है जिसका वर्णन आगे होगा। अवमल में नाइट्रोजन रहता है, अतः खाद के लिए इसका बड़ा महत्त्व है।
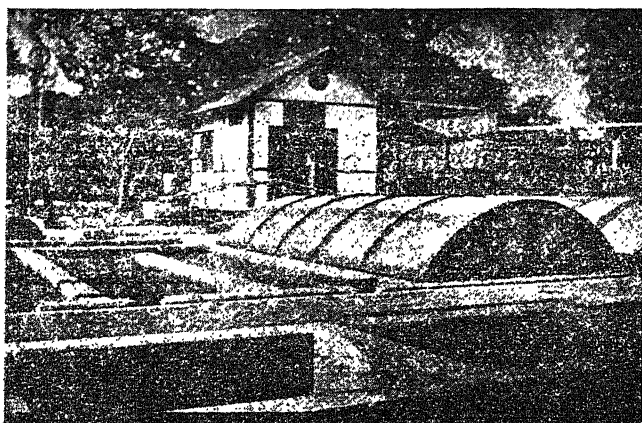
चित्र २८—बंबई के निकट माटुंगा में एक पनाले की टंकी

वात-निरपेक्षी विघटन

जिस टंकी में वात-निरपेक्षी विघटन होता है वह अपेक्षया बड़ी होती है। यह टंकी बन्द रहती है। बहते पाखाने की सेप्टिक टंकी में भी यही कार्य होता है। यहाँ भिन्न

भिन्न पदार्थों का विच्छेदन होता है। यहाँ सेल्यूलोस से प्रधानतया हाइड्रोजन और मेथेन बनते हैं। उप-जात के रूप में कार्बन डाइ-आक्साइड भी निकलता है। गैसों के निकलने से मालूम होता है कि यहाँ किण्वन होता है। सेल्यूलोस का किण्वन ३०° से० के ऊपर ताप पर सबसे अधिक होता है। अतः गरम देशों में सेप्टिक टंकी में अधिक सफलता मिली है।

बंबई के निकट माटुंगा में ऐसी टंकी बनी है जिसका चित्र पृ० २५७ पर दिया हुआ है। यहाँ टंकी गैस-रुद्ध लोहे के ढक्कन से ढँकी हुई है। गैसें टंकी से निकलकर गैस टंकी में जाती हैं। चूने द्वारा उसका कार्बन डाइ-आक्साइड निकाल लिया जाता है। ज्वलनशील हाइड्रोजन और मेथेन को जलाकर इंजन चलाया जाता है, जिससे पम्प चलता है और रोशनी होती तथा भोजन पकाया जाता है। चित्र में गैस-टंकी, चूना-शोधक और इंजिन-घर भी दिखलाये गये हैं। जलाकर रोशनी उत्पन्न करने और भोजन पकाने का प्रथम प्रयास इंग्लैण्ड में हुआ था। अब तो इसका उपयोग अमेरिका और जर्मनी में भी हो रहा है।

खाद की दृष्टि से पनाले के पानी का नाइट्रोजन नाइट्रोजन के रूप में तो नष्ट नहीं होता, पर अमोनिया-किण्वन होने के कारण अमोनिया के रूप में कुछ अवश्य नष्ट हो जाता है। इससे अवमल में नाइट्रोजन की मात्रा कुछ कम हो जाती है।

टंकी में वसा का विघटन भी होता है। वसा साबुन से तथा रसोई-घर के बरतनों से आती है। वसा विच्छेदित हो वसा-अम्ल और ग्लिसरीन बनते हैं। यह विघटन बैक्टीरिया और प्रकिण्व के द्वारा होता है।

वातापेक्षी विघटन

पनाले के पानी का वातापेक्षी विघटन भी हो सकता है। इसके प्रयोग पहले-पहल इंग्लैण्ड में हुए थे। वहाँ पनाले का पानी एक ऐसी टंकी में जाता है जिसमें कोक या जली हुई मिट्टी या कंकड़-पत्थर आदि भरे रहते हैं। पनाले का पानी इन टंकियों में भरता है। अविलेय और कलिल पदार्थ अधिकांश कोक या पत्थरों में जम जाते और द्रव बहकर पेंदे से निकल जाता है। कुछ घण्टे तक टंकी को खाली रखते हैं ताकि उसमें निक्षिप्त कार्बनिक पदार्थ उपचित हो जाय। उपचित हो जाने पर टंकी को फिर पानी से भरते हैं। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। ऐसी टंकी को 'वातापेक्षी' टंकी कहते हैं और यहाँ जो क्रिया होती है वह वातनिरपेक्षी टंकी से बिलकुल भिन्न होती है।

इस विधि में कठिनता है तो यही कि कोक, पत्थरों से निक्षेप को पूरा हटाना सरल नहीं है। कोक या कंकड़ पत्थरों के रन्ध्र वन्द हो जाते हैं और उन्हें साफ करना कठिन होता है। इस कठिनता का वहुत कुछ निवारण 'स्लेट पत्थर' के व्यवहार से हो जाता है।

मल-प्रवाह

नगरों में अव प्राय: वहते पाखाने बनते हैं। विष्ठा पानी द्वारा बहकर नालियों में जाती है। ये नालियाँ साधारणतया बन्द होती हैं। पानी के संघर्ष से मल कोलायड (कलिल) पायस बन जाता है। नालियों का यह पायस खाद के काम में आ सकता है।

पाश्चात्य देशों और अमेरिका में हर नगर में ऐसे ही पाखाने होते हैं और उनके लिए नालियाँ बनी रहती हैं। हमारे देश में अभी हर नगर में ऐसे पाखाने और नालियाँ नहीं हैं, कुछ बड़े-बड़े नगरों में ही हैं। जहाँ ऐसे पाखाने और नालियाँ हैं वहाँ मलवाले पानी का संग्रह होकर खाद के लिए उसका उपयोग हो सकता है।

ऐसी नालियों के पानी का सीधा उपयोग अधिक लाभप्रद नहीं होता। उसको उपचारित कर इस्तेमाल करना ही अच्छा और लाभप्रद होता है।

मल-प्रवाह में कोलायड पदार्थ रहते हैं। इनसे यांत्रिक रुकावटें हो सकती हैं। हटचिन्सन का मत है कि मल पर जीवाणुओं की क्रिया से मोम या पंक बनकर मिट्टी को ढँककर वायु-प्रवेश को रोक सकता है। इससे नाइट्रेट का बनना रुक जाता है। वातनिरपेक्षी जीवाणुओं का विकास होता है। ये उसमें उपस्थित नाइट्रेट की मात्रा को भी कम कर देते हैं।

ऐसे मल-प्रवाह में ठोस कण भी रह सकते हैं जिनसे हानि हो सकती है अथवा कीड़ों के द्वारा पौधों पर आक्रमण हो सकता है। ये पौधों के तने के साथ चिपककर पौधों को हानि पहुँचा सकते हैं।

इन कारणों से मल-प्रवाह को कुछ उपचारित करने के बाद ही प्रयुक्त करना ठीक है। इसके लिए आजकल 'सेप्टिक टैंक' का उपयोग होता है। इस विधि को "सक्रियित मल-प्रवाह विधि" (activated sludge process) कहते हैं। इस विधि में टंकियों की श्रेणियाँ होती हैं, जिनमें जीवाणुओं द्वारा तीव्र उपचयन (आक्सीकरण) होता है। इन टंकियों में जीवाणु भरे रहते हैं और वहाँ संवातन होता है। वायु की उपस्थिति में बैक्टीरिया (जीवाणु) अमोनिया का उपचयन करता है और अल्प काल में ही हानिकारक पदार्थ निर्दोष ह्यूमस में परिणत हो जाते हैं। ठोस पदार्थ नीचे

बैठ जाते हैं और स्वच्छ द्रव बाहर निकलता है। मल-प्रवाह एक किनारे से टंकी में प्रवेश कर दूसरे किनारे से निकल जाता है। जो द्रव बाहर निकलता है उसमें नाइट्रेट रहता है जिससे वह सिंचाई के काम में बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है।

स्लज

सेप्टिक टंकी में जो ठोस पदार्थ नीचे बैठ जाता है उसे अवमल ('स्लज') कहते हैं। इसमें नाइट्रोजन और फास्फरस दोनों रहते हैं। इससे खाद के रूप में इसका उपयोग बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है। इसका खाद-मान गोबर की खाद से अवश्य ही कम है। इसमें पोटाश की कमी रहती है।

मल-प्रवाह और अवमल दोनों के विश्लेषण हुए हैं। मल-प्रवाह की प्रकृति बिलकुल एक ही नहीं रहती, उसके अवयवों में अल्प अन्तर सदा ही पाया जाता है, पर यह अन्तर अधिक नहीं होता।

मल-प्रवाह और अवमल में जोशी द्वारा प्राप्त नाइट्रोजन और फास्फरस की मात्रा—

	१०,००० भाग में		
	समस्त नाइट्रोजन	नाइट्रेट नाइट्रोजन	समस्त फास्फरिक अम्ल
अनुपचारित मल-प्रवाह	५ · ३	० · ११	४ · ०९
भींगा सक्रियित अवमल (प्रवाह-द्रव के साथ)	१८ · ४	० · ७२	१२ · ७०
प्रवाह-द्रव	१ · ८५	० · ९५	० · ४०

खाद के रूप में मल-प्रवाह का मूल्य उसमें विद्यमान नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थों के कारण है। इसका अधिकांश फास्फरस भी उपलब्ध दशा में रहता है और कुछ मिट्टियों में फसल की पैदावार को बढ़ाता है। फास्फरस की कमीवाले खेतों में केवल अमोनियम सल्फेट, कम्पोस्ट अथवा खली के व्यवहार से पैदावार उतनी अधिक

नहीं होती जितनी मल-प्रवाह के व्यवहार से होती है। जिन खेतों की सिंचाई मल-प्रवाह से २० वर्षों तक हुई है उन खेतों की मिट्टी में फास्फरिक अम्ल का संचय छः इंच या इससे अधिक गहराई तक पाया गया है और वह ऐसे रूप में रहता है कि पौधे उसे ग्रहण कर सकते हैं। ऐसा फास्फरस कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों और अंशतः जल-विलेय रूपों में रहता है। कुछ वर्षों की ऐसी सिंचाई के बाद १२ इंच या इससे अधिक गहराई की मिट्टी में जल-विलेय फास्फेट पाया जाता है। पर अधिकांश जल-विलेय फास्फेट ६ इंच गहराई तक की मिट्टी में ही रहता और ऐसी मिट्टी विलेय फास्फेट से पूर्णतया संतृप्त रहती है।

मल-प्रवाह और अवमल का कृषि-मान

अनेक स्थानों में विभिन्न फसलों पर मल-प्रवाह और अवमल के प्रभाव के सम्बन्ध में अनुसन्धान हुए हैं। जमशेदपुर में मक्का, जई, सेम, पातगोभी और अन्य साग-सब्जियों पर प्रवाह-द्रव और अवमल दोनों के प्रभाव का अध्ययन हुआ है और उनसे मालूम होता है कि इनके उपयोग से पैदावार स्पष्टतया बढ़ जाती है। हरे चारे पर जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि एक टन सक्रियित अवमल के उपयोग से वैसा ही प्रभाव उत्पन्न होता है, जैसा ५० टन गोबर से अथवा २ टन अमोनियम सल्फेट से होता है।

ईख के खेत में प्रवाह-द्रव द्वारा सिंचाई और अवमल के उपयोग से भी पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है। अनुपचारित मल-प्रवाह से जो प्रयोग ईख पर लखनऊ में हुए हैं उनसे ईख की पैदावार तिगुनी बढ़ी हुई पायी गयी है। मद्रास में धान की खेती में प्रवाह-द्रव के उपयोग से अनाज में ३ प्रतिशत और पयाल में ४० प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है। ये आँकड़े उस खेत की पैदावार की तुलना से पाये गये हैं जिसकी सिंचाई नहर के पानी से हुई है।

अमेरिका में बार्टलो और हैटफील्ड द्वारा इस सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि सूखा रक्त, सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट के नाइट्रोजन की अपेक्षा अवमल का नाइट्रोजन अधिक प्रभावशाली होता है। नास्मिथ और मक्के द्वारा टमाटर और प्याज पर जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि गोबर खाद के व्यवहार से जितनी पैदावार होती है, उससे तिगुनी से पाँचगुनी अधिक पैदावार अवमल के व्यवहार से होती है।

विष्ठा, गोबर और मल-प्रवाह खादों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है और उसके परिणाम निम्नलिखित हैं—

	पूना		कराची	इन्दौर	
	विष्ठा, गोबर खाद		मल-प्रवाह	विष्ठा, गोबर खाद	
	प्रति एकड़	२५ टन			
ईख	८७५२ पौंड	८३०४ पौंड			
गिनी घास	३९९०० ,,	२८५३२ ,,	२२०,००० पौंड		
अल्फाल्फा	९६१८० ,,	७४६२० ,,	१५०,००० पौंड		
नील वा ज्वार	४२०५६ ,,	२५६४८ ,,			
बीज कपास				८९९ पौंड	५१३ पौंड
ज्वार अनाज				१२२२ पौंड	९३७ पौंड
ज्वार, डंठल और पत्ता				३६५६ पौंड	६३१ पौंड

तेरहवाँ अध्याय

अन्य कार्बनिक खाद

समुद्र-घास, जल-घास, छोआ, साद

समुद्र में भी घासें उगती हैं। ये घासें अनेक दृष्टियों से महत्त्व की हैं। इनसे अनेक उपयोगी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। खाद के रूप में इनका उपयोग बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। रोमन लोग इनका व्यवहार करते थे। अनेक देशों, स्काटलैण्ड, इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड, स्वीडन और जापान में तथा अनेक द्वीपों, जरसी और थानेएट में, आज भी इनका उपयोग होता है। भारत के समुद्र-तटों पर भी खाद के लिए इनका उपयोग होता है।

खाद के रूप में समुद्र-घास का महत्त्व इसके पोटाश के कारण है। इसमें फास्फरस भी रहता है। समुद्र-घासें कई प्रकार की होती हैं। विभिन्न घासों में विभिन्न अवयवों की मात्रा एक नहीं रहती। साधारणतया जल की मात्रा ५८ से लेकर ८८ प्रतिशत, औसत ७० से ८० प्रतिशत, पोटाश की मात्रा ०.१६ से लेकर १.४५ प्रतिशत, नाइट्रोजन की मात्रा ०.१७ से लेकर १.०८ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल की मात्रा ०.०५ से लेकर ०.२२ प्रतिशत, चूने की मात्रा ०.३७ से लेकर ५.११ प्रतिशत और मैगनीशिया की मात्रा ०.०९ से लेकर ०.६९ प्रतिशत रहती है। समुद्र-घासों में लैमिनेरिया सैक्कैरिना और फ्यूकस वेसिक्यूलोसम (Laminaria, saccharina and Fucus Vesiculosum) अधिक व्यापक पायी जाती हैं। उनमें विभिन्न अवयव इस प्रकार पाये जाते हैं—

समुद्र-घास का संगठन (प्रतिशतता में)

ताजा समुद्र घास	जल	कार्बनिक पदार्थ	नाइट्रोजन	पोटाश	फास्फरिक अम्ल	चूना
लैमिनेरिया सैक्केरिना	७९	१६	०.१८	१.५	०.०५	०.३९
फ्यूकस वेसिक्यूलोसम	७६	२२	०.३८	०.७	०.१२	०.४५

समुद्र-घास का उपयोग हरी खाद के रूप में भी कहीं-कहीं हुआ है। पर ऐसा समुद्र तट के आसपास ही हो सकता है। अनेक देशों में इसका कम्पोस्ट भी तैयार हुआ है। कम्पोस्ट के लिए ६ से ८ इंच मोटे घास के स्तर पर चूने का पतला स्तर देकर ढेर लगाते हैं। ढेर को समय-समय पर उलटते रहते हैं। २ से ३ मास में घास सड़कर खाद बन जाती है। गोबर के साथ भी कम्पोस्ट तैयार हो सकता है। ढेर को पानी से तर रखना बहुत आवश्यक है। इससे अमोनिया का निकलकर नष्ट होना बचाया जा सकता है।

समुद्र-घास मिट्टी में बड़ी जल्दी सड़ जाती है, अतः इसका प्रभाव फसलों पर शीघ्र पड़ता है। चारे के लिए खेतों में यह ऊपर से डाली जा सकती है। अन्य फसलों के लिए खेत जोतने के पहले घास को डालकर जोत देना चाहिए ताकि जोतने से वह मिट्टी में पूर्ण रूप से मिल जाय।

समुद्र-घास को जलाकर उसकी राख प्राप्त की जा सकती है। राख में पोटाश की मात्रा १५ से २५ प्रतिशत रहती है। प्रथम विश्वयुद्ध के समय जब जर्मनी के निक्षेप से पोटाश लवणों का मिलना असम्भव हो गया था, तब इसी की राख से पोटाश लवण प्राप्त होते थे। घास घूर्णक भट्ठी में सुखाकर जलायी जाती थी। इसकी राख पोटाश खाद के लिए प्रयुक्त होती थी। पोटाश के सिवा राख में आयोडीन भी रहता है। अनेक वर्षों तक इसी स्रोत से आयोडीन प्राप्त होता था। आज अन्य स्रोतों से भी आयोडीन प्राप्त हो रहा है। इस राख में कुछ नमक भी रहता है। चुकन्दर और मैन्गोल्ड (mangolds) सदृश फसलों के लिए यह राख अच्छी खाद है। पर नमक के कारण कुछ फसलों के लिए यह हानिकारक होती है।

समुद्र-घास की खाद उतनी ही अच्छी होती है जितनी गोबर की खाद; गोबर की खाद से इस बात में उत्तम है कि इसमें न कोई बीज रहता और न रोगों के कीटाणु रहते हैं। इसका कम्पोस्ट भी वैसा ही अच्छा होता है। इसकी खाद में फास्फरस की कमी रहती है, अतः इस खाद के साथ हड्डी का चूरा, बेसिग स्लैग अथवा अन्य फास्फेटों को मिलाकर इस्तेमाल करना अच्छा होता है।

इस खाद के व्यवहार से आलू की पैदावार अच्छी होती है। केला के लिए यह अच्छी समझी जाती है। बलुआर मिट्टी के लिए समुद्र-घास की खाद अच्छी होती है क्योंकि गोबर की खाद के सदृश इसमें तन्तु नहीं रहते अथवा बहुत कम रहते हैं।

जल-घास

जल-घास को जल-नीलारुणा या 'वाटर हाइसिन्थ' भी कहते हैं। इसके फूल नीलारुण होते हैं, इसी से इसे जल-नीलारुणा कहते हैं। बिहार और पूर्वी उत्तर

प्रदेश में व्यापक रूप से यह घास तालाबों, पोखरों और गड्ढों के जल में पायी जाती है। जहाँ उपलब्ध हो खाद के रूप में इसका उपयोग हो सकता है। जल-नीलारुणा में पौधों के सब पोषक तत्त्व विद्यमान रहते हैं, पोटाश की मात्रा विशेष रूप से पायी जाती है। यदि नीलारुणा को सड़ाकर खाद बनायी जाय तो उसमें पोटाश और नाइट्रोजन की मात्रा गोबर की खाद से अधिक रहती है। पोटाश की मात्रा गोबर की खाद में पोटाश की मात्रा से पाँच गुनी अधिक रहती है। उसके विश्लेषण के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं—

जल-नीलारुणा का संगठन

जलनीलारुणा (eichornia crassipes)	कार्बनिक पदार्थ	नाइट्रोजन	फास्फरिक अम्ल	पोटाश
सामान्य कद	२७·९५	०·४५	०·३२	२·५२
बड़ा कद	२७·९५	०·६०	०·२३	२·६१

नीलारुणा में सूखा पदार्थ २० प्रतिशत के लगभग रहता है। खाद की दृष्टि से यह उतनी ही अच्छी है जितनी समुद्र-घास। सड़ी हुई नीलारुणा अथवा इसकी राख इस्तेमाल हो सकती है। नीलारुणा का कम्पोस्ट भी तैयार हो सकता है। ऐसे कम्पोस्ट के प्रति एकड़ १० टन के उपयोग से बरमा में धान की पैदावार अच्छी प्राप्त हुई है। इसका अवशिष्ट प्रभाव एक वर्ष तक रहता है।

खाद बनाने के लिए ताजे पौधों को संग्रह कर सड़ने के लिए छोड़ देते हैं। ऐसे संग्रह से कुछ द्रव बहकर निकल जाता और उससे पोषक तत्त्व का कुछ अंश नष्ट हो जाता है। इसे रोकने के लिए पौधों को कुछ दिन सुखाकर तब सड़ने के लिए इकट्ठा करते हैं अथवा एक स्तर सूखे पौधे का और दूसरा स्तर ताजे पौधे का रखते हैं।

नीलारुणा से मिट्टी को कार्बनिक पदार्थ भी प्राप्त होता है। जिस मिट्टी में संकर्षण के कारण चूना, पोटाश और फास्फरस की कमी हो गयी हो उस मिट्टी के लिए यह अच्छी खाद सिद्ध हुई है। इस खाद से वैसा ही अच्छा परिणाम प्राप्त होता है जैसा गोबर की खाद से प्राप्त होता है। मद्रास में धान की खेती में इससे अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ है। अन्य फसलों पर भी इससे अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

छोआ

छोआ को चोया या चोटा भी कहते हैं। भारत में चीनी के कारखानों के कारण बड़ी मात्रा में छोआ प्राप्त होता है। प्रयाग के डा० धर ने खाद के लिए छोआ की उपयोगिता पर अनेक प्रयोग किये हैं। उन प्रयोगों से उन्होंने सिद्ध किया है कि पोटाश संभरण के लिए छोआ अच्छी खाद है। इसमें नाइट्रोजन की मात्रा अधिक नहीं रहती। छोआ के विश्लेषण के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं—

भारतीय छोआ का विश्लेषण

	गंधकीकरण छोआ प्रतिशत	कार्बनीकरण छोआ प्रतिशत
ठोस पदार्थ	७७·८ से ८३·८	७७·६ से ८२·६
जल	१६·२ से २२·७	१७·७ से २२·४
चीनी	३३·६ से ३८·६	३०·३ से ३६·२
अन्य कार्बनिक पदार्थ	११·५ से १८·७	११·१ से २२·८
राख	९·८ से १२·८	७·० से १४·८
राख-अविलेय और सिलिका	०·३ से ०·८	०·२ से ०·५
लोहा और अलुमिना	०·२ से ०·५	०·१६ से ३·२
चूना	१·३ से २·५	०·८ से १·५
मैगनीशिया	०·२८से ०·५	०·४६ से ०·६५
पोटाश	३·७ से ४·९	२·९ से ४·९
फास्फरिक अम्ल	०·२४से ०·४८	०·१८ से ०·२८
गन्धकाम्ल	१·८ से २·२२	१·२७ से १·६०
समस्त नाइट्रोजन	०·२ से ०·३	०·१६ से ०·१८

उपर्युक्त आँकड़ों से पता लगता है कि छोआ में राख की मात्रा ७ से १५ प्रतिशत रहती है। गुड़ से प्राप्त छोआ में राख कुछ अधिक रहती है। छोआ में पोटाश की मात्रा ३ से ५ प्रतिशत रहती है। छोआ से पोटाश, नाइट्रोजन और चूने के अतिरिक्त पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ भी मिट्टी को प्राप्त होता है।

छोआ को खाद के रूप में प्रयुक्त करने के अनेक प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न फसलों पर हुए हैं। इसके उपयोग से पैदावार निश्चित रूप से बढ़ जाती है। प्रति

एकड़ ५० से ५०० मन छोआ पानी के साथ हल्का बनाकर उपयोग करनेसे धान की पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। उत्तर प्रदेश के नगीना में धान के पौधे बोने के तीन सप्ताह पहले खेतों में उसे डालने से फसल अच्छी उगती है। बिहार के सबौर में भी छोआ का उपयोग हुआ है। वहाँ छोआ अकेले अथवा अमोनियम सल्फेट के साथ-साथ खेतों में डाला गया है। बिना छोआवाले खेत की पैदावार से इसकी तुलना की गयी है। एक खेत में केवल २० पौण्ड नाइट्रोजन का छोआ डाला गया था। दूसरे खेत में १० पौण्ड नाइट्रोजन का छोआ और १० पौण्ड नाइट्रोजन का अमोनियम सल्फेट डाला गया था। ऐसे दोनों खेतों की पैदावार में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं देखा गया, पर उस खेत से पैदावार अवश्य ही अधिक थी जिस खेत में छोआ नहीं डाला गया था। इससे मालूम होता है कि केवल छोआ के व्यवहार से अच्छा परिणाम प्राप्त हो सकता है।

शाहजहाँपुर के सरकारी कृषि-फार्मों में ईख पर जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि ईख बोने के पहले यदि खेतों में छोआ डाला जाय तो पैदावार ३६ प्रतिशत बढ़ जाती है, पर यदि ईख बो जाने के बाद खेतों में डाला जाय तो उससे कोई वृद्धि नहीं होती। मद्रास में छोआ के उपयोग से ईख की पैदावार में ४० प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है। जावा में प्रति एकड़ १६०० गैलन की दर से छोआ डालने से ईख की पैदावार में ४३ प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है।

मद्रास में धान के खेतों में छोआ के उपयोग से कोई विशेष लाभ नहीं पाया गया है। इसका अवशिष्ट प्रभाव भी विशेष नहीं होता। कुछ अन्य लोगों ने भी छोआ के उपयोग से कोई विशेष लाभ नहीं देखा है।

छोआ का व्यवहार

यदि मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने के लिए छोआ का उपयोग करना है तो उसके उपयोग की विधि यह है—

१. छोआ को पानी के साथ मिलाकर उपयोग करना चाहिए। प्रति एकड़ ५० से ५०० मन तक छोआ इस्तेमाल हो सकता है।

२. छोआ डालकर मिट्टी को जोतकर अथवा खोदकर मिला देना चाहिए। हर पखवारे एक बार ऐसा करना चाहिए। २ से २½ मास तक एसा करते रहना चाहिए। उसके बाद फसल बोना चाहिए। अच्छे परिणाम के लिए छोआ डालकर मिट्टी को बार-बार जोतना अथवा खोदना बड़ा आवश्यक है।

३. छोआ डालकर यदि हो सके तो खेतों को बारम्बार पटाना चाहिए।

डा० धर का मत है कि खेतों में छोआ डालने के प्राय: दो मास में अमोनियम सल्फेट की महत्तम मात्रा बनती है। उसके बाद अमोनिया का उपचयन और नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होकर नाइट्रेट बनता है। तब नाइट्रेट की मात्रा बढ़ती है। इस समय समस्त नाइट्रोजन की मात्रा में कमी होती है। कार्बन-नाइट्रोजन का अनुपात ११ : १ होता है। जिस समय नाइट्रेट की मात्रा बढ़नी शुरू हो, उसी समय खेतों में फसल बोना अच्छा है। ऐसी अवस्था प्राय: तभी पहुँचती है जब छोआ की मात्रा कम हो। छोआ की मात्रा अधिक होने से नाइट्रेट की मात्रा बढ़ने की अवस्था कुछ देर में पहुँचती है।

सबसे उत्तम परिणाम तो तब प्राप्त होता है जब प्रति एकड़ ३०० मन छोआ डाला जाय और छोआ डालने के तीन मास बाद खेतों में फसल बोयी जाय। इस बीच मास में एक बार खेत को जोतकर मिट्टी ऊपर नीचे कर लेनी चाहिए। यदि छोआ की मात्रा कम, प्रति एकड़ १०० से २०० मन है तो खेत को बारबार जोतकर छोआ डालने के ८ से १२ हफ्ते के अन्तराल पर फसल बोयी जा सकती है।

यदि मिट्टी कुछ गीली हो तो छोआ का विघटन जल्दी होता है। कुछ ही दिनों में समस्त चीनी का विघटन हो जाता है। चीनी के विघटन से कुछ गैसें, प्रधानतया कार्बन डाइ-आक्साइड, हाइड्रोजन और मेथेन निकलती हैं और कुछ वाष्पशील पदार्थ, एथिल एसिटेट, एसिटल्डीहाइड, एसिटिक, प्रोपियोनिक, ब्युटिरिक और लैक्टिक अम्ल सदृश अम्ल बनते हैं। अम्लों की मात्रा पर्याप्त रहती है।

छोआ डालने के बाद कुछ खनिज लवण, जो पौधों के लिए विषाक्त होते हैं, घुल जाते हैं। ऐसे लवणों में फेरस लोहा और एल्यूमिनियम के लवण हैं। लगभग एक मास के बाद या तो वे अवक्षिप्त हो जाते अथवा घुलकर निकल जाते हैं। अम्लों के कारण कैलसियम और पोटेसियम के लवण घुल जाते हैं। लवण कितना और किस दशा में घुलता है; इसका अध्ययन अनेक लोगों ने, विशेषत: सुन्दर अयंगार, सुब्रह्मण्यम और नरसिंहमूर्ति ने किया है। क्षारीय मिट्टी में इन लवणों की अल्प मात्रा ही घुलती है। अन्य मिट्टियों में प्राय: एक मास तक ये लवण तल पर रहते हैं। उसके वाद लोहा उपचित हो फेरिक आक्साइड बनता और कुछ कार्बोनेट, सल्फाइड या फास्फेट के रूप में अवक्षिप्त हो जाता है।

छोआ से नाइट्रोजन का कुछ स्थिरीकरण होता है पर कार्बनिक पदार्थ बहुत कुछ नष्ट हो जाते हैं। यदि छोआ का प्रारम्भिक किण्वन परिमित वायु में किया जाय तो उससे चीनी का अधिकांश कार्बनिक अम्लों में परिणत हो जाता है जिसके कैलसियम लवणों के कारण वायु के नाइट्रोजन का स्थिरीकरण अधिकाधिक होता है।

मिट्टी पर छोआ का प्रभाव

छोआ से मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है और क्षारीयता घट जाती है। इससे मिट्टी का पी एच कम हो जाता है और सोडियम कार्बोनेट की मात्रा घट जाती है। जितना ही अधिक छोआ डाला जाय उतनी ही अधिक नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। नाइट्रोजन के बढ़ जाने से मटियार मिट्टी, चूनावाली मिट्टी और क्षारीय मिट्टी की उर्वरता उन्नत हो जाती है। धर का सुझाव है कि उत्तर प्रदेश की खारी मिट्टी का ऊसरपन छोआ से दूर किया जा सकता है। चीनी के विघटन से बने अम्ल-क्षारों की क्षारीयता का निराकरण कर ऊसरपन को दूर करते हैं।

छोआ डालने के दो या तीन मास तक चीनी का विघटन चलता रहता है। ऐसे समय में नाइट्रोजन-संयोजक जीवाणु शिथिल रहते हैं। जब विघटन समाप्त हो जाता है तब जीवाणु अधिक सक्रिय हो जाते हैं और नाइट्रेट अधिकाधिक मात्रा में बनता है। छोआ से मिट्टी की भौतिक दशा भी सुधर जाती है। मिट्टी के पोषक तत्त्व ऐसे रूपों में आ जाते हैं कि पौधे उन्हें अधिक प्रयुक्त कर सकें।

छोआ का हानिकारक प्रभाव

छोआ के व्यवहार से पौधे शुरू में पीले पड़ जाते हैं। इसका कारण यह है कि छोआ में कुछ ऐसे जीवाणु होते हैं जो कार्बोहाइड्रेट का विघटन करते हैं और साथ-साथ मिट्टी के नाइट्रेट का भी विनाश करते हैं। विघटन से उष्मा का निकास होता है जिससे पौधों की वृद्धि पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। ऐसा प्रारंभ में ही होता है। दो, तीन मास के बाद प्रभाव ठीक इसके प्रतिकूल पड़ता और हानिकारक प्रभाव दूर हो जाता तथा पौधे जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। यदि छोआ का उपयोग बड़ी मात्रा में हो तो पौधे उससे मर भी सकते हैं।

साद

नदी और नहरों के पानी में मिट्टी मिली रहती है। बरसात के दिनों में मिट्टी की मात्रा बढ़ जाती है। यह पानी जब कुछ स्थिर हो जाता है तब उसकी मिट्टी नीचे तल में बैठ जाती है। ऐसी तल में बैठी हुई मिट्टी को साद (silt) कहते हैं। ताल, तालाब और पोखरे में भी साद होता है।

कभी-कभी बरसात के दिनों में नदी का पानी खेतों में भी आ जाता है। पानी के साथ मिट्टी भी आती है और धरती पर जम जाती है। किसी-किसी नदी के पानी से प्राप्त साद बड़ा उपजाऊ होता है। ऐसे साद से मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है।

कुछ नदियों के साद से मिट्टी की उर्वरता नहीं बढ़ती और कुछ के साद से तो मिट्टी ऊसर हो जाती है।

कहीं-कहीं किसान साद को खेतों में डालकर खेतों की उर्वरता को बढ़ाते हैं। जमुना नहर के बरसात के पानी के साद का लेदर ने विश्लेषण कर देखा है कि ऐसे साद के एक एकड़ में ३२ पौण्ड नाइट्रोजन और ४१ पौण्ड फास्फरिक अम्ल रहते हैं। अमेरिका की कुछ नदियों के साद का भी विश्लेषण हुआ है और उसमें नाइट्रोजन, पोटाश और फास्फरिक अम्ल पर्याप्त मात्रा में पाये गये हैं। नील नदी के साद में कोई ऐसी चीज नहीं पायी गयी है जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाये। वहाँ के लोगों का साधारण विश्वास है कि नील नदी की बाढ़ के पानी से उर्वरता बढ़ जाती है। यह ठीक नहीं है। सम्भवतः धरती को गरमी के दिनों में परती रख छोड़ने से ही उर्वरता बढ़ जाती है।

सिन्ध नदी के साद का भी ताम्हने और अयंगार द्वारा अध्ययन हुआ है। ऐसे साद के ३ इंच स्तर को धरती पर फैला देने से उस धरती के गेहूँ की पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है। बंगाल, उत्तर बिहार और आसाम की मिट्टी की उर्वरता का कारण भी नदी के साद को ही बताया जाता है। कोसी नदी के साद में भी उर्वरता रहती है। कोसी पर बाँध बँध जाने से खेतों को साद न प्राप्त होने से उर्वरता रहेगी कि कम हो जायगी यह बात संदिग्ध है। सम्भवतः उर्वरता कायम रखने के लिए अब उर्वरक के इस्तेमाल की आवश्यकता पड़ेगी।

मछली और केकड़ा आदि

खाद के रूप में मछली का उपयोग बहुत प्राचीन है। समुद्र तटवासी बराबर खाद के लिए इसका उपयोग करते आ रहे हैं। इंग्लैण्ड, नारवे, जापान आदि सब देशों में इसका उपयोग होता है। भारत में भी विशेषतः पूर्वी और पच्छिमी समुद्र-तटों पर इसका उपयोग बहुत काल से होता आ रहा है। अमेरिका के आदिवासी भी इसका उपयोग करते थे। बड़े पैमाने पर मछली से खाद तैयार करने का कारखाना पहले-पहल नारवे में खुला था। आज भी बड़ी मात्रा में खाद के लिए मछलियाँ वहाँ पकड़ी जाती हैं। काड मछलियाँ नारवे में बहुत होती हैं। उनके तेल निकाल लेने पर जो अवशिष्ट अंश बच जाता है उसी से खाद तैयार करते हैं। आज अनेक कारखाने ऐसी खाद तैयार करते हैं। इंग्लैण्ड की अनेक काउण्टियों में भी खाद के लिए मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

मछली की खाद विशेष रूप से उन मछलियों से बनती है जो खायी नहीं जातीं अथवा मछली के उन अंशों से तैयार होती है जो मछली के खानेवाले अंश के निकाल

लेने पर बच जाता है। मछली के तेल का व्यापार भी बहुत व्यापक है। तेल निकाल लेने पर जो अंश बच जाता है उससे भी खाद तैयार होती है।

व्हेल मछली

ह्वेल मछली खायी नहीं जाती। ताजी व्हेल मछली में जल प्रायः ४४ प्रतिशत, चर्वी २३ प्रतिशत, मांस ३५ प्रतिशत और राख १ प्रतिशत रहती है। इसकी हड्डी में जल ३·८४ प्रतिशत, चर्बी १·३ प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ ३४·६ प्रतिशत, नाइट्रोजन ३·५ प्रतिशत और राख ६०·२ प्रतिशत रहती है। हड्डी से बनी खाद में नाइट्रोजन ४ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल २१ प्रतिशत रहता है। बिना सूखी ह्वेल में नाइट्रोजन प्रायः ४·८ प्रतिशत और सूखी व्हेल में नाइट्रोजन ८·७ प्रतिशत रहता है।

ह्वेल में अधिक चर्बी रहने के कारण खाद बनाने में कठिनता होती है। ह्वेल का सरेस (glue) और किसी काम का नहीं होता, उससे खाद ही तैयार होती है। इसके सरेस में नाइट्रोजन ८·४ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल ३·२ प्रतिशत रहता है।

मछली

खाद बनाने के लिए मछली को अथवा मछली के अवशिष्ट अंश को पीसते हैं। ऐसे पीसे हुए अंश में जल ३० से ८० प्रतिशत, नाइट्रोजन २ से ८ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल २ से ६ प्रतिशत रह सकता है। मछली बड़ी जल्दी सड़ती है, पर उसका खादीय उत्पादक प्रभाव देर से होता है।

मछली की खाद में मछली जैसी गंध होती है। इसका रंग धूसर से भूरा तक होता है। ऐसी खाद का संगठन विभिन्न होता है। मद्रास से प्राप्त मछली खाद का विश्लेषण हैरिस (Harris) ने किया है। उसमें जल ७·८३ प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ ६६·७१ प्रतिशत, नाइट्रोजन ७·६५ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ६·३३ प्रतिशत और पोटाश ०·६९ प्रतिशत पाया गया था। मछली की हड्डी की खाद में फास्फरस की मात्रा अधिक रहती है।

काड मछली से खाद तैयार करने के अनेक कारखाने नारवे में हैं। वहाँ की बनी मछली की खाद का रंग सफेद से भूरा होता है। उसमें जल ८·५ से ११ प्रतिशत, नाइट्रोजन ८ से १० प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल १२ से १४ प्रतिशत रहता है।

मछली के अवशिष्ट अंश को सलफ्यूरिक अम्ल के साथ उपचारित करने से गंध कम हो जाती है, अविलेय फास्फेट विलेय फास्फेट में परिणत हो जाता और कुछ नाइट्रोजन अमोनियम सल्फेट में परिणत हो जाता है। ऐसी खाद को 'अम्लीकृत मछली

की खाद' (acidified fish manure) कहते हैं। अम्लीकृत मछली की खाद में जल १३ से १८ प्रतिशत, नाइट्रोजन ७ से ९ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल ११ से १२ प्रतिशत रहता है। फास्फरिक अम्ल का दो तृतीयांश (२/३) जल में तत्काल विलेय होता है।

एक दूसरे प्रकार की मछली की अम्लीय खाद भी यूरोप में बिकती है। मछली पर अल्प सलफ्यूरिक अम्ल के छिड़कने से यह प्राप्त होती है। इससे मछली का सड़ना रुक जाता और कीड़े उस पर अण्डे नहीं देते।

भारत के पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तटों पर भी मछली या मछली के व्यर्थ अंशों से खाद तैयार होती है। ऐसी खाद का जापान और सीलोन को निर्यात होता है।

चिंगट (झिंगा मछली)

चिंगट मछली दो किस्म की होती है, एक छोटी और दूसरी बड़ी। छोटी को चिंगट और बड़ी को महा चिंगट कहते हैं। चिंगट से खाने योग्य अंश के निकाल लेने पर पर्याप्त अवशिष्ट अंश बच जाता है। उससे ही खाद तैयार होती है। चिंगट के छिलके में गोएसमान (Goessmann) ने जल ७·३ प्रतिशत, नाइट्रोजन ४·५ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ३·५ प्रतिशत और चूना २२·५ प्रतिशत पाया था।

चिंगट की सूखी खाद में साधारणतया नाइट्रोजन ४ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ३ प्रतिशत और चूना २० प्रतिशत रहता है।

तारक मछली (star fish)

तारक मछली के सुखाने पर ६४·४ प्रतिशत भार में कमी हो जाती है। जलाने पर २०·३ प्रतिशत खनिज पदार्थ बच जाता है। बिना सूखी ताज़ा मछली में नाइट्रोजन १·८ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ०·२० प्रतिशत, पोटाश ०·२३ प्रतिशत और चूना ९·३२ प्रतिशत रहता है। यह मछली खाद के लिए इस्तेमाल होती है।

मछली ग्वानो

'मछली ग्वानो' अनेक स्थानों में तैयार होता है। मालाबार और दक्खिनी कनारा में अनेक कारखाने हैं जिनमें मछली का तेल ताप और दबाव द्वारा निकाल लेने पर अवशिष्ट अंश को सुखा और महीन पीसकर 'मछली ग्वानो' तैयार करते हैं। मछली ग्वानो दो प्रकार का होता है। एक बहुत हलका चूरा होता है, दूसरा सघन और कठोर हड्डीवाला, जिसमें हड्डियाँ एक इंच व्यास तक की रहती हैं। पोषक तत्त्वों की उपलब्धि की दृष्टि से पहले किस्म का ग्वानो उत्तम है।

मछली ग्वानो में नाइट्रोजन ६ से ९ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल १३ से २० प्रतिशत रहता है। हैरिस ने जिस नमूने का विश्लेषण किया था उसमें जल ९·४१ प्रतिशत, नाइट्रोजन ७·७८ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ९·४० प्रतिशत और पोटाश ०·५३ प्रतिशत था। ताजा मछली ग्वानो में कुछ तेल अवश्य रहता है। ऐसा कहा जाता है कि ३ प्रतिशत से अधिक तेल रहने से खाद का विघटन जल्द नहीं होता। इससे खाद उतनी उत्कृष्ट नहीं होती, पर प्रयोग द्वारा इसकी पुष्टि नहीं हुई है।

केकड़ा

केकड़ा समुद्र, नदी, झील, तालाब और पोखरों में पाया जाता है। यह भी दो किस्म का होता है, एक छोटा और दूसरा बड़ा। बड़ा केकड़ा अमेरिका में बहुतायत से पाया जाता है। भारत में साधारणतया छोटा केकड़ा पाया जाता है। दोनों ही खाद के लिए उपयुक्त हो सकते हैं।

सूखी दशा में केकड़े में १० प्रतिशत तक नाइट्रोजन पाया गया है। पोटाश की मात्रा ०·०६ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल की मात्रा कम रहती है। छोटे केकड़े में नाइट्रोजन १·९५ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ३·६ प्रतिशत और पोटाश ०·२ प्रतिशत पाया गया है। 'हौर्स-फुट-ग्वानो' (horse-foot-guano) के नाम से सूखे और पीसे हुए केकड़े की खाद अमेरिका में बिकती है। केकड़े की खाद का नाइट्रोजन ऐसा रहता है कि पौधे उसे जल्द ग्रहण कर लेते हैं।

मछली की खाद का व्यवहार

मछली की खाद यदि सस्ती मिल सके तो उसका व्यवहार अवश्य करना चाहिए। फूलवाले पेड़-पौधों के लिए तो इसका व्यवहार बहुत अच्छा है। यदि बड़े पेड़ों के लिए व्यवहार करना हो तो इसे पेड़ों की जड़ों में रखकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। यदि खेतों में खाद डालनी हो तो उसे छींटकर जोत देना चाहिए। गरम देशों में इस खाद का प्रभाव जल्द होता है, ठंढे देशों में कुछ देर से। रेतीली या खुली हुई भूमि के लिए यह खाद अच्छी समझी जाती है, सघन और मटियार भूमि के लिए उतनी अच्छी नहीं समझी जाती।

सब फसलों के लिए, जिन्हें फास्फरस और नाइट्रोजन विशेष रूप से आवश्यक हैं, मछली, चिंगट, तारक मछली और केकड़े का व्यवहार हो सकता है। इनका प्रभाव कुछ देर से होता है। इनके विघटन में कुछ समय लगता है, अतः बीज बोने अथवा पौधा लगाने के कुछ महीने पहले खेतों में डालकर खेत को तुरन्त जोत देना चाहिए।

कितनी खाद खेतों में डालनी चाहिए यह भूमि और फसलों की प्रकृति पर निर्भर करता है। साधारण रूप से कहा जा सकता है कि प्रति एकड़ ५ से १० टन खाद डाली जा सकती है।

मद्रास में धान के खेतों में प्रति एकड़ ४०० पौण्ड मछली की खाद और २७५ पौण्ड मछली ग्वानो के उपयोग से पैदावार उस खेत की पैदावार से बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है जिस खेत में कोई खाद नहीं डाली गयी थी अथवा जिस खेत में केवल फास्फेट खाद डाली गयी थी।

मद्रास में प्रति एकड़ ५६० पौण्ड मछली ग्वानो के डालने से चने की पैदावार में स्पष्ट वृद्धि पायी गयी है। आलू के खेतों में प्रति एकड़ ११२० पौण्ड मछली ग्वानो और ५ टन गोबर की खाद डालने से पैदावार ४०० प्रतिशत बढ़ी हुई पायी गयी है। बंबई में ईख की खेती में प्रति एकड़ १५० पौण्ड नाइट्रोजन वाली मछली की खाद के व्यवहार से पैदावार में स्पष्ट वृद्धि पायी गयी है। अन्य कई फार्मों में भी मछली-खाद के उपयोग से धान की पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। बरमा में चार वर्षों तक इस खाद का अवशिष्ट प्रभाव देखा गया है। मद्रास में प्रति एकड़ ३०,००० पौण्ड केकड़े की खाद से धान की पैदावार स्पष्ट रूप से बढ़ी हुई पायी गयी है।

नारियल के पेड़ों, तम्बाकू, ककड़ी, तरबूजे और शाक-भाजियों के खेतों में मछली की खाद के व्यवहार से पैदावार में विशेष वृद्धि पायी गयी है। अंगूर की लताओं में भी इसे देने से फल अधिक लगते पाये गये हैं।

कसाईखाने का कचरा

कसाईखाने में पशुओं का वध होता है और उनका मांस बेचा जाता है। वधित पशुओं का कुछ अंश बच जाता है जिसका अन्य कोई उपयोग नहीं है। ऐसे अंशों को एक टंकी में इकट्ठा करते हैं। अमेरिका में इसे 'टैंकेज' या 'टंकीमल' कहते हैं। इसे गरम कर दबाकर चर्बी निकाल डालते और जो अंश बच जाता उसे पीस डालते हैं। ऐसे पीसे हुए पदार्थ को 'मांस चूरा' (meat meal) कहते हैं। कभी-कभी इसमें हड्डियाँ भी मिला देते हैं। इससे यह 'हड्डी चूरा' (bone meal) हो जाता है। अन्यथा इसमें नाइट्रोजन की मात्रा १२–१३ प्रतिशत, पर फास्फेट की मात्रा अपेक्षया अल्प रहती है। यदि उसमें हड्डी भी मिली हुई है तो फास्फरिक अम्ल ४ से ५ प्रतिशत रह सकता है।

मांस और हड्डियों के अवशिष्ट अंश को इस्पात की टंकी में कुछ समय तक ऊँचे दबाव की भाप से (प्रति इंच ४० से ६० पौण्ड दबाव पर) उपचारित करते हैं।

इससे चर्बी निकल जाती और हड्डियाँ भंजनशील हो जाती हैं। इसे अब पीसकर चूरा बना लेते हैं।

ऐसे चूरे में नाइट्रोजन १० से १४ प्रतिशत रहता है। नाइट्रोजन के सिवा हड्डियों के कारण कुछ फास्फरिक अम्ल भी रहता है। इस प्रकार हड्डियों, कास्थियों (cartilage) तथा अन्य पदार्थों को भाप से उपचारित करने से हड्डी चूरा (bone-meal) प्राप्त होता है जिसमें नाइट्रोजन ४ से १२ प्रतिशत रहता है।

कसाईखाने में पशुओं के खुर और सींग भी प्राप्त होते हैं। इनको भी दबाव में लगभग १२ घण्टे तक भाप से उपचारित करते हैं। उसके बाद सुखाकर पीस डालते हैं। इस प्रकार खुर और सींग के चूरे प्राप्त होते हैं। खुर के चूरे में १२ प्रतिशत तक नाइट्रोजन रह सकता है। मद्रास में एक नमूने के विश्लेषण से पता लगता है कि खुर के चूरे में जल ८·७९ प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ ७६·७८ प्रतिशत, खनिज पदार्थ ६·२० प्रतिशत, नाइट्रोजन १२·४६ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल २·४५ प्रतिशत था। खुर का चूरा कोई उत्तम खाद नहीं है, पर तो भी चमड़े और बाल की खादों से अवश्य ही उत्तम है और नाइट्रोजन के लिए प्रभावकारी समझा जाता है।

सींग के चूरे में कुछ अशुद्धियों के साथ-साथ ८·५ प्रतिशत जल, ८७·४ प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ और १·६९ प्रतिशत राख, १४·१ प्रतिशत नाइट्रोजन, २·८ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल तथा ०·४८ प्रतिशत चूना रहता है।

रक्त

कसाईखाने का सूखा रक्त भी खाद के लिए बिकता है। रक्त की खाद लाल और काली होती है। अति तप्त भाप और उष्ण वायु में सावधानी से सुखाने पर लाल रंग भी प्राप्त होता है। ऊँचे ताप पर सुखाने से वह झुलसकर काला हो जाता है। ऐसे रक्तों में १२ से १३·५ प्रतिशत नाइट्रोजन, १ से ३ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल रहता है। इसे पीसकर चूरा बनाकर खाद के लिए इस्तेमाल करते हैं। रक्त की खाद अच्छी होती है। इसकी माँग बहुत है। पौधे इसे बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। जल्द वृद्धि के लिए यह खाद अच्छी समझी जाती है।

पक्षियों के पंख

पक्षियों के पंख में १५·३ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। पंखों को बुहारकर इकट्ठा करते हैं। ऐसे इकट्ठे किये पंखों में नाइट्रोजन ६·२५ प्रतिशत रहता है। पंख बड़े धीरे-धीरे विघटित होते हैं। इस कारण खाद के रूप में इनका उपयोग उतना लाभकारी नहीं है।

बाल और कड़े बाल

बाल और कड़े बालों में उतना ही नाइट्रोजन रहता है जितना पंखों में। १०० सें० तक सुखाने से नाइट्रोजन की मात्रा १७ प्रतिशत तक बढ़ जाती है। चमड़ा पकाने या कमाने के कारखानों में जो पशुओं के बाल प्राप्त होते हैं उनमें नाइट्रोजन ५·५ से ८ प्रतिशत तक रहता है।

खरहा

खरहे के चमड़े का उपयोग हैट बनाने में होता है। खरहे के कान, पूँछ, पैर आदि अनियमित अंश बच जाते हैं। उनका उपयोग खाद में होता है। ऐसे अंश में नाइट्रोजन ७ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल १·७ से ३·१ प्रतिशत और पोटाश ०·६ प्रतिशत रहता है।

ऊन और रेशम

ऊनी वस्त्रों के निर्माण में ऊन का कुछ अंश बच जाता है। इसमें ऊन के अतिरिक्त कुछ कूड़ा-करकट भी मिला रहता है। ऐसे ऊन में नाइट्रोजन १२ से १५ प्रतिशत रहता है। पर साधारणतया पुराने वस्त्रों के मिले रहने के कारण नाइट्रोजन की मात्रा ५ से १० प्रतिशत ही रहती है।

इसी प्रकार रेशम के कारखाने से प्राप्त व्यर्थ अंश में नाइट्रोजन पर्याप्त रहता है और खाद के लिए इसका उपयोग हो सकता है।

कीड़े और रेशम के कोवे

कुछ कीड़ों में नाइट्रोजन की मात्रा ३·२ से ८·४१ तक रहती है। इनमें फास्फरिक अम्ल ०·६ से १·५ प्रतिशत और पोटाश ०·५ से ०·९६ प्रतिशत रहता है। यदि इन कीड़ों से चर्बी निकाल ली जाय तो नाइट्रोजन की मात्रा १४ प्रतिशत तक बढ़ जा सकती है। टिड्डी में जल १०·३ प्रतिशत, नाइट्रोजन ९·३ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल १·४८ प्रतिशत, पोटाश ०·५२ प्रतिशत, चूना ०·२३ प्रतिशत, सिलिका १·५३ प्रतिशत और राख ५·३४ प्रतिशत रहती है।

कीड़ों का नाइट्रोजन ऐसे रूप में रहता है कि उसका जल्द विघटन नहीं होता पर तो भी कीड़े अच्छी खाद समझे जाते हैं।

रेशमी कीड़े के कोवे में नाइट्रोजन ९·२ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल १·८ प्रतिशत और पोटाश १·०८ प्रतिशत रहता है।

चमड़ा

चमड़े के कारखाने में काट-छाँट से कुछ चमड़ा व्यर्थ निकल जाता है। चमड़े के ऐसे अंश को पीसकर, पकाकर अथवा भाप से उपचारित कर और कभी-कभी अल्प सलफ्यूरिक अम्ल से साधित कर खाद के रूप में प्रयुक्त करते हैं। यह प्रधानतया मिश्रित उर्वरक के निर्माण में उपयुक्त होता है। ऐसे उपचारित चमड़े का संगठन विभिन्न होता है। नाइट्रोजन की मात्रा ६ से ११ प्रतिशत होती है और फास्फरिक अम्ल ०·५ से १·० प्रतिशत। भाप-उपचारित चमड़े की प्राप्यता पकाये हुए चमड़े से अधिक होती है।

खली

तेलहन को कोल्हू में पेरने अथवा प्रेस में दबाने से तेल निकल जाता है। यदि दबाव की वृद्धि के साथ-साथ तेलहन को गरम भी किया जाय तो और अधिक तेल निकलता है। जो अवशिष्ट अंश बच जाता है उसे 'खली' कहते हैं। खली में कुछ न कुछ तेल अवश्य रहता है। तेल के अलावा उसमें बीज का प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, तन्तु और खनिज पदार्थ रहते हैं। साधारण रूप से खली पशुओं को खिलायी जाती है। पशुओं के खिलाने की खली में तेल का रहना अच्छा है। कुछ खलियाँ, जैसे रेंड़ी, नीम और महुए की, पशु नहीं खाते। ऐसी खलियों का उपयोग खाद के लिए होता है।

भारत के कोने-कोने में खाद के लिए खली का उपयोग होता है। इसका महत्त्व नाइट्रोजन के कारण है, यद्यपि अल्प मात्रा में इसमें फास्फरिक अम्ल और पोटाश भी रहते हैं। नाइट्रोजन की मात्रा साधारणतया गोबर की खाद से अधिक रहती है। इसके नाइट्रोजन का लगभग ७० से ८० प्रतिशत ऐसे रूप में रहता है कि उसे मिट्टी में देने से पौधे जल्द ग्रहण कर लेते हैं। नाइट्रोजन की प्राप्यता बहुत कुछ खली और मिट्टी की प्रकृति, ताप और आर्द्र अवस्था पर निर्भर करती है। खाद के लिए खली में अधिक तेल का रहना हानिकारक है। अधिक तेल से खली के विघटन में रुकावटें होती हैं। विघटन के लिए पानी की उपस्थिति आवश्यक है। जिस खेत की सिंचाई सरलता से हो सकती है अथवा जहाँ वर्षा पर्याप्त होता है वहाँ के लिए खली की खाद अच्छी है। उष्ण दशा में खली का विघटन जल्दी होता है। कुछ खलियाँ, जैसे रेंड़ी और नीम की, कृमिनाशक भी होती हैं। उनके उपयोग से कीड़ों का आक्रमण बहुत कुछ रोका जा सकता है।

कुछ खलियों के आवश्यक औसत पोषक तत्त्व यहाँ दिये जाते हैं—

खलियों के औसत पोषक तत्त्व

खली	नाइट्रोजन प्रतिशत	फास्फरिक अम्ल प्रतिशत	पोटाश प्रतिशत
सरसों	५·२१	१·७४	१·१७
अलसी	५·५६	१·४४	१·२८
रेंड़ी	४·३७	१·८५	१·३९
बिनौला (बिना छिलके के)	६·४१	२·८९	२·१७
बिनौला (छिलके के साथ)	३·९९	१·८८	१·६२
महुआ	२·५१	०·८०	१·८५
नीम	५·२२	१·०८	१·४८
तिल	६·२२	२·०९	१·२९
नारियल	३·०२	१·९०	१·७७
मूँगफली	७·२९	१·५३	१·३३
तोरिया बीज (रेपसीड)	५·२१	१·८४	१·१९
कुसुम (बिना छिलके के)	७·८८	२·२०	१·९२
कुसुम (छिलके के साथ)	४·९२	१·४४	१·२३

ऊपर की सारणी से मालूम होता है कि खाद की दृष्टि से महुए की खली बड़ी निकृष्ट है, क्योंकि इसमें नाइट्रोजन और फास्फरिक अम्ल दोनों की मात्रा बहुत अल्प है। इस दृष्टि से नारियल की खली भी उतनी अच्छी नहीं है।

खली का व्यवहार

बीज बोने के लगभग एक मास पूर्व खली की खाद डालकर खेतों को पूरा जोत देना चाहिए। साग-भाजियों और फलों के पेड़ों में ऊपर से भी यह डाली जा सकती है। चूँकि खली साधारणतया पिंड में होती है इससे उसे महीन पीसकर ही इस्तेमाल करना चाहिए। इससे वितरण एक-सा और विघटन जल्द होता है। अँकुरते बीज और बहुत छोटे पौधों के संस्पर्श में खली नहीं आनी चाहिए।

प्रति एकड़ ५ से ३० मन तक खली का उपयोग हो सकता है। वास्तविक मात्रा मिट्टी और फसल की प्रकृति तथा खाद डालने के ढँग पर निर्भर करती है।

वैद्यनाथन ने अनेक प्रयोग करके देखा है कि किस फसल के लिए कौन खाद अच्छी है। धान, गेहूँ, ईख और कपास की खेती खली से बहुत अच्छी होती है। पैदावार और भी बढ़ जाती है यदि खली के साथ सुपर-फास्फेट मिला दिया जाय। खली से आलू, तम्बाकू, पान, फल और साग-सब्जियाँ भी अच्छी उगती हैं। तोरिया खली के उपयोग से जौ और मैन्गोल्ड (mangolds) की पैदावार अच्छी होती है। नाइट्रोजन की सम मात्रा की दृष्टि से खली उतनी ही प्रभावशाली है जितना सोडियम नाइट्रेट अथवा अमोनियम सल्फेट।

खली का अवशिष्ट परिणाम तीन से चार वर्षों तक रहता है, यद्यपि इसका सबसे अधिक प्रभाव पहले वर्ष में ही होता है। किस खली से क्या परिणाम होता है, यह बहुत कुछ मिट्टी और फसल की प्रकृति तथा जलवायु पर निर्भर करता है।

समलकोट फार्म में विभिन्न खलियों के प्रभाव पर जो प्रयोग हुए हैं उनके परिणाम नीचे दिये जाते हैं।

कुछ खलियों के औसत खाद-मान

खली			नाइट्रोजन प्रति एकड़	प्रति एकड़ गुड़ का उत्पादन	
				१९१२—१३	१९१३–१४
गोबर की खाद	३०	टन	३००	१०,१७०	९,३६०
कुसुम	२८२२	पौण्ड	१२६	९,३८०	१२,६७०
तिल	२०४९	पौण्ड	१२६	९,९८०	१५,९७०
पुंगम	३१८२	पौण्ड	१२६	९,६३०	१४,३९०
मूँगफली	१६४०	पौण्ड	१२६	९,४६०	१३,६००
रेंड़ी	२८३६	पौण्ड	१२६	१०,७४०	१३,१७०

खली को महीन पीसकर खेतों में डाल कर खूब जोत देना चाहिए ताकि उसका विघटन जल्द से जल्द हो सके। खली से पौधों को पोषक तत्त्व ही नहीं प्राप्त होता वरन् मिट्टी की भौतिक दशा भी सुधरती है। इससे अनेक रासायनिक और जैविक क्रियाएँ सम्पादित होती हैं। नाइट्रोजनीय कार्बनिक खाद के रूप में ही खली का उपयोग व्यापक रूप से भारत में होता है। कृमिनाशक के रूप में भी नीम और रेंड़ी की खली का व्यवहार होता है।

चौदहवाँ अध्याय

फास्फोरीय खाद

"वही किसान है पूरा, जो डाले हड्डी का चूरा।"

नाइट्रोजन के बाद पौधों को फास्फरस की आवश्यकता पड़ती है। पौधों को कुछ सीमा तक प्राकृतिक स्रोतों से नाइट्रोजन प्राप्त होता रहता है, पर फास्फरस प्राप्त करने का ऐसा कोई स्रोत नहीं है। फसल के बार-बार उगाने से मिट्टी का फास्फरस धीरे-धीरे कम होता जाता है। जो फास्फरस पैदावार में मिट्टी से निकलता है वह फिर लौटकर मिट्टी में नहीं आता।

सन् १७९५ में लार्ड डन्डोनाल्ड (Lord Dandonald) ने एक पुस्तक लिखी थी। यह पुस्तक 'कृषि का रसायन से सम्बन्ध' पर थी। उस पुस्तक में उन्होंने चूने के फास्फेट के सम्बन्ध में लिखा है कि "यह फास्फेट जान्तव पदार्थों—हड्डी, मूत्र, घोंघा (shell) इत्यादि—में, कुछ किस्म के चूना-पत्थरों में और वानस्पतिक पदार्थों, विशेषत: अनाज-दाने और गेहूँ में रहता है। यह लवणीय होता है और जल में घुलता नहीं है। ऐसा विश्वास करने का कारण है कि इस लवण का पर्याप्त अंश अविलेय रूप में उपजाऊ मिट्टी में रहता है। इसके क्षारीय फास्फेटों से पौधे बहुत बढ़ते हैं। यह पौधों की राखों में भी रहता है।" किरवान (Kirwan, सन् १७९६) ने लिखा है कि "गेहूँ में फास्फरित भस्म रहता है जहाँ से यह जान्तव ग्लुटिन का निर्माण करता है। अत: अस्थिराख गेहूँ के लिए सर्वोत्तम खाद है।" थियोडोर डे सौसुरे ने अपनी फ्रेंच पुस्तक[1] में सन् १८०४ में स्पष्ट रूप से लिखा है कि पौधों की वृद्धि के लिए फास्फरस आवश्यक है। पीछे डेवी और लीबिग ने बतलाया कि हड्डी में फास्फेट के रहने से खाद के रूप में इसका मूल्य है।

अनुभव के आधार पर धीरे-धीरे पता लगा कि अच्छी पैदावार के लिए फास्फरस

[1] Recherches Chimiques Surla Vegetation by Theodor de Sausoure.

का रहना आवश्यक है। अब फास्फेट खाद का महत्त्व और उपयोगिता दिन-दिन बढ़ने लगी। इसकी माँग बढ़ गयी। सुपरफास्फेट तैयार करने का पहला कारखाना इंग्लैण्ड में सन् १८४३ में लावेस (Lawes) द्वारा खोला गया था। अब फास्फेट खाद का महत्त्व और बढ़ गया।

पौधों को फास्फरस (P) चाहिए। फास्फेट खादों से पौधों को फास्फरस मिलता है। खाद के लिए फास्फेटों का आगणन फास्फरिक अम्ल के रूप में होता है। फास्फरिक अम्ल वास्तव में फास्फरिक अम्ल, H_3PO_4, नहीं है। यह केवल P_2O_5 है। इसी P_2O_5 के लिए फास्फरिक अम्ल शब्द प्रयुक्त होता है। कैलसियम फास्फेट के ३१० भाग में P_2O_5 का १४२ भाग अथवा P_2O_5 का ४५·८ प्रतिशत रहता है।

फास्फरस को पर्याप्त वायु में जलाने से P_2O_5 बनता है। P_2O_5 के पानी में घुलने से पहले मिटा-फास्फरिक अम्ल बनता है

$$P_2O_5 + H_2O = 2HPO_3$$
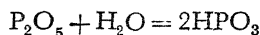
मिटा-फास्फरिक अम्ल

मिटा-फास्फरिक अम्ल को जल के साथ उबालने से अर्थो-फास्फरिक अम्ल बनता है

$$HPO_3 + H_2O = H_3PO_4$$
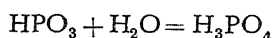
अर्थो-फास्फरिक अम्ल

अर्थो-फास्फरिक अम्ल में हाइड्रोजन के तीन परमाणु रहते हैं। ये हाइड्रोजन परमाणु क्षारों के द्वारा क्रम-क्रम से विस्थापित होकर तीन किस्म के लवण बनते हैं। यदि अर्थो-फास्फरिक अम्ल का केवल एक हाइड्रोजन कैलसियम से विस्थापित हो तो इससे मोनो-कैलसियम फास्फेट बनता है। फिर क्रमशः डाइकैलसियम और ट्राइ-कैलसियम फास्फेट बनते हैं।

$$3H_3PO_4 + Ca\ (OH)_2 = Ca(H_2PO_4)_2 + 2H_2O$$

मोनो-कैलसियम फास्फेट

$$2H_3PO_4 + 2Ca_2(OH)_2 = Ca_2\ (HPO_4)_2 + 2H_2O$$

डाइ-कैलसियम फास्फेट

$$2H_3PO_4 + 3Ca\ (OH)_2 = Ca_3(PO_4)_2 + 6H_2O$$
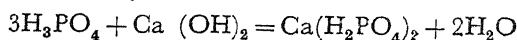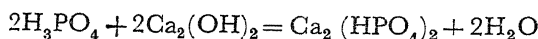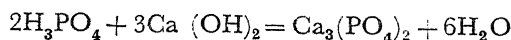
ट्राइ-कैलसियम फास्फेट

मोनो-कैलसियम फास्फेट जल में घुल जाता है। शेष दोनों फास्फेट, डाइ-कैलसियम फास्फेट और ट्राइ-कैलसियम फास्फेट, जल में घुलते नहीं हैं। ट्राइ-कैलसियम फास्फेट को ही सामान्यतः कैलसियम फास्फेट कहते हैं।

यदि ट्राइ-कैलसियम फास्फेट को सलफ्यूरिक अम्ल के साथ उपचारित करें तो उससे फास्फरिक अम्ल मुक्त होता है और कैलसियम सल्फेट बनता है।

$$Ca_3(PO_4)_2 + 3H_2SO_4 = 2H_3PO_4 + 3CaSO_4$$
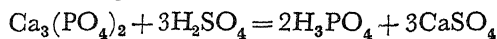
पर यदि सलफ्यूरिक अम्ल की मात्रा ठीक उतनी ही हो कि उससे कैलसियम फास्फेट के केवल दो कैलसियम परमाणु विस्थापित होते हों तो प्रतिक्रिया ऐसी होती है कि उससे मोनो-कैलसियम फास्फेट और कैलसियम सल्फेट का मिश्रण प्राप्त होता है। इस

$$Ca_3(PO_4)_2 + 2H_2SO_4 = Ca(H_2PO_4)_2 + 2CaSO_4$$
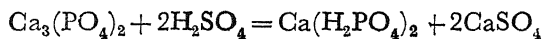
मिश्रण को 'सुपर फास्फेट' कहते हैं। इस मिश्रण का फास्फेट जल में विलेय होता है।

यदि मोनो-कैलसियम फास्फेट को चूने के साथ उपचारित करें तो उससे डाइ-कैलसियम फास्फेट बनता है जो जल में अविलेय होता है। यह पूर्णतया स्थायी होता है। इसके अवक्षेप बड़े महीन होते हैं, इससे पौधे इसे सरलता से ग्रहण कर लेते हैं।

मिट्टी में फास्फरस की मात्रा ०.०२ से ०.१२ प्रतिशत रहती है। जोते हुए खेत के प्रति एकड़ में ४०० से २४०० पौण्ड फास्फरस रहता है। यह मात्रा पौधों के लिए तो पर्याप्त है पर यह सबका सब पौधों को उपलब्ध नहीं होता। अनेक स्थलों की मिट्टी में फास्फरस इतना रहता है कि उससे फसल अच्छे प्रकार से उग सके। पर सबका सब फास्फरस ऐसे रूप में नहीं रहता कि पौधे उसे जल्दी ग्रहण कर सकें। प्रति वर्ष फसल के उगाने से फसल के साथ-साथ पर्याप्त फास्फरस निकल जाता है। ऐसा निकला हुआ फास्फरस मिट्टी में फिर लौटकर तब तक नहीं जाता जब तक ऊपर से फास्फरस-खाद मिट्टी में न डाली जाय।

भारत में विभिन्न स्थानों की मिट्टी में कितना फास्फरस रहता है और उसका कितना अंश ऐसी स्थिति में रहता है कि पौधों को उपलब्ध हो सके, उसकी तालिका यहाँ दी जा रही है।

उत्तर प्रदेश

स्थान	औसत मात्रा	उपलब्ध मात्रा
देहरादून	०.२७१	०.०४१
अलमोड़ा	०.०६८	०.०१०
नैनीताल	०.३१८	०.०१७
पीलीभीत	०.०५८	—
खीरी	०.१०३	—

बहराइच	०·१६६	—
गोंडा	०·०४९	—
बस्ती	०·११९	—
सहारनपुर	०·०८०	०·०१२
मुजफ्फरनगर	०·०७१	०·०३०
बिजनौर	०·०५३	—
मेरठ	०·१४८	०·०८७
मुरादाबाद	०·०३५	—
बरेली	०·०७६	०·०६४
शाहजहाँपुर	०·९९०	—
फर्रुखाबाद	०·३७०	—
मथुरा	—	०·०३५
आगरा	०·११०	०·०३८
इटावा	—	०·००९
जालौन	०·०७३	—
झाँसी	०·०८२	—
सीतापुर	०·०९४	—
हरदोई	०·१७०	—
बाराबंकी	०·११८	०·००५
लखनऊ	०·०९९	०·०१७
उन्नाव	०·०६६	०·०१३
कानपुर	०·०८५	०·००५
हमीरपुर	०·०८०	०·०३९
बाँदा	०·०९९	०·०३९
प्रतापगढ़	०·२१०	०·०३०
जौनपुर	०·०६७	—
बनारस	०·१९०	०·००४
गाजीपुर	०·२४०	—
आजमगढ़	०·१३२	—
गोरखपुर	०·१११	०·००६
अलीगढ़	—	०·०२०

बिहार

पूर्निया	—	०·०१४
भागलपुर	०·०९१	०·०१५
दरभंगा	०·०९३	०·००७
मुजफ्फरपुर	०·११०	०·००६
चम्पारन	०·१२८	०·०२४
सारन	०·०७७	०·००४
शाहाबाद	०·०६९	०·०१५
पटना	०·१०९	०·०१७
गया	०·०७४	०·०१४
मुंगेर	०·०४२	०·००२
सन्थाल परगना	०·०५१	०·००४
हजारी बाग	—	०·००३
पलामूँ	०·०८६	०·०१२
राँची	०·०४५	०·००२
मानभूम	०·१३२	०·०११
सिंहभूम	०·०७१	०·००२

उड़ीसा

बालासोर	०·०१७	०·००२
कटक	०·०४९	०·००९
पुरी	०·०८५	०·००४
अंगुल	०·०३६	०·००९
सम्भलपुर	०·०६२	०·००४

आसाम

लखीमपुर	०·०१४	०·०१८
शिवसागर	०·०७६	०·०११
नवगाँव	०·१६२	०·०११
दारंग	०·०७७	०·०२५
कामरूप	०·०८८	०·०१७

गोलपारा	०·०९८	०·०३१
नागा पहाड़ी	०·२७९	०·०६४
सिया पहाड़ी	०·०४८	०·००८
गारो पहाड़ी	—	०·०१०
मनीपुर	०·१०१	०·०२९
काचर	०·१०९	०·०२०
सिलहट	०·०५४	०·०१२
तेराई	०·१३७	०·०३४

पश्चिम बंगाल

दार्जिलिंग	०·२६३	०·१०६
जलपाइगुड़ी	०·१३७	—
नदिया	०·०९९	—
बीरभूम	०·०३२	०·००२
बर्दवान	०·०६१	—
बाँकुरा	०·०३७	०·००३
मेदिनीपुर	०·०८०	०·००३
हुगली	०·११८	०·०७४
हवड़ा	०·१५०	—
२४ परगना	०·१५०	०·०२७
त्रिपुरा	०·०९६	—

मद्रास

विजगापट्टम	०·०९०	०·०१३
पूर्वी गोदावरी	०·०६५	०·०३०
पश्चिमी गोदावरी	०·०७२	०·०१५
कृष्णा	०·०९७	०·०२०
गुन्तूर	०·०१४	०·०२१
नेल्लोर	०·०३७	०·०११
चित्तूर	०·०२७	—
चिंगलीपुत्त	०·०७१	०·०१३

उत्तरी अरकाट	०·१८३	०·०५४
दक्षिणी अरकाट	०·०५२	०·०२१
सलेम	०·०९७	०·१४
त्रिचनापल्ली	०·०८५	०·०४१
कोयम्बटूर	०·११३	०·०३०
मदुरा	०·०४५	०·००६
तंजोर	०·०५१	०·०१४
रामनद	०·०१०	०·००३
तिन्नेवली	०·०५९	०·०२२
कुर्नूल	०·०५८	०·०१४
कुडप्पा	०·०५६	०·०१४
अनन्तपुर	०·०३७	०·००६
बेल्लारी	०·०३८	०·००८
नीलगिरि	०·१३७	०·०१४
दक्षिण कनारा	०·०९५	०·००४
मालाबार	०·११०	०·००९
	बम्बई	
पंच महाल	०·०३७	—
अहमदाबाद	०·१४५	०·०७५
खेड़ा	०·११९	०·०८३
भड़ौच	०·०८६	०·०३१
सूरत	०·०६१	०·००७
पूर्वी खानदेश	०·०९१	—
पश्चिमी खानदेश	०·१०६	—
नासिक	०·१५६	—
अहमदनगर	०·२३१	—
पूना	०·१६४	०·०१८
सतारा	०·२३०	०·०००३
शोलापुर	०·१०१	०·०३०
बीजापुर	०·१०२	०·०२७

बेलगांव	०·१४२	०·००२
धारवाड़	०·०७१	०·००७
उत्तरी कनारा	०·०७६	—
गोवा	०·२०९	०·००८
रतनागिरि	०·२१२	—
कोलाबा	०·१५१	—
थाना	०·०२३	—

मध्य प्रदेश एवं बरार

अकोला	०·०८१	०·००२
वेतूल	०·०९२	०·०१०
होशंगाबाद	०·०६२	०·००५
सागर	०·०७३	—
जबलपुर	०·०३५	०·००७
छिन्दवाड़ा	०·०५७	०·००७
वर्धा	०·०९४	—
बालाघाट	०·०४८	०·००३
नागपुर	०·०८६	०·०१२
चाँदा	०·०६९	०·००६
दुर्ग	०·०८६	०·०२४
रायपुर	०·११५	०·००४
बिलासपुर	०·०२९	०·००९

दिल्ली

दिल्ली	०·१९१	०·१०३
अजमेर	०·०८५	०·०२०
कुर्ग	०·१२९	०·०१०
मनीपुर	०·१०१	०·०२९
रामपुर उत्तर प्रदेश	०·०९६	०·०१९

हैदराबाद-दक्षिण

परभनी	०·०९१	०·०२७

निजामाबाद	०·०८८	०·०१०
मेडक	०·०२७	०·०१९
अतरफ-बालदा	०·३३३	०·०११
रायचूर	०·१८१	०·०४६
वारंगल	०·०७७	०·०७४
बिदर	०·१३४	—
करीमनगर	०·२११	०·०६२

मैसूर

कादुर	०·१४४	०.००४
हसन	०·२६०	—
सिमोगा	०·०४८	—
मैसूर	०·०५६	०·००३
नान्दय	०·०१८	०·००३
बंगलोर	०·०४४	०·००३
टुमकुर	०·१९०	—
ट्रावनकोर	०·०४५	—

बड़ोदा, कोल्हापुर आदि

बड़ोदा	०·०७५	०·०५२
नवसारी	०·०४०	०·००४
अमरेली	०·०६६	०·००३
मेहसाना	०·१४५	०·०३८
ओखामन्डल	०·०६३	०·००१
जोधपुर	—	०·१०६
लिम्बडी	०·०४०	०·००६
कश्मीर उत्तरी	०·२६७	०·०३४
रायसी	०·२२४	—
रामगढ़	—	०·०७५
अलवर	०·१००	—
रेवा उमरिया	०·०२७	०·००१

कोटा	०·१०६	०·०१८
नावी वाग	०·०७५	०·००४
इन्दौर	—	०·०१६
बिराज	—	०·०००४
सांगली	—	०·०००३

पंजाब

शिमला	०·२४४	०·०६१
अम्बाला	०·१७०	०·०२५
करनाल	०·०८४	—
रोहतक	०·१०६	०·०४९
हिसार	०·१८७	—
फिरोजपुर	०·२४०	०·००५
जालन्धर	०·१२६	०·०३८
अमृतसर	०·१२५	०·०५९

मिट्टी में फास्फरस विभिन्न रूपों में रह सकता है। इन विभिन्न रूपों की विलेयता विभिन्न होती है। फसल को फास्फरस की उपलब्धि इन विभिन्न रूपों पर ही निर्भर करती है। साधारणतया फास्फरस निम्नांकित चार प्रमुख रूपों में पाया जाता है:—

१. कैलसियम और मैगनीशियम के साथ यौगिक (फास्फेट) के रूप में

२. कार्बनिक पदार्थों के साथ यौगिक के रूप में

३. लोहा और अलूमिनियम के साथ यौगिक के रूप में

४. चट्टानों में पेचीले फास्फेट के रूप में

इनका क्रमांक घटती हुई उपलब्धि के क्रम में यहाँ दिया गया है।

प्रथम वर्ग के फास्फेट, कैलसियम फास्फेट और मैगनीशियम फास्फेट कम या बेश पानी में घुलते हैं। मोनो कैलसियम फास्फेट, $Ca(H_2PO_4)_2$ जल में घुलता है। डाइ-कैलसियम फास्फेट $Ca(HPO_4)$ और ट्राइ-कैलसियम फास्फेट बहुत कम घुलता है। ये फास्फेट पौधों को शीघ्रता से प्राप्त हो जाते हैं, खेतों में इनके उपयोग से जल्द लाभ पहुँचता है।

कार्बनिक फास्फेट कम घुलते हैं। अतः पौधों के लिए इनकी उपलब्धि अपेक्षया कम होती है। ये फास्फेट अधिक अंश में तल की मिट्टी में ही रहते हैं। शोलेन बर्गर (१९२०, Schollenberger) ने दिखलाया है कि कार्बनिक फास्फेट का

एक-तृतीयांश ऊपरी तल पर रहता है और केवल एक-पंचमांश नीचे की मिट्टी में रहता है। ये फास्फेट पौधों को न्यून मात्रा में उपलब्ध होते हैं। अतः ऐसी मिट्टी में बाहर से फास्फेट खाद डालने से पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी जाती है।

लोहे और अलूमिनियम के फास्फेट जल में अविलेय होते हैं, अतः पौधे इन्हें अधिक और शीघ्रता से ग्रहण नहीं कर सकते। धीरे-धीरे ये पौधों को उपलब्ध हो सकते हैं। ट्रूयोग (Truog, १९१६) ने देखा है कि तत्काल के तैयार लोहे और अलूमिनियम के फास्फेट को कुछ पौधे ग्रहण कर लेते हैं। सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता है कि ये फास्फेट बहुत धीरे-धीरे घुलते हैं। ऐसे खेतों में विलेय फास्फेट देने से पैदावार बहुत बढ़ जाती है।

चट्टानों के फास्फेट जो मिट्टी में रहते हैं उनका और भी कम अंश पौधों को प्राप्य होता है। इसका कारण यह है कि ये फास्फेट जल अथवा अन्य किसी विलायक में जल्दी घुलते नहीं हैं या बहुत धीरे-धीरे घुलते हैं। इस कारण बड़ी अल्प तादाद में ही पौधे इन्हें ग्रहण कर सकते हैं।

फसल के उगाने से फास्फरस निकल जाता है। किस फसल के कितने उत्पादन से कितना फास्फरस निकलता है, यह निम्नांकित अंकों से मालूम होता है।

फसल	सिंचाई या अन्य स्थिति	औसत उपज प्रति एकड़ (पौण्ड में)	फसल द्वारा मिट्टी से निकला फास्फरस प्रति एकड़ पौण्ड में
चावल	असींचा	२०००	२०
गेहूं	असींचा	८००	११
गेहूं	सींचा	२०००	३०
ज्वार	अन्न वास्ते	२०००	१४
ज्वार	चारा वास्ते	२५०००	१५
बाजरा	अन्न वास्ते	१०००	२०
मक्का	अन्न वास्ते	१५००	१५
मक्का	चारा वास्ते	२०००	२०
जौ	सींचा	१४००	२०
जौ	असींचा	८००	१५
जई	अन्न वास्ते	१२००	२०

अरहर	अन्न वास्ते	२००	८
अरहर बड़ी	अन्न वास्ते	८००	३०
चना	अन्न वास्ते	४००	१०
चना	सींचा	१०००	३०
उरद	अन्न वास्ते	६००	९
मूंग	अन्न वास्ते	६००–८००	३०
तिल	अन्न वास्ते	६००	३०
मेथी	अन्न वास्ते	६००	३०
मूंगफली	—	१४००	१५
मूंगफली	—	२००००	३०
तीसी	बीज	५००	२७
तीसी	बीज	१०००	३०
सरसों	बीज	६००	१०
रेंड़ी	बीज	२०००	१६२
तोरिया	बीज	६००	१०
ईख	वम्बई	२१०००	१६२
ईख	बिहार	२४०००	२००
ईख	उत्तर प्रदेश	५२०००	२१८
रूई	रेशा	४००	१५
तम्बाकू	बम्बई	१४००	१०२
तम्बाकू	मद्रास	१२००	८०
तम्बाकू	बिहार	१२००	४०
जूट	रेशा	१४००	३०
लूसर्न	चारा	६५००	७०
सूदान घास	चारा	६५००	१६
सूरन	सींचा	३६०००	६०
आलू	सींचा	६०००	१४
बैगन	सींचा	२२०००	७७
गोभी	सींचा	६०००	१५
नोलखोल	सींचा	१००००	३१
प्याज	सींचा	१४०००	२८

हल्दी	सींचा	१८०००	४१
अदरख	सींचा	६०००	१९
मिर्चे	सींचा	१०००	१५
शलजम	सींचा	३२०००	२५
धनियां	बीज	८००	४०
अरवी	सींचा	१६०००	४०
चाय	आसाम	८००	१२
काफी	मद्रास	८००	१०
मटर	बीज	९००	१६
सेम	बीज	२०००	३०
सोयाबीन	बीज	१०००	६०

भारत की मिट्टी में साधारणतया फास्फरस की कमी रहती है। अतः फास्फरीय उर्वरक देकर ही इसकी पूर्ति की जा सकती है।

फास्फोरीय खाद के अनेक उद्गम हैं। उनमें निम्नलिखित उद्गम महत्त्व के हैं।

हड्डी

खाद के लिए हड्डी का उपयोग बहुत दिनों से होता आ रहा है। इंग्लैण्ड में सन् १६५३ में ब्लाइथ (Blithe) ने इसके उपयोग का उल्लेख किया है। पीछे इवेलीन (Evelyn) ने सन् १६७४ और वोरलिज (Worlidge) ने सन् १६६८ में इसका जिक्र किया। पहले लोग समझते थे कि खाद के रूप में हड्डी की उपयोगिता उसमें उपस्थित तेल के कारण है, पर अठारहवीं सदी में निश्चित रूप से मालूम हुआ कि इसकी उपयोगिता तेल के कारण नहीं वरन् फास्फरिक अम्ल के कारण है। कब, किसके द्वारा और कहाँ यह ज्ञान शुरू हुआ यह कहना आज कठिन है। सम्भव है कि सैकड़ों वर्षों के अनुभव से किसानों को यह मालूम हुआ हो। अठारहवीं सदी में खाद के लिए हड्डी का उपयोग विस्तृत रूप से होने लगा था। उस समय हड्डी से चाकू की मूँठें बनती थीं। उससे हड्डी की छीलन और काट-छाँट के टुकड़े बच जाते थे। उन्हें लोग खाद के लिए प्रयुक्त करते थे। १९वीं सदी में हड्डी की माँग बढ़ने लगी और तब इसका महत्त्व और बढ़ गया। जब हड्डी काटने और चूरा करने की मशीन बनी तब इसकी माँग इतनी बढ़ गयी कि इंग्लैण्ड में यूरोप के कई देशों से मँगाने की आवश्यकता पड़ी। अब हड्डियों की और खोज होने लगी। इसके लिए वे स्थान भी

खोदे जाने लगे जहाँ पहले लड़ाइयाँ हुई थीं और अनेक लोग मारे गये थे। कुछ दिनों तक इंग्लैण्ड के युद्ध-क्षेत्रों, लाइपज़िग, वाटरलू और क्रीमिया एवं सिसिली के शव-स्थानों से हड्डियाँ प्राप्त हुईं। पर ये सब भी शीघ्र ही समाप्त हो गयीं। उस समय सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ लीविग ने ऐसा लिखा था कि "इंग्लैण्ड सब देशों की उर्वरता को लूट रहा है।" पीछे भैंसों की हड्डियाँ इकट्ठी होने लगीं। आधुनिक काल में आर्जेन्टिना और भारत से पर्याप्त हड्डियाँ यूरोप जाती थीं। सन् १९३६ में ११,२०० टन हड्डियाँ बाहर से इंग्लैण्ड गयीं। भारत ने पीछे हड्डी बाहर भेजने पर रोक लगा दी और वह रोक अब तक लगी हुई है।

हड्डी का संगठन

ताज़ी हड्डी में जल ५० प्रतिशत, कास्थि प्रोटीन (कोलेजेन) २० प्रतिशत, वसा ४ प्रतिशत और खनिज लवण २६ प्रतिशत रहता है। हड्डी के रखे रहने से जल की मात्रा धीरे-धीरे कम हो जाती है। इस कारण व्यापार की हड्डी में जल कम रहता है। खनिज लवणों में सबसे अधिक कैलसियम फास्फेट, ८५ प्रतिशत के लगभग, कैलसियम कार्बोनेट १४ प्रतिशत और मैगनीशियम फास्फेट, $Mg_3 (PO_4)_2$, १ प्रतिशत रहता है। कैलसियम फास्फेट कार्बनिक आधारक (matrix) में बिखरा हुआ रहता है। हड्डी के फास्फेट को बी० पी० एल० या बोन-फास्फेट आफ लाइम भी कहते हैं।

हैण्डेरिक्स और हिल (Hendericks and Hill, १९४२) का मत है कि कैलसियम फास्फेट जलीयित ट्राइ-कैलसियम फास्फेट किस्म का यौगिक है, जिसमें कुछ सोडियम, मैगनीशियम और कार्बोनेट भी मिले रहते हैं। वास्तव में यह एपेटाइट ही है जिसमें फ्लोरीन के स्थान को अंशतः कार्बोनेट ने और कैलसियम के स्थान को अंशतः सोडियम और मैगनीशियम ने ले लिया है। कई लोगों ने हड्डी के फास्फेट का सूत्र $Ca_3(PO_4)_2,CaCO_3$ दिया है जो सूत्र वस्तुतः कार्बोनेटो एपेटाइट का है।

फास्फेट का कार्बनिक आधारक वसा पदार्थों से बना है यद्यपि इसमें अल्प मात्रा में नाइट्रोजनीय पदार्थ भी रहता है। हड्डी में फास्फरस की मात्रा हड्डी की किस्म और उम्र पर निर्भर करती है। कम उम्र की हड्डी में फ्लुओर-एपेटाइट भी रह सकता है। यदि पशु ने अधिक फ्लोरीन वाला आहार भक्षण किया है तब फ्लुओर-एपेटाइट अधिक भी रह सकता है। पुरानी हड्डी में फ्लोरीन की मात्रा नयी हड्डी की अपेक्षा अधिक रह सकती है।

हड्डी को तनु अम्लों में डुबाकर रखने से हड्डी का खनिज लवण घुल जाता है। यदि हड्डी को जोरों से गरम किया जाय तो उसके प्रोटीन और वसा जल जाते हैं और हड्डी की राख (अस्थि-भस्म) बच जाती है। कच्ची हड्डी बहुत धीरे-धीरे बदलती है। कार्बनिक पदार्थों के कारण इसका विच्छेदन बहुत धीरे-धीरे होता है। ऐसे रूप में यह जल्दी परिवर्तित नहीं होती कि पौधे उसे ग्रहण कर सकें। यही कारण है कि खाद के लिए कच्ची हड्डी का उपयोग आज नहीं हो रहा है।

हड्डी का चूरा (अस्थि-चूर्ण)

हड्डी को पीसकर चूरा बनाया हुआ 'कच्ची हड्डी का चूरा' इसी नाम से खाद के लिए बिकता है। ऐसे चूरे में वसा पदार्थ ज्यों के त्यों रह जाते हैं। कच्ची हड्डी से उसका चूरा तो अवश्य अच्छा होता है पर वसा-पदार्थों के कारण हड्डी जल्द विच्छेदित नहीं होती। यह धीरे-धीरे विच्छेदित होती है। इससे पौधों को तत्काल इससे लाभ नहीं होता पर जैसे-जैसे समय बढ़ता है पौधों को अधिकाधिक लाभ होता रहता है। अच्छी किस्म के अस्थि-चूर्ण में फास्फरिक अम्ल (P_2O_5) २२ से २५ प्रतिशत और नाइ-ट्रोजन २ से ४ प्रतिशत रहता है। यह चिपचिपा होता है। इसमें प्रबल अरुचिकर विशिष्ट गन्ध होती है। इस कारण इसका व्यवहार लोग पसन्द नहीं करते। यदि एक ग्राम ऐसे चूरे को लेकर एक प्रतिशत सिट्रिक अम्ल के विलयन के एक लिटर में घुलायें तो चूरे का प्रायः आधा अंश घुल जाता है। ऐसे फास्फेट से पौधे आवश्यक फास्फरस ग्रहण कर लेते हैं।

भाप-उपचारित अस्थिचूर्ण

खाद के लिए कच्ची हड्डी के चूरे से भाप-उपचारित हड्डी का चूरा अच्छा होता है। हड्डी को १५ से २० पौण्ड दबाव की भाप से उपचारित करने पर वसा पिघल कर निकल जाती है। नैफ्था या अन्य विलायकों से भी वसा निकाली जा सकती है। वसा के निकल जाने से हड्डी की खाद की उपयोगिता में कोई कमी नहीं होती वरन् उपयोगिता बढ़ जाती है। ऐसी खाद को पौधे जल्दी ग्रहण करते हैं। इस प्रकार प्राप्त वसा को साबुन बनाने के काम में लाते हैं।

भाप-उपचारित हड्डी में नाइट्रोजन ३ से ५ प्रतिशत और कैलसियम फास्फेट ४३ से ५० प्रतिशत रहता है। भाप के उच्च दबाव से हड्डी के जिलेटिन-पदार्थ भी निकल जाते हैं। ऐसे जिलेटिन-पदार्थ में जिलेटिन और ग्लू (सरेस) रहते हैं। इनके निकल जाने से नाइट्रोजन की मात्रा में कुछ कमी हो जाती है। नाइट्रोजन केवल १

से २ प्रतिशत रह जाता है। पर फास्फरस की मात्रा बढ़कर लगभग २५ से ३२ प्रतिशत हो जाती है।

भाप-उपचारित हड्डी अधिक सरलता से और महीन पीसी जा सकती है। इससे खेतों में यह सरलता से बिखेरी जा सकती है। हड्डी का ऐसा चूरा बहुत हलका होता है। यदि इसे खेतों में बिखेरना पड़े तो इसमें कुछ मिट्टी या लकड़ी का बुरादा मिलाकर बिखेरना अच्छा होता है। बहुत महीन होने के कारण ऐसा चूरा कच्ची हड्डी के चूरे से अच्छा होता है। खनिज फास्फेटों के चूरे से भी यह उत्तम होता है। फसलों पर इसका प्रभाव शीघ्रता से पड़ता है। नाइट्रोजन के रहने से इसका प्रभाव बढ़ जाता है। अम्लीय मिट्टी में, जिसमें कार्बनिक पदार्थ पर्याप्त रहते हैं, इसका प्रभाव और भी उत्तम होता है। यदि मिट्टी में चूना रहे तो फास्फरस की विलेयता कम हो जाने से प्रभाव अवश्य ही कुछ कम हो जाता है।

किण्वित हड्डी

हड्डी किण्वित की जा सकती है। कच्ची हड्डी को उसके चौथाई अंश मिट्टी से मिलाकर इतना मूत्र डालते हैं कि उससे वह पूर्ण रूप से ओत-प्रोत हो जाय। फिर उसे भींगी मिट्टी से ढँककर वर्षा से बचाकर रख छोड़ते हैं। इस प्रकार हड्डी का किण्वन होता है। हड्डी का फास्फेट पर्याप्त मात्रा में विलेय रूप में बदल जाता है। ऐसी हड्डी कच्ची हड्डी से अधिक उपयोगी होती है। पौधे इसे शीघ्र ग्रहण कर सकते हैं। इसमें फास्फेट की मात्रा २० से २३ प्रतिशत और नाइट्रोजन की मात्रा प्रायः ३·५ प्रतिशत रहती है।

घुली हुई हड्डी

लीबिग ने पहले-पहल बतलाया कि हड्डी को कुछ सीमा तक घुला सकते हैं। हड्डी के चूरे को सलफ्यूरिक अम्ल के साथ उपचारित करने से जो पदार्थ प्राप्त होता है उसे 'घुली हुई हड्डी' कहते हैं। यहाँ अम्ल द्वारा क्रिया वैसी ही होती है जैसी सुपर-फास्फेट के निर्माण में होती है। ऐसी घुली हुई हड्डी के फास्फेट के गुण सुपर फास्फेट के गुण जैसे ही होते हैं। एक समय ऐसी हड्डी बड़ी तादाद में बनती थी पर अब यह नहीं बनती। इसके स्थान में आज सुपर-फास्फेट का ही उपयोग होता है। ऐसी हड्डी में फास्फरिक अम्ल ३० से ३५ प्रतिशत के लगभग, नाइट्रोजन १ से २ प्रतिशत और कार्बन १० प्रतिशत के लगभग रहता है। यह चिपचिपी होती है।

हड्डी की राख (अस्थि-भस्म)

हड्डी के जलाने से उसकी राख बनती है। इससे उसका आयतन बहुत घट जाता है जिससे जहाज से भेजने में स्थान कम और किराया भी कम लगता है। हड्डी के जलाने के समय उसका प्रायः समस्त नाइट्रोजन निकल जाता है। राख में ३० से ४० प्रतिशत फास्फरिक अम्ल और बड़ी अल्प मात्रा में मैगनीशियम और क्लोरीन रहते हैं। खाद की दृष्टि से यह उत्कृष्ट कोटि की खाद है पर आज इसका व्यवहार कम होता है।

हड्डी का कोयला (अस्थि-काल)

हड्डी को बन्द पात्र में गरम करने से हड्डी का कोयला प्राप्त होता है। यह ठीक वैसा ही होता है जैसा पत्थर कोयले के गरम करने से कोक बनता है। हड्डी के कोयले को 'अस्थि-काल' भी कहते हैं। ऐसा कोयला चीनी के परिष्कार में भारत से बाहर के देशों में प्रयुक्त होता है। इसके द्वारा परिष्कार से बिल्कुल सफेद चीनी प्राप्त होती है।

टंकी में जमा की हुई हड्डी

पशु-वधशाला से कुछ जान्तव पदार्थ प्राप्त होते हैं। इनमें हड्डी, मांस, सूखा रक्त इत्यादि पदार्थ रहते हैं। ये पदार्थ बाजारों में बिकते हैं। इनमें फास्फेट विभिन्न मात्रा में रहता है। फास्फेट की मात्रा हड्डी की मात्रा पर निर्भर करती है। जितनी ही अधिक हड्डी रहेगी उतना ही अधिक फास्फेट रहेगा। साधारणतया फास्फरिक अम्ल ११·५ से २० प्रतिशत रहता है। इसका उपयोग खाद में होता है।

सुपर-फास्फेट

ऊपर कहा गया है कि हड्डी के चूरे को सलफ्यूरिक अम्ल के साथ उपचारित करने से घुली हुई हड्डी प्राप्त होती है जिसे पौधे शीघ्र ग्रहण कर सकते हैं। इसका सुझाव पहले-पहल सन् १८३५ में एशर आफ ब्रुन (Escher of Brunn) ने दिया था। उन्होंने लिखा है कि हड्डी के चूरे को अम्ल के साथ साधने से चूरे की उर्वरता बढ़ जाती है। सुपर-फास्फेट शब्द का प्रयोग पहले-पहल रिजवे (Ridgeway) द्वारा सन् १८३९ में प्रकाशित पुस्तिका में मिलता है। लीबिग ने इसे तैयार करने का वर्णन सन् १८४० में किया था। 'दी केमिस्ट्री आफ एग्रिकल्चर एण्ड फिजियोलौजी' नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा है—"हड्डी को सरलता से महीन करने की रीति यह है। हड्डी के चूरे पर आधी मात्रा (भार में) तन सलफ्यूरिक अम्ल (सलफ्यूरिक

अम्ल : जल :: १ : ३ या ४) डालकर कुछ समय पक जाने पर फिर उसमें १०० भाग जल डालकर खेत में डालना चाहिए। कुछ ही क्षणों में असंयुक्त अम्ल मिट्टी के क्षारों से मिलकर उदासीन हो जाता है। इससे पौधों की वृद्धि बहुत अधिक होती है।" लावेस (Lawes) ने सन् १८४२ में सुपर-फास्फेट तैयार करने का पेटेण्ट लिया, जिसमें उन्होंने लिखा है–"हड्डी, हड्डी की राख और हड्डी की धूल तथा एपेटाइट और अन्य फास्फेटों को मिट्टी में डालने से पौधे उन्हें शीघ्र ग्रहण नहीं करते। यदि उनके साथ कुछ सलफ्यूरिक अम्ल मिला दिया जाय ताकि उससे पर्याप्त फास्फरिक अम्ल मुक्त हो जाय तो पौधे अधिक शीघ्रता से उसे ग्रहण कर लेते हैं। फसलों को उससे बड़ा लाभ पहुँचता है।"

लावेस ने सुपर-फास्फेट तैयार करने का कारखाना इंग्लैण्ड के डेप्टफोर्ड (Deptford) में खोला और अब सुपर-फास्फेट बिकने लगा। सुपर-फास्फेट बिकने का पहला विज्ञापन १८४३ में "गार्डनर्स क्रोनिकल एण्ड एग्रिकल्चरल गज़ेट" में निकला था। उसकी कीमत उस समय प्रति बुशेल ४ शिलिंग ६ पेन्स थी जो दो रुपये दस आने के बराबर होता है।

रोथैमस्टेड में स्वयं लावेस ने सुपर-फास्फेट का प्रयोग क्षेत्रों में किया था। उनके प्रयोग सन् १८३६ से शुरू हुए। शलजम पर उनका पहला प्रयोग था। शलजम की पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी। सन् १८४१ में उन्होंने अपने प्रयोगों में २० टन सुपर-फास्फेट प्रयुक्त किया था। सुपर-फास्फेट के तैयार करने में उन्होंने खनिज फास्फेट का उपयोग किया था। जिस समय लावेस ने पेटेण्ट लिया था उसी समय डबलिन के सर जेम्स मुरे ने भी फास्फरिक अम्ल को खाद के रूप में उपयोग करने का पेटेण्ट लिया था। लावेस ने पीछे इस पेटेण्ट को खरीद लिया।

जब लावेस ने पहले-पहल सुपर-फास्फेट तैयार किया था तब उसका मूल्य प्रति टन ७ पौण्ड था। इस सुपर-फास्फेट में कोप्रोलाइट या ग्वानो से निकला विलेय और अविलेय फास्फेटों के अतिरिक्त जान्तव पदार्थ तथा अमोनिया भी मिला हुआ था।

ग्रेट ब्रिटेन में सुपर-फास्फेट का निर्माण सन् १८५४ तक होता रहा। उस समय इसका वार्षिक उत्पादन ३०,००० टन था। सन् १९०५ में सुपर-फास्फेट का उत्पादन ६० लाख टन हो गया और सन् १९३८ में १६१ लाख मेट्रिक टन। आजकल लगभग १९० लाख टन प्रति वर्ष सुपर-फास्फेट तैयार होता है जिसमें केवल अमेरिका में ९० लाख टन तैयार होता है। अमेरिका में सुपर-फास्फेट का निर्माण सन् १८५० से शुरू हुआ। भारत में सन् १९४८ में २१,३५८ टन सुपर-फास्फेट का उत्पादन हुआ था। बाहर से सुपर-फास्फेट के आयात के आँकड़े इस प्रकार हैं —

भारत में सुपर-फास्फेट का आयात

वर्ष	टन	मूल्य हजार रुपये
१९३७—३८	७,४०५	५६८
१९३८—३९	६,७८८	५६५
१९३९—४०	७,७५८	६२८
१९४०—४१	६,७३२	१०५०
१९४१—४२	२,७२२	४६०
१९४२—४३	—	—
१९४३—४४	१४८	३७
१९४४—४५	१,५७२	३८९
१९४५—४६	९०१	१३७
१९४६—४७	६०	१७
१९४७—४८	३८०	१४६
१९४८—४९	१०००	३६७

दूसरा विश्वयुद्ध शुरू होने के कुछ वर्ष बाद केवल १९४४–४५ में सुपर-फास्फेट कुछ अधिक आया नहीं तो आयात बहुत कम हो गया। तब से इसका बनना भी भारत में शुरू हुआ। भारत में सुपर-फास्फेट, चीनी, चाय और काफी की खेती में ही अल्प मात्रा में पहले प्रयुक्त होता था।

एक समय भारत में गाँव-गाँव में हड्डियाँ इकट्ठी की जातीं थीं। ये हड्डियाँ रेलों और जहाजों द्वारा बड़े-बड़े समुद्र तट के शहरों में जाती थीं जहाँ हड्डी पीसने और सुपर-फास्फेट तैयार करने के कारखाने थे। सन् १८९१ में १३ ऐसे कारखाने थे जिनमें ४९१ मनुष्य काम करते थे, जब कि १९०० में इनकी संख्या बढ़कर १८ हो गयी थी, जिनमें ९९१ व्यक्ति काम करते थे। इनमें सात कारखाने मद्रास में, ६ बम्बई में, २ सिन्ध में, २ बंगाल में और १ उत्तर प्रदेश में था। वहाँ हड्डी का चूरा और सुपर-फास्फेट बनता था और चूँकि उसकी माँग देश में बहुत कम थी, इस कारण प्रायः सारा का सारा बाहर चला जाता था। १८८४—८५ में १८,३८३ टन बाहर गया था। १९००—०१ में निर्यात की मात्रा ११२,०५१ टन, जिसका मूल्य ५८,४१,९१६ रुपया था, हो गयी। पीछे निर्यात कुछ कम हो गया।

हड्डी के चूरे और सुपर-फास्फेट का निर्यात

वर्ष	टन	मूल्य
१९०२—०३	१,००,३९१	५४,९७,९६७
१९०३—०४	७४,७८८	४१,५७,११९
१९०४—०५	६८,२०३	३७,५१,४८०
१९०५—०६	८७,५५२	४९,७८,७७८
१९०६—०७	९३,७६०	५५,४५,२४१

अमेरिका में सामान्य और सान्द्र सुपर-फास्फेट का उत्पादन

वर्ष	सामान्य सुपरफास्फेट टन	सान्द्र सुपरफास्फेट टन
१९३५	२,८५९,०००	९१,०५९
१९३६	३,३५५,०००	१२९,७४६
१९३७	४,३०४,०००	१६६,१४४
१९३८	३,६०८,०००	१८६,९२०
१९३९	३,९३७,०००	२७२,७५०
१९४०	४,५३६,०००	३२९,०४९
१९४१	४,९८७,०००	३१७,९९०
१९४२	५,६३६,०००	३१४,४३०
१९४३	६,७७८,०००	२९४,१४४
१९४४	७,१६१,०००	२८१,०७६
१९४५	७,७८८,०००	२५०,९६०
१९४६	८,३७९,०००	३२२,३१९
१९४७	९,३८१,१९३	४६८,७११
१९४८	९,१३६,५७६	५४८,५०४

सुपर-फास्फेट का निर्माण

सुपर-फास्फेट पहले हाथों से बनता था। प्रज्ज्वलित हड्डी अथवा पीसे हुए कोप्रोलाइट को गड्ढे में रखकर उसमें सलफ्यूरिक अम्ल डालकर मिलाते थे। पीछे मिश्रित करने के लिए एक बक्स बना जिसमें प्रायः ५० टन अँट सकता था। पर इस बक्स से निकालने का काम हाथों से ही होता था। पीछे मिश्रित करने के लिए भी यंत्र बने।

हड्डी काटने के लिए भी बक्स में चाकू लगे और निर्माण का सारा काम धीरे-धीरे यंत्रों से ही होने लगा। आज सुपर-फास्फेट के निर्माण का सारा कार्य यंत्रों से ही होता है।

हड्डी या खनिज फास्फेट को पहले चूर-चूर करते या चक्की में पीसते हैं। इसे फिर बड़े-बड़े पात्रों में रखकर अम्ल मिलाते हैं। अम्लों में नाइट्रिक, हाइड्रोक्लोरिक, फास्फरिक और सलफ्यूरिक अम्ल इस्तेमाल कर सकते हैं। साधारणतया सलफ्यूरिक अम्ल का ही उपयोग होता है क्योंकि यह सस्ता होता है और सरलता से प्राप्य तथा अन्यथा भी अधिक सुविधाजनक होता है। जो सलफ्यूरिक अम्ल प्रयुक्त होता है उसका विशिष्ट गुरुत्व १.५ से १.६ रहता है। ऐसे अम्ल में सलफ्यूरिक अम्ल की वास्तविक मात्रा प्रायः ६० से ७० प्रतिशत रहती है। यह अम्ल सीस-कक्ष विधि से अथवा संस्पर्श प्रकम से तैयार होता है। भिन्न-भिन्न खनिजों के लिए सलफ्यूरिक अम्ल की मात्रा विभिन्न होती है। यह खनिज में उपस्थित अवयवों पर निर्भर करता है। खनिज के विश्लेषण से अवयवों का पता लगाकर तब सलफ्यूरिक अम्ल की मात्रा का आगणन कर उसी के अनुसार अम्ल प्रयुक्त करना चाहिए।

किस लवण में कितना अम्ल लगता है

एक पौण्ड लवण में	कितना अम्ल (पौण्ड में किस बल का) लगता है	
	विशिष्ट गुरुत्व १.५	विशिष्ट गुरुत्व १.६
ट्राइ-कैलसियम फास्फेट [$Ca_3(PO_4)_2$]	१.०४०	०.९०७
कैलसियम फ्लोराइड (CaF_2)	२.०६७	१.८०३
फेरिक आक्साइड (Fe_2O_3)	१.६०१	१.३९७
एलूमिना (Al_2O_3)	१.९७५	१.७२३
कैलसियम कार्बोनेट ($CaCO_3$)	१.६१३	१.४०७

फास्फेट चट्टान ऐसा पीसा हुआ रहना चाहिए कि वह ४-अक्षि चलनी में छन जाय। तब इसे मिश्रक में रखकर सलफ्यूरिक अम्ल डालकर पूर्ण रूप से मिला देते हैं। मिश्रक ऐसा होता है कि उसको ४० से ५० टन प्रति घण्टा मिलाया जा सके। जिस बक्स में यह मिलाया जाता है उसकी धारिता १०० से ३०० टन की होती है। २ से ३ घण्टे

में ये पूर्ण रूप से मिल जाते हैं। तब यह एक गड्ढे में या दूसरे बक्स में डाल दिया जाता है। इस बक्स में ही अधिकांश क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। क्रिया के सम्पादन में कुछ ही घण्टे लगते हैं, पर वहाँ यह २४ से ३६ घण्टा रखा जाता है ताकि वह अभि-साधित हो जाय। किसी किसी कारखाने में बक्स से वह उसी दिन निकाल लिया जाता है। बक्स में उसका ताप बढ़ता है और कभी कभी १००° से० तक पहुँच जाता है। अभि-साधन के समय उसके आयतन में कमी होती है। यह कमी कम से कम १० प्रतिशत होती है, कमी का कारण जल, कार्बन डाइ-आक्साइड और फ्लोरीन यौगिकों का निकलना है। अभि-साधन से जल-विलेय और सिट्रेट-अविलेय फास्फेट की मात्रा कम होती और सिट्रेट-विलेय फास्फेट की मात्रा बढ़ जाती है। कैलसियम सल्फेट शुष्ककारक का काम करता और कुछ ही दिनों में पिण्ड बन जाता है, तब उसे तोड़ने और गरम कर सुखाने की आवश्यकता पड़ती है। सुखाना सीधे आँच पर अथवा उष्ण वायु-प्रवाह से अथवा महीन पीसे हुए फास्फेट चट्टान की धूल डालने से होता है।

अब सुपर-फास्फेट को कुछ समय के लिए, दो सप्ताह से कुछ मास तक, सूखने के लिए रख देते हैं। सूखने के साथ-साथ उसका अभिसाधन भी होता है। अभिसाधन के होने से वह फिर पिंड नहीं बनता, ड्रिल में चिपकता नहीं है। दानेदार सुपर-फास्फेट का अभिसाधन दो सप्ताह में और अन्य चट्टान सुपर-फास्फेटों का अभिसाधन चार से दस सप्ताह में होता है। पिंड बनना रोकने के लिए कभी कभी चूना-पत्थर, बुझा हुआ चूना, जीर्णक या गोबर की खाद या अन्य कार्बनिक पदार्थ डाल देते हैं।

इन प्रतिक्रियाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के यंत्र बने हैं। कहीं तो बक्स एक बड़े घूमते हुए सिलिंडर में रहता है जो सिलिंडर ३ घण्टे में एक घूर्णन बनाता है। एक दूसरे प्रकार का बक्स बड़ा वृत्ताकार नल होता है जो चक्र-सा घूमता है और ऐसा बना होता कि उत्पाद स्वतः निकलता रहता है। बक्स के स्थान में घूर्णक औटोक्लेव का भी उपयोग होता है जिसमें फास्फेट और अम्ल दबाव में रखे होते हैं। भाप से उसे गरम करते और पम्प से दबाव उत्पन्न करते हैं। प्रायः एक घण्टे में सारी क्रियाएँ सम्पादित हो जाती हैं और जब उत्पाद कठोर और दानेदार हो जाता है तब निकाल लिया जाता है। सुखाने का काम घूर्णक ड्रम किस्म के शुष्ककारक में होता है, यह वैसा ही ड्रम होता है जैसा सीमेन्ट के तैयार करने में प्रयुक्त होता है।

फास्फेट में आवश्यकता से अधिक अम्ल नहीं इस्तेमाल करना चाहिए, नहीं तो उससे असंयुक्त फास्फरिक अम्ल बनता है। ऐसा उत्पाद भींगा होता है और बोरे को नष्ट कर देता है।

रासायनिक क्रिया

पीसे हुए फास्फेट में जब सलफ्यूरिक अम्ल डाला जाता है तब क्रिया प्रायः इस प्रकार की होती है—

$$[Ca_3(PO_4)_2]_3 \cdot CaF_2 + 7H_2SO_4 + 3H_2O$$
$$= 3CaH_4(PO_4)_2 \cdot H_2O + 7CaSO_4 + 2HF$$
$$[Ca_3(PO_4)_2]_3 \cdot CaCO_3 + 7H_2SO_4H_2O$$
$$= 3CaH_4(PO_4)_2 \cdot H_2O + 7\,CaSO_4$$
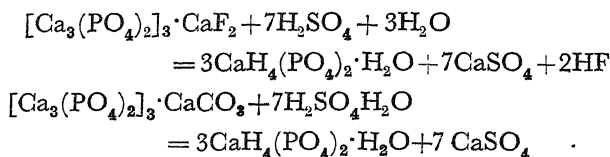
सुपर-फास्फेट का कड़ा होना जो देखा जाता है वह मोनो कैलसियम फास्फेट के जलीयन के कारण होता है। सुपर-फास्फेट में साधारणतया दो भाग मोनो कैलसियम फास्फेट और तीन भाग कैलसियम सल्फेट रहता है। चूँकि फास्फेट चट्टान में कुछ कैलसियम कार्बोनेट, कैलसियम फ्लोराइड, फेरिक फास्फेट और अलूमिनियम सिलिकेट भी रहते हैं, सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा विच्छेदित हो ये जल, कार्बन डाइ-आक्साइड, हाइड्रो फ्लुओरिक अम्ल और अन्य गैसें निकालते हैं। अतः सुपर-फास्फेट का भार फास्फेट और अम्ल के सम्मिलित भार से कम होता है। एक टन फास्फेट की प्राप्ति के लिए लगभग ११·७ हंडरवेट फास्फेट और १०·५ हंडरवेट अम्ल (७० प्रतिशतवाला) लगता है।

फास्फेट पर सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया से फास्फेट का केवल दो-तृतीयांश आक्रान्त होता है। शेष एक-तृतीयांश मुक्त फास्फरिक अम्ल से आक्रान्त होता है। फास्फरिक अम्ल अपेक्षया दुर्बल अम्ल है। अतः इसकी क्रिया बड़ी धीमी होती है। इसी लिए उत्पाद के अभिसाधन की आवश्यकता पड़ती है।

सलफ्यूरिक अम्ल के स्थान में यदि नाइट्रिक या हाइड्रो क्लोरिक अम्ल का व्यवहार हो तो उससे फास्फरिक अम्ल नहीं मुक्त होता। पर इससे कैलसियम नाइट्रेट या कैलसियम क्लोराइड बनता है जो आर्द्रताग्राही होता है और इससे सुपर-फास्फेट की भौतिक दशा अच्छी नहीं होती। कुछ पौधों के लिए अधिक कैलसियम क्लोराइड विषाक्त भी होता है। नाइट्रिक और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मँहगे भी होते हैं।

अमेरिका में तो पेट्रोलियम के परिष्कार में प्रयुक्त सलफ्यूरिक अम्ल सुपर-फास्फेट के निर्माण में काम आता है। इसमें कुछ अल्कील समूह रहता है पर उससे सुपर-फास्फेट के प्रभाव में कोई कमी नहीं पायी गयी है।

सिन्दरी का सुपर-फास्फेट कारखाना

सिन्दरी में सुपर-फास्फेट का कारखाना अभी खुला है। इस कारखाने में अभी

१५,००० से १६,००० टन सुपर-फास्फेट प्रति वर्ष तैयार हो रहा है। पर यदि सल-फ्यूरिक अम्ल का उत्पादन बढ़ाया जा सके तो वार्षिक उत्पादन ६०,००० टन तक बढ़ सकता है। बिहार राज्य के औद्योगिक विभाग के प्रबन्ध में यह कारखाना चल रहा है पर सुझाव है कि इसके लिए एक कारपोरेशन बना दिया जाय अथवा यह एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी में परिणत कर दिया जाय।

सुपर-फास्फेट के संयन्त्र

सिन्दरी सुपरफास्फेट के कारखाने में सुपरफास्फेट के जो संयन्त्र बैठाये गये हैं वे कुनेमान (Kuhnemann) विधि पर आधारित हैं। कारखाने में दो प्रधान संयन्त्र हैं। एक संयन्त्र में स्पर्श विधि से सलफ्यूरिक अम्ल तैयार होता है और दूसरे संयन्त्र में सुपरफास्फेट बनता है।

स्पर्श अम्ल संयन्त्र की धारिता २५ टन की है। इस संयन्त्र को इंगलैंड के मेसर्स पावर गैस कारपोरेशन ने बनाया है। इसके कल्पन (design) करने वाले मेसर्स स्यानामिड प्रोडक्टस् लिमिटेड हैं। सुपरफास्फेट के संयन्त्र में प्रति घण्टा १० टन सुपरफास्फेट तैयार हो सकता है। इस संयन्त्र और गैस मार्जक तन्त्र के बनाने वाले, एक फ्रेंच कम्पनी, मेसर्स एटेलिये पिंग्रिस एत मोलेत-फौण्टेन (Ateliea Pingris et Mollet Foutain) हैं अब जिसका नाम स्पाइकिम (Speichim) पड़ा है। पीसने की चक्की फ्रांस के मेसर्स रेने एन जीन मौरित्श (Rene at Jean Moritz) से खरीदी गयी है। वाही और बोरेबन्दी की मशीन सार के मेसर्स 'मेयरएत साइ' (Meyer et Cie) से खरीदी गयी है। सब मशीनों के बैठाने और कारखाने के सम्बन्ध में परामर्श देनेवाली संस्था फ्रांस के टेक्नीकल सोसाइटी आफ केमिकल एन्टर-प्राइजेज (Societe Technique d' Enterprises Chemiqnes) है। सब मशीनें भारतीयों के द्वारा बैठायी गयी हैं और इसके कार्य करने की देखरेख केवल भारतीयों के द्वारा हो रही है।

कच्चा माल

सुपरफास्फेट तैयार करने में एपेटाइट (चट्टान-फास्फेट) और सलफ्यूरिक अम्ल लगते हैं। अभी एपेटाइट बाहर से आता है। संसार का एपेटाइट अधिकांश अलजीरिया, मोरक्को, ट्यूनिशिया, जोर्डन, इजिप्ट, फ्रांस, अमेरिका, चीन और रूस में उत्पन्न होता है। भारत के केवल सिंहभूम जिले में एपेटाइट का निक्षेप पाया गया है। भारत का भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग इस निक्षेप का अनुसन्धान कर रहा है। आशा की जाती है

कि शीघ्र ही यहां का निक्षेप सुपरफास्फेट के निर्माण के लिए प्राप्त हो सकेगा। तब सुपर-फास्फेट के निर्माण का खर्च बहुत कुछ कम हो जायगा।
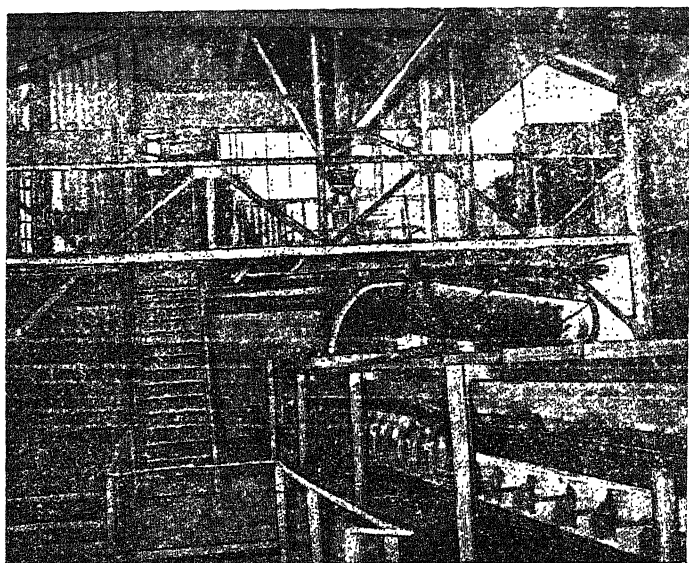
चित्र २९—सिंदरी के सुपरफास्फेट कारखाने का भीतरी दृश्य

स्पर्श विधि से सलफ्यूरिक अम्ल तैयार करने में गन्धक इस्तेमाल होता है। गन्धक बाहर से आता है। जापान, चीन, इटली और अमेरिका के संयुक्त राज्य गन्धक बाहर भेजते हैं। भारत में गन्धक नहीं होता। पर गन्धक के एक प्रमुख खनिज लौह-माक्षिक (iron pyrites) का निक्षेप उत्तर प्रदेश और बिहार के शाहाबाद के अमजोर स्थान में पाया गया है। अमजोर का निक्षेप कितना विस्तृत है इसका अनुसन्धान हो रहा है। इस निक्षेप के विस्तार का पता लग जाने पर ही उससे सलफ्यू-रिक अम्ल तैयार करने का संयन्त्र बैठाया जा सकेगा। तब सुपरफास्फेट के निर्माण का खर्च और कम हो जायगा। अभी रांची के निकट गोमिया में विस्फोटक पदार्थों के निर्माण का जो कारखाना मेसर्स इण्डियन एक्स प्लोसिवृज लिमिटेड खुल रहा है उससे प्रतिदिन ७ टन तक सलफ्यूरिक अम्ल खरीदने का प्रबन्ध हो गया है।

सुपरफास्फेट का निर्माण

सुपरफास्फेट के निर्माण में दो क्रम हैं। एक क्रम में एपेटाइट पीसा जाता है और दूसरे क्रम में पीसे हुए एपेटाइट का सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा उपचार होता है।

सलफ्यूरिक अम्ल का संयन्त्र

सलफ्यूरिक अम्ल स्पर्श विधि से तैयार होता है। उसकी धारिता प्रति दिन २५ टन अम्ल तैयार करने की है। इसके लिए गन्धक ९९·५ प्रतिशत शुद्धता का
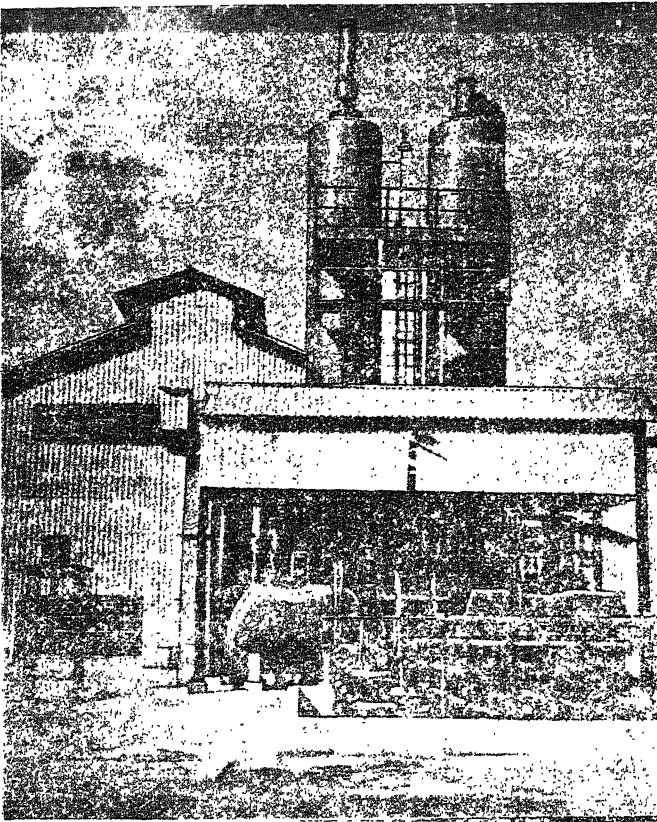
चित्र ३० — सलफ्यूरिक अम्ल संयन्त्र

उपयुक्त होता है। गन्धक को पहले एक गड्ढे में भाप कुण्डली द्वारा प्रायः १३०° से० तक गरम करके पिघलाते हैं। इस पिघले गन्धक को फिर भट्ठे में कणीकरण (atomise) करते हैं और तब उसे वायु में जलाकर सल्फर डाइ-आक्साइड में परिणत करते हैं। अब सल्फर डाइ-आक्साइड और वायु के आधिक्य को मिला कर ९००-१०००° से० से ठंडा कर ४२०° से० पर लाते हैं। ऐसा करने के लिए मिश्रण को अवशिष्ट उष्मा बायलर और सल्फर डाइ-आक्साइड शीतक में लाते हैं। वहां से गैस मिश्रण अनेक फिल्टर स्तरों और उत्प्रेरक स्तरों द्वारा पारित होता है जहाँ सल्फर डाइ-आक्साइड सल्फर ट्राइ-आक्साइड में परिणत होता है। अब उष्ण गैसों को शीतक से ठंडा कर लगभग २०° से० ताप पर लाकर शोषण मीनार में ले जाते हैं जहां ९८ प्रतिशत सामर्थ्य का सलफ्यूरिक अम्ल अविरत धारा में गिरता रहता है। यहां सल्फर ट्राइ-आक्साइड अवशोषित हो ९९ प्रतिशत सामर्थ्य का अम्ल बनता है।

सुपरफास्फेट संयन्त्र

एपेटाइट खनिज को रेल डब्बों से उतार कर पट्टवाही द्वारा गोदाम में रखते हैं। गोदाम में ६००० टन चट्टान रखा जा सकता है। गोदाम से चट्टान भारवाहक (loader) द्वारा उठाकर बाल्टी उच्चालित्र (bucket elevator) द्वारा निवाप (कीप) में डाला जाता है। निवाप से वह बन्द पेषण-चक्की में जाता है जहां एक पंखा और चक्रवात पृथक्कारक (Cyclone separator) लगा रहता है। एपेटाइट इतना महीन पीसा जाता है कि उसका ८५ प्रतिशत १००-अक्षि-चलनी से चल जाय। चूर्ण अब दो बड़े-बड़े निवापों में इकट्ठा होता है। प्रत्येक निवाप (कीप) के पेंदे में पेंचवाही कार्य करती है जो बाल्टी उच्चालित्र में सामग्री को डालती है जिससे सामग्री फिर निवाप द्वारा ऊपर के पेंच पट्टवाही में जाता है।

कीप के नीचे तौल-मशीन रहती है जिसमें एपेटाइट का चूर्ण तौला जाता है। वहां से वह मिश्रक में जाता है। मिश्रक में दूसरी ओर से ७० प्रतिशत सामर्थ्य का तनु सलफ्यूरिक अम्ल आता है। यह ऊपर से घूर्णक प्रदाय (Rotatory feeder) द्वारा प्रविष्ट होता है। चूर्ण और अम्ल मिलकर स्लरी बनता है। बड़ी मन्द चाल से घूरते हुए और ढांप से ढके हुए स्लरी वाही-पट्ट द्वारा पारित होता है। फ्लोरीन के यौगिक, कार्बन डाइ-आक्साइड और भाप रबर-अस्तरित मीनार द्वारा खींच लिये जाते हैं। मीनार में पानी का जेट लगा रहता है। कैलसियम फ्लुओसिलिकेट सदृश आलम्बित पदार्थ पृथक् हो जाते हैं। केवल स्वच्छ वायु और जल ही क्रमशः चिमनी और पनाला द्वारा निकल जाते हैं।

पट्ट पर जो सुपरफास्फेट निकलता है वह प्रायः सूखा और सरन्ध्र होता है। सुपरफास्फेट एक घूर्णक शोधक (Cleaner) द्वारा निकल कर दूसरी वाही होकर गोदाम ले चला जाता है। गोदाम में ९००० मन सुपरफास्फेट के रखने का स्थान रहता है। ऊपर से जाती हुई दो वाही दो स्थानों में सुपरफास्फेट को इकट्ठी करती हैं। एक सप्ताह के अभिसाधन और वायु में सुखाई से उत्पाद एक भारवाहक द्वारा निवाप में जाता है जहां ढेले एक भंजक द्वारा तोड़ कर चाल दिये जाते हैं। जो बड़े ढेले चलते नहीं वे हथौड़े से तोड़ने वाली मशीन में तोड़ कर फिर चाल लिये जाते हैं। चाले हुए पदार्थ फिर दो निवायों में इकट्ठे किये जाते हैं। वहां से तौलने की मशीन में तौल कर प्लास्टिक-अस्तरित जूट के बोरे में भरकर, सिलाई कर वाही द्वारा मालगाड़ी के डिब्बों में भरे जाते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक सारा कार्य मशीनों के द्वारा ही होता है।

प्रत्येक नमूने का कारखाने के रसायनशाला में विश्लेषण होता है। ऐसे प्राप्त सुपरफास्फेट के विश्लेषणांक इस प्रकार के हैं। भारत मानक संस्था ने जो मानक नियत किया है उसके अंक भी साथ-साथ दिये जा रहे हैं—

	वास्तविक विश्लेषणांक	भारतीय मानक अंक
जल	१०·१ प्रतिशत	१२·० प्रतिशत (अधिकतम)
असंयुक्त P_2O_5	१·४ ,,	३·० प्रतिशत (अधिकतम)
जल विलेय P_2O_5	१६ ,,	१६ प्रतिशत (न्यूनतम)

नोट—ये अंक निर्माणकाल के तुरन्त बाद के हैं। अभिसाधन से जल विलेय P_2O_5 की मात्रा १८ प्रतिशत तक हो जाती है।

इस कारखाने का समस्त सुपरफास्फेट अभी बिहार में ही खप जाता है। अन्य प्रदेशों से इसकी मांग आ रही है और वहां भेजने की बात विचाराधीन है। बिहार में सुपरफास्फेट की वार्षिक खपत १०,००० टन है पर आशा की जाती है कि वार्षिक खपत बढ़कर १५,००० टन हो जायगी।

१९५६ में जितने सुपरफास्फेट के कारखाने भारत में थे उनके वार्षिक उत्पादन की क्षमता २००,००० टन थी पर वास्तविक उत्पादन केवल ८२,००० टन था। १९५७ में उत्पादन १४२,००० टन हो गया था।

भारत में नाइट्रोजन और फास्फेट उर्वरकों की खपत बहुत कम $N : P_2O_5$ :: ७ : १ अनुपात में है जब कि अन्य उन्नत देशों में यह अनुपात २ : १ है। भारत में दोनों उर्वरकों का अनुपात कम से कम ३ : १ होना चाहिए। इसके लिए प्रति वर्ष १२०,०००

टन P_2O_5 की आवश्यकता पड़ेगी। खाद्य और कृषि मिनिस्ट्री का अनुमान है कि सुपरफास्फेट की मात्रा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार बढ़नी चाहिए—

	P_2O_5 टन में	सुपरफास्फेट टन में
१९५६-५७	५०,०००	३००,०००
१९५७-५८	६०,०००	३६०,०००
१९५८-५९	८०,०००	४८०,०००
१९५९-६०	१००,०००	६००,०००
१९६०-६१	१२०,०००	७२०,०००

इनमें ५००,००० टन सुपरफास्फेट और शेष में अन्य फास्फेट उर्वरक रह सकता है।

सिन्दरी के सुपर-फास्फेट के कारखाने में फास्फेट और नाइट्रोजनीय उर्वरकों को मिलाकर मिश्रित उर्वरक तैयार करने का प्रयत्न होने वाला है। यदि ऐसा हो जाय तो किसानों को पर्याप्त सुविधा होगी। उन्हें दोनों प्रमुख उर्वरकों को अलग-अलग खरीदना नहीं पड़ेगा।

नाइट्रिक-फास्फेट

कुछ कम्पनियाँ सलफ्यूरिक अम्ल के स्थान में नाइट्रिक और सलफ्यूरिक अम्ल का मिश्रण प्रयुक्त करती हैं। ऐसा नाइट्रिक-फास्फेट उर्वरक सिट्रेट-विलेय होता है। १० से ४० प्रतिशत इसका जल में विलेय होता है। इसका महत्त्व इस कारण है कि इसमें फास्फरस और नाइट्रोजन दोनों रहते हैं तथा इससे नाइट्रोजनीय और फास्फ-रीय दोनों खादों की पूर्ति होती है।

सुपर-फास्फेट के लक्षण

बाजारों में बिकनेवाला सुपर-फास्फेट धूसर रंग का चूर्ण होता है। यह अंशतः जल में विलेय होता है। इसकी गंध अम्लीय होती और लिटमस के प्रति भी अम्लीय होता है। इसमें उपलब्ध फास्फरिक अम्ल की मात्रा १४ से २५ प्रतिशत रहती है। सिट्रेट-अविलेय फास्फरिक अम्ल अल्प मात्रा में रहता है। सुपर-फास्फेट में ५ प्रति-शत तक कैलसियम कार्बोनेट रहना हानिकारक नहीं है वरन् इससे लाभ ही होता है। फ्लोरीन का रहना अच्छा नहीं है क्योंकि फास्फेट को यह अविलेय बना देता है। लोहा और अलूमिनियम फास्फेट का भी न रहना अच्छा है क्योंकि इससे फास्फेट की विलेयता कम हो जाती है। जिस सुपर-फास्फेट में १६ से १८ प्रतिशत फ़ास्फेट विलेय हो वह उत्कृष्ट कोटि का फास्फेट समझा जाता है।

सुपर-फास्फेट में १९ से २२ प्रतिशत कैलसियम और १० से १२ प्रतिशत गन्धक रहता है। सामान्य सुपर-फास्फेट का विश्लेषण यह है—

सामान्य सुपर-फास्फेट का संगठन

अवयव	प्रतिशत
मोनो कैलसियम फास्फेट $CaH_4(PO_4)_2H_2O$	२६·६०
डाइ कैलसियम फास्फेट $Ca_2 H_2 (PO_4)_2H_2O$	२·४०
ट्राइ कैलसियम फास्फेट $Ca_3 (PO_4)_2$	२·२०
कैलसियम सल्फेट, जिपसम के रूप में ($CaSO_4$, $2H_2O$)	५०·१२
सिलिका (SiO_2)	७·००
लोह और अलूमिनियम सल्फेट $Fe_2(SO_4)_3$, $Al_2(SO_4)_3$	४·००
कैलसियम फ्लोराइड (CaF_2)	१·३८
जल (H_2O)	६·००

डबल सुपरफ़ास्फेट और ट्रिबल सुपरफास्फेट

सामान्य सुपर-फास्फेट में फास्फ़रिक अम्ल की मात्रा कम रहती है। फास्फरिक अम्ल की मात्रा ५० प्रतिशत तक बढ़ायी जा सकती है। डबल फास्फेट में फास्फरिक अम्ल की मात्रा ४५ से ४८ प्रतिशत, कैलसियम की मात्रा प्रायः १४ प्रतिशत और गन्धक की मात्रा प्रायः १·६ प्रतिशत रहती है। डबल फास्फेट के अन्य नाम भी रखे गये हैं। इन्हें एसिड फास्फेट आफ लाइम, वन-लाइम फास्फेट, ट्रिबल या मल्टिप्ल फास्फेट, इलेक्ट्रो फोस, ट्रिबल सुपरफास्फेट इत्यादि भी कहते हैं। डबल फास्फेट इस कारण कहते हैं कि चट्टानों पर दो क्रमों की क्रिया से यह तैयार होता है। पहले क्रम में फास्फेट-चट्टान पर सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया से फास्फरिक अम्ल बनता है और दूसरे क्रम में फास्फेट चट्टान पर फास्फरिक अम्ल की क्रिया से डबल सुपरफास्फेट बनता है। ऐसे सुपरफास्फेट दो ग्रेड के होते हैं। डबल सुपरफास्फेट में फास्फरिक अम्ल प्रायः ३२ प्रतिशत और ट्रिबल सुपरफास्फेट में ४०—४७ प्रतिशत रहता है। अनेक कारखाने हैं जो इस प्रकार का सान्द्र सुपर-फास्फेट तैयार करते हैं। ये निम्न कोटि के चट्टान-फास्फेट प्रयुक्त करते हैं, ऐसे फास्फेट जो सामान्य सुपर-फास्फेट तैयार करने के लिए ठीक नहीं हैं। ऐसे डबल सुपर-फास्फेट का उपयोग अब बहुत बढ़ रहा है।

ऐसे डबल सुपर-फास्फेट तैयार करने के लिए पहले फास्फरिक अम्ल तैयार करते हैं। फास्फरिक अम्ल तैयार करने की दो विधियाँ हैं, एक आर्द्र विधि और दूसरी भ्राष्ट्र विधि।

आर्द्र विधि में फास्फेट चट्टान को पीसकर उसमें सलफ्यूरिक अम्ल मिलाते हैं। 'इससे फास्फरिक अम्ल मुक्त होता है। फास्फरिक अम्ल को निथार और छानकर अलग कर लेते हैं। ऐसे फास्फरिक अम्ल में २५ से २८ प्रतिशत H_3PO_4 रहता है। यह फास्फरिक अम्ल निम्न कोटि का होता है। आजकल ऐसे यन्त्र बने हैं जिनमें इस्पात का शंकु रहता है। इसी शंकु में फास्फेट चट्टान और फास्फरिक अम्ल साथ-साथ प्रवेश कर मिश्रित होकर गाढ़े 'स्लरी' रूप में शंकु से निकलकर चलवाहक पट्ट पर निकलकर पट्ट पर ही शीघ्र सूख जाते हैं। एक छोटा शंकु जिसकी तौल १०० पौण्ड से कम ही होती है, प्रति घण्टा ४० टन तक खाद तैयार कर सकता है।

भ्राष्ट्र विधि में फास्फेट को रेत और कोक के साथ मिलाकर भ्राष्ट्र में उच्च ताप पर गरम करते हैं। इससे फास्फरस वाष्पीभूत हो निकल जाता और उसका स्थान सिलिकन ले लेता है। कैलसियम सिलिकेट पिघले हुए धातु-मल के रूप में निकल जाता और फास्फरस आक्सीकृत हो फास्फरस पेण्टाक्साइड बनता है जो जल में घुलकर फास्फरिक अम्ल बनता है। यहाँ क्रियाएँ इस प्रकार होती हैं—

$$[Ca_3(PO_4)_2]_3CaCO_3 + 9SiO_2)$$
$$= 9CaSiO_3 + 3P_2O_5 + CaCO_3$$
$$P_2O_5 + 3H_2O = 3H_3\ PO_4$$
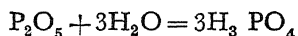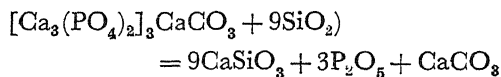
इस प्रकार से तैयार फास्फरिक अम्ल में वास्तविक अम्ल ९० प्रतिशत तक रहता है। खाद के अतिरिक्त अन्य कामों के लिए भी इसका उपयोग हो सकता है। इसमें उपजात के रूप में जो कैलसियम सिलिकेट बनता है उसका उपयोग खेतों में चूने के स्थान में हो सकता है।

भ्राष्ट्र विधि में ईंधन-भ्राष्ट्र और वैद्युत भ्राष्ट्र दोनों प्रयुक्त होते हैं। वैद्युत भ्राष्ट्र अधिक सुविधाजनक होता है। इससे फास्फरिक अम्ल अधिक प्राप्त होता है, यद्यपि ईंधन-भ्राष्ट्र में भी इधर सुधार हुआ है जिससे अच्छा और पर्याप्त फास्फरिक अम्ल प्राप्त हो सकता है। अमेरिका में १६१ संयन्त्र हैं जिनमें डबल सुपर-फास्फेट आज तैयार होता है।

ग्वानो

कुछ ऐसे टापू हैं जहाँ समुद्री पक्षी अण्डे देते हैं। इन टापुओं में पक्षियों की

विष्ठा और अवशेष पर्याप्त मोटाई में पाये जाते हैं। पेरू के निकट कुछ टापुओं में ग्वानो लगभग १०० फुट की मोटाई में पाया गया है। खाद के लिए ग्वानो का व्यवहार पुराना है। ग्वानो के ऐसे ही निक्षेप दक्षिण अफ्रीका के तटों के निकट और वेस्ट इण्डीज़ में भी पाये गये हैं। ग्वानो का संगठन एक सा नहीं होता। वर्षा के कारण उसकी प्रकृति बदलती रहती है। ग्वानो में साधारणतया १४ प्रतिशत नाइट्रोजन और २० प्रतिशत कैलसियम फास्फेट रहता है। अतः ग्वानो भी फास्फेट खाद के महत्त्व का एक स्रोत है। इसका विस्तृत विवरण कार्बनिक खाद प्रकरण में किया गया है। (पृ० २३८, २४३)

बेसिक स्लैग

इस्पात के कारखाने में उपजात के रूप में बेसिक स्लैग प्राप्त होता है। यूरोप के लोह खनिजों में फास्फरस अधिक रहता है। अमेरिकी लोह खनिजों में फास्फरस कम रहता है। अतः बेसिक स्लैग यूरोप में अधिक बनता है। द्वितीय विश्व युद्ध के पहले यूरोप में लगभग ५० लाख टन बेसिक स्लैग प्रति वर्ष तैयार होता था। बेसिक स्लैग अन्य फास्फेट खादों की अपेक्षा अधिक स्थान छेंकता है। बाजारों में बेसिक स्लैग 'बेसिक स्लैग मील' के नाम से बिकता है। इसे पहले बेसिक सिंडर और टौमस फास्फेट भी कहते थे। इसे एक समय गन्धकरहित फास्फेट और लौह फास्फेट भी कहते थे। ताता आयर्न और स्टील कम्पनी लगभग १००,००० टन बेसिक स्लैग प्रति वर्ष तैयार करती है।

बेसिक स्लैग शब्द धातु-कर्म क्रिया से आया है। धातु-खनिजों में अपद्रव्य रहते हैं। उन्हें निकालने के लिए द्रावक (flux) डाला जाता है। अपद्रव्य द्रावक के साथ मिलकर स्लैग बनता है। क्षारीय अपद्रव्यों के निकालने में जो पदार्थ डालकर गरम किया जाता है उससे एसिड स्लैग बनता है। अम्लीय अपद्रव्यों के दूर करने में जो पदार्थ डालकर गरम किया जाता है उससे बेसिक स्लैग बनता है।

बेसिक स्लैग का निर्माण

पहले बेसेमर विधि से इस्पात तैयार होता था। इस विधि में टौमस और गिलक्रिस्ट ने सन् १८७७ में सुधार किया। यह सुधारित विधि ही आज इस्पात के निर्माण में प्रयुक्त होती है।

कच्चे लोहे में फास्फरस, सिलिकन, गन्धक और कैलसियम इत्यादि अपद्रव्य मिले रहते हैं। इसे ऐसे बेसेमर परिवर्तक में रखते हैं जिसमें चूने का आस्तर लगा हुआ है। उसमें फिर वायु प्रविष्ट कराते हैं। जब परिवर्तक का ताप एक विशिष्ट

ताप पर पहुँच जाता है तब चूना पिघलकर अम्लीय अपद्रव्यों के साथ मिलकर लोहे से हलका पदार्थ बनता है जो लोहे के ऊपर तैरता है। गैसें बाहर निकल जाती हैं। यही हलका पदार्थ स्लैग है। ऊपर से यह निकाल लिया जाता है। ठंडा होने पर यह कड़ा कोयला सा पिंड बन जाता है। इसे फिर भारी रोलर मशीन में तोड़कर छोटा-छोटा करते और अन्त में बहुत महीन पीसते हैं। यह महीन चूरा खाद के लिए बिकता है। ऐसा चूरा यूरोप में बहुत बनता था और खाद के लिए बिकता था। इसमें फास्फरिक अम्ल १७ से २० प्रतिशत रहता है।

बेसेमर विधि के स्थान में एक अन्य विधि प्रयुक्त होती है। इस विधि को 'खुली भट्ठी विधि' कहते हैं। इस विधि में अपद्रव्यों को लोहे के खनिज के साथ ही आक्सीकृत करते हैं। यहाँ अपद्रव्यों के आक्सीकरण के साथ-साथ खनिज अवकृत हो लोहा बनता है। यहाँ खनिज और चूने को खुली भट्ठी में गरम करते हैं। फिर उसमें पिघला हुआ कच्चा लोहा डालते हैं। समय-समय पर चूना और खनिज को डालते हैं। कभी-कभी फ्लुओर स्पार—१० टन चूने में ७५ पौण्ड फ्लुओर स्पार—भी डालते हैं। इससे स्लैग की श्यानता कम हो जाती है। यदि चूने या फ्लुओर स्पार की मात्रा आवश्यकता से बहुत अधिक हो तो फास्फरीय स्लैग की विलेयता घट जाती है। फ्लुओर स्पार के डालने से ऐसा कृत्रिम एपेटाइट बनता है जो प्राकृतिक फ्लुओर एपेटाइट सा होता है। ऐसी खुल्ली भट्ठी के बेसिक स्लैग में बेसेमर बेसिक स्लैग के फास्फरस की मात्रा कुछ कम रहती है। इसमें कुछ कैलसियम फ्लोराइड भी रहता है जो पौधों की वृद्धि के लिए विषाक्त होता है। फ्लोरीन का रहना इस कारण भी हानिकारक है कि इससे फास्फेट की विलेयता कम हो जाती है जिससे फास्फेट के ग्रहण करने में पौधे असमर्थ होते हैं। ऐसे स्लैग में फास्फरिक अम्ल की मात्रा १५' प्रतिशत से कदाचित् ही अधिक रहती है। इसमें कैलसियम और मैगनीशियम आक्साइड ५० से ६० प्रतिशत रहते हैं।

फासफोरीय खादों में बेसिक स्लैग सबसे सस्ता होता है। प्रति वर्ष प्रायः ५० लाख टन के लगभग यह तैयार होता है। केवल अमेरिका में इसका उपयोग लगभग ४०,००० टन होता है। "टौमस फास्फेट" के नाम से यह बिकता है।

बाजारों में जो बेसिक स्लैग बिकता है वह धुँधला धूसर वर्ण का चूर्ण होता है। चूने के रहने के कारण लिटमस के प्रति वह क्षारीय होता है। यदि उसे आर्द्र स्थान में रखें तो वह ढेला बन जाता है। इसका फास्फरस २ प्रतिशत सिट्रिक अम्ल में घुलता है। अतः पौधों को यह ग्राह्य होता है। यदि बेसिक स्लैग बहुत महीन पिसा हुआ हो और उसमें सिलिकन मिला रहे तो वह पौधों को अधिक ग्राह्य होता है। पर फ्लोरीन

की वृद्धि से ग्राह्यता घट जाती है। खेतों में बेसिक स्लैग डालने से कार्बन डाइ-आक्साइड के द्वारा वह अधिक ग्राह्य रूप में परिणत हो जाता है।

अमेरिका के बेसिक स्लैग का विश्लेषण

	प्रतिशत
फास्फरस पेन्टाक्साइड (P_2O_5)	८–१०
आयर्न आक्साइड (Fe_2O_3)	१५–१८
कैलसियम सिलिकेट ($CaSiO_3$)	६–८
मैगनीशियम आक्साइड (MgO)	५–७
कैलसियम आक्साइड(CaO)	४५–४८
मैंगनीज़	२–४
सूक्ष्मता—८० प्रतिशत १००-अक्षि चलनी में छन जाता है।	

बेसिक स्लैग का संगठन क्या है, इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है। कुछ लोगों का मत है कि बेसिक स्लैग में फास्फेट और सिलिकेट के डबल लवण रहते हैं। ऐसे यौगिक का सूत्र यह समझा जाता है—

$$[(CaO)_5 . P_2O_5 . SiO_2]$$
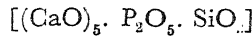
पर कुछ रसायनज्ञों का मत है कि इसमें टेट्रा-कैलसियम फास्फेट ($Ca_4P_2O_5$) रहता है। कुछ लोगों का मत है कि यह बेसिक सिलिकोनौक्सी-एपेटाइट (siliconoxy apatite) है।

खाद के लिए बेसिक स्लैग बहुत महीन पिसा हुआ रहना चाहिए। फास्फरिक अम्ल कम से कम १२ प्रतिशत रहना चाहिए। उसका कम से कम ८० प्रतिशत २ प्रतिशत सिट्रिक अम्ल में विलेय रहना चाहिए। इसका चूरा इतना महीन रहना चाहिए कि १००–अक्षि चलनी में ७० प्रतिशत छन जाय। यदि बेसिक स्लैग इतना महीन न हो तो वह निम्न कोटि का समझा जाता है। बेसिक स्लैग को अमोनियम लवण के साथ मिलाकर प्रयुक्त नहीं करना चाहिए क्योंकि चूने की क्रिया से अमोनिया गैस के रूप में निकल जाता है। कार्बन डाइ-आक्साइड से इस पर क्रिया इस प्रकार होती है—

$$(CaO)_5 . P_2 . O_5 . SiO_2 + 8CO_2 + 6H_2O$$
$$= CaH_4 (PO_4)_2 + 4CaH_2 (CO_3)_2 + SiO_2$$
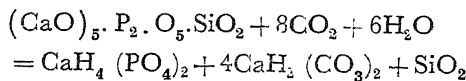
सामान्य बेसिक स्लैग के अवयवों की प्रतिशतता ऊपर दी हुई है। आजकल अन्य रीतियों से भी बेसिक स्लैग तैयार होता है जिसमें फास्फरिक अम्ल की मात्रा बढ़ाने के लिए लोह के खनिज में पीसा हुआ फास्फेट-चट्टान मिला दिया जाता है।

वात-भ्राष्ट्र और फास्फरस-भ्राष्ट्र स्लैग

आजकल दो किस्म के और बेसिक स्लैग खाद के लिए प्राप्त होते हैं। एक स्लैग लोहे की वात-भट्ठी में उपजात के रूप में प्राप्त होता है। दूसरा स्लैग वैद्युत भट्ठी में फास्फरस तैयार करने में उपजात के रूप में प्राप्त होता है। यह स्लैग प्रधानतया चूने के स्थान में प्रयुक्त होता है। सन् १९५० में ३५,८००,००० टन वात-भ्राष्ट्र स्लैग तैयार हुआ था।

खनिज फास्फेट

फास्फेट-चट्टानें संसार के विभिन्न भागों में बहुत फैली हुई पायी गयी हैं। ये चट्टानें आग्नेय होती हैं। इनमें ट्राइकैलसियम फास्फेट ($Ca_3(PO_4)_2$ रहता है। अल्प मात्रा में कैलसियम क्लोराइड और कैलसियम क्लोराइड भी मिले रहते हैं। फास्फेट खनिज को एपेटाइट (apatite) कहते हैं। यदि वह स्थूल रूप में हो तो उसे फास्फोराइट (phosphorite) भी कहते हैं।

पाँच किस्म के एपेटाइट हमें स्पष्ट रूप से मालूम हैं।

१. कार्बोनैटो-एपेटाइट (carbonato apatite) $[Ca_3(PO_4)_2]_3$, $CaCO_3$
इसमें फास्फेट के साथ कैलसियम कार्बोनेट रहता है।

२. फ्लुओर-एपेटाइट (fluor-apatite), $[Ca_3(PO_4)_2]_3$,CaF_2)
इसमें फास्फेट के साथ कैलसियम फ्लोराइड रहता है।

३. क्लोर-एपेटाइट (chlor-apatite) $[Ca_3(PO_4)_2]_3$,$CaCl_2$)
इसमें फास्फेट के साथ कैलसियम क्लोराइड रहता है।

४. हाइड्राक्सी-एपेटाइट (hydroxy-apatite) $[Ca_3(PO_4)_2]_3$,$Ca(OH)_2$
इसमें फास्फेट के साथ कैलसियम हाइड्राक्साइड रहता है।

५. सल्फाटो-एपेटाइट (sulphato-apatite) $[Ca_3(PO_4)_2]_3$,$CaSO_4$
इसमें फास्फेट के साथ कैलसियम सल्फेट रहता है।

फ्लोरीन की उपस्थिति से फास्फेट अविलेय हो जाता है। यही कारण है कि युगों से वायु-वर्षा में रहने पर भी फास्फेट-चट्टानें ज्यों की त्यों पड़ी हुई हैं। एपेटाइट मिट्टी में भी पाया जाता है। मिट्टी का एपेटाइट गौण खनिज के रूप में विद्यमान है।

कुछ मिट्टी में, विशेषतः अम्लीय मिट्टी में, लोहे, टाइटेनियम और एलूमिनियम के फास्फेट भी विभिन्न मात्रा में पाये जाते हैं।

एक दूसरे प्रकार का फास्फेट भी अनेक स्थानों में पाया जाता है। ये फास्फेट एक विशिष्ट आकार के पत्थर के रूप में, २ ·५ से ४ इंच लम्बे, कभी-कभी ·८ इंच तक लम्बे और कभी-कभी चिपटे आकार के पाये जाते हैं। इनका रंग राख-धूसर से काला तक होता है। इन्हें कोप्रोलाइट (coprolite) कहते हैं। कोप्रोलाइट के निक्षेप के साथ-साथ मछली की हड्डियाँ और दाँत भी पाये जाते हैं। ऐसा समझा जाता है कि ये किन्हीं समुद्री पशुओं की विष्ठा हैं; जो आजकल पाये नहीं जाते। कोप्रोलाइट समानुस्त्रित प्रकृति का फास्फेट समझा जाता है। कोप्रोलाइट इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस और अन्य स्थानों में पाया जाता है।

कोप्रोलाइट के साथ पर्याप्त कैलसियम कार्वोनेट, कैलसियम फ्लोराइड, लोहे और एलूमिनियम के आक्साइड, सिलिका और अल्प मात्रा में कार्बनिक पदार्थ मिले रहते हैं। इसमें कैलसियम फास्फेट ५० से ६० प्रतिशत रहता है।

प्राकृतिक फास्फेट अमणिभीय होता है। जो फास्फेट ठोस रूप में पाया जाता है उसे चट्टान-फास्फेट, पत्थर-फास्फेट, कंकड़-फास्फेट भी कहते हैं। चट्टान-फास्फेट और फास्फेट-चट्टान एक ही चीज है। मिट्टी में पाये जानेवाले फास्फेट को 'कोमल फास्फेट' कहते हैं।

फास्फेट निक्षेप का वर्गीकरण किया गया है। कुछ निक्षेप अवशिष्ट (residual), कुछ विस्थापित (replaced) और कुछ तलछटी (sedimentary) हो सकते हैं। अवशिष्ट फास्फेट निक्षेप फास्फेट-चूना पत्थरों से वने हैं। विस्थापित फास्फेट निक्षेप कार्बनिक पदार्थों से फास्फेट लेकर बने हैं। तलछटी फास्फेट निक्षेप वह है जो तलछट के रूप में एकत्र होकर चूना-पत्थर और शिला से दब गया है। पहली किस्म के निक्षेप अमेरिका के कुछ भागों, टेनेंसी के हैं। दूसरी किस्म के निक्षेप कुछ नौरू आदि टापुओं के हैं और तीसरी किस्म के निक्षेप उत्तर अफ्रीका, फ्लोरिडा और पश्चिम संयुक्त राज्य के देशों के हैं।

भूगर्भवेत्ता स्वीकार करते हैं कि तलछटी फास्फेट निक्षेप कार्बनिक पदार्थों से वने हैं। समुद्र जल में फास्फेट का लेश रहता है। समुद्र के कुछ सूक्ष्म जीव इन्हें लेकर अपने शरीर में संचित रखते हैं। इनके मर जाने पर इनका शरीरावशेष समुद्र-तल पर इकट्ठा होता रहता है। इसका कार्बोनेट घुलकर कुछ निकल जाता है पर फास्फेट ज्यों का त्यों रहकर बढ़ता जाता है। फास्फेट निक्षेप में कुछ मछलियों की हड्डियाँ और दाँत भी पाये गये हैं जिससे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है।

भारत का फास्फेट खनिज

फास्फेट खनिज बिहार और दक्षिण भारत में पाया जाता है। मद्रास के त्रिचनापल्ली ज़िले के पेरम्बुलुर तालुक में फास्फेट पाया गया है। यहाँ का निक्षेप पिंड के रूप में है। वार्थ (Warth) का अनुमान है कि यहाँ का फास्फेट निक्षेप २०० फुट की गहराई तक विद्यमान है और इसकी मात्रा ८० लाख टन कूती गयी है। इसके पिंड यत्र-तत्र अनियमित रूप से विभिन्न गहराई में मिट्टी में फैले हुए हैं। १०० घन फुट खोदने से २७ से ४७ पौण्ड फास्फेट पाया गया था। विश्लेषण से पता लगता है कि उसमें ५६ से ५९ प्रतिशत फास्फेट और लगभग १६ प्रतिशत कार्बोनेट रहता है। लोहे और एलूमिनियम के आक्साइड ४ से ८ प्रतिशत के बीच रहते हैं। फास्फेट प्राप्त करने की इनसे चेष्टाएँ नहीं हुई हैं। बिहार में भी खनिज फास्फेट पाया गया है पर उसे निकालकर खाद के लिए व्यवहार करने की चेष्टा नहीं की गयी। किन्तु अभी हाल में सिन्दरी में सुपर-फास्फेट तैयार करने का जो कारखाना खुला है, उसमें अब फास्फेट और नाइट्रोजनीय उर्वरकों को मिलाकर मिश्रित खाद तैयार करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

संसार का फास्फेट खनिज

फास्फेट के निक्षेप रूस, ट्यूनीशिया, मोरक्को, अलजीरिया, अमेरिका के आरकानसास, फ्लोरिडा, केण्टुकी, मोण्टाना, दक्षिण कैरोलिना, टेनेसी, ऊटा और वूमिंग में, कनाडा, पोर्तुगाल, स्पेन और नारवे में पाये गये हैं। ये सब निक्षेप एक से नहीं होते। इनके संगठन में कुछ विभिन्नता, अपद्रव्यों की मात्रा में विभिन्नता रहती है। अमेरिका का फास्फेट निक्षेप बहुत बड़ा है। उसकी संचिति मैन्सफील्ड (१९४७) द्वारा १३,२९०,८६०,००० बड़ा टन कूती गयी है। प्रति वर्ष कुछ न कुछ नये निक्षेपों का अब भी पता लग रहा है। समस्त संसार में फास्फेट-चट्टान की संचिति १६,८६७,०००,००० टन कूती गयी है जिसमें कुछ देशों की मात्रा यह है—

संसार के फास्फेट-चट्टान की महत्वपूर्ण संचिति

(सन् १९२६ का अनुमान)

देश	संचिति (टन)
संयुक्त राज्य अमेरिका	६,४३१,०००,०००
ट्यूनीशिया	१,०००,०००,०००
अलजीरिया	१,४५२,०००,०००

मोरक्को	१,४००,०००,०००
मिस्र	१७९,०००,०००
नौरू तथा ओशन द्वीप	१४०,०००,०००
मेकेटिया द्वीप	१०,०००,०००
अंगौर द्वीप	३,०००,०००
रोज़ा द्वीप	३,०००,०००
फिलस्तीन	४,०००,०००
जोड़ (उच्च कोटि का)	१०,६२२,०००,०००
रूस	५,५६८,०००,०००
स्पेन	१०,०००,०००
साइबेरिया	६६७,०००,०००
जोड़ (निम्न कोटि का)	६,२४५,०००,०००
समस्त जोड़	१६,८६७,०००,०००

विभिन्न देशों के फास्फेट-चट्टान का उत्पादन (मेट्रिक टन में)

देश	१९४७	१९५१
अलजीरिया	७१३,७९०	७७६,५७५
आस्ट्रेलिया	५,४०२	८,०२७
बेलजियम	५८,०४५	—
ब्राज़िल	५,५९२	—
ब्रिटिश बोर्नियो	२८३	६५९
चिली	१३,९९४	—
मिस्र	३७१,२२७	४९९,९७६
फ्रांस	१०४,०६८	११०,०००
मोरक्को	२,९६०,७३५	४,७१६,८००
भारत	८६७	—
जापान	६,८०२	१४३
स्पेन	२०,२०४	२२,८३०

ट्यूनिशिया	१,७५९,२३६	१,६७८,९०५
दक्षिण अफ्रीका	४१,८३१	८१,८४०
रूस	२,०३२,०००	—
संयुक्त राज्य अमेरिका	९,१७१,९१४	११,२७३,२८२

समस्त उत्पादन १९४७ में १८,२४०,००० और १९५१ में २३,४२०,००० मेट्रिक टन था।

संसार के कुछ प्रमुख फास्फेट निक्षेप

फ्लोरिडा निक्षेप

फ्लोरिडा के फास्फेट निक्षेप का पता पहले-पहल सन् १८८१ में लगा था। सन् १८८७ में पहली बार यहाँ से खनिज निकाला गया था। यहाँ के फास्फेट के भौतिक और रासायनिक गुण एक से नहीं होते। यहाँ का फास्फेट-चट्टान या चट्टान-फास्फेट चार किस्म का पाया गया है —

१. कठोर-चट्टान फास्फेट
२. धरती-कंकड़ फास्फेट
३. नदी-कंकड़ फास्फेट
४. कोमल फास्फेट

कठोर चट्टान-फास्फेट कठोर फास्फोराइट के रूप में मिलता है। निक्षेप कुछ इंच से लेकर सौ फुट तक मोटाई का पाया गया है। इसमें ट्राइ-कैलसियम फास्फेट ७८ से ८० प्रतिशत रहता है। लोहा, एलूमिनियम और फ्लोरीन की मात्रा कम रहती है। इसका सुपर-फास्फेट उच्च कोटि का होता है, अतः इसकी माँग अधिक है। इसका अधिक भाग यूरोप चला जाता है। कुछ अफ्रीका, न्यूज़ीलैण्ड और आस्ट्रेलिया भी भेजा जाता है।

फ्लोरिडा के कोमल फास्फेट में कैलसियम कार्बोनेट और मृत्तिका पर्याप्त मात्रा में रहती है। कैलसियम फास्फेट ४० से ६० प्रतिशत ही रहता है और सूखने पर चूरा-चूरा हो जाता है, भींगने पर बहुत चिपचिपा होता है। यहाँ का निक्षेप विस्थापित किस्म का समझा जाता है। धोने से मृत्तिका निकल जाती है।

धरती-कंकड़ फास्फेट हलके धूसर रंग से लेकर काला तक होता है। इसमें कुछ रेत और मिट्टी मिली रहती है। यह कठोर चट्टान-फास्फेट से कम कठोर होता है। इसमें कैलसियम ट्राइ-फास्फेट ६८ से ७५ प्रतिशत रहता है। लोहे और एलूमिनियम
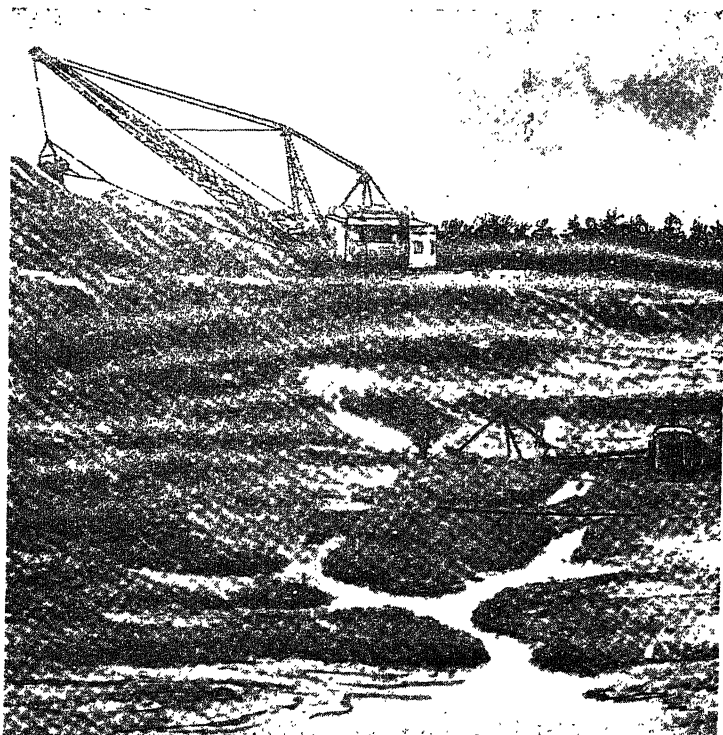
चित्र ३१—फ्लोरिडा (अमेरिका) में खानों से फास्फेट-
चट्टानों का निकालना, पृ० ३१८

चित्र ३२—टिनेसी में फास्फेट चट्टानों का निकालना, पृ० ३१९
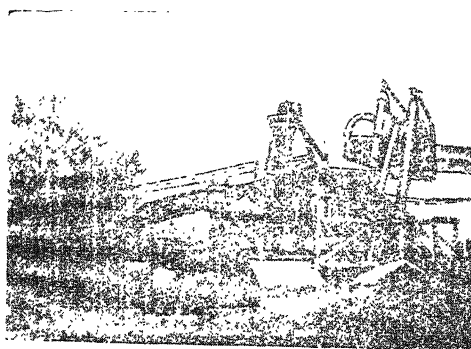
चित्र ३३—टिनेसी में फास्फेट चट्टानों की पिसाई, पृ० ३१९

आक्साइड की मात्रा ५ से ६ प्रतिशत रहती है। यह भी निकालकर खाद के लिए बाहर भेजा जाता है।

नदी-कंकड़ फास्फेट निम्न कोटि का होता है। इसमें फास्फरिक अम्ल कम रहता है। कठोर चट्टान-फास्फेट में फास्फरिक अम्ल ३५·५२ प्रतिशत, धरती-कंकड़ फास्फेट में ३४·४३ प्रतिशत और नदी-कंकड़ फास्फेट में २८·४७ प्रतिशत रहता है।

टेनेसी निक्षेप

टेनेसी के मध्य में यह निक्षेप पाया गया है। इस निक्षेप का पता सन् १८९३ में लगा था और सन् १८९४ से खान से खनिज निकालने का काम शुरू हुआ। यहाँ का निक्षेप बहुत विस्तृत है। खनिज बहुत दृढ़ और सघन होता है। निक्षेप एक से चार फुट मोटा होता है। खनिज नीले, धूसर और सफेद तीन रंगों में पाया जाता है, जो नीला चट्टान, धूसर चट्टान और सफेद चट्टान के नामों से बिकता है।

मैन्सफील्ड के सन् १९४० के अनुमान के अनुसार संचिति इस प्रकार है—

नीले फास्फेट की संचिति	८३,०००,००० टन
धूसर फास्फेट की संचिति	९६,०००,००० टन
सफेद फास्फेट की संचिति	१५,०००,००० टन
नीले फास्फेट में ट्राइ-कैलसियम फास्फेट	६८ से ७२ प्रतिशत
धूसर फास्फेट में ट्राइ-कैलसियम फास्फेट	७६ से ८२ प्रतिशत
सफेद फास्फेट में ट्राइ-कैलसियम फास्फेट	७२ से ८० प्रतिशत रहता है

दक्षिण कैरोलिना निक्षेप

इस निक्षेप का पता सन् १७९५ में लगा था। पर खान से निकालने का काम सन् १८६८ में शुरू हुआ और उसी वर्ष २०८ बड़ा टन फास्फेट का निर्यात हुआ था। यह फास्फेट रेत और मृत्तिका के साथ मिला हुआ रहता है और इसमें समुद्री पशुओं की हड्डियां और दाँत भी मिलते हैं। निक्षेप की मोटाई एक से तीन फुट रहती है। छोटे से लेकर बड़े-बड़े पिंड एक से भी अधिक टन के भार के मिलते हैं। इसका रंग धूसर हल्का या गाढ़ा होता है। गाढ़े रंग वाला सबसे अधिक कड़ा और सबसे अधिक फास्फेट वाला होता है। कुछ निक्षेप नदी में भी पाया जाता है। ये निक्षेप 'धरती फास्फेट' और 'नदी फास्फेट' के नाम से पुकारे जाते हैं। धरती फास्फेट धूसर और नदी फास्फेट काला होता है। नदी फास्फेट छोटे-छोटे टुकड़ों में पाया जाता है।

खनिज को निकालकर मिट्टी और रेत से सफा और सुखाकर पीसते हैं और तब खाद के लिए बेचते हैं। धरती फास्फेट में ट्राइ-कैलसियम ५० प्रतिशत के लगभग

रहता है। इस फास्फेट में लोहा और एलूमिनियम नहीं होता। रौजर्स ने दक्षिण कैरोलिन फास्फेट का विश्लेषण ऐसा किया है—

दक्षिण कैरोलिना-फास्फेट का विश्लेषण

	धरती चट्टान प्रतिशत	नदी-चट्टान प्रतिशत
ट्राइ-कैलसियम फास्फेट $Ca_3(PO_4)_2$	५९·४४	५४·८८
फास्फरिक अम्ल (P_2O_5)	२७·२३	२५·१४
कैलसियम आक्साइड (CaO)	३९·१०	—
फेरिक आक्साइड (Fe_2O_3)	१·३८	—
एलूमिना (Al_2O_3)	०·४०	—
सल्फर ट्राइ-आक्साइड (SO_3)	१·४५	—
कार्बन डाइ-आक्साइड (CO_2)	३·०५	३·६१
अविलेय	१३·०३	१३·३०

अरकानसास, केण्टुकी और वर्जीनिया

अरकानसास निक्षेप देश के उत्तरी भाग में स्थित है। यह तलछट किस्म का निक्षेप है। इसका रंग गाढ़ा होता है। इसे 'काला फास्फेट' भी कहते हैं। यहाँ के निक्षेप में फास्फेट कम रहता है।

केण्टुकी निक्षेप धूसर रंग का फास्फेट है। इसमें फास्फेट ६० से ७० प्रतिशत रहता है। यहाँ का फास्फेट अब निकाला नहीं जाता है।

वर्जीनिया में भी निक्षेप पाया गया है पर यहाँ का निक्षेप अधिक नहीं है।

ऊटा का निक्षेप

इसका पता पहले-पहल सन् १८८९ में लगा था। सन् १९२० में खान से निकालने का काम शुरू हुआ। सन् १९५० में १,०००,००० टन फास्फेट-चट्टान निकाला गया था। निक्षेप दो से छः फुट मोटी तह में पाया गया है। उसमें चूना-पत्थर और फास्फरीय शिला भी मिली रहती है। यह कुछ कड़ा होता है और कुछ जल्दी पीसा जानेवाला, हलके धूसर से काले रंग का होता है। फास्फेट की मात्रा ६५ से ८० प्रतिशत रहती है। यहाँ के कुछ फास्फेट में वेनेडियम पाया गया है। कुछ पौधों की वृद्धि में वेनेडियम आवश्यक माना गया है।

कनाडा और रूस का निक्षेप

कनाडा के ओन्टेरियो और क्वेबेक में एपेटाइट का निक्षेप पाया गया है। इसमें पर्याप्त अपद्रव्य रहता है। निकालने में खर्च भी अधिक पड़ता है। रूस के कोला पेनिनसुला क्षेत्र में भी एपेटाइट पाया गया है। यहाँ का उपलभ्य बहुत बड़ा है।

फास्फेट चट्टान का उपभोग

फास्फोरीय खाद का उपभोग सबसे अधिक इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका में होता है। जापान भी पर्याप्त मात्रा में इसे प्रयुक्त करता है। अन्य देश अल्प मात्रा में या कुछ भी नहीं इस्तेमाल करते। अमेरिका से ही फास्फोरीय खाद पर्याप्त मात्रा में बाहर भेजी जाती है। सन् १९५० में फास्फोरीय चट्टान अमेरिका से १,७५९,००० टन बाहर भेजा गया था। अमेरिका में १९ बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ हैं जो चट्टान-फास्फेट का काम करती हैं।

व्यापार का फास्फेट-चट्टान

फास्फेट-चट्टानों को निकालकर अपद्रव्यों को दूर कर पीसते हैं। कुछ फास्फेट चट्टानों को बिना अपद्रव्यों को निकाले भी पीसकर बेचते हैं। फास्फेट ऐसा पीसा हुआ होना चाहिए कि उसका ८५ से ९५ प्रतिशत १००-अक्षि चलनी से निकल जाय। ऐसा चूर्ण हलका धूसर रंग का होता है। क्रिया में प्रायः उदासीन होता है। जल में अल्प विलेय होता है। जल में कुछ अम्ल रहने से विलेयता बढ़ जाती है। अच्छी कोटि की फासफोरीय खाद की माँग अधिक है। इसके लिए अपद्रव्यों का निकालना आवश्यक है। अपद्रव्य यांत्रिक साधनों से दूर किये जा सकते हैं।

पीसे हुए फास्फेट चट्टान में फास्फरिक अम्ल ३० से ४० प्रतिशत और फ्लोरीन ३ से ४ प्रतिशत रहता है। चूना भी विभिन्न मात्रा में रहता है। फास्फेट-चट्टान सुपर-फास्फेट से आधा सस्ता होता है पर इसमें फास्फरिक अम्ल की मात्रा सुपर-फास्फेट से दुगुनी होती है।

कृत्रिम फास्फेट

एमोफास

अमोनियम अर्थोफास्फेट को 'एमोफास' कहते हैं। यह अकेले अथवा अमोनियम सल्फेट या अन्य पदार्थों के साथ मिलकर इस्तेमाल होता है। अमोनिया को फास्फरिक अम्ल से उदासीन बनाने पर 'एमोफास' प्राप्त होता है। 'एमोफास-बी' के लिए अमोनिया को फास्फरिक अम्ल और सलफ्यूरिक अम्ल दोनों के साथ उदासीन बनाते

हैं। पहले में नाइट्रोजन १०·७ से ११·० प्रतिशत और उपलब्ध फास्फरिक अम्ल ४८ प्रतिशत रहता है। दूसरे में नाइट्रोजन १६ प्रतिशत और उपलब्ध फास्फरिक अम्ल २० प्रतिशत रहता है। कभी-कभी इसमें चूना भी डालते हैं। उपलब्ध-फास्फरिक अम्ल का ८५ से ९० प्रतिशत जल में विलेय होता है। अतः इसका फास्फरस अधिक गतिशील होता है।

व्यापार का मोनो-अमोनियम फास्फेट ट्राइकैलसियम फास्फेट पर अमोनियम सल्फेट और सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त होता है। प्रतिक्रिया सम्भवतः इस प्रकार की होती है—

$$Ca_3(PO_4)_2 + (NH_4)_2SO_4 + 2\ H_2SO_4 = 3CaSO_4 + 2\ NH_4H_2PO_4$$
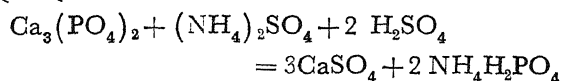
एमोफास हलके धूसर रंग का दानेदार चूर्ण होता है। यह वायु से पानी को ग्रहण नहीं करता है।

एमोफास-को

एमोफास-को में एमोफास और पोटेसियम सल्फेट रहता है। यह पूर्ण खाद होता है और मोनो-अमोनियम फास्फेट तथा अमोनियम सल्फेट को पोटेसियम सल्फेट के साथ मिलाने से बनता है। इसमें तीनों अवयवों के अनुपात १२–२४–१२, ९–१८–१८, १०–३०–१०, १२–१६–१२, १२–१२–१६ और १३–१३–८ रहते हैं।

डाइ-अमोफास

डाइ-अमोनियम फास्फेट को 'डाइ-अमोफास' कहते हैं। इसमें फास्फरिक अम्ल ५३ प्रतिशत और नाइट्रोजन २१ प्रतिशत रहता है। यह अल्प क्षारीय, कम स्थायी और अधिक विलेय होता है। आर्द्र वायु में इससे अमोनिया निकलता है।

लूनाफास

लूनाफास में अमोनियम फास्फेट और अमोनियम सल्फेट रहता है। यह जर्मनी में तैयार होता है और वहाँ ही खपता है। इसमें नाइट्रोजन १८·५ से २० प्रतिशत और उपलब्ध फास्फरिक अम्ल ४९ प्रतिशत रहता है।

फास्फेजोट

यह फ्रांस और स्विटज़रलैण्ड में तैयार होता है। यह सुपर-फास्फेट और यूरिया का मिश्रण है। इसमें नाइट्रोजन ७ प्रतिशत के लगभग और फास्फरिक अम्ल १५ प्रतिशत के लगभग रहता है।

यह कैलसियम स्यानामाइड से तैयार होता है। एक बन्द पात्र में कैलसियम स्यानामाइड का जल द्वारा निष्कर्ष निकालते हैं। तब कार्बन डाइ-आक्साइड की उपस्थिति में स्यानामाइड को सलफ्यूरिक अम्ल के साथ उपचारित करते हैं। सलफ्यूरिक अम्ल से स्यानामाइड का जल-विच्छेदन होकर यूरिया और ग्वानील यूरिया (guanyl urea) बनता है। इस प्रकार प्राप्त यूरिया सल्फेट को पिसे हुए फास्फेट-चट्टान में मिला कर दबाव में सान्द्रित करने से फास्फेज़ोट प्राप्त होता है। इसकी भौतिक दशा अच्छी रहती है। इसमें सुपर-फास्फेट के समान ही गुण होता है।

अमोनियम फास्फेट-सल्फेट

अमोनिया को फास्फरिक अम्ल और सलफ्यूरिक अम्ल के साथ उपचारित करने से अमोनियम फास्फेट-सल्फेट प्राप्त होता है। इसमें प्रायः ४० प्रतिशत अमोनियम फास्फेट और ६० प्रतिशत अमोनियम सल्फेट रहता है। इसमें नाइट्रोजन १६ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल २० प्रतिशत रहता है।

पोटाश मेटाफोस

भट्ठे में जब फास्फरस जले और उसमें पोटेसियम क्लोराइड का चूर्ण झोंका जाय तब उससे जो पदार्थ प्राप्त होता है उसे 'पोटाश मेटाफोस' कहते हैं। पोटाश मेटाफोस का सूत्र KPO_3 है। इसमें पोटाश ३५–४० प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल ६०–६२ प्रतिशत रहता है। यह जल में विलेय है। इसको शत प्रतिशत पौधे ग्रहण कर सकते हैं। पोटाश और फास्फरस दोनों ग्राह्य रूप में रहते हैं। भट्ठे में फास्फरस जलाने के स्थान में यदि फास्फरस-चट्टान और पोटेसियम क्लोराइड डालें तो उससे पोटाश मेटा-फास्फेट और कैलसियम मेटा-फास्फेट का मिश्रण प्राप्त होता है। यह भी अच्छा उर्वरक होता है।

पोटाश अर्थोफास्फेट

मोनो-कैलसियम फास्फेट पर पोटेसियम हाइड्राक्साइड की क्रिया से पोटेसियम अर्थोफास्फेट प्राप्त होता है। इसमें पोटाश ३० से ५० प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल ३२ से ५३ प्रतिशत रहता है। यह लवण शीघ्र आयनीकृत हो जाता है, इस कारण पौधों को शीघ्रता से ग्राह्य होता है।

कैल मेटाफास

चट्टान फास्फेट को P_2O_5 के वाष्प से उपचारित करने से कैलसियम ट्राइ-फास्फेट कैलसियम मेटा-फास्फेट में परिणत हो जाता है।

$$Ca_3(PO_4)_2 + 2P_2O_5 = 3Ca(PO_3)_2$$
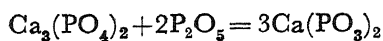
यह काँच-जैसा देख पड़ता है। इसे पीस और छानकर उर्वरक के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

इसमें फास्फरिक अम्ल प्रायः ६४ प्रतिशत रहता है, जिसका अधिक भाग अमोनियम सिट्रेट में विलेय होता है। पौधे PO_4 या PO_3 दोनों को समान रूप से ग्रहण कर सकते हैं।

निस्तप्त फास्फेट

फास्फेट चट्टान के निस्तप्त करने से जो पदार्थ प्राप्त होता है उसका उपयोग उर्वरक के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। किसी प्रतिकारक के साथ पिघलाने से फ्लुओर-एपेटाइट विच्छेदित हो जाता है। प्रतिकारक में खड़िया या सिलिका डाला जाता है। कभी-कभी सोडियम कार्बोनेट भी डालते हैं। कभी-कभी भाप भी प्रयुक्त होती है। निस्तापन का ताप १४००° से० के लगभग रहता है। फ्लोरीन के निकालने में कुछ कठिनता होती है। पर यदि मैगनीशियम सिलिकेट के साथ गरम किया जाय तो कठिनता कम हो जाती है। ऐसे निस्तप्त फास्फेट में फास्फरिक अम्ल २५ से २८ प्रतिशत रहता है। यह जल में विलेय नहीं है। पर सिट्रिक अम्ल विलयन में विलेय होता है, अतः पौधों को ग्राह्य होता है।

चट्टान फास्फेट के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के उपचार से डाइ-कैलसियम फास्फेट प्राप्त होता है। यह बहुत महीन सफेद चूर्ण होता है। प्रायः ४० प्रतिशत P_2O_5 अमोनियम सिट्रेट में विलेय होता है।

चट्टान-फास्फेट को चूना और गन्धक के साथ गरम करने से सलफ्यूरो-फास्फेट प्राप्त होता है। यह भी उर्वरक के लिए इस्तेमाल होता है।

फास्फोरीय खादों का व्यवहार

प्राणियों और वनस्पतियों दोनों को समान रूप से फास्फरस की आवश्यकता होती है। इनकी कोशिकाओं में फास्फरस रहता है। पौधों के बीजों में सबसे अधिक और प्राणियों की हड्डियों और पंजरों में कैलसियम के साथ-साथ सबसे अधिक फास्फरस रहता है। मिट्टी में भी फास्फरस रहता है। मिट्टी से ही फास्फरस वनस्पतियों और वनस्पतियों से प्राणियों में जाता है। यदि मिट्टी में उपलब्ध फास्फरस अधिक रहे तो वनस्पतियों में भी फास्फरस की मात्रा बढ़ जाती है, कम रहे तो कम हो जाती है। पौधों की वृद्धि और पर्याप्त विकास मिट्टी के उपलब्ध फास्फरस पर निर्भर करता

है। यदि मिट्टी में पर्याप्त उपलब्ध फास्फरस विद्यमान है तो पौधे जल्दी-जल्दी बढ़ते, फसलें जल्दी परिपक्व होतीं, तथा फल और बीजों की मात्रा बढ़ी हुई रहती है, अन्यथा उनकी वृद्धि ठीक से नहीं होती, फसलें देर से पकतीं, फल और बीज कम लगते हैं।

पौधों में उपलब्ध फास्फरस की उपस्थिति से निम्नलिखित प्रभाव देखे जाते हैं —

१. फास्फरस के कारण फसलें जल्दी तैयार हो जाती हैं। फल या बीज जल्दी पक जाते हैं। नोल (Noll) ने सन् १९२३ में बन्द गोभी के जल्द तैयार होने में फास्फरस का स्पष्ट प्रभाव देखा था। एक एकड़ भूमि में टमाटर बोया गया था। एक खेत में सुपर-फास्फेट नहीं डाला गया था, दूसरे में ५०० पौण्ड सुपर-फास्फेट डाला गया, तीसरे खेत में १००० पौण्ड और चौथे खेत में १५०० पौण्ड सुपर-फास्फेट डाला गया था। इन खेतों से कब कितना टमाटर निकला वह नीचे सारणी में दिया हुआ है —

टमाटर उत्पादन का समय	प्रति एकड़ में सुपर-फास्फेट			
	फास्फेट नहीं	५०० पौण्ड	१००० पौण्ड	१५०० पौण्ड
अगस्त १५	१०८	३४५	६४८	४५६
अगस्त २३	१४३	६४१	९००	७२४
अगस्त २७	२२५	९६२	१,२७४	१,०९६
सितम्बर ३	५०७	१,९०६	३ १२२	२,४१३
सितम्बर ६	१.०६७	४ २३१	६,७७९	५ ४७२
सितम्बर १२	२ १२३	७,६५३	११,७९७	९,९७४
सितम्बर १८	४,०४८	१३,३३०	१८,०६९	१७,५०८
अक्तूबर १	१७ ५६५	२३,१५३	२५,६४६	२७,४२२

इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि सुपर-फास्फेट खाद देने से पैदावार जल्दी तैयार हो जाती है, पर यह एक सीमा तक ही होता है। बहुत अधिक फास्फेट देने से पैदावार में फिर और वृद्धि नहीं होती है।

रौथमस्टेड प्रयोगशाला में जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम हुआ कि बिना फास्फरस खादवाले खेतों का जौ एक सप्ताह बाद पका, जब कि फास्फरस खादवाले खेत का जौ एक सप्ताह पूर्व पक चुका था। फास्फरस खाद से पौधे नाइट्रोजन वाली खाद को भी अधिक मात्रा में ग्रहण कर सकते हैं। यह यहाँ दिये वक्र (चित्र) से स्पष्ट हो जाता है। अन्य फसलों में भी अपेक्षाकृत पूर्व परिपक्वता स्पष्ट रूप से देखी गयी है।

२. फास्फोरीय खाद से पौधों की वृद्धि में विशेष सहायता मिलती है। डाल-पात और शाखें फास्फोरीय खाद से अधिक बनती और बढ़ती हैं। पौधों की पार्श्व और तन्तुमय जड़ें इससे अधिक फैलती हैं जिससे वे अधिक खाद ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। लावेस ने आज से प्रायः १०० वर्ष पूर्व फास्फोरीय खाद का यह प्रभाव देखा था। पीछे रसेल (१९१५) और नोल (१९२३) ने भी जड़ों की वृद्धि का होना स्पष्ट रूप से बतलाया।
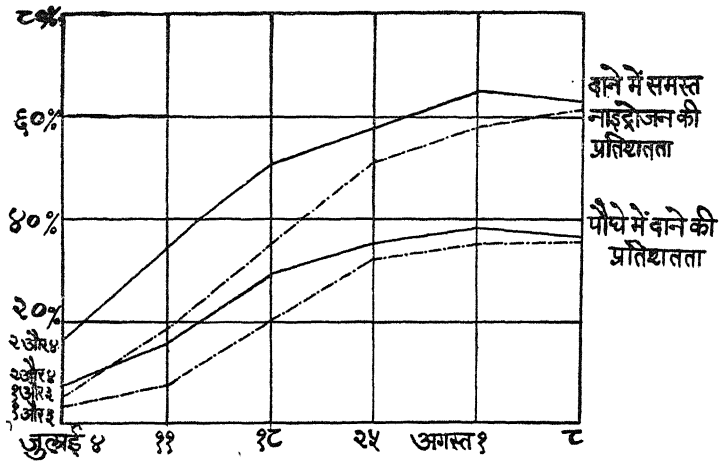
चित्र ३४—फास्फरिक अम्ल की सहायता से फसल जल्दी पकने का निर्देशक वक्र

[इन वक्रों से मालूम होता है कि जौ के दाने बनने में शीघ्रता लाने के लिए फास्फरिक अम्ल का क्या हाथ है? २ और ४ में फास्फरिक अम्ल विद्यमान है। १ और ३ में फास्फरिक अम्ल का अभाव है। दाने में नाइ-ट्रोजन का संचालन भी वक्रों से सूचित होता है।]

३. फास्फोरीय खाद से अनाज-दानों की उपलब्धि प्रायः ५० प्रतिशत तक बढ़ जाती है। जिन फसलों की जड़ें बहुत नीचे नहीं जातीं उनकी पैदावार विशेष रूप से बढ़ जाती है। शलजम और जई में पैदावार का बढ़ना विशेष रूप से देखा गया है। गेहूँ की जड़ें नीचे अधिक जाती हैं, अतः गेहूँ की पैदावार में विशेष लाभ होता नहीं पाया जाता।

४. फास्फोरीय खादों से धान्यों की शाखाएँ बढ़ जाती हैं। इससे बालें अधिक लगती हैं।

५. फास्फोरीय खादवाले खेतों के अनाज में फास्फरस की मात्रा अधिक रहती है। ऐसा अनाज अधिक पुष्ट होता और उसकी पोषण-क्षमता बढ़ जाती है। फास्फरिक अम्ल से पौधों के कोशिका-विभाजन पर प्रभाव पड़ता है। कोशिकाओं में वसा और अलबुमेन अधिक बनते हैं। इससे स्टार्च के शर्कराओं में परिणत होने में सहायता मिलती है। फलों की मिठास बढ़ जाती है।

६. फास्फोरीय खाद से डंठल और पयाल अधिक दृढ़ होते हैं। वस्तुतः फास्फोरीय खाद नाइट्रोजन वाली खादों के प्रभाव को संतुलित करती है। उसके अनावश्यक प्रभाव को रोकती अथवा कम करती है।

७. पौधों में रोगों से बचने की क्षमता बढ़ जाती है। सम्भवतः इसका कारण कोशिकाओं का पर्याप्त विकास और डाल-पातों की पुष्टि हो सकती है।

साधारणतः मिट्टी में कुछ न कुछ फास्फरस अवश्य रहता है। यह फास्फरस कई रूपों में रह सकता है। विभिन्न रूपों की विलेयता विभिन्न होती है। अतः पौधे भी इन्हें एक-सा ग्रहण नहीं करते हैं। ग्रहण करने की क्षमता बहुत कुछ विलेयता पर निर्भर करती है। पौधों की ग्राह्यता की दृष्टि से हम फास्फोरीय खादों को निम्नांकित चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। ये क्रम ग्राह्यता के क्रम में दिये गये हैं—

१. कैलसियम और मैगनीशियम के फास्फेट

२. कार्बनिक पदार्थों के फास्फेट

३. लोहे और एलूमिनियम के फास्फेट

४. चट्टान-फास्फेट, विशेषतः विभिन्न एपेटाइट

कैलसियम फास्फेट भी तीन रूपों में पाया जाता है—मोनो कैलसियम फास्फेट, डाइ कैलसियम फास्फेट और ट्राइ कैलसियम फास्फेट। पहला जल में विलेय होता है और दूसरा एवं तीसरा जल में अविलेय अथवा अल्प विलेय। पहले को पौधे बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। दूसरे और तीसरे को धीरे-धीरे ग्रहण करते हैं। ग्रहण करने की क्षमता बहुत कुछ उनकी सूक्ष्मता (बारीकी) पर निर्भर करती है।

कार्बनिक फास्फेट का अधिक भाग मिट्टी की ऊपरी तह पर ही रहता है। डीन (Dean, १९५०) ने संसार के विभिन्न भागों से मिट्टी मँगाकर उसके कार्बनिक फास्फेट की मात्रा निर्धारित की। उन्होंने देखा कि समस्त फास्फेट का ८ से ५० प्रतिशत फास्फेट कार्बनिक फास्फेट के रूप में था। ऐसा प्रतीत होता है कि पौधे जो फास्फेट ग्रहण करते हैं वे कार्बनिक पदार्थों से ही आते हैं। स्ट्यूवर्ट (Stewart, १९३६) का सुझाव है कि कुछ कार्बनिक फास्फेट जल में विलेय होते हैं और इन विलेय फास्फेटों को ही फास्फोरीय खाद के रूप में व्यवहार करना अच्छा होगा। ऐसे कार्बनिक

फास्फेट कैलसियम, लोहा और एलूमिनियम से अविलेय फास्फेट में भी परिणत नहीं होते हैं। उन्होंने तम्बाकू पर कैलसियम ग्लाइको-फास्फेट, कैलसियम ग्लीसिरोफास्फेट, कैलसियम सोरबिटोल फास्फेट और कैलसियम ग्लुको-फास्फेट का उपयोग भी सफलता से किया है। ये फास्फेट मिट्टी में ७ इंच तक प्रविष्ट हो सके थे। हिल्बर्ट (१९३८) का मत है कि अकार्बनिक फास्फेटों के जैसा कार्बनिक फास्फेटों का भी स्थिरीकरण हो सकता है। एलिसन (Allison, १९४१) का मत है कि कार्बनिक फास्फेट भी अकार्बनिक फास्फेटों के सदृश ही पौधों को ग्राह्य होते हैं और उनकी ग्राह्यता पर मिट्टी और फसलों की प्रकृति का बहुत कुछ असर पड़ता है। उनके परिणाम यहाँ दिये जाते हैं।

विभिन्न मिट्टियों पर कार्बनिक फास्फेट की ग्राह्यता

फास्फेट	फास्फरिक अम्ल (P_2O_5) प्रयुक्त (मिलिग्राम में)	पौधों द्वारा फास्फेट के ग्रहण की प्रतिशतता		
		स्फटिक बलुआर	बलुआर दोमट	दोमट
सोडियम ग्लीसिरो-फास्फेट	१०	७८	८४	३३
	२५	७१	७४	३३
कैलसियम हेक्सोज़-डाइ फास्फेट	१०	५८	५५	७
	२५	४८	६०	१४
सोडियम न्यूक्लीएट	१०	८४	५५	१७
	२५	७९	७१	१६
डाइ-पोटेसियम फेनिल फास्फेट	१०	५२	५१	५
	२५	५४	४८	१५
पोटेसियम डाइ-फेनिल फास्फेट	१०	७३	७९	३०
	२५	५७	५३	२५
डाइ-पोटेसियम डाइ फेनिल फास्फेट	१०	६७	६३	१२
	२५	६५	५६	१४
कैलसियम एथिल फास्फेट	१०	७४	७५	३६
	२५	६५	७६	३५
कैलसियम डाइ एथिल फास्फेट	१०	५०	५८	४२
	२५	४०	५२	३८
ट्राइ-एथिल फास्फेट	२५	३	४	३

स्पेन्सर और विलहाइट (Spencer and Willhite, १९४४) ने जो प्रयोग काँच के पात्रों में किये हैं उनसे पता लगता है कि कार्बनिक और अकार्बनिक फास्फेटों की ग्राह्यता में विशेष अन्तर नहीं है। उनके परिणाम निम्नलिखित हैं—

फास्फेट	फास्फरस उपस्थित	पौधों द्वारा फास्फरस ग्रहण, विशिष्ट दिनों के अन्दर			
	प्रतिशत	०-दिन	६—दिन	१८—दिन	३०—दिन
		मिलिग्राम	मिलिग्राम	मिलिग्राम	मिलिग्राम
बिना फास्फेट	—	१०·५	११·१	११·२	११·०
अकार्बनिक फास्फेट					
ट्रिबल सुपर फास्फेट	२०·६५	१२·२	१३·१	१३·२	१२·६
कैलसियम मेटा फास्फेट	२६·९३	११·९	१२·९	१३·२	१२·९
उत्तप्त चट्टान फास्फेट	१२·३२	११·५	१३·१	१३·२	१२·३
संपुंजित फास्फेट	१६·१७	११·७	१३·३	१३·२	१२·३
कार्बनिक फास्फेट					
कैलसियम ग्लाइकोलफास्फेट	१६·९६	१२·२	१३·०	१२·८	१२·३
कैलसियम ग्लुकोसफास्फेट	१०·१४	११·९	१२·७	१२·४	१२·७
मोनोएथिल कैलसियमफास्फेट	१८·४३	१२·१	१३·१	१२·९	१२.३
डाइएथिल कैलसियमफास्फेट	१७·९१	१२·१	१३·२	१३·२	१२·७
ट्राइएथिल कैलसियमफास्फेट	१७·१८	११·५	११·८	११·४	१०·९
मोनोएथिल कैलसियम एसिड फास्फेट	२१·१८	१२·८	१३·१	१३·०	१२·९
मोनोएथिल और डाइएथिल कैलसियम फास्फेट का समभाग मिश्रण	१८·१०	१२·५	१३·५	१३·०	१३·०
डाइएथिल कैलसियम फास्फेट और मोनोएथिल एसिडफास्फेट का समभाग मिश्रण	१९·५०	१२·४	१३·६	१२·९	१३·१
छोआ में उपस्थित शर्कराओं के फास्फेटों के कैलसियम लवण	६·२४	११·२	१२·३	१२·०	११·७
अशुद्ध कैलसियम एथिल फास्फेट	१७·७०	१२·३	१३·१	१३·०	१२·८
मोनोएथिल और डाइ-मेथिल कैलसियम फास्फेट के समभाग का मिश्रण	१८·४०	१२·९	१३·०	१२·७	१२·५

अनुभव से पता लगता है कि पर्याप्त कार्बनिक फास्फेट वाली मिट्टी में भी बाहर से अकार्बनिक फास्फोरीय खाद देने से पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी जाती है।

लोहे और एलूमिनियम के फास्फेट जल में अविलेय होते हैं, इस कारण पौधों को सामान्यतः ग्राह्य नहीं होते। इन फास्फेटों के कई रूप होते हैं, कुछ रूप ऐसे होते हैं कि पौधे उन्हें ग्रहण कर लेते हैं। इसी कारण ट्रूओग ने देखा कि तत्काल प्रस्तुत लोहे और एलूमिनियम फास्फेट पौधों को शीघ्रता से ग्राह्य होते हैं। ये फास्फेट जल में बहुत धीरे-धीरे घुलते हैं। यही कारण है कि इनकी ग्राह्यता अल्प होती है। मिट्टी में लोहे और एलूमिनियम के फास्फेटों के रहते हुए भी विलेय फास्फरीय खादों के डालने से पैदावार बढ़ी हुई देखी जाती है।

चट्टान-फास्फेट कुछ न कुछ मिट्टी में अवश्य रहता है। यह उन चट्टानों का अंग है जिनसे वह मिट्टी बनी है। ये फास्फेट जल या अन्य विलायकों के प्रति प्रबल प्रतिरोधक होते हैं। अतः ये भी पौधों को अल्प ग्राह्य होते हैं। ऐसे फास्फेट के मिट्टी में रहने पर भी फास्फोरीय खाद के डालने की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि पौधे इन फास्फेटों के ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। खानों से निकले खनिज-फास्फेट भी खेतों में डाले जाते हैं। उनसे लाभ होता है। कच्चे खनिज फास्फेट से उतना लाभ नहीं होता जितना उत्तप्त चट्टान-फास्फेट से अथवा उपचारित चट्टान-फास्फेट से होता है।

फास्फोरीय खाद की कमी

पौधे को पर्याप्त फास्फरस मिलता है अथवा नहीं इसका ज्ञान पहले नहीं होता। कुछ पौधे, जैसे स्वीडन शलजम, शलजम और मैन्गोल्ड (mangold) तो फास्फोरीय खाद के अभाव में उगते ही नहीं हैं। कुछ पौधे जो उगते भी हैं वे ठीक तरह से बढ़ते नहीं, वे छोटे-छोटे कद के हो जाते हैं। कुछ पौधों में दाने और फल कम लगते ह। कुछ पौधों की जड़ें अधिक नहीं फैलती हैं। कुछ के पत्ते बदरंग हो जाते हैं, पत्तों के किनारे और डंठल भी नीलारुण हो जाते हैं। तम्बाकू और कपास के पत्ते धुँधले रंग के, सेब के पत्ते काँसे के रंग के हो जाते हैं। आलू पर धूसर वर्ण के दाग पड़ जाते हैं। इन लक्षणों के प्रकट होने के पहले ही बहुत से पौधे मर जाते हैं। पौधों पर फास्फरस के अभाव के लक्षण ऐसे समय देखे जाते हैं जब कि उनके प्रतिकार का कोई चारा नहीं रह जाता। कुछ पौधों, जैसे गेहूँ और जौ, को शुरू में ही बढ़ने के समय, फास्फोरीय खाद की जरूरत पड़ती है। ऐसे पौधों को पीछे फास्फोरीय खाद देने से कोई लाभ नहीं होता।

रौबर्टसन (Robertson) का मत है कि जो पौधे फासफोरीय खाद की कमी से अधिक प्रभावित होते हैं वे स्वीडन शलजम, शलजम, आलू और जई हैं। उन्होंने उत्तरी आयरलैंड में जो प्रयोग किया था उसके परिणाम नीचे दिये जाते हैं।

फास्फोरीय खाद से फसलों का उत्पादन

फसल	विना फास्फेट	सुपरफास्फेट
शलजम	१००	७३६
आलू	१००	२०९
दूसरी फसल जई	१००	१७१
तीसरी फसल घास	१००	११८

(यहाँ बिना फास्फेटवाली पैदावार को १०० मानकर फास्फेटवाली खाद की पैदावार दी हुई है।)

फास्फोरीय खाद की आवश्यकता

भिन्न-भिन्न फसलों को भिन्न-भिन्न मात्रा में फास्फोरीय खाद की आवश्यकता पड़ती है। फास्फोरीय खाद के व्यवहार में हमें मिट्टी की प्रकृति का भी विचार रखना पड़ता है। कुछ मिट्टी के लिए अधिक फास्फोरीय खाद की आवश्यकता पड़ती है और कुछ में कम से भी काम चल जाता है। मिट्टी में उपस्थित फास्फेट और उसकी उपलब्धि का भी विचार रखना आवश्यक है। यदि मिट्टी में पहले से पर्याप्त फास्फेट और उपलब्ध फास्फेट विद्यमान है तो उसमें फिर बाहर से फास्फोरीय खाद देने से विशेष लाभ नहीं होता।

फास्फोरीय खाद का सबसे अधिक लाभ आलू, स्वीडन शलजम, शलजम और मैन्गोल्ड (mangold) पर होता है। जौ और सूखी घास पर कुछ कम तथा गेहूँ और जई पर और भी कम। फास्फोरीय खाद की कमी से कुछ खेतों में जौ उपजता हुआ नहीं पाया गया है, जब कि उसी खेत में जई और राई अच्छी उपजती पायी गयी है।

क्राउथर और येट्स (Crowther and Yates) ने बहुत काल तक प्रयोग करके देखा है कि प्रति एकड़ लगभग तीन हंडरवेट सुपरफास्फेट से, जो ०·५ हंडरवेट फास्फरिक अम्ल (P_2O_5) के समतुल्य है, स्वीडन शलजम में २० से २५ प्रतिशत, मैन-गोल्ड और आलू में १० से २५ प्रतिशत वृद्धि पायी गयी है। चुकन्दर में प्रतिचार[1] बहुत अल्प पाया गया है। सीरियल (धान्य) में उतने सन्तोषप्रद प्रतिचार नहीं होते

पाये गये हैं। चैपमैन ने (१९३४) देखा है कि जिस खेत में बिना फास्फरस खाद दिये अल्फाल्फा नहीं उपजता उस खेत के संतरे के छोटे पेड़ों में फास्फोरीय खाद से कोई लाभ होता नहीं पाया गया है।

अनेक प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप हार्टवेल और डैमन (Hartwell and Damon, १९२७) का सुझाव है कि चुकन्दर, बन्दगोभी, राई, स्वीडन शलजम (rutabagas), ज्वार-बाजरा (millet) मीठी सेंजी (sweet clover) फास्फोरीय खाद से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। केवल मिट्टी के फास्फेट से उनकी फास्फोरीय खाद की पूर्ति नहीं होती। सोयाबीन, ज्वार, मक्का और जई में कुछ सीमा तक मिट्टी के फास्फेट से काम चल जाता है। गाजर, आलू, टमाटर, कुट्टक, शलजम और गेहूँ मिट्टी के फास्फेट से लाभ उठा लेते हैं और इनमें बाहर से फास्फोरीय खाद से विशेष लाभ होता हुआ नहीं पाया गया है। पर यह परिणाम केवल एक किस्म की मिट्टी के प्रयोगों में ही देखा गया है।

अनेक लोगों ने इस बात का अध्ययन किया है कि इसका क्या कारण है कि कुछ फसलें मिट्टी से अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक फास्फरस ग्रहण कर सकती हैं और कुछ फसलें मिट्टी में कम फास्फरस से भी अच्छे प्रकार से उग सकती हैं। इसका एक कारण इन फसलों की जड़ें हो सकती हैं। जिन फसलों की जड़ें अधिक होती और गहराई तक जाती हैं वे अधिक फास्फरस ग्रहण कर सकती हैं और जिन फसलों की जड़ें कम होती और गहरी नहीं जातीं वे अधिक फास्फरस नहीं ग्रहण कर सकतीं। पर इस विषय पर और प्रयोग करके निश्चित परिणाम प्राप्त करने की आवश्यकता है।

फास्फोरीय खादों में निम्नलिखित अधिक महत्त्व की हैं।

१. मोनोकैलसियम हाइड्रोजन फास्फेट
२. डाइकैलसियम हाइड्रोजन फास्फेट
३. ट्राइकैलसियम फास्फेट
४. टेट्राकैलसियम फास्फेट
५. सुपरफास्फेट; सुपरफास अकेला
६. डबल सुपर-फास्फेट; सुपरफास डबल
७. ट्रिबल सुपर-फास्फेट; सुपरफास ट्रिबल
८. बेसिक स्लैग
९. हड्डी की खाद
   (क) कच्ची हड्डी का चूरा
   (ख) भाप उपचारित हड्डी का चूरा
   (ग) हड्डी-राख

[1] Response

(घ) हड्डी-कोयला
१०. फास्फेट-चट्टान; रॉक-फास
११. उत्तप्त फास्फेट-चट्टान
१२. एमोफास
१३. डाइअमोफास
१४. लूना-फास
१५. कैलमेटाफास
१६. पोटाश मेटाफास
१७. फासफाजोट
१८. डाइकैलनाइट्रेट-फास
१९. निसीफास १
२०. निसीफास २
२१. निसीफास ३
२२. ग्वानो
२३. मछली

मोनो कैलसियम फास्फेट

फास्फरिक अम्ल को बुझे हुए चूने की आवश्यक मात्रा के साथ निराकरण करने से मोनोकैलसियम फास्फेट प्राप्त होता है।

$$Ca(OH)_2 + 2H_3PO_4 = Ca(H_2PO_4)_2 + 2H_2O$$
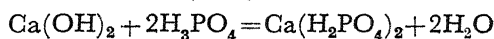
बड़ी मात्रा में कैलसियम ट्राइफास्फेट पर सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया से भी यह तैयार होता है।

$$Ca_3(PO_4)_2 + 2H_2SO_4 = Ca(H_2PO_4)_2 + 2CaSO_4$$
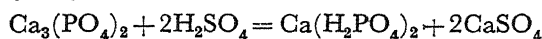
कैलसियम सल्फेट और मोनोकैलसियम फास्फेट के मिश्रण को ही 'सुपरफास्फेट' या 'सुपरफास अकेला' कहते हैं।

मोनोकैलसियम फास्फेट जल में घुलता है। घुलने के कारण पौधे इसे बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। इसका शत प्रतिशत पौधों को शीघ्र ही मिल जाता है। पर यह लवण महँगा होता है, इस कारण खाद के लिए शुद्ध लवण का साधारणतया उपयोग नहीं होता। बाजारों में यह खाद के लिए बिकता भी नहीं है। यदि यह खाद के रूप में मिले तो इसका उपयोग सर्वोत्कृष्ट है।

डाइकैलसियम फास्फेट

यह जल में अविलेय होता है। पौधे इसे बड़े धीरे-धीरे ग्रहण करते हैं। यदि यह लवण बहुत महीन पिसा हुआ हो तो पौधे अधिक ग्रहण कर सकते हैं। सूक्ष्म दशा में सरलता से यह प्राप्त हो सकता है।

फास्फरिक अम्ल को चूने से अवक्षिप्त करने से यह प्राप्त होता है। इसके प्राप्त करने की एक आधुनिक रीति फास्फेट-चट्टान को नाइट्रिक अम्ल के साथ उपचारित कर अमोनिया के साथ गरम करना है। यहाँ पहले कैलसियम नाइट्रेट और फास्फरिक

अम्ल बनते हैं, जो अमोनिया की उपस्थिति में कैलसिमय फास्फट और अमोनियम नाइट्रेट में परिणत हो जाते हैं।

ट्राइकैलसियम फास्फेट और टेट्रा-कैलसियम फास्फेट

ट्राइकैलसियम फास्फेट, $Ca_3(PO_4)_2$ जल में प्राय: घुलता नहीं है। इसका विलयन इतना हलका या तनु होता है कि उससे पौधों को लाभ नहीं पहुँच सकता। यदि इसे बहुत महीन पीसकर और मिट्टी के साथ खूब मिलाकर खेतों में डालें तो पौधे इससे लाभ उठा सकते हैं। यदि इसे १४००° सें० तक उत्तप्त किया जाय तो इसमें कुछ ऐसा परिवर्तन होता है कि फास्फेट सिट्रेट विलयन में विलेय हो जाता है। ऐसे फास्फेट को पौधे जल्दी से ग्रहण कर लेते हैं। हड्डी में यही फास्फेट रहता है। यद्यपि ट्राइकैलसियम फास्फेट जल में विलेय नहीं है पर ऐसे जल में पर्याप्त घुल जाता है जिसमें अन्य लवण विद्यमान हो अथवा कार्बन डाइ-आक्साइड घुला हो। ऐसे विलयन से पौधों की जड़ें फास्फरस को ग्रहण कर सकती हैं।

टेट्रा-कैलसियम फास्फेट भी जल में प्राय: घुलता नहीं है। इसका भी व्यवहार ट्राइकैलसियम फास्फेट सा ही होता है। विलेय कैलसियम लवण पर ट्राइसोडियम फास्फेट अथवा अमोनियम फास्फेट की क्रिया से ट्राइकैलसियम फास्फेट प्राप्त हो सकता है।

सुपर-फास्फेट (सुपरफास अकेला)

सुपरफास अकेला में १४ से २५ प्रतिशत, सामान्यत: २० से २१ प्रतिशत उपलब्ध फास्फरिक अम्ल (P_2O_5) रहता है। इसमें अल्प मात्रा में सिट्रेट अविलेय फास्फरिक अम्ल भी रहता है। फास्फेट की अधिक मात्रा मोनोकैलसियम और अल्प मात्रा डाइ-कैलसियम और ट्राइकैलसियम फास्फेट की रहती है। अत: इसका अधिक फास्फरिक अम्ल पौधों को उपलब्ध होता है। यह २०० पौण्ड भार के बोरे में बिकता है।

सुपरफास को खेतों में फसल बोने के पहले बिखेरते हैं और मिट्टी में मिला देते हैं। हेस्केल (Heskel, १९२३) का मत है कि खेतों में छींटने की अपेक्षा पौधों की जड़ों में देने से यह अधिक लाभप्रद और सस्ता पड़ता है। सुपरफास जिस स्थान पर दिया जाता है उससे दूर नहीं जाता। इससे ऊपर से जड़ों के निकट खाद देना अधिक लाभप्रद होता है। यदि सुपरफास को मिट्टी के साथ भली-भाँति मिला न दिया जाय तो इससे पूरा लाभ नहीं होता।

कितना सुपरफास डालना चाहिए यह मिट्टी की प्रकृति, मिट्टी में फास्फरस की उपस्थिति और फसल की किस्म पर निर्भर करता है। साधारणतया यह प्रति एकड़ १२० से ४५० पौण्ड डाला जाता है।

कुछ किस्म की मिट्टी और कुछ मौसम में यह बिलकुल प्रभावहीन होता है। कुछ किस्म की मिट्टी में बहुत प्रभावकारी होता है। इसके उपयोग से सब प्रकार की फसलों, सीरियल, कपास, जूट, आलू, शलजम, फलों, छीमीवाले पौधों, तम्बाकू और मसालों में लाभ होते देखा गया है, पर अधिक जड़वाली फसलों पर इसका प्रभाव अधिकतम देखा गया है। इससे धान, कपास, तम्बाकू, जूट, सनई और सोयाबीन की पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है।

सुपरफास का प्रभाव एक ही वर्ष नहीं होता। एक बार खेतों में डालने से कई वर्षों तक इसका प्रभाव देखा जाता है। नागावोका (१९०४) की रिपोर्ट है कि अम्लीय मिट्टी में पहले वर्ष पैदावार सबसे अधिक, दूसरे और तीसरे वर्ष कुछ कम पर चौथे वर्ष फिर अधिक बढ़ी हुई पायी गयी है। बेकर (१९२५) ने देखा है कि ट्रिबल फास्फेट के डालने से पहले वर्ष में १२·३ प्रतिशत, दूसरे वर्ष में ८·९ प्रतिशत और तीसरे वर्ष में ७·१ प्रतिशत फसलें बढ़ी हुई पायी गयी हैं। वैद्यनाथन (१९३२) का भी मत है कि सुपरफास का प्रभाव कई वर्षों तक रहता है।

स्किनर और बिएट्टी (Skinner and Beattie, १९१७) का मत है कि प्रति एकड़ २०० पौण्ड सुपरफास के लगातार पाँच वर्षों के व्यवहार से मिट्टी की अम्लता बढ़ जाती है। बर्गेस (Burgess, १९२२) का मत है कि मिट्टी की अम्लता बढ़ जाने के कथन में कोई सचाई नहीं है। रसेल (१९३२) भी इसी मत की पुष्टि करते हैं। रौथमस्टेड में सुपरफास के देने से मिट्टी में अम्लता बढ़ी हुई नहीं पायी गयी है। पीरे (Pierre, १९३४) का मत है कि आर्द्र स्थान की अधिकांश मिट्टी, में, जिसका पी एच ५·० से ६·० रहता है, सुपरफास्फेट, फास्फेट-चट्टान अथवा मोनोकैलसियम फास्फेट से अम्लता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। पर जलीयित डाइकैलसियम और ट्राइकैलसियम फास्फेट से मिट्टी की क्षारीयता प्रभावित होती है।

सुपरफास डबल; सुपरफास ट्रिबल

सुपरफास में फास्फरिक अम्ल की मात्रा बढ़ायी जा सकती है। ऐसा मुक्त फास्फरिक अम्ल के रहने से होता है। ऐसे सुपरफास को 'सुपरफास डबल' या 'ट्रिबल' कहते हैं। जिस सुपरफास में फास्फरिक अम्ल ३२ प्रतिशत के लगभग रहता है उसे डबल

सुपरफास्फेट और जिसमें फास्फरिक अम्ल की मात्रा ४०-४७ प्रतिशत रहती है उसे 'ट्रिबल सुपर-फास्फेट' कहते हैं। आजकल सुपरफास डबल और सुपरफास ट्रिबल की माँग बढ़ गयी है और दिन-दिन बढ़ रही है। अमेरिका के इसके उत्पादन के आँकड़े पूर्व अध्याय में दिये हुए हैं। ये सुपरफास उतने ही प्रभावशाली हैं जितना सुपरफास अकेला, पर फास्फरिक अम्ल के अधिक रहने के कारण परिवहन का खर्च कम हो जाता है। इसमें दोष यही है कि मुक्त फास्फरिक अम्ल के कारण यह बिलकुल सूखा नहीं होता, इससे बिखरने में कुछ कठिनता होती है।

बेसिक स्लैग

बेसिक स्लैग का उर्वरता-मान उसकी सूक्ष्मता पर निर्भर करता है। वह जितना ही अधिक सूक्ष्म हो उतना ही अधिक प्रभावशाली होता है। साधारणतया स्लैग का ८० प्रतिशत १००-अक्षि चलनी में छन जाना चाहिए। बेसिक स्लैग में चूने के रहने से फसलों पर इसका प्रभाव अच्छा पड़ता है, विशेषत: अम्लीय मिट्टी में। सिलिका के रहने से फास्फरिक अम्ल की मात्रा में कमी हो सकती है। यदि मिट्टी में चूने या सिलिका की कमी हो तो ऐसी मिट्टी के लिए बेसिक स्लैग सर्वोत्कृष्ट खाद है। आलू के खेतों में बेसिक स्लैग के देने से आलू के विशिष्ट कलंकिका रोग (scab) को रोकने में कठिनता हो सकती है।

बेसिक स्लैग में कुछ मैगनीशियम और मैंगनीज़ भी रहते हैं। इस कारण जिस मिट्टी में इनकी कमी हो उसमें बेसिक स्लैग से कमी की पूर्ति हो सकती है। यदि कोई फसल किसी मिट्टी में ठीक से उगती न हो और न उगने का कोई कारण स्पष्ट रूप से मालूम न हो तो वहाँ बेसिक स्लैग से बहुत लाभ होता पाया गया है। चारे के उत्पादन में यह उर्वरक बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। प्रति एकड़ भूमि में ४०० से १५०० पौण्ड तक यह इस्तेमाल हो सकता है। पर साधारणतया प्रति एकड़ ५० से २०० पौण्ड प्रति वर्ष इस्तेमाल करना पर्याप्त समझा जाता है।

अमेरिका के ओहियो कृषि क्षेत्रों में फास्फेट उर्वरकों के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान २० वर्षों में हुए हैं उनसे मालूम होता है कि सुपर-फास्फेट का प्रभाव सबसे उत्तम होता है। उसके बाद बेसिक स्लैग आता है और तब भाप-उपचारित हड्डी का चूरा। पर यदि अम्लीय मिट्टी में उपयोग हो तो विलियम्स के अनुसार बेसिक स्लैग सर्वोत्कृष्ट होता है। इण्डियाना में रीड और हौल (Reed and Hall, १९३०) द्वारा जो प्रयोग हुए हैं उनसे सुपरफास्फेट और बेसिक स्लैग प्राय: एक से ही प्रभाव के पाये गये हैं। उसके बाद भाप-उपचारित हड्डी का चूरा और अन्त में फास्फेट-चट्टान का

स्थान आता है। विट्टेकर (Whittaker, १९४७) का मत है कि यदि बेसिक स्लैग में मिट्टी मिलाकर उपयोग किया जाय तो उसका परिणाम सर्वश्रेष्ठ होता है।

कच्ची हड्डी का चूरा

कच्ची हड्डी का चूरा भी खाद के लिए प्रयुक्त होता है। इसका फास्फरस पौधों को उतना जल्दी उपलब्ध नहीं होता क्योंकि इसमें कुछ कार्बनिक पदार्थ मिले रहते हैं। कार्बनिक पदार्थों के कारण यह बहुत महीन पीसा भी नहीं जाता। इस कारण कच्ची हड्डी के चूरे का उपयोग बड़ा सीमित है। यह मिलता भी बहुत कम है।

भाप-उपचारित हड्डी का चूरा

भाप-उपचारित हड्डी के चूरे में फास्फरिक अम्ल २२ से ३० प्रतिशत और नाइट्रोजन १ से २ प्रतिशत रहता है। यह बहुत महीन पीसा जा सकता है, इस कारण बहुत हलका होता है। इतना हलका कि बिखेरने से वायु में उड़ जा सकता है। इससे मिट्टी या लकड़ी का बुरादा मिलाकर इसे खेतों में बिखेरते हैं। पौधों के लिए उपलब्ध फास्फरस की दृष्टि से इसका स्थान सुपरफास और बेसिक स्लैग से नीचा है पर कच्ची हड्डी के चूरे से यह बहुत अच्छा होता है। अम्लीय मिट्टी में इसका प्रभाव सबसे अच्छा देखा जाता है। मिट्टी में चूना देने से चूरे के फास्फेट की विलेयता घट जाती है।

हड्डी की राख

हड्डी जलाने से जो राख प्राप्त होती है वह उर्वरक के रूप में प्रयुक्त हो सकती है। इसमें फास्फरिक अम्ल ३० से ४० प्रतिशत रहता है और अल्प मात्रा में मैगनीशियम और फ्लोरीन भी। हड्डी की राख अधिक मिलती नहीं है। यदि मिल सके तो इसका उपयोग करना अच्छा है।

हड्डी का कोयला

चीनी के साफ करने में हड्डी का कोयला, अस्थि-काल, प्रयुक्त होता है। भारत में हड्डी का कोयला नहीं प्रयुक्त होता, भारत से बाहर के देशों में सफेद चीनी की प्राप्ति के लिए हड्डी का कोयला प्रचुरता से प्रयुक्त होता है। कुछ समय के उपयोग के बाद यह कोयला काम का नहीं रहता, इसका रंग दूर करने का गुण नष्ट हो जाता है। तब यह कोयला खाद के काम में आता है। इसमें फास्फरिक अम्ल ३० से ३५ प्रतिशत रहता है। नाइट्रोजन भी १ से २ प्रतिशत और कार्बन लगभग १० प्रतिशत रहता है। अन्य खादों के साथ मिलकर इसका उपयोग अच्छा होता है।

फास्फेट-चट्टान, राक-फास

फास्फेट खनिज जहाँ-तहाँ पाये जाते हैं। खानों से निकले खनिजों को फास्फेट-चट्टान या राक-फास कहते हैं। ऐसे फास्फेट-चट्टानों में अपद्रव्य मिले रहते हैं। अपद्रव्यों को पहले निकाल डालते हैं, फिर चट्टानों को महीन पीसते हैं। ऐसे पिसे हुए चट्टानों को 'उत्प्लावन' या 'चूर्ण' फास्फेट कहते हैं। ऐसा चूर्ण भारी और धूसर रंग का होता है। यह जल में कम घुलता पर अम्लीय जल में अधिक घुलता है। ऐसे चूरा फास्फेट में फास्फरिक अम्ल २५ से ४० प्रतिशत, फ्लोरीन ३ से ४ प्रतिशत और चूना, एल्यूमिना, मैगनीशिया और लोहे विभिन्न मात्राओं में रहते हैं। फ्लोरीन की उपस्थिति से उपलब्ध फास्फरिक अम्ल पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

खनिज फास्फेटों में फास्फरिक अम्ल की मात्रा सामान्य सुपर-फास्फेट से प्रायः दुगुनी रहती है पर कीमत प्रायः आधी ही होती है। सस्ते होने के कारण खनिज फास्फेटों का उपयोग आज बढ़ रहा है। पौधों के लिए खनिज फास्फेटों के फास्फरस की प्राप्यता निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है—

१. **चूर्ण की सूक्ष्मता**—फास्फेट-चट्टान जितना ही सूक्ष्म चूर्णित हो, उतना ही अधिक पौधों को उपलब्ध होता है। सूक्ष्म होने से उसके बाह्य तल का क्षेत्र बढ़ जाता है जिससे मिट्टी-विलायकों और फास्फेटों के बीच अधिक प्रतिक्रिया होकर अधिक फास्फरिक अम्ल पौधों को प्राप्य होता है। व्यापार का फास्फेट चूर्ण १००-अक्षि चलनी में छन जाना चाहिए। इससे अधिक महीन करने की आवश्यकता नहीं है।

२. **मिट्टी की प्रकृति**—उदासीन मिट्टी की अपेक्षा अम्लीय मिट्टी पर फास्फेट-चट्टान का उत्तमतर प्रभाव पड़ता है। अम्लीय मिट्टी से फास्फेट-चट्टान पर कुछ ऐसी प्रतिक्रिया होती है कि फास्फरस ऐसे रूप में परिणत हो जाता है जिसे पौधे शीघ्र ग्रहण कर सकते हैं। मिट्टी के उदासीन अथवा क्षारीय होने से यह प्रतिक्रिया नहीं होती। सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता है कि अम्लीय जल में फास्फेट-चट्टान अधिक विलेय हो। यदि मिट्टी बड़ी अम्लीय है तो पौधों के लिए फास्फरस की उपलब्धि अधिक बढ़ जाती है। यदि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अधिक रहें, विशेषतः ऐसे कार्बनिक पदार्थ जो जल्द विच्छेदित होनेवाले हों, तो ऐसी मिट्टी में भी चट्टान-फास्फेट से अधिक लाभ होता है। जीर्णकी (peaty) और प्रजीर्णकी (muck) मिट्टी में यह चट्टान-फास्फेट अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

३. **फसल**—विभिन्न फसलें चट्टान-फास्फेट से विभिन्न मात्रा में प्रभावित होती हैं। कुछ फसलें पर्याप्त मात्रा में फास्फरस को ग्रहण कर लेती हैं। ऐसी फसलों में ल्यूस्यर्न (lucerne), लुपिन (lupin), सरसों, सनई, बन्दगोभी, तोरिया, स्वीडन

शलजम, कुट्टक और मटर हैं। कुछ फसलें कम फास्फरस ग्रहण करती हैं। ऐसी फसलों में मूंग-मोठ, सेम और शरत राई (rye) हैं। कुछ फसलें ऐसी हैं जो फास्फरस को बिलकुल नहीं ग्रहण करतीं अथवा बड़ी ही अल्प मात्रा में ग्रहण करती हैं। ऐसी फसलों में गेहूं, जई, जौ, राई, मक्का, गाजर, तम्बाकू, ज्वार-बाजरा, सेंजी (clover), टमाटर और आलू हैं।

सुपर फास्फेट के समान यह प्रभावकारी नहीं होता।

४. **चूने का प्रभाव**—मिट्टी में चूना डालने से चट्टान-फास्फेट की प्राप्ति पौधों के लिए कम हो जाती है।

५. **कोशिका-रसों की अम्लता**—चट्टान-फास्फेट और कोशिका-रसों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं पाया गया है।

६. **अन्य लवणों का प्रभाव**—यदि चट्टान-फास्फेट में अन्य लवण रहें तो पौधों के फास्फेट की ग्रहणशीलता में बहुत अन्तर पड़ जाता है। कैलसियम कार्बोनेट से फास्फरस की प्राप्ति कम हो जाती है। अमोनियम लवणों से बढ़ जाती है। मैगनीशियम सल्फेट से भी प्राप्ति बढ़ जाती है, पर सोडियम नाइट्रेट से प्राप्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

गोबर-खाद और हरी खाद के साथ मिश्रण

यदि चट्टान-फास्फेट के साथ गोबर-खाद मिला दी जाय तो फास्फरस की ग्रहणशीलता बढ़ जाती है। हौपकिन्स (१९१०) का ऐसा मत है। कुछ लोगों का मत इसके विपरीत है। ऐसे व्यक्तियों में हौफमैन (१९१३), ब्राउन और बर्नर (१९१७) हैं। रामस्वामी सीवन (१९२५) का मत है कि हरी खाद से फास्फेट की प्राप्ति पौधों के लिए बढ़ जाती है।

यदि गोबर और गन्धक के साथ चट्टान-फास्फेट का कम्पोस्ट बनाया जाय तो उपलब्ध फास्फरस की मात्रा बढ़ जाती है। जीवाणुओं के कारण यहाँ गन्धक सलफ्यूरिक अम्ल में परिणत होकर, फास्फेट से फास्फरिक अम्ल मुक्त कर उपलब्ध फास्फरस की मात्रा को बढ़ा देता है। कुछ खेतों में फास्फेट के साथ गन्धक या जिपसम डालने से फसलें बढ़ी हुई नौल, इर्विन और गार्डनर (Noll, Irvin and Gardner) १९३५) द्वारा पायी गयी हैं।

फास्फेट-चट्टान को बहुत महीन पीसकर, ऐसा महीन कि वह १००-अक्षि चलनी में छन जाय, खेतों में मिट्टी तैयार करने के पहले डालकर मिट्टी के साथ मिला देना चाहिए। यदि खेतों में हरी खाद हो तो हरी खाद के साथ जमीन में जोत देना चाहिए।

प्रति तीन या चार वर्षों पर प्रति एकड़ १००० से २००० पौण्ड फास्फेट खेतों में डालना चाहिए। भारत में यह धान के खेतों में प्रति वर्ष प्रति एकड़ २५० से ३०० पौण्ड डाला जाता है। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में डालने की अपेक्षा अधिक मात्रा में डालना अच्छा होता है।

कुछ फसलों के लिए चट्टान-फास्फेट बहुत उपयुक्त खाद है। ऐसी फसलों में जैलप (jalap), इपिकाकुन्हा (ipecacuanha), जई, ल्यूस्यर्न और सरसों हैं। मद्रास और आसाम में धान के लिए यह लाभकारी सिद्ध हुआ है, यद्यपि इसका प्रभाव हड्डी के चूरे से कम होता है। इसकी कीमत को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि फास्फोरीय खादों में यह सबसे सस्ता होता है और इसका प्रभाव कई वर्षों तक चलता रहता है। रामस्वामी सीवन के प्रयोगों से सिद्ध होता है कि इसका प्रभाव कम से कम चार वर्षों तक अवश्य रहता है और तीसरे वर्ष में सबसे अधिक होता है।

उत्तप्त फास्फेट-चट्टान

चट्टान-फास्फेट को सीधे पीसकर इस्तेमाल करने के स्थान में यदि अकेले अथवा किसी अन्य पदार्थ, जैसे चूना-पत्थर, सिलिका या सोडियम कार्बोनेट के साथ मिलाकर १४००° से० तक उत्तप्त किया जाय तो उससे फ्लोरीन निकल जाता है। मैगनीशियम सिलिकेट के साथ उत्तप्त करने से भी फ्लोरीन निकल जाता है। ऐसे उत्तप्त उत्पाद में फास्फरिक अम्ल २५ से २८ प्रतिशत रहता है। यह जल में घुलता नहीं है पर सिट्रेट विलयन में घुल जाता है और पौधे इसे सरलता से ग्रहण करते हैं। कच्चे चट्टान-फास्फेट से यह अधिक प्रभावकारी उर्वरक सिद्ध हुआ है।

एमोफास

एमोफास मोनोअमोनियम अर्थोफास्फेट है। यह उर्वरक के लिए बिकता है। इसमें फास्फरिक अम्ल की मात्रा ६१·७१ प्रतिशत रहती है। इसमें नाइट्रोजन भी १२·१ प्रतिशत रहता है। यह अल्प अम्लीय होता है। यह जल में पूर्ण रूप से घुल जाता है। इसका सारा-का-सारा फास्फरस पौधों को उपलब्ध होता है। फास्फरस के अतिरिक्त नाइट्रोजन का होना इसकी उत्कृष्टता को बढ़ा देता है।

डाइअमोफास

डाइअमोफास में फास्फरिक अम्ल ५३·३५ प्रतिशत और नाइट्रोजन २१·०७ प्रतिशत रहता है। यह भी जल में घुल जाता है। एमोफास की अपेक्षा यह कम स्थायी होता है। आर्द्र वायु में इससे अमोनिया निकलता है। यह अल्प-क्षारीय

होता है। यह अच्छा उर्वरक होता है। नाइट्रोजन और फास्फरस दोनों पर्याप्त मात्रा में इससे प्राप्त होते हैं।

लूना-फास

लूना-फास जर्मनी में तैयार होता है। इसमें फास्फरिक अम्ल ४९ प्रतिशत और नाइट्रोजन १८·५ से २० प्रतिशत रहता है। यह अच्छा उर्वरक है पर हर स्थान पर मिलता नहीं है।

कैल-मेटाफास

कैल मेटाफास 'मेटाफास' के नाम से विकता है। यह अमोनियम सिट्रेट में विलेय होता है और इसके फास्फरस को पौधे जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। अम्लीय मिट्टी के लिए यह अच्छा उर्वरक है पर इसे विशेष रूप से तैयार करना पड़ता है।

पोटाश-मेटाफास

पोटाश-मेटाफास, $K_6(PO_3)6H_2O$ जल में अल्प विलेय होता है पर अमोनियम सिट्रेट विलयन में जल्दी घुल जाता है। इससे पोटाश और फास्फरस दोनों प्राप्त होते हैं। फलदार फसलों के लिए यह विशेष लाभप्रद होता है। इसका प्रायः ९० प्रतिशत पौधों के पोषण में लग जाता है। इसमें पोटाश ३५ प्रतिशत और फास्फरिक अम्ल ५५ प्रतिशत रहते हैं। यह महँगा पड़ता है। यही इसके उपयोग में रुकावट है।

चट्टान-फास्फेट और पोटाश क्लोराइड के मिश्रण को पिघलाने से जो उत्पाद प्राप्त होता है उसमें कैल-मेटाफास और पोटाश मेटाफास दोनों रहते हैं।

ग्वानो

ग्वानो में नाइट्रोजन और फास्फरस दोनों रहते हैं, यह अच्छा उर्वरक है। ग्वानो में अनेक अपद्रव्य मिले रहते हैं; चूना, चूना-पत्थर, जिपसम, मिट्टी, लकड़ी का बुरादा सब इसमें अवमिश्रित किये जाते हैं। अच्छा ग्वानो मिले तो उसका उपयोग बहुत लाभप्रद होता है।

मछली

फास्फोरीय खाद के लिए मछली का उपयोग बहुत पुराना है। भारत में बहुत दिनों से इसका उपयोग होता आ रहा है। फल के पेड़ों, नारियल और तम्बाकू में इसका उपयोग भारत के गाँवों में होता है। इसके उपयोग से नारियल में बहुत फल लगते हैं। पेड़ों की जड़ों के निकट में मछलियाँ या उनकी बनी खाद गाड़ दी जाती है।

मछली से जो खाद मद्रास में प्राप्त हुई थी उसमें फास्फरिक अम्ल ६·३३ प्रतिशत, नाइट्रोजन ७·६५ प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ ६६·७१ प्रतिशत और पोटाश ०·६९ प्रतिशत पाये गये थे।

फास्फोरीय खादों का तुलनात्मक अध्ययन

विभिन्न फास्फोरीय खादों का तुलनात्मक अध्ययन सरल नहीं है। ऐसे अध्ययन में अनेक बातों, फसलों की किस्म, मिट्टी की प्रकृति, जलवायु की स्थिति, आदि का विचार रखना आवश्यक होता है। फास्फोरीय खाद की भौतिक अवस्था भी बड़े महत्त्व की है। मिट्टी में उपस्थित फास्फेट का भी विचार रखना आवश्यक होता है।

भारत में कुछ वैज्ञानिकों ने विभिन्न फास्फोरीय खादों के मूल्यांकन के लिए अनेक प्रयोग किये हैं। पर ये सब प्रयोग दो या तीन किस्म की खादों पर ही हुए हैं। कूपर और सेन गुप्त (१९२६) के प्रयोग महत्त्व के हैं। उन्होंने प्रति एकड़ ८० पौंड फास्फरिक अम्ल (P_2O_5) का उपयोग किया था, जिसमें फास्फोरीय खादों की मात्रा इतनी थी कि उन सब में P_2O_5 की मात्रा एक ही रहे। उसमें बेसिक स्लैग से प्राप्त उपज को १०० मानकर अन्य खादों से प्राप्त उपज की तुलना की गयी थी। उनके परिणाम ये थे—

फास्फेटों की तुलनात्मक फसल-उत्पादन क्षमता

खाद	उपज
बेसिक स्लैग	१००
सुपरफास्फेट	९३·३
हड्डी चूरा	८८·३
बेलजियम चूर्ण-फास्फेट	६१·२
प्लुटोफास	३०·७
*रेडियो फास	१३·५
*इण्डो फास	१०·६
*सिंहभूम फास्फेट	५·३

* ये सब भारतीय कठोर एपेटाइट हैं

स्टुवर्ट (Stewart, १९३९) ने कुछ फास्फेटों से ऐसे ही प्रयोग किये हैं। उन्होंने चूने के साथ सुपर-फास्फेट और बिना चूने के साथ सुपर-फास्फेट का उपयोग किया था। चूने के साथ सुपर-फास्फेट से जो उपज हुई उसे १०० मानकर अन्य उपजों की उन्होंने तुलना की थी। उनके परिणाम निम्नलिखित हैं—

खाद	चूने के साथ			बिना चूने के साथ		
	शलजम	जौ	घास	शलजम	जौ	घास
	१९३६	१९३७	१९३८	१९३६	१९३७	१९३८
बिना फास्फेट	७२	९३	९७	५९	४६	६७
सुपर फास्फेट	१००	१००	१००	८७	६६	७०
खनिज फास्फेट	८२	९२	१०१	७७	६४	६८
बेसिक स्लैग	९१	९७	१०२	८२	६९	८६
भाप-उपचारित हड्डी-चूरा	९८	९२	१००	८३	६४	७४

इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि बिना चूने की मिट्टी में सुपर-फास्फेट से प्रायः ५० प्रतिशत की वृद्धि शलजम में होती है और हड्डी-चूरा तथा बेसिक स्लैग से यह कुछ अधिक है। खनिज फास्फेट इससे कुछ कम प्रभावकारी है। पर इससे भी उपज बढ़ती है। यह वृद्धि दूसरे वर्ष में भी कायम रहती है, यद्यपि दूसरे वर्ष में सुपर-फास्फेट से बेसिक स्लैग द्वारा उपज कुछ अधिक होती है। घास की उपज के आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि तीसरे वर्ष भी सुपर-फास्फेट, खनिज फास्फेट और हड्डी के चूरे का प्रभाव विद्यमान है. पर यह प्रभाव बेसिक स्लैग के प्रभाव से कुछ न्यून है।

उपलब्ध फास्फरस

फास्फोरीय खादों का फास्फरस उपलब्ध हो सकता है अथवा नहीं; यह विभाजन बिलकुल कृत्रिम है। किसी विशिष्ट नियम के आधार पर यह आधारित नहीं है। उपलब्ध फास्फरस वाली फास्फोरीय खाद का यही आशय है कि जब यह खाद ठीक प्रकार से खेतों में डाली जाती है तब शीघ्र ही पौधों की वृद्धि को उत्तेजित करती और पौधे उसे ग्रहण कर बढ़ते तथा फूल-फल देते हैं। जब हम कहते हैं कि इस खाद का फास्फरस उपलब्ध नहीं है तब इसका आशय यही है कि यह खाद कम प्रभावोत्पादक है और इसका फास्फरस पौधों को शीघ्र प्राप्त न होकर धीरे-धीरे प्राप्त होता है पर ऐसी खाद का भी कुछ न कुछ प्रभाव तत्काल अवश्य पड़ता है। इस दृष्टि से विचार करने पर जो फास्फेट जल में विलेय होते हैं वे शीघ्र उपलब्ध होनेवाले फास्फरीय उर्वरक हैं। ऐसे उर्वरकों में मोनो कैलसियम फास्फेट, अमोनियम फास्फेट (एमोफास) और पोटाश फास्फेट (पोटाश मेटाफास) हैं। सुपरफास्फेट में मोनो कैलसियम फास्फेट रहता है।

साइट्रेट में विलेय फास्फेट भी उपलब्ध फास्फोरीय खाद के अन्तर्गत आ जाते हैं। डाइकैलसियम फास्फेट १५ प्रतिशत अमोनियम सिट्रेट में और बेसिक स्लैग २ प्रतिशत साइट्रिक अम्ल में विलेय है। जो फास्फेट जल या सिट्रिक अम्ल में अविलेय होते हैं वे अप्राप्य फास्फरस हैं। हड्डी का चूरा और कच्चे चट्टान-फास्फेट अप्राप्य फास्फरस हैं।

ऐसा कहा जाता है कि मिट्टी में फास्फोरीय खाद देने से मिट्टी का प्राप्य फास्फरस अप्राप्य अथवा न्यून प्राप्य फास्फरस में परिणत हो जाता है। ऐसे परिवर्तन को फास्फेट का 'स्थिरीकरण' (fixation) कहते हैं। स्थिरीकरण का कारण यह समझा जाता है कि खाद के मोनो कैलसियम फास्फेट का डाइ- एवं ट्राइ-कैलसियम फास्फेट में अथवा मोनो कैलसियम और डाइकैलसियम फास्फेट का लोहे और अलूमिनियम के फास्फेट में परिणत होना है।

यह परिवर्तन इतना सरल नहीं है। यह बहुत पेचीला समझा जाता है। समय-समय पर इसकी व्याख्या के लिए अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं। मिड्ग्ली (Midgley, १९४०) का सिद्धान्त सबसे आधुनिक है। उनके कथनानुसार फास्फेट के स्थिरीकरण की तीन रीतियाँ हैं—

१. धरती की पेचीली मिट्टी के साथ फास्फेट का अवशोषण

२. कैलसियम, लोहा और एलूमिनियम के बीच रासायनिक प्रतिक्रियाएं

३. मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों के साथ फास्फेट का संयोजन

मैट्सन (Mattson, १९३१) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बतलाया था कि मिट्टियाँ कोलायडल उभयधर्मी होती हैं। वे फास्फेट आयन को अवशोषित कर लेती हैं। स्टील (Steel, १९३५) का भी ऐसा ही मत है। ब्रैडफील्ड (Bradfield) का मत है कि यदि मिट्टी का पी एच ४·५ से ७·५ रहे तो ऐसी मिट्टी के कणों के तल पर फास्फेट का स्थिरीकरण होता है। मरफी (Murphy, १९३९) ने केओलिनाइट (kaolinte) पर कार्य करते हुए देखा कि यदि केओलिनाइट बहुत महीन पीसा जाय तो फास्फेट के ग्रहण की क्षमता अधिकाधिक बढ़ जाती है। मेट्जर (Metzer, १९४०) का मत है कि स्थिरीकरण का कारण उतना अवशोषण नहीं है जितना अम्लीय मिट्टी में रासायनिक अवक्षेपण। स्टाउट (Stout, १९४०) ने जो प्रयोग किये हैं उनसे अवशोषण और रासायनिक अवक्षेपण के बीच विभेद करना कठिन है। उनके मत से स्थिरीकरण का कारण दोनों ही हैं।

अनेक अन्वेषकों ने जो प्रयोग किये हैं उनसे मालूम होता है कि स्थिरीकरण का कारण बहुत अधिक अंश में कैलसियम, लोहा और एलूमिनियम के बीच प्रतिक्रियाएँ

हो सकती हैं। मिट्टी में कैलसियम की मात्रा सबसे अधिक रहती है। लोहा और एलू-मिनियम अपेक्षया कम रहता है। अतः स्थिरीकरण में अधिकांश फास्फेट ट्राइकैलसियम फास्फेट में परिणत हो जाता है। ऐसा स्थिरीकरण ऐसी मिट्टी में ही होता है जो क्षारीय या अल्प अम्लीय है और जिसमें थोड़ी मात्रा में ही लोहा और एलूमिनियम है। यदि सक्रिय कैलसियम की मात्रा कम है तो फास्फेट अधिकांश लोहे के फास्फेट या कुछ एलूमिनियम के फास्फेट के रूपों में स्थिरीकृत होता है। ऐसा स्थिरीकृत फास्फेट पौधों को कठिनता से उपलब्ध होता है।

एलूमिनियम फास्फेट के रूप में स्थिरीकरण स्पष्ट अम्लीय मिट्टी में ही होता है। कम पी एच होने से और मिट्टी में एलूमिनियम लवण रहने के कारण फास्फेट कैलसियम की अपेक्षा एलूमिनियम के साथ अधिक संयोजित होता है। नार्मल एलू-मिनियम फास्फेट ०·००२ नार्मल सलफ्यूरिक अम्ल में पर्याप्त विलेय होने के कारण यह उपलब्ध फास्फरस वाला फास्फेट होता है।

चूर्णीय मिट्टी में ट्राइकैलसियम फास्फेट के साथ-साथ एक अति विलेय भास्मिक कार्बोनेट भी बनता है। ट्राइकैलसियम फास्फेट के रूप में फास्फरस का उतना स्थिरीकरण नहीं होता जितना लोहा और एलूमिनियम फास्फेट के बनने के कारण होता है।

ऐसा समझा जाता है कि मैगनीशियम या मैंगनीज़ या टाइटेनियम के कारण भी फास्फेट का स्थिरीकरण कुछ सीमा तक हो सकता है।

मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के कारण भी फास्फेट का स्थिरीकरण हो सकता है। पर ऐसे स्थिरीकरण के सम्बन्ध में जो कुछ अध्ययन हुआ है उससे अभी निश्चित मत कायम नहीं किया जा सकता। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि यदि कार्बनिक पदार्थों से स्थिरीकरण होता है तो वह बहुत अल्प होता है। डाउटी (Doughty, १९३५) का कहना है कि ह्यूमस से फास्फेट का स्थिरीकरण नहीं होता।

फास्फेट का स्थिरीकरण कैलसियम, लोहा और अलूमिनियम के साथ प्रतिक्रियाओं के कारण होता है। कैलसियम के साथ ट्राइकैलसियम फास्फेट बनता है, जिससे पौधों को फास्फेट प्राप्त हो सकता है और वह शीघ्रता से प्राप्त होता है। एलूमिनियम के स्थिरीकरण से एलूमिनियम फास्फेट, $AlPO_4$ बनता है। इससे भी सामान्यतः फास्फरस प्राप्य होता है। लोहे के फास्फेट, एलूमिनियम के भस्मीय फास्फेट और लोहे के भस्मीय फास्फेट को पौधे कठिनता से ग्रहण करते हैं। अतः ऐसे फास्फेट अप्राप्य या न्यून प्राप्य होते हैं।

फास्फरिक अम्ल का निर्धारण

जल-विलेय फास्फरिक अम्ल—केवल मोनो-कैलसियम फास्फेट शुद्ध जल में विलेय होता है। इसकी मात्रा के निर्धारण के लिए खाद को पानी से संकर्षण (leach) करते हैं। खाद में जो कमी होती है वही विलेय फास्फेट की मात्रा है। यह कमी प्रधानतया मोनो कैलसियम फास्फेट के कारण होती है। व्यापार में इसे जल-विलेय फास्फरिक अम्ल कहते हैं। मोनो-अमोनियम और डाइ-अमोनियम फास्फेट तथा ग्लीसिरो-फास्फेट और हेक्सोज-फास्फेट सदृश कार्बनिक फास्फेट भी जल विलेय हैं।

सिट्रेट-विलेय फास्फरिक अम्ल—जल से संकर्षित खाद के १ ग्राम नमूने को अमोनियम सिट्रेट के उदासीन और १.०९ विशिष्ट गुरुत्व के विलयन से ६५° से० पर एक घण्टे तक उपचारित करने से डाइकैलसियम और ट्राइकैलसियम फास्फेट घुल जाते हैं। पहले समझा जाता था कि इसमें प्रधानतया डाइकैलसियम फास्फेट रहता है और उसे व्यापार में 'अवक्षिप्त फास्फरिक अम्ल' (precipitated phosphoric acid) कहते थे। पर अब यह समझा जाता है कि इसमें डाइकैलसियम और ट्राइकैलसियम फास्फेट दोनों रहते हैं।

मोनोकैलसियम या डाइकैलसियम फास्फेट के अवक्षपेण से जो ट्राइकैलसियम प्राप्त होता है वह भी अवक्षिप्त फास्फेट ही है। इसका प्रायः ५० प्रतिशत तक अमोनियम सिट्रेट में विलेय होता है। इसका मणिभीय रूप फास्फेट-चट्टान के एपेटाइट से भिन्न होता है। फास्फेट-चट्टान अमोनियम सिट्रेट विलयन में अति अल्प विलेय होता है। अमोनियम सिट्रेट के उदासीन विलयन का उपयोग फास्फेट की मात्रा निर्धारण में बहुत वर्षों से होता आ रहा है।

उपलब्ध फास्फरिक अम्ल का निर्धारण

उपलब्ध फास्फरिक अम्ल वह फास्फरिक अम्ल है जो जल और अमोनियम सिट्रेट के उदासीन विलयन में विलेय होता है। यूरोप में अमोनियम सिट्रेट का क्षारीय विलयन प्रयुक्त होता है। उपलब्ध फास्फरिक अम्ल से यह समझना भूल है कि यह सारा का सारा फास्फरिक अम्ल पौधों को उपलब्ध होता है। पौधों के उपलब्ध फास्फरस की मात्रा बहुत कुछ मिट्टी की स्थिति और फसल की प्रकृति पर निर्भर करती है। सुपरफास का समस्त फास्फरिक अम्ल जल या अमोनियम सिट्रेट के उदासीन विलयन में विलेय नही है। जो अंश १.१०९ विशिष्ट गुरुत्व के अमोनियम सिट्रेट के उदासीन विलयन में विलेय नही हैं उसे सिट्रेट-अविलेय फास्फरिक अम्ल कहते हैं।

बेसिक स्लैग में जो फास्फरिक अम्ल उपलब्ध होता है वह २ प्रतिशत सिट्रिक अम्ल में विलेय होता है। ऐसे ही फास्फरिक अम्ल को उपलब्ध फास्फरिक अम्ल कहते हैं। मात्रा निर्धारण की इस रीति को वैगनर (Wagner) रीति कहते हैं। अन्य रीतियाँ भी निर्धारण में प्रयुक्त होती हैं पर उनके सम्बन्ध में एकमत नहीं है।

कार्बनिक फास्फेट में फास्फरस के निर्धारण के लिए कार्बनिक फास्फेट को हाइड्रोजन पेराक्साइड द्वारा पहले विच्छेदित करते हैं। फिर विच्छेदित उत्पाद का ०·२ नार्मल सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा निष्कर्ष निकालकर उसमें फास्फरस की मात्रा निर्धारित करते हैं।

कुछ लोग समझते हैं कि सुपर-फास्फेट के उपयोग से मिट्टी कड़ी हो जाती है। यह बात बिलकुल गलत है। किसी-किसी ने मिट्टी के कड़े होने की बात इस कारण लिखी है कि सम्भवतः कार्बनिक पदार्थों के निकल जाने से कुछ ऐसा होता हुआ पाया गया है।

कुछ लोग समझते हैं कि मिट्टी में फास्फेट खाद के देने से कुछ फास्फेट पानी में घुलकर मिट्टी से निकलकर नष्ट हो जाता है। संकर्षण से भी ढालू मिट्टी में पानी द्वारा फास्फोरीय खाद निकलकर नष्ट हो सकता है। ऐसा मालूम होता है कि जहाँ फास्फोरीय खाद का उपयोग बहुत अधिक मात्रा में होता है, वहाँ कुछ खाद नष्ट हो सकती है। मटियार मिट्टी में, जो क्षारीय या प्रबल अम्लीय है, फास्फरीय खाद के नीचे जाने की गति बड़ी धीमी हो सकती है, पर यदि बलुआर मिट्टी का पी एच ६·५ हो तो ऐसी मिट्टी में फास्फोरीय खाद शीघ्र प्रविष्ट कर नीचे चली जाती है। जिस मिट्टी में फास्फोरीय खाद अधिक डाली जाती है उस मिट्टी की फास्फरस-मात्रा अवश्य ही बढ़ जाती है, क्योंकि फसल की उपज और संकर्षण से फास्फरस की क्षति उतनी नहीं होती जितना फास्फरस खाद के रूप में मिट्टी में डाला जाता है।

भारत में फास्फेट उर्वरक का उत्पादन

भारत में इस समय लगभग १६ कारखाने हैं जिनमें फास्फेट उर्वरक तैयार होता है। यद्यपि ये कारखाने देश की माँग की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं हैं पर अब फास्फेट उर्वरक का बाह्य देशों से आयात नहीं होता है। इन कारखानों से बने उर्वरक के उत्पादन को बढ़ाने की चेष्टाएँ हो रही हैं ताकि देश की माँग की पूर्ति हो सके। कूता गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश में ७२०,००० टन फास्फेट उर्वरक की खपत होगी। इसकी माँग आजकल दिन-दिन बढ़ रही है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

पोटाशीय खाद

पोटेसियम प्रकृति में बहुत विस्तार से पाया जाता है। पोटेसियम लवण चट्टानों, मिट्टियों, नमकीन झीलों, समुद्र, नदियों और झीलों के जल में पाया जाता है। पौधों और पशुओं के तन्तुओं में भी पोटाश लवण अनिवार्य रूप से रहता है। क्लार्क (Clark, १९२४) का अनुमान है कि धरती की पर्पटी में लगभग २·१४ प्रतिशत पोटेसियम रहता है, मिट्टी के ऊपरी अंश में निचले अंश से कम रहता है। मिट्टी का सारा का सारा पोटेसियम पौधों के लिए उपलब्ध नहीं होता, उसका अल्प अंश ही पौधों के लिए उपलब्ध होता है। उपलब्ध पोटेसियम की मात्रा मिट्टी की प्रकृति, जल-वायु की स्थिति, मिट्टी की भौतिक दशा आदि अनेक बातों पर निर्भर करती है। बलुआर और जीर्णकी मिट्टी में पोटेसियम कम रहता है। भारत के विभिन्न स्थलों की मिट्टी में पोटेसियम की और उपलब्ध पोटेसियम की मात्रा का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश

स्थान	पोटाश	
	औसत मात्रा	उपलब्ध मात्रा
देहरादून	०·८३	०·०१७
अलमोड़ा	०·५२	०·०२१
नैनीताल	०·७७	०·०२७
सहारनपुर	०·६५	०·०१३
मेरठ	०·७६	०·०३५
जालौन	०·७१	०·०१८
लखनऊ	१·००	०·००८
उन्नाव	०·८९	०·०१२
कानपुर	०·६७	०·०१०

हमीरपुर	०·२१	०·००८
बांदा	१·१९	०·०११
प्रतापगढ़	०·७९	०·००५
बनारस	०·८३	०·०१२
गोरखपुर	०·६१	०·००८
अलीगढ़	—	०·००८

बिहार

पूर्निया	—	०·०११
भागलपुर	०·३७	०·०१७
दरभंगा	०·५३	०·००६
मुजफ्फरपुर	०·७५	०·००९
चम्पारन	०·७०	०·०३१
सारन	०·८४	०·०१८
शाहाबाद	०·६०	०·०१४
पटना	०·९३	०·०११
गया	०·७५	०·०१९
मुंगेर	०·४८	०·०१५
सन्थाल परगना	०·४८	०·०१९
हजारीबाग	०·४१	०·०१९
पालामूँ	१·२०	०·०१३
राँची	०·३६	०·०१७
मानभूम	—	०·०१८
सिंहभूम	०·९६	०·००९

उड़ीसा

बालासोर	०·१६	०·०११
कटक	०·४९	०·०३४
पुरी	०·३८	०·००६
अंगुल	१·०३	०·०१८
सम्भलपुर	०·४२	०·०१२

असम

लखीमपुर	०·३५	०·०२१
शिवसागर	०·३४	०·०१२
नवगाँव	०·३८	०·०१३
दारंग	०·१६	०·०१४
कामरूप	०·४१	०·०१०
गोलपारा	०·५०	०·०१४
नागा पहाड़ी	०·८०	०·०७६
खासी और		
जैन्तिया पहाड़ी	—	०·००५
गारो पहाड़ी	—	०·०२४
मनीपुर	०·८९	०·०२७
कछार	०·४४	०·०१६
सिलहट	०·२८	०·०१०
तराई	०·५२	०·०१५

बंगाल

दार्जिलिंग	१·२०	०·०३१
जलपाइगुड़ी	१·२०	०·००८
दीनाजपुर	०·७०	—
मालदह	१·४१	—
राजशाही	१·०६	०·०४८
मुर्शिदाबाद	०·८९	०·०१४
नदिया	०·७८	०·०१४
बीरभूम	०·४४	—
बर्दवान	०·९२	०·०२६
बाँकुड़ा	०·५६	—
मेदिनीपुर	०·५६	०·०१२
हुगली	०·६३	०·१०३
हबड़ा	१·१३	—
२४ परगना	१·२०	०·११४

जेसोर	१·०५	०·०५३
खुलना	१·१२	—
फरीदपुर	१·१५	—
रंगपुर	०·९०	०·०२५
पबना	१·३२	—
मैमनसिंह	०·८५	०·०१५

मद्रास

विजगापट्टम	०·२२	०·०१३
पूर्वी गोदावरी	०·५३	०·०१७
पश्चिमी गोदावरी	०·५४	०·०१४
कृष्णा	०·७२	०·०२८
गुन्तूर	०·८३	०·०२४
नेल्लोर	०·४५	०·०२८
चित्तूर	०·११	०·००४
चिंगलीपुत्त	०·२०	०·०२०
उत्तरी अरकाट	०·५९	०·३१९
दक्षिणी अरकाट	०·१८	०·०१५
सलेम	०·२७	०·०१८
त्रिचनापल्ली	०·४८	०·०२९
कोयम्बटूर	०·३९	०·०२१
मदुरा	०·२८	०·०१९
तंजोर	०·२२	०·०२३
रामनद	०·१९	०·००८
तिन्नेवली	०·३४	०·०२२
कुर्नूल	०·४६	०.००६
कुड्डप्पा	०·७१	०·०२५
अनन्तपुर	०·३७	०·०६५
बेल्लारी	०·३२	०·००४
नीलगिरि	०·४२	०·०२०
दक्षिण कनारा	०·२१	०·००८

मालाबार	०·२३	०·०११

बंबई

पंचमहाल	०·४५	—
अहमदाबाद	०·५८	०·०२४
खेड़ा	०·३५	०·०३२
भड़ौच	०·२६	०·०१५
सूरत	०·२६	०·००९
पूर्वी खानदेश	०·२३	—
पश्चिमी खानदेश	०·२७	—
नासिक	०·३२	—
अहमदनगर	०·३७	—
पूना	०·४४	०·०२८
सतारा	०·५०	०·००६
शोलापुर	०·२५	०·०८७
बीजापुर	०·३५	०·१०२
बेलगांव	०·३८	०·००९
धारवाड़	०·३४	०·०१२
उत्तरी कनारा	०·४२	—
विराज	—	०·००८
साँगली	—	०·००७
गोवा	०·३३	०·००६
रतनागिरी	०·३८	—
कोलाबा	०·५३	—
थाना	०·४५	—

मध्य प्रदेश एवं बरार

अकोला	०·५१	—
वेतूल	०·७८	०·०२७
जबलपुर	०·४०	०·०१९
छिन्डवाड़ा	०·६१	०·०२९

वर्धा	०·७०	—
होशंगाबाद	०·८९	—
सागर	०·६८	—
बालाघाट	०·२९	०·०२२
नागपुर	०·६०	०·०२०
चाँदा	०·३९	—
रायपुर	०·८७	०·०७८

दिल्ली

दिल्ली	०·५२	०·०४४
अजमेर	०·५६	०·०१५
कुर्ग	०·२४	०·०२५

हैदराबाद-दक्षिण

परभनी	१·१६	०·०३५
निजामाबाद	१·६८	०·०२०
मेडक	१·५५	०·०४२
अतरफ-बालदा	४·४१	०·०२३
रायचूर	१·१६	०·०४७
वारंगल	१·७४	०·०३२
बीदर	०·६९	—
करीमनगर	२.८२	०.०१९

मैसूर

कादुर	०·३३	०·०१४
सिमोगा	०·२२	—
मैसूर	०·४६	—
बंगलोर	०·१४	०·००७
टुमकुर	०·२३	—
ट्रावनकोर	०·२२	—
मानीपुर	०·८९	०·०२७

बड़ोदा

बड़ोदा	०·२५	०·०४६
नवसारी	०·१९	०·०११
अमरेली	०·०४	०·०१२
मेहसाना	०·२१	०·०१७
ओखामन्डल	०·३५	०·०१७
जोधपुर	—	०·०८७
लिम्बड़ी	०·३६	०.०२८

पूर्वी पंजाब

पटियाला	०·६९	०·०२३
कश्मीर उत्तरी	१·६४	०·०१९
रायसी	०·७०	—
जयपुर	—	०·०३४
रेवा उमरिया	०·२४	०·००९
नावीबाग	०·६३	०·०१७
शिमला	०·९६	०·०२६
अम्बाला	०·४४	०·०१६
करनाल	०·७१	०·०१९
रोहतक	०·७४	—
हिसार	०·७७	—
फीरोजपुर	०·७९	०·०४७
जालन्धर	०·८५	०·०१०
अमृतसर	०·५७	०·०१९
शेखूपुरा	०·४०	—

फसल बोने से पोटेसियम की मात्रा मिट्टी से खींच ली जाती है। किस स्थिति में किस फसल से कितना पोटेसियम, पौधों और अनाजों में खींच लिया जाता है, इसका पता निम्नलिखित आँकड़ों से लगता है—

फसल	सिंचाई या अन्य स्थिति	उपज प्रति एकड़ पौण्ड में	खींचा गया पोटेसियम प्रति एकड़ से पौण्ड में
धान	असींचा	२०००	६०
गेहूँ	असींचा	८००	३९
गेहूँ	सींचा	२०००	८०
ज्वार	अन्न वास्ते	२०००	१४२
ज्वार	चारा वास्ते	२५०००	१४०
बाजरा	अन्न वास्ते	१०००	५९
मकई	अन्न वास्ते	१५००	२७
मकई	चारा वास्ते	२०००	४०
जौ	सींचा	१४००	३५
जौ	असींचा	८००	२६
जई	अन्न वास्ते	१२००	३६
अरहर	अन्न वास्ते	२००	२०
अरहर बड़ी	अन्न वास्ते	८००	६०
चना	अन्न वास्ते	४००	४७
चना	सींचा	१०००	७०
उरद	अन्न वास्ते	६००	३३
मूँग	अन्न वास्ते	६००–८००	३०
तिल	अन्न वास्ते	६००	३०
मूंगफली	जड़	१४००	१५
तीसी	बीज	५००	२७
सरसों	बीज	६००	२५
रेंड़ी	बीज	२०००	२३६
तोरिया	बीज	६००	४५
ईख	बंबई	२१०००	२३६
ईख	बिहार	२४०००	३५०
ईख	उ० प्र०	५२०००	३७५
रुई	रेशा	४००	४०
तम्वाकू	बंबई	१४००	६१

तम्बाकू	मद्रास	१२००	१९०
तम्बाकू	बिहार	१२००	१००
जूट	रेशा	१४००	६०
ल्यूसर्न	चारा	६५००	६००
सूरन	सींचा	३६०००	३०५
आलू	,,	६०००	६०
बैगन	,,	२२०००	८६
कंदा	,,	११५००	१६२
गोभी	,,	६०००.	५५
नोलखोल	,,	१०,०००	८६
प्याज	,,	१४०००	५४
हल्दी	,,	१८०००	१४२
अदरख	,,	६०००	५९
मिर्च	,,	१०००	५७
शलजम	,,	३२०००	१००
धनियाँ	बीज	८००	४०
अरवी	सींचा	१६०००	६०
चाय	आसाम	८००	२५
काफी	मद्रास	८००	३०
मटर	बीज	९००	२६
सेम	,,	२०००	४०
सोयाबीन	,,	१०००	५०

यदि पौधों को पूरा पोटेसियम न प्राप्त हो तो साधारणतया नीचे लिखे लक्षण प्रकट होते हैं—

१. पत्तियाँ भूरी हो जाती हैं।

२. पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं।

३. टमाटर पर धब्बा पड़ जाता है।

४. पौधों में फल कम लगते हैं और दाने छोटे-छोटे होते हैं। पौधों में फल देर से भी लगते हैं।

५. पौधों की वृद्धि ठीक तरह से नहीं होती।

६. पौधों में रोगों से बचने की क्षमता कम हो जाती है।

७. क्लोरोफिल का बनना कम हो जाता है। क्लोरोफिल की कमी से कार्बन डाइ-आक्साइड का स्टार्च में परिणत होना कम हो जाता है।
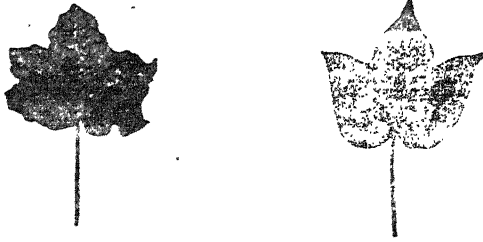
चित्र ३५ — कपास के पत्तों पर पोटेसियम का प्रभाव —
(दायें पत्ते में पोटेसियम का अभाव नहीं है, वायें पत्ते में पोटेसियम का अभाव है जिससे उस पर धब्बे पड़ गये हैं।)

यदि मिट्टी में पोटेसियम की मात्रा बहुत अधिक हो जाय तो उससे फसल को नुकसान भी पहुँचता है। ऐसी क्षति सलाद में स्पष्ट रूप से देखी गयी है। पोटेसियम खाद से मिट्टी की प्रतिक्रिया में कोई अन्तर नहीं देखा गया है।

पर्याप्त पोटेसियम के होने से अनाज के दाना बनने में सहायता मिलती है। दाने का गूदा भारी और मोटा होता है। नाइट्रोजन और फास्फरस की कमी से दानों की संख्या कम हो जाती है। पर यदि पर्याप्त पोटेसियम खाद मिट्टी में उपस्थित हो तो दाने के भार और आयाम में कोई अन्तर नहीं पड़ता। पोटेसियम की कमी से दाना अवश्य छोटा-छोटा होता है।

पोटेसियम से क्लोरोफिल पर्याप्त मात्रा में बनता है। क्लोरोफिल से ही पौधों की पत्तियाँ वायु से कार्बन डाइ-आक्साइड को ग्रहण कर कार्बोहाइड्रेट बनाती हैं और उन्हें पौधों के विभिन्न भागों में भेजकर पौधों को दृढ़ बनाती हैं। स्टार्च या शर्करा का उत्पादन अवश्य ही क्लोरोफिल की कमी से कम हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि प्रोटीन के निर्माण में भी पोटेसियम का प्रमुख हाथ है। इससे कोशिकाओं के निर्माण और विभाजन में सहायता मिलती है।

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि पोटेसियम के कारण पौधे में ओज (tone) और पुष्टता आती है। कोपलैण्ड (Copeland) का कथन है कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पोटेसियम के कारण ही पौधों में ओज आता है।

पोटेसियम की कमी से पौधों की बढ़न रुक जाती, उनका रंग राख के रंग का हो जाता तथा पत्तियाँ समय के पूर्व झरने लगती हैं। पहले फुनगी का पत्ता झरता तब बाह्य किनारे के पत्ते झरते हैं। फल और बीज कम लगते और छोटे-छोटे तथा हलके होते हैं।

रौथम्स्टेड में जो अन्वेषण हुए हैं उनसे पता लगता है कि पौधों के स्वास्थ्य के लिए पोटेसियम आवश्यक है। मैनगोल्ड (Mangold) में नाइट्रोजन और फास्फरस पर्याप्त रहते हुए भी पोटेसियम या सोडियम के अभाव में पौधे रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं। गेहूँ में भी ऐसी दशा में रतुआ अधिक लग जाता है।

पोटेसियम खादों से पानी के प्राप्त होने में भी सुविधा होती है। इंग्लैण्ड में एक बार जब सूखा पड़ा था तब उन खेतों के आलू के पौधे समय से पूर्व सूख गये थे जिनमें पोटेसियम खाद नहीं डाली गयी थी। जिन आलू के खेतों में पोटेसियम खाद डाली गयी थी उनके पौधे जीते रहे।

ऐसा समझा जाता है कि पोटेसियम लवणों के कारण मिट्टी-विलयन का तल-तनाव बढ़ जाता है, जिससे पौधों के तल और जड़ों की ओर जल के केशिका-संचालन की गति बढ़ जाती है। किंग (King) का मत है कि मिट्टी में लवणों की उपस्थिति से तल के जल का उद्वाष्पन कम हो जाता है।

पोटाश लवणों के कारण मिट्टी की भौतिक दशा में भी पर्याप्त सुधार हो सकता है। इससे मिट्टी के पिंड बनने की प्रवृत्ति कम हो जाती है क्योंकि यदि मिट्टी में कैल-सियम कार्बोनेट है तो वह पोटाश लवण के साथ मिलकर पोटाश कार्बोनेट बनता है जिसमें पिंड बनने की प्रवृत्ति नहीं है।

मिट्टी में पोटाश-लवणों की स्थिति

जब मिट्टी में पोटाश लवण,—जैसे पोटेसियम क्लोराइड, पोटेसियम नाइट्रेट और पोटेसियम सल्फेट, डाले जाते हैं, वे सामान्यतः पानी में घुल जाते हैं। घुलकर वे आयोनी-कृत हो जाते हैं। पोटेसियम आयन के रूप में पोटेसियम रहता है, वह इसी रूप में मिट्टी के द्वारा अवशोषित या स्थिरीकृत होता है। मिट्टी के कोलायडल कम्प्लेक्स के साथ वह मिल जाता है। इस कम्प्लेक्स से वह उतनी सरलता से नहीं निकलता जितनी सरलता से सोडियम, कैलसियम और मैगनीशियम निकलते हैं। जिस रूप में वह मिट्टी में मिला रहता है वह रूप ऐसा नहीं होता कि पोटेसियम पौधों को प्राप्त न हो सके। यह सम्भव है कि पोटेसियम का कुछ अंश ऐसा मिला हो कि वह पौधों को प्राप्त न हो सके पर ऐसा अंश साधारणतया बहुत अल्प होता है। जोफे और लेविन (Joffe and Levine, १९३९) ने यह सिद्ध किया है कि पोटेसियम का यह अवशोषण

या स्थिरीकरण पोटेसियम की विशेषता है जो सोडियम, कैलसियम और मैगनीशियम तत्त्वों में नहीं पायी जाती। वोल्क (१९३८) का मत है कि इस स्थिरीकरण के अनेक कारण हैं, मिट्टी के खनिज पदार्थों के कारण ही ऐसा नहीं होता। अनेक लोगों ने देखा है कि यदि मिट्टी को सूखने से रोका जाय तो पोटाश के स्थिरीकरण की प्रवृत्ति बहुत कुछ कम हो जाती है। स्थिरीकरण उस मिट्टी में सबसे अधिक होता है और ऐसे रूप में कि पोटेसियम पौधों को उपलब्ध न हो, जब मिट्टी बारी-बारी से सूखती और भींगती रहती है।

साधारणतया पोटेसियम का स्थिरीकरण उतना जल्दी नहीं होता जितना फास्फेट का होता है पर अधिकांश नाइट्रोजन लवणों से स्थिरीकरण अधिक शीघ्रता से होता है। जब पोटेसियम आयन का मिट्टी द्वारा अवशोषण होता है तब अन्य आयन, जैसे सोडियम, कैलसियम और मैगनीशियम मिट्टी से निकल जाते हैं। पोटेसियम आयन का संचालन अपेक्षया मन्द होता है। यह सम्भव है कि हलकी मिट्टी में संचालन शीघ्रता से हो और भारी मिट्टी में देर से, और वह भी तल के ऊपरी कुछ अंशों में ही होता हो। मिट्टी में पोटाश लवणों का अवशोषण बड़े महत्त्व का है, क्योंकि पोटाश लवणों की उपलब्धि इसी पर निर्भर करती है। आर्द्र मिट्टी से पोटेसियम का संकर्षण (leaching) फास्फरस की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से होता है। इसको अनेक लोगों ने प्रयोगों द्वारा दिखलाया है। पोटेसियम का अवशोषण बहुत शीघ्रता से नहीं होता। अवशोषित होने के पहले वह कई इंच नीचे तक प्रवेश कर सकता है।

बलुआर, जीर्णकी और कूड़ा-कर्कट वाली मिट्टी में पोटाश खाद से विशेष लाभ और पैदावार में पर्याप्त वृद्धि पायी गयी है। मटियार मिट्टी में विशेषतः ऐसी मिट्टी में जिसमें कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में विद्यमान है, पोटाश खाद की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती। कौलिंगस् (Collings, १९२९) का मत है कि सब प्रकार की मिट्टियों में पोटाश खाद से पैदावार बहुत बढ़ जाती है। पोटाश खादों से मिट्टी की अम्लता पर क्या प्रभाव पड़ता है इस पर एक मत नहीं है। कुछ लोगों का (१९१७) मत है कि प्रति एकड़ १०० पौण्ड की दर से पाँच वर्षों तक पोटेसियम सल्फेट के उपयोग से अम्लता बढ़ जाती है और उसके निराकरण के लिए चूना डालने की जरूरत पड़ती है। बर्गेस (Burgess, १९२२) के प्रयोगों के फलस्वरूप पोटाश लवणों से अम्लता घटी हुई पायी गयी है। रसेल (१९३२) का मत है कि पोटेसियम सल्फेट से अम्लता बढ़ जाती है।

ऊपर जो आँकड़े दिये गये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि कुछ पौधे अधिक पोटाश खींच लेते और कुछ कम पोटाश खींचते हैं। जो पौधे अधिक पोटाश खींचते हैं उनके

लिए अधिक पोटाशीय खाद की आवश्यकता पड़ती है और दूसरों के लिए कम। पौधों के लिए पोटाश अत्यावश्यक। मिट्टी के पोटाश को वे पर्याप्त मात्रा में ग्रहण नहीं कर सकते हैं। इस कारण मिट्टी में पोटाशवाली खाद देने की आवश्यकता पड़ती है। आज अनेक ऐसी खादें बाजारों में बिकती हैं जिनमें पोटाश रहता है और उनके उपयोग से पैदावार, फलों और अनाजों का गुण बहुत कुछ बढ़ाया जा सकता है। पोटाशीय खाद डालने की परिपाटी नयी नहीं है। बहुत प्राचीन काल से इसकी उपयोगिता लोगों को मालूम है और मिट्टी में राख डाल कर उसका उपयोग होता आ रहा है।

पोटाश का महत्त्व का एक स्रोत लकड़ी की राख है। राख में पोटाश पोटेसियम कार्बोनेट के रूप में रहता है। पोटाश (K_2O) की मात्रा राख में ५ से २५ प्रतिशत रहती है। भिन्न भिन्न पौधों में विभिन्न मात्रा रहती है, किसी में कम और किसी में अधिक। पौधों के विभिन्न भागों में भी मात्रा विभिन्न रहती है। टहनियों और छोटी-छोटी शाखाओं की राख में धड़ की राख की अपेक्षा अधिक पोटाश रहता है। कठोर काठ की राख में कोमल काठ की राख से अधिक पोटाश रहता है। देहरादून के वन विभाग की अनुसन्धानशाला में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि अनेक ऐसे पेड़-पौधे हैं जिनकी राख में पोटाश लवण की मात्रा पर्याप्त रहती है और ऐसी राख को खेतों में डालकर पैदावार बढ़ायी जा सकती है।

राख के विलेय अंश में पोटाश लवण रहते हैं। ऐसे लवणों में अधिक मात्रा पोटेसियम कार्बोनेट की और अपेक्षया कम मात्रा पोटेसियम क्लोराइड और पोटेसियम सल्फेट की रहती है।

अमेरिका में भी राखों से पोटाश लवण निकाले जाते थे। ऐसे लवणों में पोटेसियम कार्बोनेट, क्लोराइड और सल्फेट के साथ-साथ चूना, मैगनीशिया, सिलिका और कार्बन भी रहते थे। इस मिश्रण से जो कुछ परिष्कृत उत्पाद प्राप्त होता था वह 'पर्ल ऐश' के नाम से बाजारों में बिकता था। पहले-पहल पोटाश और पर्ल ऐश तैयार करने का पेटेन्ट अमेरिका में सन् १७८० में लिया गया था। अगस्त सन् १७६९ से लेकर अक्टूबर सन् १७८० तक अमेरिका से ७०५० टन पोटाश और १५८० टन पर्ल ऐश का निर्यात हुआ था, जिनका मूल्य क्रमशः ६६१,६२४०० और १७७,४५९,००० डालर था। १८२५ तक निर्यात की मात्रा २,०००,००० डालर हो गयी थी। उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका से राख का भी निर्यात होता था।

कुछ फलों के छिलके की राखों में पर्याप्त पोटाश रहता है। केले के छिलके की राख में ४१·७६ प्रतिशत, नीबू के छिलके की राख में ३१·०० प्रतिशत, संतरे के छिलके की राख में २७·०४ प्रतिशत, मूंगफली के छिलके की राख में ६·४५ प्रतिशत,

आलू के छिलके की राख में २७·५४ प्रतिशत, सिगार की राख में १६·८१ प्रतिशत और मक्का की गुल्ली की राख में १७·२५ प्रतिशत पोटाश लवण पाये गये हैं।

वैद्यनाथन् ने जो प्रयोग किये हैं उनसे स्पष्ट रूप से मालूम हुआ है कि तम्बाकू और मूंगफली की पैदावार लकड़ी की राख के उपयोग से बहुत बढ़ जाती है।

तम्बाकू का तना

सिगरेट, सिगार और खानेवाले तम्बाकू के तैयार करने में तम्बाकू का तना, रेशा और कुछ धुरा आदि वच जाता है। इस तना और क्षेप्य को कभी-कभी पीसकर खाद के लिए बेचते हैं। गुन्तूर के आस-पास जहाँ तम्बाकू बहुत उपजता है, तने और क्षेप्य की खाद किसानों द्वारा प्रयुक्त होती है। ऐसी खाद में ४ से १० प्रतिशत पोटाश लवण और २ से ३ प्रतिशत तक नाइट्रोजन रहता है। नाइट्रोजन नाइट्रेट और कार्बन नाइट्रोजन यौगिकों के रूप में रहता है। ऐसे तने की खाद का विश्लेषण मद्रास में हुआ है और उससे निम्नांकित परिणाम प्राप्त हुए हैं।

सूखा तना, रेशा और क्षेप्य में प्रतिशतता

अवयव	वर्जीनिया क्षेप्य	वर्जीनिया तना	देशी तम्बाकू
राख	३४·५२	२७·१३	१५·२४
नाइट्रोजन (N)	१·५२	१·५५	२·३१
पोटाश (K_2O)	४·३०	८·६१	४·९९
फास्फरिक अम्ल (P_2O_5)	०·४९	०·४२	०·४४

तने में कुछ सोडियम कार्बोनेट भी रहता है।

नारियल का छिलका

नारियल के छिलके और छिलके की राख में पर्याप्त मात्रा में पोटाश लवण रहता है। ऐसी राख को खेतों में डालने से पोटेसियम खाद की पूर्ति हो जाती है। १.००० छिलकों में १० से १५ पौण्ड पोटेसियम रह सकता है। ऐसे छिलके की राख में ३१ से ३९ प्रतिशत पोटाश रहता है।

मक्का की गुल्ली

मक्का की गुल्ली में प्रायः ६·८ प्रतिशत पोटाश रहता है। ऐसी गुल्ली से बनी राख में पोटाश की मात्रा ५० प्रतिशत तक रह सकती है। ऐसी राख को खेतों में डालने से वैसा ही लाभ हो सकता है जैसा पोटेसियम क्लोराइड या उत्कृष्ट कोटि के पोटेसियम सल्फेट के डालने से होता है।

समस्त पौधे की राख में पोटाश लवणों की मात्रा

क्रमांक पौधे का नाम	राख %	K_2O पौधे की %	K_2O राख की %	विलेय अंश %	अविलेय अंश %	जल %	विलेय लवण K_2CO_3	Kcl	K_2SO_4
१. गुंजा (रत्ती)	५ ·०६	०·६३	१२·४४	१९·४८	७७·२७	३·२४	१२·५३	१·४९	१·४९
२. अपंग (चिरचिटा)	८ ·३६	२·३२	२७·७४	४१·६३	४५·९२	१२·१०	३५·८६	२·७८	२·९९
३. वासक (अड़ूसा)	१२·३४	१·४०	११·२९	१७·९९	८०·०४	२·०३	८·७१	४·०२	५·२६
४. गन्वेला	९·७२	१·६४	१८·०४	२८·३८	७०·०५	१·४८	१६·००	५·२९	७·०९
५. कांटचोलाई	१२·६७	३·०६	२४·१९	३०·९५	५६·०२	६·३१	२९·८३	२·५३	४·२८
		२·२०	१७·४८	२७·५३	६५·०१	६·८१	१७·४८	१·९३	८·१४
६. नागदोना (सुरबन्द)	५·६६	०·९३	१६·४०	२५·९२	६५·८८	७·२९	१५·२९	३·१०	७·५३
७. कोरन्टा (पिलबांस)	८·२२	१·२०	१४·६८	२२·२२	७४.६७	३·२४	१७·४९	२·२०	२·५३
८. पित्तपापड़ा	१३·०७	२·१८	१६·९८	२५·७५	६७·३४	६:८९	१६·८७	४·६६	४·२२
९. बिचबुती	—	—	—	१८·९३	७९·६४	१·५४	१०·६५	३·८४	४·४४
१०. बननिम्बू	१०·१२	१·२६	१२·५१	१९·५२	७७·९४	२·०४	११·८९	३·४३	४·२०
११. नील	४·४०	०·२७	६·२०	९·५४	८५·७५	४·४४	७·२८	०·१८	२·०८
१२. लन्टाना	१०·२९	१·५३	१४·६१	२१·७७	७६·२१	२·०९	१८·९२	२·४३	०·४२
१३. कनेर	३·६०	०·३१	८·६६	१३·७८	८४·०५	१·८२	६·२२	३·५९	३·९७
१४. खरेंटी	६·२०	०·४८	७·७३	११·९५	८४·९५	३·२७	८·५३	०·९९	२·४३

बिनौले के छिलके की राख

बिनौले के छिलके में पोटाश रहता है। इसकी राख में १० से ४२ प्रतिशत, औसत २२·४८ प्रतिशत, पोटाश पाया जाता है। इसमें ३ से १३ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल, लगभग ९ प्रतिशत चूना और १० प्रतिशत मैगनीशिया भी रहता है।

छोआ में पोटाश

आजकल पर्याप्त मात्रा में छोआ चीनी की मिलों में उपजात के रूप में प्राप्त होता है। इस छोआ को जलाकर राख बना सकते हैं। ऐसी राख में ३५ प्रतिशत तक पोटाश पाया गया है। ऐसे पोटाश को 'उद्भिद पोटाश' कहते हैं। इस राख का पोटाश खाद के रूप में उपयोग होना चाहिए। मेरे विचार में छोआ का भंजक आसवन करना चाहिए जिससे जलनेवाली गैस के साथ-साथ राख भी प्राप्त हो। छोआ में कुछ नाइट्रोजन भी रहता है जो अमोनिया के रूप में प्राप्त हो सकता है। प्रस्तुत लेखक ने छोआ का विश्लेषण किया है और उसे जलाकर राख प्राप्त कर राख का भी विश्लेषण किया है; विश्लेषण के आँकड़े इस प्रकार हैं—

भारतीय छोआ

	गंधकीकरण छोआ	कार्बोनीकरण छोआ
ठोस पदार्थ प्रतिशत	७७·८ से ८३·८	७७·६ से ८२·३
जल प्रतिशत	१६·२ से २२·२	१७·७ से २२·४
ठोस पदार्थों में		
चीनी प्रतिशत	३३·६ से ३८·६	३०·३ से ३६·२
अवकृत शर्करा प्रतिशत	१५·७ से १७·६	११·३ से १८·८
अन्य कार्बनिक पदार्थ प्रतिशत	११·५ से १८·७	११·१ से २२·८
राख प्रतिशत	९·९ से १२·८	७·० से १४·८
पोटाश, K_2O प्रतिशत	३·७ से ४·९	२·९ से ४·९
फास्फरिक अम्ल, P_2O_5, प्रतिशत	०·२४से ०·४८	०·१८ से ०·२८
गन्धक का अम्ल, So_3, प्रतिशत	१·८ से २·२२	१·२७ से १·६०

ऊन क्षेप्य

कच्चे ऊन में एक पदार्थ रहता है जिसे स्विन्ट (Suint) कहते हैं। यह भेड़ों के पसीने से आता है। पसीने के पानी के सूख जाने पर ठोस रूप में यह ऊन में रह जाता है। इसमें पर्याप्त मात्रा में पोटाश रहता है। कच्चे ऊन में प्रायः १·५ से

५·० प्रतिशत तक पोटाश लवण रहता है। जहाँ पर्याप्त मात्रा में ऊन उत्पन्न होता है वहाँ स्विन्ट से भी पोटाश लवण प्राप्त किया जा सकता है।

वाहनी धूल

लोहे अथवा सीमेंट के कारखानों में जो गैसें तैयार होती हैं उन गैसों में पोटाश लवण रहते हैं। गैसें जब जलती हैं तब पोटाश लवण धूल के रूप में जली हुई गैसों में निकलते हैं। ये धूलें गैस-नलों में बैठती हैं। वहाँ से धूलें निकाल ली जाती हैं और खाद के लिए बेची जाती हैं। कुछ पोटाश लवण तो धातु-मल में बह जाते हैं। पोटाश यहाँ क्लोराइड, सल्फेट और कार्बोनेट के रूप में रहता है, इसमें ३ से १३ प्रतिशत रहता है। इसमें से पोटाश लवंण के शुद्ध रूप में प्राप्त करने की कोई चेष्टा नहीं हुई है।

समुद्र-घास

समुद्र-घास का भी खाद के रूप में व्यवहार होता है। समुद्र-घास में पोटेसियम रहता है। विभिन्न घासों में पोटेसियम की विभिन्न मात्रा रहती है। इसमें नाइट्रोजन भी पर्याप्त रहता है पर फास्फरस बहुत कम रहता है। समुद्र-घास का हरी खाद के रूप में भी समुद्र-तटों पर व्यवहार हो सकता है। केले के लिए यह अच्छी खाद प्रमाणित हुई है। अमेरिका में इसका व्यवसाय भी होता है। आयोडीन के तैयार करने में इसे जलाकर केल्प (kelp) तैयार किया जाता है। आयोडीन के निकाल लेने पर राख में पोटाश होने के कारण खाद के रूप में भी वह काम में आता है। ऐसी राख में २५ प्रतिशत तक पोटाश रह सकता है।

समुद्र-जल

समुद्र-जल में पोटेसियम रहता है। अनुमान है कि एक घनमील समुद्र-जल में १,६००,००० टन पोटेसियम रहता है। समुद्र-जल से भी पोटाश लवण प्राप्त करने की चेष्टा हुई है। नारवे में एक कम्पनी समुद्र-जल से पोटाश लवण तैयार करने का प्रयत्न कर रही है। कहाँ तक इसमें सफलता मिली है यह अभी ज्ञात नहीं हुआ है।

झीलों के पानी से पोटाश लवण

आज अनेक झीलों के पानी से पोटेसियम लवण प्राप्त हो सकता है। ऐसी झीलों में एक सर्लस झील (Searles lake) है। यह झील कैलिफोर्निया के सन-बर्नाडिनो

प्रान्त में है। यह एक घाटी में समुद्र-तल से १८१८ फुट ऊपर फैली हुई है। यह झील प्राय: चारों तरफ से पहाड़ों से घिरी हुई है, इसके लगभग १२ वर्ग मील क्षेत्र में मणिभीय लवण और लवणीय जल की कीच फैली हुई है। कीच की गहराई औसत प्राय: ७० फुट है। इस कीच में लगभग ३४ प्रतिशत लवण है जिसमें पोटेसियम की मात्रा प्राय: २ प्रतिशत है। समस्त पोटेसियम की मात्रा लगभग इस झील की कीच में १६,०००,००० टन कूती गयी है। पोटाश लवण के अतिरिक्त इसमें अजल सोहागा, सोडियम सल्फेट और नमक भी रहते हैं। इससे ९५ से ९८ प्रतिशत शुद्धता का पोटाश क्लोराइड प्राप्त हो सकता है। इससे सोहागा सरलता से निकाल लिया जाता है। क्लोराइड में सोहागे की मात्रा लगभग ०·५ प्रतिशत ही रह जाती है। पर्याप्त मात्रा में पोटाश लवण इस झील से प्राप्त होता है। पहले एक ब्रिटिश कम्पनी सन् १९१५ से पोटाश लवण निकालती थी पर सन् १९२६ में यह काम एक अमेरिकी कम्पनी, अमेरिकन पोटाश एण्ड केमिकल कार्पोरेशन, में चला गया है और आज सबसे अधिक मात्रा में पोटाश लवण तैयार करने में यह कार्पोरेशन प्रथम स्थान रखता है।

सर्लेस झील के लवण जल से प्राप्त ६०% म्युरिएट का विश्लेषण

अवयव	प्रतिशत
पोटाश (K_2O)	६१·२१
सोहागा ($Na_2B_4O_7$)	०·४२
नमक ($NaCl$)	१·५७
सोडा (Na_2CO_3)	०·२७
सोडियम सल्फेट (Na_2SO_4)	०·१५
पोटाश ब्रोमाइड (KBr)	१·६२
जल	०·०९

नेब्रास्का के पश्चिम भाग में कुछ छिछली झीलें हैं जिनमें सोडियम और पोटेसियम के लवण पाये गये हैं। पोटेसियम प्रधानत: कार्बोनेट के रूप में पाया गया है। एक समय प्रथम विश्वयुद्ध में इससे पोटाश लवण निकाला जाता था पर आज यह काम बन्द है, क्योंकि इस पोटाश लवण के निकालने में खर्च अधिक पड़ता है।

मीचीगान में भी कुछ ऐसी झीलें पायी गयी हैं जिनसे पोटाश लवण प्राप्त हो सकता है। इस काम के लिए मिडलैण्ड की एक डो केमिकल कम्पनी (Dow Chemical Company) भी बनी है।

ग्रेट साल्ट लेक मरुभूमि

उटा की मरुभूमि में ग्रेट साल्ट लेक है। उस झील में ऊपरी तल पर नमक और नीचे लवणीय जल है। नमक और नमक-जल में, पोटेसियम, सोडियम और मैगनीशियम क्लोराइड अधिक मात्रा में हैं। सलडुरो (Salduro) के निक्षेप से कुछ समय तक नमक प्राप्त होता रहा था। पोटेसियम लवण प्राप्त करने की एक कम्पनी बनी थी जो पोटाश लवण निकालती रही। पीछे यह कम्पनी बन्द हो गयी। अब फिर एक दूसरी कम्पनी बनी है जो पोटेसियम क्लोराइड निकाल रही है।

यहाँ के लवण निक्षेप की गहराई अधिक से अधिक चार फुट है। लवण के नीचे लवण-जल में १`५ से ३`० प्रतिशत पोटेसियम क्लोराइड रहता है। लवण-जल का उद्वाष्पन सूर्य की गरमी से गरमी के दिनों में होता है। लवण-जल का, एक हौज से दूसरे हौज में जाते हुए उद्वाष्पन होता है, जिससे अन्त में लवण निकल आता है जिसमें ३० प्रतिशत पोटेसियम क्लोराइड रहता है। उत्प्लावन विधि से सोडियम क्लोराइड से पोटेसियम क्लोराइड को पृथक् करते हैं और भट्ठी में उसे सुखाते हैं। इस निक्षेप का पोटेसियम लवण-भंडार ८००,००० टन कूता गया है। यहाँ से प्राप्त पोटेसियम क्लोराइड का विश्लेषण यह है—

अवयव	प्रतिशत मात्रा
पोटेसियम क्लोराइड (KCl)	९५`८५
सोडियम क्लोराइड ($NaCl$)	३`०३
मैगनीशियम क्लोराइड ($MgCl_2$)	०`२२
कैलसियम सल्फेट ($CaSO_4$)	०`४९
मैगनीशियम सल्फेट ($MgSO_4$)	०`३२
फेरिक आक्साइड (Fe_2O_3)	०`०१
अविलेय अंश	०`०३

प्राकृतिक सिलिकेटों में पोटेसियम खनिज

अनेक सिलिकेटों में पोटेसियम पाया जाता है। यह पोटेसियम अविलेय खनिज के रूप में रहता है। इन खनिजों से पोटेसियम प्राप्त करने की चेष्टाएँ हुई हैं। अनेक स्थलों में एलुनाइट (alunite) का निक्षेप पाया गया है। कुछ स्थलों में ल्युसाइट (leucite) का निक्षेप पाया गया है। अनेक स्थलों की हरी रेत में पोटेसियम पाया गया है। कुछ स्थानों की शिलाओं में पोटेसियम पाया गया है। अबरख में भी पोटेसियम रहता है। इन खनिजों से पोटाश लवण प्राप्त करने की चेष्टाएँ हुई हैं।

प्राकृतिक पोटेसियम सिलिकेटों में निम्नांकित महत्त्व के हैं—

नाम	संघटन	पोटाश (K_2O) प्रतिशत
ल्युसाइट (Leucite)	$K\ Al(SiO_3)_2$	२१·५
फेल्डस्पार (Feldspar)		
अर्थोक्लेस (Orthoclase)	$KAl\ Si_3O_8$	१६·८
माइक्रोक्लाइन (Mycrocline)	$KAl\ Si_3O_8$	१६·८
एनौर्थोक्लेस (Anorthoclase)	$(Na\ K)\ Al\ Si_3O_8$	२·४–१२·०
अभ्रक		
मस्कोवाइट (Muscovite)	$H_2KAl_3(SiO_4)_3$	११·८
बायोटाइट (Biotite)	$(H,K)_2\ (MgFe)_2Al_2\ (Si\ O_4)_3$	६·२–१०·१
फ्लोगोपाइट (Phlogopite)	$(H,K,Mg,Fe)_3\ Mg_3Al\ (SiO_4)_3$	७·८–१०·३
लेपिडोलाइट (Lepidolite)	$K,\ LiNa\ OH_2\ Fe_2\ Al_2\ (Si\ O_3)_3$	१०·७–१२·३
जिनवालडाइट (Zinnwaldite)	$H_2K_4Li_4Fe_3Al_8\ Fe_8\ Si_{14}\ O4_2$	१०·६
रोस्कोएलाइट (Roscoelite)	$H_8K\ (Mg,\ Fe)\ (Al,\ V)_4\ (SiO_3)_{12}$	७·३–१०·३
ग्लौकोनाइट (Glauconite)	$KFeSi_2O6,nH_2O$	२·३–८·५
कारनोटाइट (Carnotite)	$K_2O_2,U_2O_3\ \ V_2O_{53}H_2O$	१०·३–११·२
नेफेलाइट (Nephelite)	$K_2Na_6Al_8Si_9O_{34}$	८–७·१

कुछ प्रयोगों में पोटाश खनिज को बहुत ऊंचे ताप पर गरम करते हैं जिससे पोटेसियम वाष्पीभूत हो निकल जाता है। कुछ खनिजों को अम्लों अथवा क्षारों से उपचारित कर पोटेसियम को निकालते हैं।

हरी रेत

अनेक स्थलों में हरी रेत पायी जाती है। अमेरिका के न्यूजर्सी, मेरीलैण्ड, वर्जीनिया और उत्तर कैरोलिना में ऐसी रेत पायी गयी है। केवल न्यूजर्सी में ही इतनी हरी रेत है कि उससे अमेरिका को सैकड़ों वर्षों तक पोटेसियम प्राप्त हो सकता है। वहाँ की रेत कुछ इंचों से लेकर प्रायः ३० फुट तक गहराई में पायी गयी है। ऐसी रेत में प्रायः ५ प्रतिशत पोटेसियम रहता है। यदि रेत का स्तर २० फुट का हो और वह एक वर्ग फैला रहे तो उससे १,२४५,००० टन पोटेसियम

प्राप्त हो सकता है। ऐसा समझा जाता है कि यह रेत उस खनिज से प्राप्त होती है जिसे ग्लौकोनाइट, $KFeSi_2O_6$, NH_2O, कहते हैं। इसका निक्षेप समुद्र में ३०० फुट से २ मील गहराई तक पाया गया है। इससे पोटाश लवण प्राप्त करने की सफलता उसके उपजात की उपयोगिता पर निर्भर करती है। यदि इसके उपजात सीमेन्ट, बालू-चूना ईट, सक्रियित सिलिका इत्यादि में उपयुक्त हो सकें तो पोटाश लवण सफलता से निकाला जा सकता है। हरी रेत जिस रूप में पायी जाती है उस रूप में ही आस-पास के स्थानों में खाद के लिए उपयुक्त होती है। इसमें पोटाश की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। ऐसी रेत में कुछ फास्फरस, प्रायः ०·४ प्रतिशत भी रहता है। ऐसी पोटाश खाद से पोटेसियम पौधों को धीरे-धीरे प्राप्त होता है। कुछ समय, कुछ वर्षों के बाद ऐसी खाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से पौधों पर देखा जाता है। स्कीन (Skeen, १९२५) का अनुभव है कि कम पोटाशवाले खेतों में प्रतिएकड़ ५ से १५ टन हरी रेत डालने से पैदावार बढ़ जाती है।

जार्जिया शिला

जार्जिया में कुछ शिला पायी गयी है जिसमें पोटेसियम विद्यमान है। यह शिला लगभग ९ मील तक फैली हुई है। कितनी गहराई तक इसका स्तर गया है इसका पता अभी तक नहीं लगा है। इसके स्तर हजार फुट से अधिक चौड़े पाये गये हैं। ऐसी शिला का रासायनिक विश्लेषण मे-नार्ड (Maynard) ने किया है। उनके परिणाम निम्नांकित हैं—

जार्जिया शिला का रासायनिक संघटन

अवयव	प्रतिशत
पोटाश (K_2O)	८·७९
सिलिका (SiO_2)	५७·१०
एलूमिना (Al_2O_3)	१९·४०
फेरिक आक्साइड (Fe_2O_3)	५·३७
फेरस आक्साइड (FeO)	१·८४
मैगनीशियम आक्साइड (MgO)	१·९२
कैलसियम आक्साइड (CaO)	०·०१
टाइटेनियम आक्साइड (TiO)	०·९१
सोडा (Na_2O)	०·५३
जल (+)	३·५२
जल —	०·३६

यह वास्तव में एक जलीय सिलिकेट है जो सरलता से विच्छेदित हो जाता है। यहाँ के निक्षेप का पोटेसियम २००,०००,००० टन कूता गया है पर इसे प्राप्त करने की अभी तक कोई चेष्टा नहीं हुई है।

फेल्डस्पार

फेल्डस्पार नामक खनिज संसार के विभिन्न भागों में बहुलता से पाया जाता है। इसके विभिन्न खनिज ल्यूसाइट, एलुनाइट, फिनोलाइट, नेफेलाइट हैं, जिनमें पोटाश रहता है। ये खनिज बहुत महीन पिसकर खाद के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनका अल्प पोटाश ही पौधों को प्राप्त होता है।

हार्टवेल (१९१९, Hartwell) ने तीन वर्षों तक ऐसे खनिज पोटेसियम से प्रयोग किये थे। खनिज को इस प्रकार उपचारित किया गया कि पोटेसियम का कुछ अंश विलेय पोटेसियम में परिणत हो गया था। समस्त पोटेसियम का केवल ४·७ प्रतिशत ही विलेय रूप में परिणत हुआ था। इसमें ११·४ प्रतिशत कैलसियम भी था। इस पोटेसियम खाद की पोटेसियम क्लोराइड या सल्फेट से तुलना करने पर निम्नांकित परिणाम प्राप्त हुए थे।

आलू और रूजिका पर चट्टान-पोटाश का प्रभाव

खाद	आलू (बुशेल)		रूजिका (टन)
	१९१५	१९१७	१९१८
बिना खाद	८६	२३३	२·४०
पोटेसियम क्लोराइड या सल्फेट	१२२	२६२	२·५७
चट्टान पोटेसियम उर्वरक	१३०	२८५	२·७६

इन अंकों से स्पष्ट है कि चट्टान-पोटाश-उर्वरक का प्रभाव विलेय पोटाश लवणों से अच्छा होता है।

ल्युसाइट

ल्युसाइट $KAl(SiO_3)_2$ खनिज में पोटेसियम रहता है। अनेक स्थलों में यह पाया जाता है। इसका रासायनिक संगठन निम्नांकित है—

पोटाश K_2O	२१·५	प्रतिशत
सिलिका (SiO_2)	५५·०	,,
अलूमिना (Al_2O_3)	२३·५	,,

इसका पोटेसियम भी खाद के रूप में इस्तेमाल हो सकता है।

एलुनाइट

एलुनाइट, $K_2 Al_6 (OH)_{12} (SO_4)_4$ खनिज जलीयित पोटेसियम और एलूमिनियम का भास्मिक सल्फेट है। अनेक देशों में यह पाया जाता है। यह जल में अविलेय होता है। इसमें अपद्रव्य के रूप में सिलिका और अन्य पदार्थ रहते हैं। इटली में एलुनाइट से फिटकरी तैयार होती है। एलुनाइट के उत्तापन, संकर्षण, निस्यन्दन और उद्वाष्पन से पोटाश लवण प्राप्त हो सकता है। इसकी सफलता पोटाश लवण प्राप्त करने की विधि और उप-जात के उपयोग पर निर्भर करती है। इसका रासायनिक विश्लेषण यह है—

एलुनाइट का रासायनिक विश्लेषण

अवयव	प्रतिशत
पोटाश (K_2O)	१०·४६
एलूमिना (Al_2O_3)	३७·१८
सल्फर ट्राइ-आक्साइड (SO_3)	३८·२४
फास्फरस पेन्टाक्साइड (P_2O_5)	०·५८
सोडा (Na_2O)	०·३५
सिलिका (SiO_2)	०·२२
जल	१२·९९

जर्मनी—सन् १८३९ में पोटेसियम लवण के एक विस्तृत निक्षेप का पता पहले-पहल जर्मनी के स्टास्फर्ट के निकट हार्टस् पर्वत के उत्तर में लगा था। उस समय पोटेसियम लवणों का उपयोग खाद के रूप में नहीं होता था। इस निक्षेप से लवण निकालने का काम सन् १८६० में शुरू हुआ और शीघ्र ही यह लवण समस्त यूरोप, अमेरिका और अन्य देशों में जाने लगा। सन् १९१४ तक इसी निक्षेप का पोटाश लवण प्रायः सारे संसार में प्रयुक्त होता था। पोटाश लवण के अन्य कोई महत्त्व के स्रोत तब तक नहीं थे। इन निक्षेपों से निकले लवण का जो मूल्य निर्धारित होता था वही सबको देना पड़ता था। पीछे संसार के अन्य क्षेत्रों में भी पोटाश लवण का पता

लगा और वहाँ से लवण निकाले जाने लगे। सन् १९३८ में जितना उत्पादन पोटाश लवण का संसार में हुआ था उसका ५० से ६० प्रतिशत केवल जर्मनी के निक्षेप से निकला था। पीछे अमेरिका के अनेक स्थलों, अलसाक, फ्रांस, स्पेन, फिलस्तीन, पोलैण्ड और रूस में भी पोटाश लवण के निक्षेप पाये गये और उनसे लवण निकाले जाने लगे। सन् १९३७-३८ में प्रायः ३० लाख टन K_2O का उत्पादन हुआ था, जिसमें केवल ग्रेट ब्रिटेन में ७०,००० टन की खपत हुई थी। अमेरिका में १९३६ में ३७६,००० टन, १९३७ में ४६२,००० टन, १९३८ में ४४१,००० टन, १९३९ में ३४७,०००, १९४० में ४१२,०००, १९४१ में ५३३,०००, १९४२ में ५३९,०००, १९४३ में ५६०,००० टन पोटाश (K_2O) खाद के रूप में प्रयुक्त हुआ था। सन् १९४३ में ७००,००० टन पोटाश केवल अमेरिका में उत्पन्न हुआ था।

स्टास्फर्ट निक्षेप—पुराने स्टास्फर्ट नगर के निकट कुछ नमक वाले झरने पाये गये थे। खुदाई से पता लगा कि सतह से प्रायः १००० फुट नीचे सेंधा नमक है। इससे सेंधे नमक के ऊपर खनिजों का एक स्तर पाया गया था जिसमें पोटेसियम और मैगनीशियम के लवण थे। उस समय यह लवण निरर्थक समझा जाता था। पर पीछे यह बहुमूल्य सिद्ध हुआ। भूगर्भ वेत्ताओं का अनुमान है कि एक समय यहाँ समुद्र था और उस के पानी के सूख जाने से समुद्र-जल के लवणों का निक्षेप धीरे-धीरे बनता गया। जैसा निक्षेप यहाँ पाया गया है उसके बनने में १३ हजार वर्ष का अनुमान लगाया गया है। निक्षेप का क्रम यहाँ के सब स्थलों पर एक-सा नहीं है। पर ऐसा कहा जा सकता है कि सतह से ६०० से ८०० फुट तक लाल बालू-पत्थर, चूना पत्थर इत्यादि हैं जिनके पास जिप्सम का एक अस्तर मिलता है, जिसके नीचे बहुत शुद्ध सेंधा नमक का एक स्तर है। नमक के नीचे जिप्सम के साथ-साथ अजल कैलसियम सल्फेट का स्तर है। अजल कैलसियम सल्फेट के ठीक नीचे एक चीमड़ अभेद्य नमक-मिट्टी का अस्तर आता है जिससे अति विलेय पोटेसियम और मैगनीशियम लवणों को नीचे आने से रुकावट हुई थी।

शिखर पर अब कार्नेलाइट का ५० से १३० फुट मोटा स्तर रहता है। कार्नेलाइट पोटेसियम क्लोराइड और मैगनीशियम क्लोराइड का द्विगुण लवण है। इसी कार्नेलाइट से पोटाश लवण प्राप्त होता है। कार्नेलाइट के नीचे किसेराइट (Kieserite) रहता है। किसेराइटमें प्रधान लवण मैगनीशियम सल्फेट है। इसके नीचे फिर 'पोलीहेलाइट' (polyhalite) रहता है जिसमें पोटेसियम, कैलसियम और मगनीशियम के सल्फेट प्रधानतया रहते हैं। पोलीहेलाइट के नीचे 'सेंधा नमक' का २००० फुट या इससे अधिक गहराई पर मोटा स्तर रहता है। इसमें बीच-बीच में एन्हीड्राइट

के स्तर पड़े रहते हैं। इसके नीचे फिर त्रिटुमिनी बालू-पत्थर मिलता है। पेंदे के तल पर जो एन्हीड्राइट पाया जाता है वह समुद्र-जल का न्यूनतम विलेय लवण है। इसके
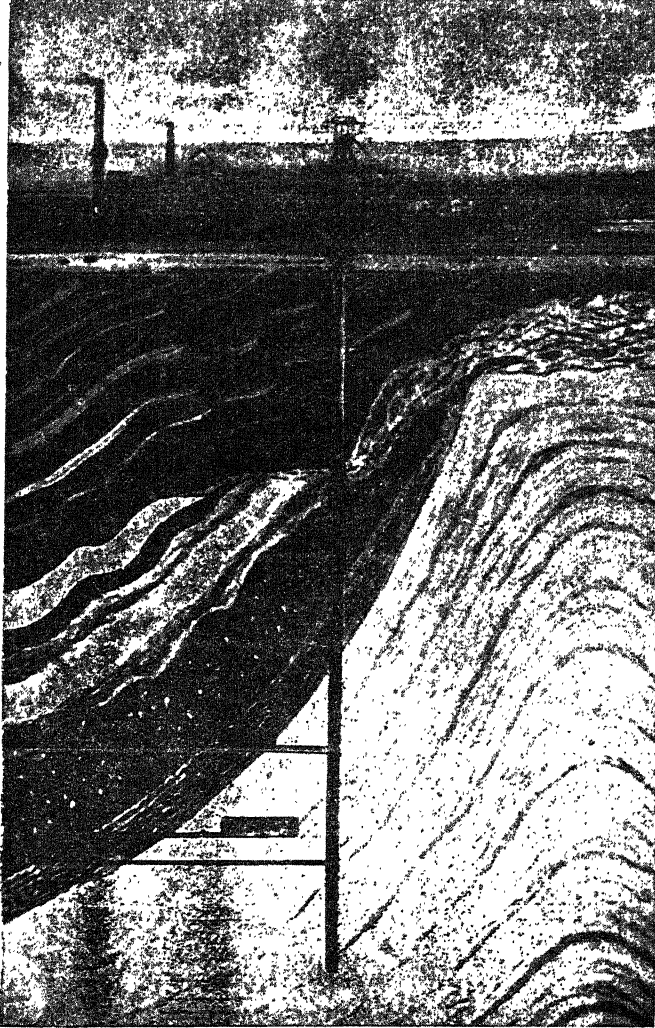
चित्र ३६—यूरोप में पोटाश की खानें और परिष्करणी

ऊपर नमक का स्तर रहता है और उसके ऊपर पोटाश और मैगनीशिया के लवण रहते हैं। स्वभावतः इनमें पोटाश लवण सबसे अधिक विलेय है, इस कारण यह शिखर के स्तर पर रहता है।

खानों से निकला लवण पीसा जाकर सीधे खाद के लिए प्रयुक्त होता है। यह व्यापार का लवण है। इसमें क्लोराइड और सल्फेट दोनों रहते हैं। केनाइट (kainite) एक दूसरा खनिज है जिसमें सोडियम, पोटेसियम और मैगनीशियम के क्लोराइडों और सल्फेटों का मिश्रण रहता है। इसमें K_2O लगभग १४ प्रतिशत रहता है।

स्टास्फर्ट-लवण सफेद, भूरा या हलके गुलाबी रंग (अपद्रव्यों के कारण) का रेतीला (gritty) चूर्ण होता है जो पानी में शीघ्र ही और पूर्णतः घुल जाता है। यह न्यूनाधिक आर्द्रताग्राही होता है। पोटेसियम क्लोराइड, विशेषतः मैगनीशियम, बहुत विलेय है और आर्द्रता का अवशोषण करता है। पोटेसियम सल्फेट में भी कुछ पोटेसियम क्लोराइड रहता है जिससे वह कुछ आर्द्रताग्राही होता है।

आजकल कार्नेलाइट के स्थान में सिल्विनाइट (sylvinite) भी प्राप्त होता है जिसमें K_2O १४ प्रतिशत रहता है। सिल्विनाइट पोटेसियम और सोडियम क्लोराइड का मिश्रण है।

कार्नेलाइट का सूत्र $KCl\ MgCl_2 . 6H_2O$ है। पोटाश की मात्रा इसमें ९ से १२ प्रतिशत अथवा पोटेसियम की मात्रा ७·५ से १० प्रतिशत रहती है। आर्द्रताग्राही होने के कारण यह दूर नहीं भेजा जा सकता। खान से निकले स्थानों के आस-पास ही खाद के रूप में प्रयुक्त होता है। अपद्रव्यों के रूप में नमक और मैगनीशियम सल्फेट इसमें रहते हैं।

केनाइट—जर्मनी के अतिरिक्त अमेरिका और फ्रांस में भी यह पाया जाता है। अपद्रव्यों के कारण इसके रंग भिन्न-भिन्न, सफेद, भूरा, पीला या लाल होते हैं। इनके बीच-बीच में नमक और अन्य खनिज मिले रहते हैं। प्राकृतिक केनाइट KCl, $MgSO_4$ $3H_2O$ बहुत कम शुद्ध होता है। व्यापार का केनाइट पोटेसियम क्लोराइड, मैगनीशियम सल्फेट, मैगनीशियम और सोडियम क्लोराइड का मिश्रण है। पोटाश की मात्रा १४ से २२ प्रतिशत रहती है। अब कुछ उच्च कोटि के भी केनाइट अमेरिका में पाये गये हैं जिनमें पोटाश की मात्रा प्रायः २० प्रतिशत तक पायी गयी है। केनाइट में क्लोरीन की मात्रा प्रायः ४६ प्रतिशत तक रहती है। यह क्रिया में क्षारीय होता है और रखने से पिंड बन जाता है।

शोनाइट (Schonite), $MgSO_4$, K_2SO_4,$6H_2O$ में पोटाश सल्फेट ४४ प्रतिशत के लगभग रहता है। इसे उत्तप्त कर कुछ पानी निकाल देने से पोटाश सल्फेट ४८

प्रतिशत तक (२४ प्रतिशत K_2O तुल्य) पहुँच जाता है। इसमें २ प्रतिशत चूना और २·५ प्रतिशत क्लोरीन रहता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका— प्रथम विश्वयुद्ध में जब स्टास्फर्ट का पोटाश लवण
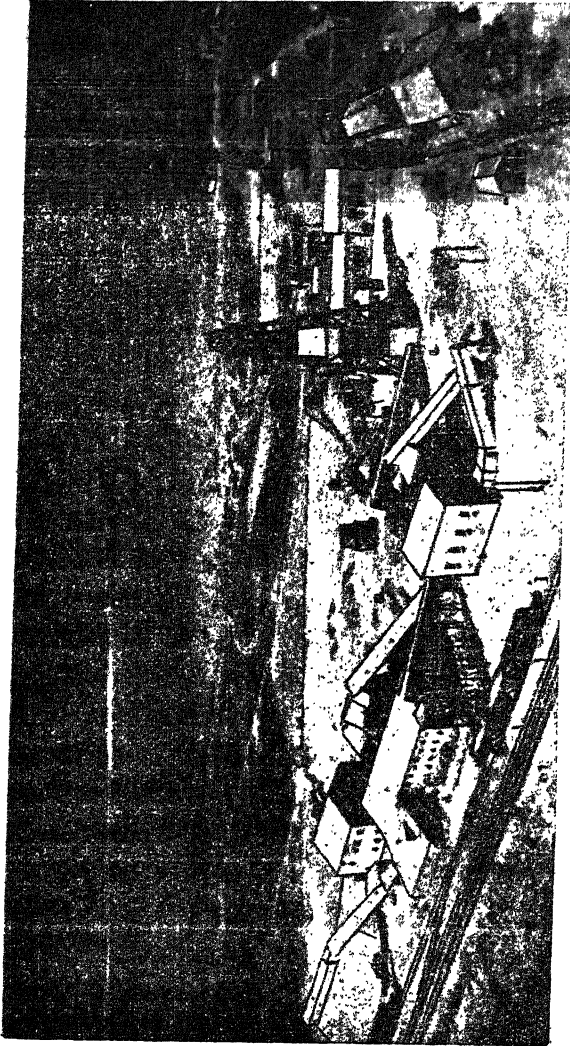
चित्र ३७—न्यू मैक्सिको (अमेरिका) के कार्ल्सबाड के पोटाश का कारखाना और परिष्करणी दे० पृ० ३७५

बन्द हो गया तब संयुक्त राज्य का जियोलौजिकल सर्वे विभाग पोटाश की खोज में लगा। इसके लिए जहाँ-तहाँ खानें खोदी जाने लगीं। इसके फलस्वरूप सन् १९२१ में टेक्सास के मिडलैंड और डावसन कौंटी में सन् १९२४ में, ऊटा में कार्नेलाइट का और सन् १९२५ में एड्डी काउंटी में एक सूखे कूप से सिलवाइट का पता लगा। पहले-पहल जो खनिज निकला वह शुद्ध पोलीहेलाइट था। इसमें १५·६ प्रतिशत पोटाश (K_2O) था। फिर वहां ऐसे ही पोटाश के खनिज मिले जैसे स्टास्फर्ट में पाये जाते हैं। ये खनिज हैं पोलीहेलाइट ($2CaSO_4$, $MgSO_4$, $K_2SO_4 2H_2O$), सिल्विनाइट (KCl, NaCl), कारनेलाइट (KCl, $MgCl_2$ $6H_2O$), कैनाइट (Mg SO_4, KCl,$3H_2O$), लांगवेनाइट ($2MgSO_4$, K_2SO_4) और लियोनाइट (K_2SO_4, $MgSO_4$, H_2O)। डोलबेयर (१९४६, Dolbear) का अनुमान है कि केवल पोलीहेलाइट में, ६०,०००,००० टन पोटाश संचित है। टुरेन्टाइन (१९४१, Turrentine) का अनुमान है कि न्यू मेक्सिको में सिल्विनाइट और अन्य जल-विलेय पोटाश के स्तर ३००० वर्ग मील में फैले हुए हैं। सिल्विनाइट का स्तर ४ से १२ फुट मोटा है। न्यू मेक्सिको के पोटाश लवण की संचिति (१९४६) उच्च कोटि के लवण रूप में, जिसमें पोटाश की मात्रा १४ प्रतिशत से कम नहीं है, ४००,०००,००० टन कूती गयी है। इसके अतिरिक्त अन्य निक्षेप भी पाये गये हैं।

पहले-पहल सन् १९३१ में न्यू मेक्सिको की एड्डी काउन्टी के कार्ल्सबाडसे पोटाश लवण निकाल बाहर भेजा गया था। फिर कई कम्पनियां स्थापित हुईं जो आज भी पोटाश लवण निकालने का कार्य कर रही हैं। कार्ल्सबाड का निक्षेप बाह्य तल से लगभग १००० फुट नीचे १० से १४ फुट के स्तर में पाया गया है। यह प्रधानतया सिल्विनाइट है। खान से निकले खनिज और उससे प्रस्तुत म्यूरियेट आफ पोटाश का विश्लेषण निम्नांकित है—

अवयव	खाद लवण खान से प्राप्त	प्रस्तुत म्युरियेट
पोटाश (K_2O)	२७·०५	६२·४९
पोटेसियम क्लोराइड (KCl)	४२·८२	९८·९२
सोडियम क्लोराइड (NaCl)	५३·४२	०·८२५
सोडियम आक्साइड (Na_2O)	२८·८३	—
सल्फर ट्राइ-आक्साइड (SO_3)	—	०·०२४
क्लोरीन	५३·३२	—
अविलेय अंश	—	०·०२५
जल (१३० से ० पर हानि)	०.४५	०·१०

सन् १९४७ का अनुमान है कि कार्ल्सबाड में पोटाश लवण की संचिति जो निकाली जा सकती है ६५,०००,००० टन है।

इस बीच ऊटा (Utah) में भी विलेय पोटाश निक्षेप के तीन स्तर पाये गये हैं। ये स्तर ३४०० से ४२१० फुट की गहराई में पाये गये हैं। सबसे मोटा स्तर ९० फुट का है। यहाँ का स्तर न्यू मेक्सिको के स्तर से १० से २० गुना अधिक मोटा है। इन स्तरों में अति विलेय सिल्विनाइट और कारनेलाइट हैं।

इनके अतिरिक्त पोटाश लवणों के कुछ अन्य निक्षेप भी छोटे-छोटे स्तरों में कानसास, ओहिओ, न्यूयार्क, मिचीगान, न्यू ब्रन्सविक, कनाडा आदि स्थानों में पाये गये हैं।

फ्रांस—फ्रांस के अलसाक में मलहाउस के निकट सिल्विनाइट का निक्षेप पाया गया है। यहाँ का निक्षेप लगभग ८५ वर्ग मील में फैला हुआ है। यहाँ के निक्षेप में ५ से २५ प्रतिशत, औसत १७ प्रतिशत, पोटाश रहता है, जब कि जर्मनी के निक्षेप में केवल १३ प्रतिशत पोटाश रहता है। इसमें सल्फेट बिलकुल नहीं पाया जाता। यह निक्षेप जमीन के नीचे १६०० से ३००० फुट की गहराई पर प्रधानतया दो स्तरों में, एक औसत २०५० फुट की गहराई पर, दूसरा २१५० फुट की गहराई पर पाया गया है। ऊपरी स्तर लगभग ४ फुट मोटा और निचला स्तर ९ फुट मोटा है। इस लवण-निक्षेप के स्रोत वही हैं जो स्टास्फर्ट निक्षेप के हैं। इस निक्षेप के बनने का समय भी १५,००० से १८,००० वर्ष कूता गया है।

स्पेन—स्पेन के कैटोलोनिया (Catolonia) प्रान्त में भी सुरिया नगर के निकट कारनेलाइट और सिल्विनाइट के महत्त्व के निक्षेप पाये गये हैं। इनमें १८ से ३४ प्रतिशत पोटाश रहता है। यहाँ के निक्षेप से प्रायः १२०,००० टन पोटाश (K_2O) प्रति वर्ष निकाला जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में पोटाश लवण का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन के संयन्त्र	पोटाश लवण का उत्पादन (टन में)	पोटाश तुल्यांक (टन में)
१९४५	७	१,५७८,४९८	८७४,२४३
१९४६	७	१,६८७,७३५	९३१,८१२
१९४७	७	१,९०५,७७६	१,०२९,८७५
१९४८	७	२,१३८,४९३	१,१३९,८८१
१९४९	७	२,०५६,६०९	१,११८,३९५

पोलैण्ड—पोलैण्ड के कारपेथियन पर्वत की पाद-पहाड़ियों में कालस्ज और स्टेबनिक (Kalusz and Stebnik) स्थानों में पोटाश लवणों के निक्षेप पाये गये हैं। यहाँ के निक्षेप में सिल्विनाइट और कैनिट पाये जाते हैं। इससे निकले खनिज से ९६ प्रतिशत शुद्धता का पोटेसियम क्लोराइड प्राप्त होता है। खान से निकले निक्षेप में प्रायः १६ प्रतिशत पोटाश रहता है। यहाँ के निक्षेप में २५०,०००,००० मेट्रिक टन पोटाश का अनुमान लगाया गया है।

फिलस्तीन—फिलस्तीन की 'डेड सी' प्रायः ५० मील लम्बी और ९ मील चौड़ी झील है। इसका औसत संतल भूमध्य सागर से १३००० फुट नीचे है। इसकी महत्तम गहराई १३०० फुट है। लेबनान और लाल सागर के बीच दर्रा का यह अवशिष्ट अंश है। इसमें जोर्डन नदी और स्रोतों का पानी गिरता है जिसके निकलने का कोई रास्ता नहीं है। आठ महीने वहाँ पानी नहीं बरसता और मौसम बहुत गरम रहता है। तेज वायु भी चलती रहती है। इससे झील का पानी भाप बनकर बहुत उड़ता रहता है पर लवण ज्यों का त्यों रहता है। इसके पानी में लवण की मात्रा समुद्र के लवण की मात्रा से पाँचगुनी अधिक रहती है। विभिन्न लवणों की मात्रा विभिन्न गहराई पर विभिन्न रहती है। लवणों का विश्लेषण इस प्रकार है—

प्रति लिटर जल में लवण की मात्रा (ग्राम में)

लवण	तल के पानी में	३६० फुट गहराई के पानी में
पोटेसियम क्लोराइड (KCl)	१०	१६
सोडियम क्लोराइड (NaCl)	७१	८७
मैगनीशियम क्लोराइड ($MgCl_2$)	११०	१६९
कैलसियम क्लोराइड ($CaCl_2$)	३१	४७
मैगनीशियम ब्रोमाइड ($MgBr_2$)	४	७
समस्त मात्रा	२२७	३२७

फिलस्तीन पोटाश कम्पनी ने सन् १९३० से पोटाश निकालने का काम शुरू किया और ८० प्रतिशत शुद्धता के पोटेसियम क्लोराइड का वार्षिक उत्पादन बढ़कर १०००,००० टन हो गया। 'डेड सी' के उत्तरी तट से १७५ फुट की गहराई से लवणीय

जल पम्प कर अनेक कड़ाहों में भरा जाता है, जिससे सूर्य की गरमी से पानी उड़ता और पहले ९० प्रतिशत शुद्धता का खानेवाला नमक पृथक् होता है। उसके बाद जो लवण पृथक् होता है उसमें २० प्रतिशत के लगभग पोटेसियम क्लोराइड और ३३ प्रतिशत के लगभग मैगनीशियम क्लोराइड रहता है। यह कारनेलाइट है। इसे ठंडे जल द्वारा सावधानी से उपचारित करने से ८० प्रतिशत शुद्धता का पोटेसियम क्लोराइड प्राप्त होता है। अवशिष्ट अंश में ब्रोमीन रहता है जो उप-जात के रूप में प्राप्त हो सकता है। यहाँ का पोटाश १२,००० लाख टन कूता गया है।

रूस—रूस में भी पोटाश लवण के निक्षेप पाये गये हैं। ये यूराल के सोलिकामस्क—बैरेज़निकी (Solikamusk-Berezniky) क्षेत्र में स्थित है। वहाँ की संचिति कितनी है और कितना लवण प्रति वर्ष निकाला जाता है इसका पता नहीं है।

इटली—इटली में भी ज्वालामुखी राखों में पोटेसियम पाया गया है। इसमें लगभग ८ प्रतिशत पोटाश रहता है।

अबीसीनिया—अबीसीनिया में भी पोटाश लवण के निक्षेप सतह पर ही पाये गये हैं। पोटाश लवण का उत्पादन अभी अल्प है। देश के बाहर सम्भवतः परिवहन की कठिनता से नहीं भेजा जाता।

इसके अतिरिक्त कनाडा, ब्रेजील, इंग्लैंड, नारवे, पेरू, स्वीडन में भी पोटाश लवण पाया गया है।

भारत—भारत में अभ्रक पाया जाता है। प्रधानतया यह मस्कोवाइट, फ्लोगोपाइट, वर्मिक्युलाइट के रूप में पाया जाता है। अभी तक इनका उपयोग वैद्युत उद्योगों में ही होता है। प्रायः अधिकांश उत्पादन का निर्यात हो जाता है। संसार के अभ्रक उत्पादन में भारत का स्थान सर्वोपरि है और ८० प्रतिशत माँग की पूर्ति भारत के अभ्रक से होती है।

अभ्रक के सर्वश्रेष्ठ निक्षेप बिहार के हजारीबाग जिले, मद्रास के नेलोर जिले में और राजपूताने में पाये गये हैं। बिहार का अभ्रक गया, हजारीबाग और मुंगेर जिलों में लगभग ६० मील की लंबाई और १२ से १४ मील की चौड़ाई में फैला हुआ है। अभ्रक के साथ-साथ फेल्स्पार, क्वार्टज और बेरील भी निकलता है। इन्हें निकाल कर, काटकर भिन्न-भिन्न मोटाई में अलग-अलग करके बाहर भेजा जाता है। इसकी मोटाई ०·०८ से ०·१२ इंच की और कभी-कभी ०·००१ से ०·००३ इंच की रहती है। कच्चे अभ्रक का मूल्य खानों पर १५ से २० रुपया प्रति टन रहता है पर काट छाँट के बाद ५० से १०० रुपया प्रति टन हो जाता है। अच्छी किस्म के अभ्रक का मूल्य प्रति पौण्ड ७५ रुपया तक मिलता है। अभ्रक की काट-छाँट के क्षेप्य प्रति टन ५० से

१०० रुपये में मिलते हैं। प्रति वर्ष ७००० से १०,००० टन अभ्रक का निर्यात भारत से, विशेषतः बिहार के कोदरमा और गिरिडीह से और दक्षिण भारत के मद्रास से होता है। अभ्रक के बचे-खुचे अंश का उपयोग भारत में नहीं हो रहा है। खाद के रूप में उसके उपयोग का प्रयत्न होना चाहिए।

अभ्रक से आजकल मिकेनाइट तख़्ती, मिकेनाइट वस्त्र और मिकेनाइट कागज भी बनते हैं जो अनेक कामों के लिए बड़े उपयोगी हैं।

भारत में शोरा भी उत्पन्न होता है। अधिक शोरा पंजाब में उत्पन्न होता था जो पाकिस्तान में चला गया है। बिहार और उत्तर प्रदेश में भी शोरा उत्पन्न होता था और हो सकता है। कुछ स्थानों के घरों की आसपास की मिट्टी नोनी हो जाती है। कुछ खेतों की मिट्टी भी नोनी हो जाती है। ऐसे स्थानों में कुछ स्थान उत्तर प्रदेश, कुछ विहार, कुछ उड़ीसा, कुछ मद्रास और कुछ मध्य प्रदेश में हैं। बिहार के गया, मुजफ्फरपुर, सारन, चम्पारन जिलों में, उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, बनारस, कानपुर, गाजीपुर और बलिया जिलों में, मद्रास के कोयाल्बतोर, कृष्णा, मदुरा, सलेम, त्रिचनापली और वेलोर जिलों में और मध्य भारत के भिंड तथा जवाहरगढ़ जिलों में ऐसी नोनी मिट्टी मिलती है।

नोनी मिट्टी को विहार में एक विशिष्ट जाति के लोग जिन्हें 'नोनिया' कहते हैं इकट्ठा करते हैं, उत्तर प्रदेश में किसी जाति का व्यक्ति कर सकता है। पंजाब में कुम्हार या अन्य जाति के लोग, मुसलमान भी करते हैं। नवम्बर मास से मिट्टी को इकट्ठा करना शुरू करते हैं। ऊपर की नोनी मिट्टी को ही छीलकर इकट्ठा करते हैं। साधारणतया आधे से एक इंच की मिट्टी ही इकट्ठी की जाती है। नोनी मिट्टी से शोरा निकालने की रीति यह है—

धरती पर कोठी या कुरिया बनाते हैं। यह ७ फुट लंबी, ३ फुट चौड़ी और १ फुट गहरी होती है। कहीं कहीं इसका आकार वृत्ताकार भी होता है। कोठी का तल चिकना होता है और एक तरफ ढालू होता है ताकि सब ओर से पानी निकलकर एक किनारे चला आये। इस किनारे पर १½ फुट व्यास की एक नाँद जमीन में गड़ी होती है। पानी बहकर एक सूराख से इसी नाँद में इकट्ठा होता है। अब कोठी को सूखे पत्ते या पयाल के एक ३ इंच स्तर से भर देते हैं। पत्ते के इसी स्तर पर नोनी मिट्टी रखते हैं। नोनी मिट्टी का स्तर प्रायः ४ इंच मोटा होता है। मिट्टी को ऐसा बैठाते हैं कि उसके द्वारा पानी धीरे-धीरे प्रवेश करता रहे पर मिट्टी खिसक न जाय। ऊपर से नोनी मिट्टी पर पानी भर देते हैं। पानी धीरे-धीरे चूकर नीचे जाकर नाँद में इकट्ठा होता है। जब अधिक पानी देने से ऐसा विलयन निकले जिसमें लवण की मात्रा अधिक न रहे

तब पानी देना बन्द कर देते हैं। अब मिट्टी को निकाल कर अलग जमा कर देते हैं। नाँद में जो द्रव इकट्ठा होता है उसे लोहे के बड़े-बड़े कड़ाहों में सुखाते हैं। कहीं उसे धूप में सुखाते हैं और कहीं पत्ते जलाकर गरम कर सुखाते हैं। कड़ाह लोहे के पत्तर के प्रायः ५ फुट व्यास के होते हैं। पहले उनकी कीमत २० से २५ रुपया थी पर अब अधिक ४० से ५० रुपया हो गयी है। प्रायः ६—७ घण्टे उबालने से द्रव गाढ़ा हो जाता है। द्रव को निकालकर अंगूठे के नख पर जाँच करते हैं। यदि नख पर तत्काल लवण के मणिभ निकल आयें तो गरम करना बन्द कर देते हैं।

अब द्रव को मिट्टी के पात्र में स्थानान्तरित कर ठंडा होने और मणिभ बनने के लिए छोड़ देते हैं। अगले दिन पर्याप्त मणिभ निकल आते हैं। उन्हें बाँस की टोकरी में निकालकर छानने के लिए छोड़ देते हैं। छानने का काम टोकरी द्वारा ही होता है। इस प्रकार जो शोरा प्राप्त होता है उसे 'कच्चा शोरा' कहते हैं। कच्चे शोरे को एक गड्ढे में इकट्ठा करते हैं।

द्रव को आग पर गरम कर ठंडा करने से जो शोरा प्राप्त होता है उसे 'जरिया शोरा' कहते हैं। कुछ स्थानों पर विशेषतः पंजाब में सूर्य की धूप के द्वारा द्रव को गाढ़ा करते हैं। इससे जो शोरा प्राप्त होता है उसे 'आबी शोरा' कहते हैं। यह शोरा उतना अच्छा नहीं समझा जाता।

शोरे का गुण बहुत कुछ मिट्टी की प्रकृति और तैयार करने की विधि पर निर्भर करता है। ऐसे शोरे में वास्तविक शोरे की मात्रा २७ से ८० प्रतिशत रहती है। औसत मात्रा ५३ प्रतिशत कही जा सकती है। इसका प्रमुख अपद्रव्य नमक होता है, जो ३५ से ६० प्रतिशत तक इसमें रह सकता है। पहले ऐसा शोरा बहुत सस्ता बिकता था, अढ़ाई से चार रुपया मन बिकता था, पीछे २० से ३० रुपया मन हो गया था। पर अब और महँगा हो गया है। वास्तविक मूल्य पोटेसियम नाइट्रेट की मात्रा पर निर्भर करता है।

कच्चे शोरे की सफाई की आवश्यकता पड़ती है। सफाई कारखाने में होती है। एक समय समस्त भारत में ऐसे कारखाने ४०० के लगभग थे।

इन कारखानों में पहले 'तोड़' या मातृद्रव तैयार होता था। कच्चे शोरे पर पानी डालकर विलयन तैयार करते हैं। विलयन को फिर आठ से दस दिन छोड़ देते हैं। उससे शोरे के मणिभ निकल आते हैं। जो द्रव बच जाता है उसे 'तोड़' कहते हैं। यह तोड़ कच्चे शोरे को घुलाने के लिए इस्तेमाल होता है। बड़े बड़े कड़ाहों में कच्चे शोरे को रखकर तोड़ डालकर उबालते हैं। उबालने के समय मैले सफेद दाने कड़ाह के पेंदे में बैठ जाते हैं। इसे 'सीठा' कहते हैं और समय-समय पर इसे निकाल लेते हैं।

इस सीठे को कभी-कभी धोकर, धोवन को फिर कड़ाह में डाल देते हैं अथवा कहीं कहीं उस को कच्चे शोरे में डाल देते हैं। सीठे में प्रधानतया नमक रहता है। नमक के साथ कुछ मिट्टी और अन्य लवण भी मिले रहते हैं। कड़ाह में द्रव को उबालकर गाढ़ा करते हैं। ऊपर जो मैल या फेन बनता है उसे निकाल देते हैं। प्रायः तीन घण्टे उबालने के बाद रंग असित से हलका पीला हो जाता है। तब उबालना बन्द कर स्वच्छ द्रव को एक या अधिक मणिभीकारक पात्रों में स्थानान्तरित करते हैं। कड़ाह के पेंदे में कुछ जम जाता है इसे 'मटियारी' कहते हैं। इसमें भी कुछ शोरा मिट्टी के साथ मिला हुआ रहता है। मटियारी को निकालकर नोनी मिट्टी पर डाल देते हैं। मणिभी-कारक पात्रों को शिखर से प्रायः एक इंच नीचे तक भर देते हैं। उत्तर प्रदेश में मणिभी-कारक के तल पर बाँस की 'टट्टी' रखते हैं। टट्टी से मणिभ बनने में सहूलियत होती है। सात दिनों के बाद टट्टी को निकालकर उसमें सटे मणिभों को झाड़कर निकाल लेते हैं। सफाई करने से शोरे का दाम दुगुना तिगुना हो जाता है। ऐसे शोरे को 'कलमी शोरा' कहते हैं। इसमें भी कुछ नमक और अन्य अपद्रव्य मिले रहते हैं। शुद्ध पोटे-सियम नाइट्रेट प्राप्त करने के लिए इसे फिर एक बार मणिभीकृत करते हैं। खाद के लिए इतने शोधन की आवश्यकता नहीं पड़ती। बारूद के लिए ही शुद्ध पोटेसियम नाइट्रेट की आवश्यकता पड़ती है। एक समय प्रति वर्ष १५,००० टन शोरा भारत में तैयार होता था, पर आजकल इतना नहीं तैयार होता। अधिक शोरा प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए। यदि संघटित रूप से प्रयत्न किया जाय तो अधिक शोरा प्राप्त हो सकता है।

भारत में पोटेसियम क्लोराइड और पोटेसियम सल्फेट भी प्राप्य हैं। नमक के साथ कुछ पोटेसियम क्लोराइड मिला रहता है। समुद्र जल से नमक निकाल लेने पर कारनेलाइट के रूप में पोटेसियम और मैगनीशियम क्लोराइड प्राप्त होता है। प्रभाजिक मणिभीकरण विधि से नियंत्रित ताप और वाष्प-दबाव पर उन्हें अलग-अलग कर सकते हैं। पोटेसियम सल्फेट और मैगनीशियम सल्फेट भी कैनाइट के रूप में प्राप्त होते हैं। भारत में पोटाश लवण प्राप्त करने की विधिवत् चेष्टाएँ नहीं हुई हैं।

संसार के विलेय पोटाश लवणों की संचिति

जौनसन और टक्कर (Johnson and Tucker, १९४८) का अनुमान है कि संसार के विलेय पोटाश लवणों की संचिति ३७,०००,०००,००० मेट्रिक टन है। विभिन्न देशों की संचिति के आँकड़े इस प्रकार हैं—

देश	टन
संयुक्त राज्य अमेरिका	७३,०००,०००
रूस	१५,०००,०००,०००
जर्मनी	२०,०००,०००,०००
पोलैण्ड	१०,०००,०००
स्पेन	१०,०००,०००
अबीसीनिया	१,२५०,०००
ऊटा	२४०,०००,०००
फ्रांस, फिलस्तीन, ट्रांसजोर्डन	२,१९०,०००,०००

म्यूरियेट आफ पोटाश

अमेरिकी और फ्रांसीसी निक्षेप से प्राप्त सिल्विनाइट से, अथवा जर्मन निक्षेप से प्राप्त कार्नेलाइट और कठोर लवण से मैगनीशियम क्लोराइड अथवा सल्फेट निकाल देने पर म्यूरियेट आफ पोटाश प्राप्त होता है। जर्मन म्यूरियेट में कुछ मैगनीशियम सल्फेट और क्लोराइड रहते हैं। फ्रांसीसी म्यूरियेट में ये लवण नहीं रहते।

अन्य लवणों से पोटेसियम क्लोराइड पृथक् करने की विधि वस्तुतः विक्षालन (Lixiviation) की विधि है। लवण को उष्ण विलयन में घुलाकर मणिभीकृत करते हैं। जल में विलेयता के विभिन्न होने के कारण विभिन्न ताप पर लवण अलग-अलग पृथक् होते हैं। नमक के साथ रहने से पोटेसियम क्लोराइड उष्ण जल में अधिक विलेय होता है, जब कि सोडियम क्लोराइड उष्ण जल की अपेक्षा ठंडे जल में ही अधिक विलेय होता है।

अमेरिका में एक दूसरी विधि से पोटेसियम क्लोराइड को नमक से पृथक करते हैं। इस विधि को उत्प्लावन विधि कहते हैं। यद्यपि दोनों लवणों के विशिष्ट भार में केवल ०·१६ का अन्तर है, पर इनको महीन पीसकर उत्प्लावन कोशाओं की श्रेणियों में पारित करने से उनके सूक्ष्म कण पृथक् पृथक् हो जाते हैं।

पोटेसियम लवणों का प्रायः ९० प्रतिशत केवल क्लोराइड के रूप में संसार में खपता है। भिन्न भिन्न नमूनों में पोटाश की मात्रा ४८ से ६२ प्रतिशत और क्लोराइड की प्रायः ४७ प्रतिशत रहती है। अमेरिकी म्यूरियेट में प्रायः ६० प्रतिशत पोटाश रहता है। कुछ नमूनों में ५० प्रतिशत भी रहता है। कुछ नमूना लोहे के आक्साइड

के कारण लाल होता है, इसे लाल म्यूरियेट कहते हैं। म्यूरियेट आफ पोटाश में अपद्रव्य के रूप में प्रधानतया नमक रहता है। म्यूरियेट आफ पोटाश पुराना नाम है। इसे आज पोटेसियम क्लोराइड कहना अधिक युक्तिसंगत समझा जाता है।

न्यूमेक्सिको, कार्ल्सबाड से प्राप्त ६० प्रतिशत म्यूरियेट आफ पोटाश का विश्लेषण

अवयव	प्रतिशतता
पोटाश क्लोराइड (KCl)	९८·७००
पोटाश (K_2O) समतुल्यता	६२·३४०
नमक (NaCl)	१·०७०
पोटाश सल्फेट (K_2SO_4)	०·०५०
सोडियम ब्रोमाइड (NaBr)	०·०५०
मैगनीशियम सल्फेट ($MgSO_4$)	०·०५०
कैलसियम सल्फेट ($CaSO_4$)	०·००३
बोरक्स	०·००४
अविलेय	०·०१०
जल	०·०६०

पोटाश सल्फेट

पहले जर्मनी में कैनाइट से पोटाश सल्फेट प्राप्त होता था। पर आजकल जर्मनी और अन्य देशों में पोटाश सल्फेट तैयार करने की रीति यह है—

पोटेसियम और मैगनीशियम सल्फेट के द्विगुण लवण को पानी में घुला कर उसमें पोटेसियम क्लोराइड का सान्द्र विलयन डालते हैं। इससे पोटेसियम सल्फेट अवक्षिप्त हो जाता है। विलयन से निस्तारण (decantation) द्वारा सल्फेट को पृथक् करते, सुखाते, चालते, पीसते और बोरी में बन्द कर बाहर भेजते हैं। पोटेसियम क्लोराइड और सोडियम सल्फेट की प्रतिक्रिया से भी पोटेसियम सल्फेट तैयार हो सकता है। पोटेसियम क्लोराइड पर सलफ्यूरिक अम्ल की प्रतिक्रिया से भी पोटेसियम सल्फेट प्राप्त हो सकता है।

उत्कृष्ट कोटि के पोटाश सल्फेट में पोटाश की मात्रा कम से कम ४८ प्रतिशत और क्लोरीन की मात्रा अधिक से अधिक २·५ प्रतिशत रहती है। पोटाश सल्फेट

महीन चूर्ण रूप में प्राप्त होता है, अतः इसकी भौतिक दशा बहुत अच्छी होती है। यदि इसका मूल्य अधिक नहीं होता तो इसकी सबसे अधिक मात्रा की खपत होती। पोटाश क्लोराइड के सस्ता होने से वह आज सबसे अधिक खपता है।

अमेरिकी पोटाश सल्फेट का विश्लेषण

अवयव	प्रतिशतता
पोटाश सल्फेट (K_2SO_4)	९६.२००
पोटाश (K_2O)	५२.०००
क्लोराइड (Cl)	१.८००
सल्फेट (SO_4)	५३.६५०
ब्रोमीन (Br)	०.०२०
सोडियम (Na)	०.९४०
कैलसियम (Ca)	०.०२०
मैगनीशियम (Mg)	०.०६०
जल अविलेय	०.३२०
जल	०.०२०

पोटेसियम-मैगनीशियम सल्फेट

जर्मनी में पोटेसियम-मैगनीशियम सल्फेट तैयार होता है। कीसेराइट से यह तैयार होता है। कीसेराइट को उष्ण जल में तब तक घुलाते हैं जब तक कि विलयन का विशिष्ट भार १.३२ न प्राप्त हो जाय। अब विलयन को ३०° से० तक ठंडा करते हैं, फिर उसमें पोटेसियम क्लोराइड तब तक डालते हैं जब तक मैगनीशियम क्लोराइड की मात्रा १० से २० प्रतिशत न हो जाय। पोटेसियम क्लोराइड डालने की वास्तविक मात्रा कीसेराइट के संघटन पर निर्भर करती है। अब विलयन से पोटाश मैगनीशिया के सल्फेट सूक्ष्म मणिभ के रूप में निम्नांकित समीकरण के अनुसार पृथक् हो जाते हैं—$2KCl + 2Mg\,SO_4.\ 7H_2O = K_2SO_4.\ MgSO_4.\ 6H_2O + MgCl_2.\ H_2O$.

इसमें पोटाश (K_2O) २२.६ प्रतिशत और मैगनीशिया (MgC) ११.१ प्रतिशत रहता है। काकेशस में कुछ कारखाने हैं जो पोटेसियम कार्बोनेट तैयार करते हैं।

पोटाश कार्बोनेट

राख में पोटाश कार्बोनेट रहता है। राख सीधे उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होती है पर पोटाश कार्बोनेट को अलग निकालकर भी उपयोग में ला सकते हैं। ऐसा राख के निष्कर्षण (leaching) द्वारा कर सकते हैं। इसमें ·९० प्रतिशत पोटेसियम कार्बोनेट, ५ प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट, २ प्रतिशत पोटेसियम सल्फेट और ६·५ प्रतिशत पोटेसियम क्लोराइड रहते हैं।

पोटेशियम मैगनीशियम कार्बोनेट

जर्मनी में अल्प मात्रा में पोटेसियम मैगनीशियम कार्बोनेट भी बनता है और उर्वरक के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। ऐसे द्विगुण लवण में पोटेसियम १६·६ प्रतिशत और मैगनीशियम १२·० प्रतिशत रहता है। इसमें क्लोराइड विलकुल नहीं रहता। जो फसल क्लोराइड से क्षतिग्रस्त हो जाती हैं उनके लिए यह द्विगुण लवण प्रयुक्त हो सकता है।

पोटाश सिलिकेट

उर्वरक के लिए जर्मनी में पोटाश सिलिकेट भी तैयार किया गया है। ऐसे सिलिकेट में पोटाश (K_2O) २४ से २७·६ प्रतिशत रहता है। यह भी प्रयोगों से बहुमूल्य खाद सिद्ध हुआ है। इसकी दक्षता पोटेसियम सल्फेट और पोटेसियम क्लोराइड के बीच पायी गयी है।

अन्य पोटाश लवण

जर्मनी से जो पोटाश उर्वरक प्राप्त होता है वह पाँच ग्रेड का होता है—(१) कारनेलाइट में पोटाश की मात्रा ९ से १२ प्रतिशत रहती है, (२) कच्चे लवण में पोटाश १२ से १५ प्रतिशत रहता है, (३) उर्वरक लवण में पोटाश १८ से २२ प्रतिशत रहता है, (४) एक दूसरे उर्वरक लवण में पोटाश २८ से ३२ प्रतिशत रहता है और (५) एक तीसरे उर्वरक लवण में पोटाश ३८ से ४२ प्रतिशत रहता है। फ्रांस से पोटाश लवण के तीन ग्रेड प्राप्त होते हैं। (१) सिल्विनाइट जिसमें पोटाश की मात्रा १२ से १६ प्रतिशत रहती है, (२) एक दूसरा सिल्विनाइट जिसमें पोटाश की मात्रा २० से २२ प्रतिशत रहती है और (३) एक तीसरा सिल्विनाइट जिसमें पोटाश की मात्रा ३० से ४० प्रतिशत रहती है।

अमेरिका में जो पोटाश लवण खाद के लिए प्रयुक्त होता है उसमें पोटाश २० से ३० प्रतिशत रहता है। ऐसे लवण में एक 'खाद लवण' है जो खानों से निकाल कर सीधे उर्वरक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यह पोटेसियम क्लोराइड और सोडियम क्लोराइड का मिश्रण होता है। यह आर्द्रताग्राही होता है और पानी को ग्रहण कर पिंड बन जाता है। ऐसे खाद लवण का विश्लेषण नीचे दिया जाता है—

न्यू मेक्सिको के कार्ल्सबाड से प्राप्त 'खाद लवण' का सन्निकट विश्लेषण

अवयव	प्रतिशत
पोटेसियम क्लोराइड (KCl)	३८·८००
पोटाश तुल्यांक (K_2O)	२४·५००
नमक ($NaCl$)	५८·८९०
पोटेसियम सल्फेट (K_2SO_4)	०·२७०
सोडियम ब्रोमाइड ($NaBr$)	०·०३५
मैगनीशियम सल्फेट ($MgSO_4$)	०·५७०
कैलसियम सल्फेट ($CaSO_4$)	०·४५०
बोरेट ($NaBO_2$)	०·०२५
अविलेय	०·७४०
जल	०·२२०

पोटाशीय खाद का व्यवहार

मिट्टी में पोटाश कम रहता है। भारत के विभिन्न स्थानों की मिट्टी में विद्यमान पोटाश की मात्रा अन्यत्र दी हुई है। जो पोटाश मिट्टी में रहता है वह भी इस रूप में रहता है कि सबका सब पौधों को उपलब्ध नहीं होता। फसल के बार-बार उगाने से मिट्टी का पोटाश बहुत कुछ निकल जाता है। किस फसल से कितना पोटाश निकलता है यह भी अन्यत्र दिया हुआ है। प्राकृतिक रीति से कुछ पोटाश मिट्टी में अवश्य मिलता रहता है पर जितना पोटाश निकलता है उसका सबका सब नहीं मिलता। घास-पात के सड़ने-गलने से कुछ पोटाश मिट्टी में मिलता रहता है पर इससे समस्त कमी की पूर्ति नहीं होती। इस कारण अच्छी पैदावार के लिए मिट्टी में पोटाशीय खाद देने की आवश्यकता पड़ती है।

सब ही पौधों को पोटाश की आवश्यकता पड़ती है, कुछ को कम और कुछ को अधिक। यदि पौधों को पर्याप्त पोटाश मिले तो उनकी वृद्धि अच्छी होती है, उनमें रोगों से बचने की क्षमता आती है, फलों के पकने के समय में वृद्धि होती है। इस प्रकार यह फास्फरस की खादों को एक ओर और नाइट्रोजन-खादों को दूसरी ओर से संतुलित करता है। पोटेसियम के योग से ही क्लोरोफिल बनता है। क्लोरोफिल से ही सूर्य-किरणों के सहारे पौधे वायु के कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण कर उसके कार्बन से स्टार्च बनाते हैं। इससे अनाज के दाने की पुष्टि होती है। कुछ फसलों के लिए पोटाशीय खाद विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध हुई है। ऐसे पौधों में तम्बाकू, आलू, धान, टमाटर और ईख उल्लेखनीय हैं। इन फसलों की पैदावार पोटेसियम खाद से बहुत बढ़ जाती है। कुछ ऐसी भी फसल हैं जिनको पोटेसियम खाद के आधिक्य से नुकसान पहुँचता है। तम्बाकू और आलू के खेतों में प्रति एकड़ २०० पौण्ड तक विलेय पोटेसियम लवण के उपयोग से पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है। शाक-सब्जियों के खेतों में पोटाश खाद से विशेष लाभ होता हुआ देखा गया है। विशेष रूप से रेतीली और प्रजीर्णकी[1] मिट्टी में यह बात देखी गयी है, क्योंकि ऐसी मिट्टी में पोटेसियम की मात्रा बड़ी कम रहती है। ऐसी मिट्टी से पानी द्वारा पोटेसियम लवण शीघ्रता से निकल भी जाता है, क्योंकि ऐसी मिट्टी पानी को बहुत काल तक धारण नहीं कर सकती। चारेवाली घास में भी पोटाश खाद की आवश्यकता पड़ती है।

पोटाश-खादें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। उनमें पोटाश (K_2O) की मात्रा विभिन्न होती है। निम्नांकित पोटाश-खादें विशेष उल्लेखनीय हैं—

नाम	पोटाश प्रतिशतता	नाइट्रोजन प्रतिशतता
काष्ठराख	४—७	—
पोटाश कार्बोनेट	१५—५०	—
कैनिट	१४—२०	—
खाद लवण	२०—३०	—
म्युरियेट आफ पोटाश	५०—६२·५	—
पोटाश नाइट्रेट (शोरा)	४४—४६	१६
पोटाश सल्फेट	४८—५२	—

[1] Muck soil

पोटाश-मैगनीशिया सल्फेट	२५–२७
पोटाश-मैगनीशिया कार्बोनेट	२४–२७
तम्बाकू तना	४–९

काष्ठ-राख में पोटेसियम कम रहता है। यह सब प्रकार की फसलों के लिए इस्तेमाल हो सकती है। इसमें पोटेसियम प्रधानतः पोटाश कार्बोनेट के रूप में रहता है, यद्यपि अल्प मात्रा में पोटाश क्लोराइड और पोटाश सल्फेट भी रहते हैं। पोटेसियम आर्द्रताग्राही होता है। वायु के पानी को यह ग्रहण कर लेता है। पोटेसियम कार्बोनेट अनेक पौधों की राख से प्राप्त हो सकता है। किस पौधे की राख में कितना पोटेसियम रहता है यह अन्यत्र दिया हुआ है। तम्बाकू के लिए पोटेसियम कार्बोनेट सर्वश्रेष्ठ खाद समझा जाता है। जीर्णकी या प्रजीर्णकी मिट्टी के लिए इसकी माँग अधिक होती है। मिट्टी पर इसकी कोई विशिष्ट क्रिया नहीं होती। यह स्वयं क्षारीय होता है पर कार्बन डाइ-आक्साइड को मुक्त करने के कारण मिट्टी की अम्लीयता में विशेष अन्तर नहीं उत्पन्न करता। राख और पोटेसियम कार्बोनेट के प्रभाव प्रायः एक से होते हैं।

कैनिट में १४-२० प्रतिशत पोटाश पोटेसियम क्लोराइड के रूप में रहता है। खानों से सीधे निकालकर, पीसकर खाद के लिए बेचा जाता है। इसका रंग कभी धूसर, कभी सफेद, कभी फीका गुलाबी, अपद्रव्यों के कारण होता है। इसमें क्लोरीन की मात्रा अधिक रहती है। मिट्टी की प्रतिक्रिया पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

'खाद लवण' एक विशेष प्रकार का लवण है जिसमें पोटाश २० से ३० प्रतिशत रहता है। ऐसी खाद में प्रधानतया पोटेसियम क्लोराइड, अल्प मात्रा में पोटाश सल्फेट और कुछ नमक तथा अन्य अपद्रव्य मिले रहते हैं। न्यू मेक्सिको के कार्ल्सबाड में खान से इस को सीधे निकालकर पीसकर खाद के लिए बेचा जाता है। इसमें सामान्यतः २६ प्रतिशत तक पोटाश रहता है, पर शुद्ध पोटाश लवण मिलाकर पोटाश की मात्रा ३० से ५० प्रतिशत तक बढ़ायी जा सकती है। मिट्टी की प्रतिक्रिया पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

म्यूरिएट आफ पोटाश पोटेसियम क्लोराइड है। इसमें पोटाश ५० से ६२·५ प्रतिशत रहता है। इसके मणिभ छोटे-छोटे धूसर रंग के होते हैं। यह आर्द्रताग्राही नहीं होता। इससे यह अकेले अथवा अन्य खादों के साथ मिलाकर इस्तेमाल हो सकता है। तम्बाकू के लिए क्लोरीन के कारण यह अच्छा नहीं समझा जाता। अन्य पोटाश लवणों से यह सस्ता होता है। इसकी पर्याप्त मात्रा उर्वरक के लिए बिकती है। पोटाश

क्लोराइड से क्लोराइड मुक्त होकर मिट्टी की अम्लता को बढ़ा सकता है। पर विलेय होने के कारण मिट्टी से जल्दी निकल जाता है और मिट्टी की अम्लता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

पोटाश नाइट्रेट शोरे के रूप में भारत में मिलता है। यह बाहर से भी आ सकता है। इसके उपयोग से लाभ यह है कि पोटाश के साथ-साथ इसमें नाइट्रोजन भी रहता है। यह कीमती होता है अतः इसका उपयोग सीमित है। भारत में नोनी मिट्टी से इसे अधिक मात्रा में प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए। मिट्टी पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। यदि कोई प्रतिक्रिया होती है तो वह केवल नाइट्रोजन के कारण जो वास्तव में बहुत नगण्य है।

पोटाश सल्फेट सफेद लवण है। यह नमी को ग्रहण नहीं करता। तम्बाकू के लिए यह बहुत अच्छा समझा जाता है, सम्भवतः आलू के लिए भी। यह क्लोराइड से कीमती होता है। इसका सल्फेट उतनी जल्दी मुक्त नहीं होता जितनी जल्दी अमोनियम सल्फेट का सल्फेट मुक्त होता है। अतः यह अहितकर नहीं होता।

पोटाश-मैगनीशिया सल्फेट—इसमें पोटाश की मात्रा साधारणतया २५ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। इसमें उतना ही मैगनीशियम सल्फेट रहता है जिसका मिट्टी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसमें क्लोरीन की मात्रा २.५ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। यह लवण तम्बाकू के लिए सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है, मिट्टी पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

नाइट्रो-फोस इसका व्यापार का नाम है। यह कई लवणों को मिलाकर बनाया जाता है। इसमें डाइ-अमोनियम और कैलसियम फास्फेट, अमोनियम नाइट्रेट, यूरिया और पोटाश लवण रहते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले इस नाम से चार किस्म के उर्वरक बिकते थे। एक १६-१६-२१ (१६ प्रतिशत नाइट्रोजन, १६ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल और २१ प्रतिशत पोटाश), दूसरा १६-१६-१६, तीसरा १०-२०-२० और चौथा १४-११-२६ था। इन उर्वरकों में पोषक तत्त्व ४८ से ५४ मात्रक था।

पोटाश फास्फेट में पोटाश की मात्रा ३० से ५० प्रतिशत रहती है, फास्फरिक अम्ल की मात्रा ५३ से ३२ प्रतिशत। फास्फरिक अम्ल की वृद्धि से पोटाश की मात्रा कम हो जाती है।

कब पोटाश खाद डालनी चाहिए

साधारणतया पौधा उगाने के पहले पोटाश खाद खेतों में डाली जाती है। पैट्टर्सन (Patterson, १९३३) का मत है कि पौधा उगाने के समय अथवा पौधा उगाने के ३ से ६

पोटेसियम क्लोराइड और पोटेसियम सल्फेट का तुलनात्मक मान

खाद	K_2O	उपलब्धि पौण्ड में		उपलब्धि पौण्ड में	
		कपास	बिना खाद पर प्रतिशत वृद्धि	तम्बाकू	बिना खाद पर प्रतिशत वृद्धि
बिना खाद	—	३५०	—	१५४०	—
पोटेसियम क्लोराइड (११२ पौण्ड)	५६	४१०	१७·१	१९२०	२४·७
पोटेसियम सल्फेट (११२ पौण्ड)	५५	३७०	५·९	१९३०	२५·३

तम्बाकू सदृश कुछ पौधों में पोटेसियम क्लोराइड विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है, यद्यपि क्लोरीन की अधिकता से नुकसान पहुँच सकता है। मौस (Moss, १९२९) के प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि २० से २५ प्रतिशत क्लोरीन से तम्बाकू उत्कृष्ट कोटि का होता है, पर यदि क्लोरीन की मात्रा इससे अधिक हो तो इससे ऐसा तम्बाकू प्राप्त होता जो ठीक तरह से जलता नहीं है। कपास की खेती में पोटेसियम क्लोराइड से पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। कुछ अन्य अन्वेषकों के भी ऐसे ही मत हैं। सल्फेट की अपेक्षा क्लोराइड से रंग उत्कृष्ट कोटि का होता है। रसेल (Russel, १९४८) का मत है कि पोटेसियम क्लोराइड खाद से उत्पन्न आलू को इंग्लैण्ड में लोग उतना पसन्द नहीं करते जितना पोटेसियम सल्फेट खाद के आलू को पसन्द करते हैं। गार्नर और मैक्मुरट्रे (Garner and McMurtrey, १९३०) का मत है कि पोटेसियम क्लोराइड पौधों में पोटेसियम सल्फेट की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से प्रविष्ट होता है। पेटिंजर (Pettinger, १९३२) का भी यही मत है।

अमेरिका के मासाचुसेट एक्सपेरिमेन्ट-स्टेशन में जो प्रयोग कई वर्षों तक हुए हैं उनसे पता लगता है कि आलू की पैदावार में इन दोनों के उपयोग से कोई अन्तर नहीं पाया जाता। पर अधिक पोटेसियम क्लोराइड से चुकन्दर में मणिभीय शर्करा की मात्रा कम हो जाती है और आलू में मोमवाला अंश बढ़ जाता है। इंग्लैण्ड के रौथमस्टेड एक्सपेरिमेन्ट स्टेशन में जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि सूखे मौसम में पोटेसियम क्लोराइड की अपेक्षा पोटेसियम सल्फेट से आलू की पैदावार अधिक होती है और आर्द्र-मौसम में ठीक इसके प्रतिकूल होता है। वैद्यनाथन (१९३३) के प्रयोगों का परिणाम

ऊपर की सारणी में दिया हुआ है। उत्पादन की दृष्टि से वैद्यनाथन के अनुसार पोटाश खादों का क्रम पोटेसियम क्लोराइड, पोटेसियम कार्बोनेट और पोटेसियम सल्फेट है, यद्यपि कुछ फसलों में उन्होंने पोटेसियम कार्बोनेट को सर्वश्रेष्ठ पाया है।

गैसकिल (Gaskill, १९१८) अनेक फसलों पर २५ वर्षों तक इन दोनों उर्वरकों का प्रयोग कर जिस परिणाम पर पहुँचे हैं वे निम्नांकित सारणी में दिये हुए हैं।

फसलों पर पोटेसियम क्लोराइड और पोटेसियम सल्फेट का तुलनात्मक मान

फसल	कितने वर्ष उगाया	कितने वर्ष महत्तम उपलब्धि	
		पोटेसियम क्लोराइड	पोटेसियम सल्फेट
रूज़िका (alfalfa)	५	१	४
शतावरी (asparagus)	१२	११	१
काल बदर (blackberries)	११	—	११
बंदगोभी (cabbage)	१०	—	१०
गाजर (carrot)	२	२	—
प्रयवानी (celery)	१	१	—
मक्का चारा (corn eusilage)	१	१	—
मक्का दाना (corn grain)	८	—	८
प्याज (onion)	१२	—	१२
आलू (potatoes)	५	—	५
सोयाबीन (soybean)	५	—	५
टिंडा (squash)	३	३	—
तृण-बदर (straw berries)	११	—	११
चुकन्दर	१	१	—
मूँगमोट और जई (Vetch & oat)	२	२	—

हार्टवेल (Hartwell, १९२७) ने फसल के पौधों को पोटाश खाद की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया है। कुछ पौधों पर पोटाश खाद का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और उनकी पैदावार बहुत बढ़ जाती है। ऐसी फसलों में उन्होंने मक्का, प्याज, टमाटर, शलजम, कुट्टक (buckwheat) और mangel रखा है। कुछ फसलों पर पोटाश खाद का सामान्य प्रभाव पड़ता है। ऐसी फसलों में जौ, आलू, बन्दगोभी, स्वीडन शलजम, गर्जरिका (parsnip) हैं। कुछ फसलों पर पोटाश खाद का विशेष कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी फसलों में जई, राई (rye) गेहूं, गाजर और ज्वार-बाजरा

आदि हैं। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि धान्य फसलों (cereal crops) के लिए पोटाश खाद उतनी लाभदायक नहीं है। दूब और चारे के लिए यह विशेष लाभप्रद है। समय-समय पर बिना पोटाश खाद के दूब पनपती नहीं है।

हेस्टर और शेल्टन (Hester and Shelton, १९३४) का मत है कि पोटाश खाद का प्रभाव् बहुत कुछ मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करता है। भिन्न-भिन्न मिट्टियों में पोटाश की उपलब्धि विभिन्न होती है। अतः ऐसी विभिन्न मिट्टियों में उगाये पौधों पर पोटाश खाद का प्रभाव विभिन्न होता है। हलकी मिट्टियों के लिए पोटाशीय खाद विशेष लाभप्रद होता है। चूर्णीय मिट्टी में भी यह लाभ पहुँचाती है। चिकनी मिट्टी वाले खेतों के लिए विशेष लाभदायक नहीं है। वहाँ यह ऐसी बँध जा सकती है कि पौधों को तत्काल प्राप्त न हो सके।

पोटाश लवण घास-पात नाशक

खानेवाला नमक घास-पात को जला देता है; यह बात बहुत दिनों से मालूम है। घास-पातों को नष्ट करने के लिए नमक का व्यवहार होता आ रहा है। पीछे देखा गया कि विलेय पोटाश लवण भी घास-पातों को विनष्ट करते हैं। पीसे हुए सिल्वेनाइट को भींगी फसलों पर छिड़कने से चौड़े पत्तेवाले घास-पात मरे हुए पाये गये हैं। यदि घास-पातों को पूरा नष्ट करना हो तो लवण को उसी समय छिड़कना चाहिए जब पौधे छोटे-छोटे रहें।

पोटाश लवणों का परिवर्तन

मिट्टी में पोटाश लवणों में क्या परिवर्तन होता है यह विचारणीय है। जब पोटाश लवण खेतों में डाले जाते हैं वे पानी में घुल जाते हैं। घुलने पर उनका आयनीकरण होता है। वे पोटेसियम आयन और अम्ल आयन में विघटित हो जाते हैं। पोटेसियम आयन मिट्टी के कलिल के साथ मिलकर संकीर्ण बनता है जो तत्काल अवशोषित हो जाता है। ऐसा अवशोषित पोटेसियम शीघ्र नष्ट नहीं होता। सोडियम, कैल-सियम और मैगनीशियम अपेक्षया बड़े शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। पोटेसियम का यह बन्धन कुछ तो ऐसे रूप में होता है कि पौधे उसे तत्काल ग्रहण नहीं कर सकते, पर कुछ ऐसे रूप में भी होता है कि पौधे तत्काल ग्रहण कर सकते हैं; कुछ अंश ऐसे होते हैं कि कुछ हफ्तों के बाद ही पौधों को प्राप्त हो सकते हैं। पर यह बहुत कुछ मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करता है। कोलोडनी और रौबिन्स (१९४०, Kolodany and Robbins) का मत है कि पोटेसियम का अन्य अंश टमाटर तत्काल ग्रहण कर सकता है। पोटे-

सियम का यह स्थिरीकरण अन्य तत्त्वों में नहीं देखा जाता। वोक (Vok, १९३४) का मत है कि यह प्रतिक्रिया मिट्टी के किसी विशिष्ट खनिज के कारण नहीं होती वरन् पोटेसियम द्वारा मस्कोवाइट के बनने के कारण होती है, जो कुछ किस्म की मिट्टी के साथ पोटेसियम के सहयोग से बनता है।

एट्टो (१९४७, Attoe) का मत है कि स्थिरीकरण दो किस्म का होता है। एक किस्म का स्थिरीकरण आर्द्र मिट्टी में होता है और दूसरे प्रकार का स्थिरीकरण मिट्टी के सूखने पर होता है। अनेक लोगों ने देखा है कि यदि मिट्टी को सूखने दिया जाय तो पोटेसियम का स्थिरीकरण बहुत कुछ कम हो जाता है और तब अधिकांश पोटेसियम का स्थिरीकरण इस रूप में होता है कि पौधे उसे ग्रहण नहीं कर सकते। यह स्थिरीकरण मिट्टी के उन स्तरों में होता है जो बारी-बारी से भींगते और सूखते हैं। यह बहुत कुछ मिट्टी में उपस्थित चिकनी मिट्टी पर निर्भर करता है। आर्द्र मिट्टी से पोटेसियम का संकर्षण फास्फरस की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से होता है। अनेक लोगों ने प्रयोगों से इसे सिद्ध किया है।

किस मिट्टी को पोटाश की आवश्यकता होती है?

जिस मिट्टी में पोटाश की कमी है उस मिट्टी को पोटाश-खाद की अधिक आवश्यकता होती है। ऐसी मिट्टी में बलुआर मिट्टी, जीर्णकी मिट्टी, प्रजीर्णकी मिट्टी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रयोगों से यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हुई है कि बलुआर मिट्टी में पोटाश खाद से पैदावार बहुत बढ़ जाती है। मटियार मिट्टी, विशेषतः ऐसी मिट्टी में, जिसमें कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बहुत अधिक है, पोटाश-खाद की विशेष आवश्यकता नहीं होती। कौलिंगस (१९२९) ने बताया है कि सब प्रकार की मिट्टी में बहुत बड़ी मात्रा में पोटाश-खाद डालने की यूरोपीय प्रथा नितान्त निरर्थक है। यदि खेतों में पर्याप्त गोबर खाद डाली गयी है तो ऐसे खेतों में भी पोटाश-खाद की आवश्यकता नहीं होती अथवा बहुत कम पोटाश-खाद से काम चल सकता है। दस टन गोबर खाद में लगभग १४० पौण्ड पोटाश (K_2O) रहता है जो अढ़ाई हंडरवेट म्यूरिएट आफ पोटाश या पोटेसियम सल्फेट के बराबर है। रसेल (१९४०) का मत है कि चुकन्दर, आलू और मैनगोल्ड्स (mangolds) के पोटाश की आवश्यकता की पूर्ति गोबर की खाद से हो जाती है।

इंग्लैण्ड में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि कुछ फसलों के लिए, जैसे चुकन्दर और मैनगोल्ड्स के लिए, सोडियम लवण से भी काम चल जाता है। सोडियम नाइट्रेट मिट्टी से पोटाश को मुक्त करता हुआ पाया गया है, जिससे खेतों में पोटाश-खाद

डालने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जैसा कि निम्नांकित सारणी से स्पष्ट होता है।

रौथमस्टेड में मैनगोल्ड्स (१२ वर्ष, १८९५-१९०६) का उत्पादन

खाद	पोटाश नहीं	फास्फेट और पोटाश
	टन	टन
गोबर (एक मात्र)	१८·६	१९·५
गोबर और सोडा नाइट्रेट	२७·७	२६·८
गोबर और अमोनियम लवण	२१·८	२५·९
गोबर और तोरिया खली	२४·९	२८·६
गोबर, तोरिया खली और अमोनियम लवण	२४·२	२९·९

यहाँ स्पष्ट है कि जहाँ सोडियम लवण प्रयुक्त हुआ है वहाँ पोटाश से पैदावार में कोई वृद्धि नहीं हुई है, अन्य सब दशाओं में स्पष्ट रूप से वृद्धि हुई है।

सोलहवाँ अध्याय

मिट्टी-संशोधक

किसी किसी मिट्टी में पौधे के समस्त पोषक तत्त्वों के रहने पर भी उपज अच्छी नहीं होती। ऐसी मिट्टी के संशोधन की आवश्यकता होती है ताकि उसमें अधिक से अधिक उपज हो सके। संशोधन से मिट्टी की भौतिक दशा सुधर जाती और उससे उसके रासायनिक और जीव-सम्बन्धी गुणों में बहुत कुछ अन्तर आ जाता है। मिट्टी का संशोधन उसमें कुछ पदार्थों को बाहर से डालने से होता है। यह पदार्थ कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। ऐसे पदार्थों को 'मिट्टी संशोधक' (soil amendments) कहते हैं। इनका प्रधान कार्य मिट्टी की दशा का सुधारना होता है। सम्भवतः इनसे पौधों को कुछ पोषक तत्त्व भी मिल जाते हैं। पर पोषक तत्त्वों का मिलना उनका गौण कार्य होता है, प्रधान कार्य मिट्टी का संशोधन ही होता है। साधारणतया संशोधक के रूप में चूना, नमक और जिपसम इस्तेमाल होते हैं।

चूना

पौधों के पोषण के लिए चूना अत्यावश्यक है। पर चूने का उपयोग अधिकता से 'मिट्टी संशोधक' के रूप में होता है। मिट्टी में साधारणतया पर्याप्त चूना रहता है। पोषण के लिए मिट्टी का चूना पर्याप्त होता है पर बाहर से चूना डालने से पौधों को विशेष लाभ होता हुआ पाया गया है और पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है।

मिट्टी में चूना देने से निम्नलिखित लाभ देखे जाते हैं—

१. चूने से पौधों को कैलसियम प्राप्त होता है। पौधों में कैलसियम रहता है और उसकी पूर्ति मिट्टी के चूने से होती है। बहुधा देखा जाता है कि मिट्टी में आवश्यक चूना रहने पर भी अन्य कारणों से पौधे चूना लेने में असमर्थ होते हैं और ऐसी मिट्टी में बाहर से चूना देने से पौधों को लाभ होता है।

२. कुछ मिट्टी अम्लीय होती है। अधिकांश पौधे अम्लीय मिट्टी में ठीक तरह से उगते नहीं हैं। कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन से खेतों में अम्ल बनते हैं। अम्लीय मिट्टी को मृदु करने की आवश्यकता पड़ती है। अम्लीय मिट्टी के मृदुकरण में चूने का

उपयोग होता है। चूना डालने से अम्‍ ता दूर हो जाती है और खेत उदासीन या क्षारीय हो जाते हैं।

३. खेतों में पेड़-पौधों के सड़ने-गलने और मल-मूत्रों से नाइट्रिक अम्ल और फिर नाइट्रेट बनते हैं। नाइट्रेट और अमोनिया के रूप में ही पौधे नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं। नाइट्रिक अम्ल और नाइट्रेट के बनने में चूने से सहायता मिलती है।

४. मिट्टी में पोटाश रहता है। पोटाश विलेय अथवा अविलेय दोनों रूपों में रह सकता है। अविलेय पोटाश को पौधे जल्द ग्रहण नहीं करते। ऐसे पोटाश लवणों को प्राप्य रूप में परिणत करने में चूना सहायता करता है।

५. मिट्टी में लोहा और एलूमिनियम रहते हैं। ये फास्फेट के रूप में रह सकते हैं। इन धातुओं के फास्फेटों से पौधे फास्फेट को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। इन्हें उपलभ्य फास्फेट में परिणत करने के लिए चूना आवश्यक होता है।

६. अनेक उर्वरक, सुपर-फास्फेट, घुली हुई हड्डी, अमोनियम सल्फेट आदि अम्लीय होते हैं। इनसे अधिकतम लाभ उठाने के लिए चूना सहायक होता है। उनकी अम्लता दूर कर चूना पौधों को लाभ पहुँचाता है। यदि चूना न रहे तो सुपर-फास्फेट से लोहे और एलूमिनियम के फास्फेट बन सकते हैं। ये फास्फेट जल में घुलते नहीं हैं, इस कारण पौधे इन्हें सरलता से ग्रहण नहीं कर सकते।

७. चूना ऊर्ण्य (flocculent) होता है। मिट्टी की भौतिक और यांत्रिक दशा सुधारने में यह बहुत मदद करता है। भारी चिकनी मिट्टी हलकी हो जाती और हलकी बलुई मिट्टी भारी हो जाती है। पानी का निकास कम हो जाता है। खेतों के जोतने में सहूलियत हो जाती है। हलकी मिट्टी चूने से बँधती है जिससे पानी का निकास कुछ रुक जाता है। यहाँ चूने का कार्य प्रधानतया संशोधन का होता है न कि पोषण का।

८. पौधों को लाभ पहुँचाने वाले कुछ बैक्टीरिया बहुत अम्लीय मिट्टी में ठीक पनपते नहीं हैं। उनके लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करने में चूना सहायक होता है। कुछ कवकों की विनाशकारी क्रिया भी चूने की उपस्थिति से कम हो जाती है। फलीदार पौधों में जो बैक्टीरिया वायु के नाइट्रोजन को जड़ों की ग्रन्थियों में बाँधते हैं उनकी सक्रियता चूने की उपस्थिति में बढ़ जाती है।

९. मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ रहते हैं। उनके विच्छेदन के लिए चूना आवश्यक समझा जाता है। चूना डालने से विच्छेदन की तीव्रता बढ़ी हुई पायी जाती है। पौधों के लिए कार्बनिक पदार्थों की प्राप्यता भी बढ़ जाती है। कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन से कुछ विषैले पदार्थ बनते हैं। ऐसे पदार्थों की विषालुता चूने से बहुत कुछ कम हो

जाती है। यदि चूने का व्यवहार ठीक तरह से किया जाय तो विष का प्रभाव बिलकुल नहीं पड़ता और फसलें अच्छी उगती हैं।

मिट्टी में चूना

मिट्टी में पर्याप्त कैलसियम रहता है। साधारणतया मिट्टी में इतना कैलसियम रहता है कि बाहर से देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर मिट्टी का कैलसियम प्रति वर्ष कुछ संकर्षण द्वारा और कुछ फसलों के द्वारा निकल जाता है। ऐसी दशा में कुछ भूमि में कैलसियम-हीनता हो सकती है। फलीदार पौधों से अफलीदार पौधों की अपेक्षा अधिक कैलसियम मिट्टी से निकलता है। जहाँ अफलीदार फसलों से २५ पौण्ड कैलसियम निकलता है वहाँ फलीदार फसलों से १०० पौण्ड या इससे अधिक निकलता है।

मिट्टी में सामान्यत: ०·५ प्रतिशत कैलसियम रहता है (प्रति एकड़ १०,००० पौण्ड), यदि कैलसियम की मात्रा इससे कम रहे तो ऐसी मिट्टी कैलसियम-हीन समझी जाती है। पर कैलसियमहीनता का होना बहुत कुछ मैगनीशिया की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि मिट्टी में चूना ०·५ प्रतिशत है और मैगनीशिया १ प्रतिशत, तो ऐसी मिट्टी कैलसियम-हीन समझी जाती है पर यदि चूना ०·५ प्रतिशत हो और मैगनीशिया ०·१ प्रतिशत तो ऐसी मिट्टी कैलसियम-हीन नहीं समझी जाती।

मिट्टी में कैलसियम कार्बोनेट, सल्फेट, फास्फेट और सिलिकेट के रूप में रह सकता है। सिलिकेट सब से अधिक विस्तृत पाया जाता है। ये सब ही लवण जल में प्रायः अविलेय होते हैं। कैलसियम कार्बोनेट कार्बन डाइ-अक्साइड और जल के साथ मिलकर कैलसियम बाइ-कार्बोनेट बनता है जो जल में विलेय होता है। आर्द्र मिट्टी में विलेय कार्बोनेट की मात्रा प्रायः स्थायी रहती है। यह अवस्था तभी होती है जब कैलसियम और कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा पर्याप्त होगी। यदि मिट्टी का पी एच ६·० से कम हो तो ऐसी मिट्टी में कार्बोनेट नहीं रह सकता। रसेल (१९३२) का मत है कि मिट्टी में कैलसियम की मात्रा और पौधों द्वारा कैलसियम के अवशोषण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर फ्रायड और पींच (१९४६) का विचार है कि पर्याप्त विलेय कैलसियम लवण के रहने पर भी अम्लीय मिट्टी से पौधे कैलसियम को शीघ्र अवशोषित नहीं कर सकते। फसल के पकने के समय पौधों में कैलसियम की मात्रा सब से अधिक रहती है। पकने के समय पत्तों से तनों या बीजों में कैलसियम का स्थानान्तरण नहीं होता।

कैलसियम का कार्य

पौधों में कैलसियम का क्या कार्य है इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगा है। ऐसा समझा जाता है कि कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण पर कैलसियम का प्रभाव पड़ता है। कैलसियम की कमी से पौधे ठीक ठीक नहीं बढ़ते, उनका तना मोटा और काष्ठीय नहीं होता, जड़ें छोटी और ठूँठदार (stubby) होतीं, खाद्य जड़ें (feeding roots) सूख जातीं और कुछ दशाओं में उनकी अन्तिम कलियाँ (terminal buds) मर जाती हैं। स्वस्थ कोशिका-दीवारों के निर्माण के लिए कैलसियम अत्यावश्यक समझा जाता है। कार्बनिक अम्लों के उदासीनीकरण से अन्य तत्त्वों के साथ कैलसियम भी सहायक होता है। मिट्टी के कोलायड में इसकी प्रचुरता से उर्वरता बढ़ जाती है।

पौधों के निर्माण में कैलसियम और पोटेसियम का कार्य एक दूसरे का पूरक होता है। कैलसियम प्रोटीन गुणों का आधारक (supporter) होता है और पोटेसियम कार्बनिक गुणों का। पर यह कथन सब पौधों के लिए ठीक नहीं है। यदि कोई पौधा असामान्य अपोषण से ग्रस्त हो तो कैलसियम लवणों के उपयोग से उसमें सहायता मिलती है। मैकमुर्ट्रे (१९३८) का सुझाव है कि कैलसियम का प्रधान कार्य अन्य आयनों के प्रभाव पर रोक रखना होता है।

मिट्टी से कैलसियम की क्षति

ऊपर कहा गया है कि मिट्टी से कैलसियम निकलने के दो तरीके हैं। एक पौधों द्वारा और दूसरा संकर्षण द्वारा। पौधों द्वारा कैलसियम की मात्रा अपेक्षया बड़ी अल्प निकलती है। इसे तो रोका नहीं जा सकता। दूसरा तरीका संकर्षण द्वारा है। जब पानी बरसता है, मिट्टी पानी को सोख लेती है। वह पानी मिट्टी के कैलसियम से बाइ-कार्बोनेट बनकर पानी में घुल जाता है। ऐसा पानी जब बरसात में खेतों से बहकर बाहर निकलता है तब उसके साथ-साथ कैलसियम भी निकल जाता है। इस रीति से निकले कैलसियम की मात्रा बहुत अधिक होती है। प्रति वर्ष कई सौ पौण्ड चूना इस प्रकार घुलकर निकल जाता है। हलकी मिट्टी से अधिक चूना निकलता है।

कुछ सीमा तक इसे रोका जा सकता है। खेतों में गोबर की खाद अथवा कार्बनिक खाद डालने से चूने का निकलना कुछ कम हो जाता है। बारबार अमोनियम सल्फेट और सोडियम नाइट्रेट के व्यवहार से मिट्टी में चूने की कमी पायी गयी है। बिज्ज़ेल और लायन (१९२७) के प्रयोगों से पता लगता है कि परती जमीन से प्रति वर्ष ९९५ पौण्ड और फसल उगी जमीन से ५३५ पौण्ड कैलसियम कार्बोनेट निकल जाता है। कुछ स्थानों में १०० से ५०० पौण्ड की क्षति होती देखी गयी है। ऐसी मिट्टी में यदि

२ टन चूना-पत्थर डाला जाय तो ८ से २० वर्षों तक फिर कैल्सियम की कमी नहीं होगी।

मिट्टी में कैलसियम का परीक्षण

मिट्टी में कैलसियम की कमी का ज्ञान परीक्षण से होता है। परीक्षण गुणात्मक हो सकता है अथवा मात्रात्मक। गुणात्मक परीक्षण से केवल कमी का पता लगता है। मात्रात्मक परीक्षण से कितनी कमी है इसका भी पता लग जाता है। इससे यह मालूम हो जाता है कि कितना चूना देने से कमी दूर की जा सकती है।

गुणात्मक परीक्षण

चूने का गुणात्मक परीक्षण इस प्रकार किया जाता है—

१. लिटमस पत्र परीक्षण—लिटमस पत्र बाजारों में बिकता है अथवा प्रयोगशालाओं में सरलता से तैयार किया जाता है। लिटमस पत्र दो किस्म का होता है, लाल या नीला। यहाँ नीला लिटमस पत्र उपयुक्त होता है। लिटमस कागज के एक छोटे टुकड़े को लेकर उसको मिट्टी की दो गोलियों के बीच दबाते हैं। मिट्टी वह होती है जिसका परीक्षण करना है। सूखी मिट्टी में आसुत जल मिलाकर गोली तैयार करते हैं। एक दूसरी रीति से भी परीक्षण कर सकते हैं। नीले लिटमस कागज के टुकड़े को स्वच्छ काँच पर रखकर गीली मिट्टी की गोली से कागज को दो मिनट तक दबाकर रखते हैं। यदि नीला लिटमस कागज लाल हो जाय अथवा गुलाबी रंग (pink) का हो जाय तो मिट्टी अम्लीय है, अन्यथा नहीं। अम्लीय मिट्टी में कैलसियम की कमी रहती है।

२. कौम्बर परीक्षण (The Comber test)—इस परीक्षण के लिए थोड़ी मिट्टी लेकर परखनली या काँच की शीशी में रखकर उसमें थोड़ा पोटेसियम थायोसल्फेट (K C N S)का विलयन डालकर हिला डुलाकर कुछ देर के लिए रख देते हैं। यदि विलयन स्वच्छ रहे तो सूचित होता है कि मिट्टी अम्लीय नहीं है। यदि विलयन लाल हो जाय तो मिट्टी के अम्लीय होने की सूचना मिलती है और रक्तता की डिगरी से अम्लता की डिगरी का पता लगता है।

३. सल्फाईड परीक्षण (The Sulphide test—सल्फाइड परीक्षण का ट्रुओग (Truog) ने १९१५ में पता लगाया था। इस परीक्षण से मिट्टी की क्षारीयता, उदासीनता और अम्लता का पता लग जाता है। अम्लता में पाँच डिगरी की अम्लता का विभेद किया जा सकता है।

इस परीक्षण के लिए एक फ्लास्क में मिट्टी की तौली हुई मात्रा, जल, कैलसियम अथवा बेरियम क्लोराइड और जिंक सल्फाइड रखकर उबालते हैं। यदि मिट्टी अम्लीय है तो अम्ल और कैलसियम या बेरियम क्लोराइड के बीच विनिमय होकर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मुक्त होता है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की मात्रा मिट्टी में उपस्थित अम्ल की मात्रा के समतुल्य होती है। मुक्त हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की क्रिया जिंक सल्फाइड पर होकर हाइड्रोजन सल्फाइड निकलता है और फ्लास्क के मुँह पर रखे लेड एसिटेट कागज को काला कर देता है। एक निश्चित काल तक उबालने से कागज के काला होने की डिगरी से और उसे एक प्रामाणिक कागज के साथ तुलना करने से अम्लता की डिगरी का पता लगता है।

मात्रात्मक परीक्षण

अनेक रीतियों से मिट्टी की अम्लता की डिगरी नापी जा सकती है। ऐसी रीतियों में दो बहुत सामान्य और विश्वसनीय हैं।

१. जोन्स चूना-अपेक्षा रीति (Jone's lime requirement method)—इस रीति का सिद्धान्त यह है कि किसी उदासीन लवण में मिट्टी डालने से मिट्टी का अम्ल उदासीन लवण के समतुल्य अम्ल मुक्त करता है।

निर्धारण रीति—मिट्टी के ५·६ ग्राम को कैलसियम एसिटेट के ०·५ ग्राम के साथ एक ३ इंच खरल में भली भाँति मिलाकर पर्याप्त पानी डालकर पिष्टि बनाते हैं। ३० सेकंड तक खरल में रगड़ते, फिर ३० सी० सी० पानी डालते और फिर ३० सेकंड मिलाते हैं। अब खरल से निकालकर २००–सी० सी० धारिता के फ्लास्क में रखकर कुछ घण्टे छोड़ देते हैं। बीच-बीच में पन्द्रह-पन्द्रह मिनटों पर फ्लास्क को हिलाते रहते हैं। अब विलयन का आयतन २०० सी० सी० बनाकर छन्ना कागज में छान लेते हैं। प्रथम १० से १५ सी० सी० विलयन को, जो गँदला होता है, फेंक देते हैं। अब १०० सी० सी० स्वच्छ विलयन को N/10 NaOH के साथ अनुमापित करते हैं। सूचक के लिए फिनोल्फथलीन का विलयन प्रयुक्त करते हैं। अनुमापन से जितना अंक प्राप्त हो उसके दुगुना करने से समस्त अम्ल के उदासीनीकरण में जितना क्षार का विलयन लगता है उसको निकालते हैं। इससे मिट्टी में उपस्थित अम्ल की मात्रा मालूम हो जाती है और उससे आवश्यक चूने की मात्रा मालूम करते हैं।

२. हटचिनसन एण्ड मैक्लेनन रीति (Hutchinson and MacLennan method)—इस रीति में मिट्टी का हाइड्रोजन आयन कैलसियम बाइ-कार्बोनेट के कैलसियम आयन द्वारा विस्थापित हो जाता है।

निर्धारण रीति—५०० से १००० सी० सी० धारिता की बोतल में १०-२० ग्राम मिट्टी को २०० से ३०० सी० सी० ०·०२ नार्मल कैलसियम बाइ-कार्बोनेट $Ca(HCO_3)_2$ के साथ तीन घण्टे हिलाते हैं। इससे पहले बोतल की वायु को कार्बन डाइ-आक्साइड द्वारा विस्थापित कर लेते हैं ताकि कैलसियम कार्बोनेट का अवक्षेपण न हो। विलयन को अब छानकर ०·१ नार्मल अम्ल के विलयन के साथ अनुमापित करते हैं। सूचक के रूप में मेथिल औरेंज का विलयन प्रयुक्त करते हैं। प्रारम्भिक विलयन और अन्तिम पाठ के न्अन्तर से अवशोषित कैलसियम की मात्रा मालूम करते हैं। ०·१ नार्मल अम्ल के एक सी० सी० से कैलसियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) का ५ मिलिग्राम (०·००५ ग्राम) सूचित होता है।

कैलसियम के लवण

अम्लता के दूर करने, मिट्टी की भौतिक दशा सुधारने और मिट्टी में कैलसियम और मैगनीशियम की मात्रा बढ़ाने में जो चूने के लवण प्रयुक्त होते हैं वे निम्नलिखित हैं—

चूना-पत्थर—चूना-पत्थर उस चट्टान या खनिज को कहते हैं जिसमें कैलसियम कार्बोनेट ($Ca\,CO_3$) या कैलसियम कार्बोनेट और मैगनीशियम कार्बोनेट ($MgCO_3$) रहते हैं। जिस चट्टान में केवल कैलसियम कार्बोनेट रहता है उसे कैलसाइट चूना पत्थर कहते हैं। जिस चट्टान में मैगनीशियम कार्बोनेट भी रहता है उसे डोलोमाइट चूना-पत्थर (dolomite limestone) कहते हैं। चूना-पत्थर की समस्त उदासीनीकरण क्षमता यद्यपि एक ही रहती है पर यदि पत्थर बहुत महीन पीसा हुआ है तो उसकी क्रिया अधिक शीघ्रता से होती है। पत्थर की सूक्ष्मता विभिन्न हो सकती है। जहाँ चूना-पत्थर पर्याप्त मात्रा में मिलता है वहाँ वह बहुत महीन नहीं पीसा जाता और बड़ी मात्रा में प्रयुक्त होता है। पर जहाँ वह पर्याप्त मात्रा में मिलता नहीं है और दूर से मँगाकर खेतों में डाला जाता है, वहाँ उसका मूल्य अधिक पड़ता और इस कारण सीमित मात्रा में बहुत महीन पीसा हुआ इस्तेमाल होता है। सामान्य खेतों में प्रयुक्त करने के लिए २०-अक्षि चलनी में चाला जानेवाला पत्थर पर्याप्त होता है पर महीन पीसा हुआ ३०-अक्षि चलनी में चाला जानेवाला पत्थर भी प्रयुक्त हो सकता है। महीन पीसे हुए पत्थर का मूल्य मोटे पीसे हुए पत्थर के मूल्य से ५० से १०० प्रतिशत अधिक होता है।

खानों से निकले चूना-पत्थर की शुद्धता विभिन्न होती है। उसका उदासीनीकरण मान भी विभिन्न होता है। अच्छे ग्रेड का चूना-पत्थर वह होता है जिसमें उदासीनी-

करण मान शुद्ध कैलसियम कार्बोनेट के उदासीनीकरण मान का ८० प्रतिशत हो।

चूँकि डोलोमाइट में मैगनीशियम कार्बोनेट रहता है अतः यह पत्थर उस मिट्टी के लिए अच्छा समझा जाता है जिसमें मैगनीशियम की कमी हो। इससे एक दूसरा लाभ भी है। डोलोमाइट डालने से चूने के आधिक्य का भय नहीं रहता, क्योंकि अम्लों के उदासीन हो जाने के बाद इसकी विलेयता बहुत कम हो जाती है और कैलसियम कार्बोनेट अथवा जले हुए या जलीयित चूने से तो बहुत ही कम रहती है।

मार्ल—मार्ल कोमल खड़िया जैसा जल्दी टूटनेवाला कैलसियम कार्बोनेट होता है। इसमें विभिन्न मात्रा में मिट्टी, कार्बनिक पदार्थ और कुछ मैगनीशियम कार्बोनेट भी मिले रहते हैं, पर मैगनीशियम की मात्रा अल्प रहती है। मैगनीशियम की पूर्ति के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। मार्ल के निक्षेप कुछ इंच से कई गज मोटी तहों, साधारणतया महापंकों (Swamps) और झीलों के तलों में पाये जाते हैं। मार्ल का उदासीनीकरण मान शुद्ध कैलसियम कार्बोनेट के उदासीनीकरण मान का ५० से ९० प्रतिशत होता है। खानों से निकलने पर मार्ल में जल की मात्रा अधिक रहती है, अतः इसे जमीन पर फैलाकर सुखाने की आवश्यकता पड़ती है। इसको पीसने की जरूरत नहीं पड़ती, अतः जहाँ पीसने की मशीन न हो वहाँ इसका उपयोग अधिकता से होता है।

बुझा और अनबुझा चूना—जब चूना-पत्थर को जलाया जाता है और उसका ताप ६००° से० से ऊँचा होता है, तब कैलसियम कार्बोनेट और मैगनीशियम कार्बोनेट से कार्बन डाइ-आक्साइड निकल जाता और कैलसियम तथा मैगनीशियम के आक्साइड रह जाते हैं। इसे जला हुआ चूना या अनबुझा चूना कहते हैं।

$$CaCO_3 = CaO + CO_2$$
$$MgCO_3 = MgO + CO_2$$
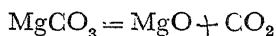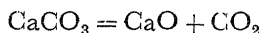
जले हुए चूने में पानी के अवशोषण की क्षमता बड़ी प्रबल होती है। ये आक्साइड शीघ्र ही पानी का अवशोषण कर बुझा चूना अथवा जलीयित चूना बनते हैं।

$$CaO + {}_2O = Ca\ (OH)_2$$
$$MgO + H_2O = Mg\ (OH)_2$$
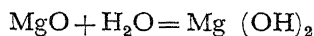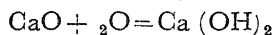
बुझा और अनबुझा दोनों प्रकार का चूना गारे के निर्माण में और मिट्टी में चूना देने में प्रयुक्त होता है। ये चूने मिट्टी पर बड़ी शीघ्रता से कार्य करते हैं और दाहक होते हैं अतः खेतों में बीज या पौधे बोने के एक या दो सप्ताह पूर्व ही डाले जाते हैं।

चूने के लिए कुछ अन्य उपजात—अनेक कारखानों में कुछ उपजात प्राप्त होते हैं जो चूने के लिए इस्तेमाल हो सकते हैं। ऐसे पदार्थों में संगमरमर के कारखानों के छोटे-छोटे टुकड़े, खानों को छाँटन (tailings), चीनी के कारखानों के अवक्षिप्त कैलसियम कार्बोनेट, उर्वरक (सिन्दरी) कारखाने के अवक्षिप्त कैलसियम कार्बोनेट, कागज के कारखाने के अवमल (sludge), गैस कारखाने अथवा एसिटिलीन संयन्त्र के उच्छिष्ट अंश आदि। अन्तिम पदार्थ में कुछ विषैले पदार्थ भी रहते हैं जिन्हें वायु में खुला रखने अथवा मिट्टी में मिलाकर निर्दोष बना सकते हैं।

काष्ठ राख—कठोर काठ की ताजी राख में ३० से ४० प्रतिशत चूना (CaO), ४ से ६ प्रतिशत पोटाश (K_2O) और पर्याप्त मात्रा में सिलिका (SiO_2) रहता है। अन्य तत्त्व भी अल्प मात्रा में रहते हैं। चूने के साथ-साथ इनसे कुछ फास्फेट और पर्याप्त मात्रा में पोटाश भी प्राप्त होता है।

कैलसियम सिलिकेट स्लैग—वात-भ्राष्ट्र से जो स्लैग उपजात के रूप में प्राप्त होता है उसमें प्रधानतया कैलसियम सिलिकेट ($CaSiO_3$) रहता है। जब स्लैग को पीसा जाता है तब इसका उदासीनीकरण मान शुद्ध कैलसियम कार्बोनेट का प्रायः ८० प्रतिशत तक हो सकता है। कैलसियम के अतिरिक्त इसमें अन्य पोषक तत्त्व भी रहते हैं। फास्फरस के कारखाने से प्राप्त कैलसियम सिलिकेट स्लैग भी कैलसियम संशोधन के लिए अच्छा समझा जाता है। इस्पात के कारखाने से जो बेसिक स्लैग प्राप्त होता है उसमें कैलसियम सिलिकेट के साथ-साथ फास्फरस भी रहता है। इसका उदासीनीकरण मान शुद्ध कैलसियम कार्बोनेट के उदासीनीकरण मान से प्रायः दो-तृतीयांश होता है।

विभिन्न पदार्थों में कैलसियम की मात्रा निम्नलिखित सारणी से मालूम होती है—

उर्वरक	कैलसियम प्रतिशत
फास्फेट चट्टान	३२·९
चूना-पत्थर (कैलसाइट)	३२·२
डोलोमाइट चूना-पत्थर	२२·०
जिपसम	२९·२
कच्चा अस्थिचूर्ण	२२·४
कैलसियम नाइट्रेट	१९·५
कैलोनाइट्रो	८·५
साइनामाइड	३९·१
सुपर-फास्फेट	११·४ से १९·६
कैलसियम सिलिकेट	२५ से ३६

दाहक चूना और चूना-पत्थर

जला हुआ चूना (CaO) दाहक चूना है। यह संक्षारक होता है। पानी को यह शीघ्रता से अवशोषित कर लेता है। पानी का अवशोषण कर यह जलीयित चूना या बुझा चूना बनता है। बुझा चूना भी दाहक चूना है।

$$CaO + H_2O = Ca(OH)_2$$
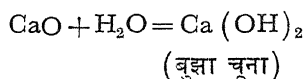
(बुझा चूना)

बुझा चूना वायु के कार्बन डाइ-आक्साइड को ग्रहण कर कैलसियम कार्बोनेट बनता है।

$$Ca(OH)_2 + CO_2 = CaCO_3 + H_2O$$
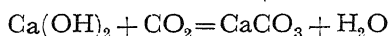
कैलसियम कार्बोनेट और चूना-पत्थर एक से ही पदार्थ हैं। ५६ ग्राम जले चूने में १८ ग्राम जल देने से ७४ ग्राम बुझा चूना बनता है। अतः ५६ ग्राम अनबुझा चूना ७४ ग्राम बुझे चूने और १०० ग्राम चूना-पत्थर के समतुल्य है।

अनबुझा और बुझा चूना दोनों प्रतिक्रिया में स्पष्टतया क्षारीय होते हैं। ये दोनों मिट्टी की अम्लता दूर करने में समर्थ होते हैं। चूना-पत्थर और मार्ल यद्यपि उदासीन होते हैं पर वे भी अम्लता को दूर करने में समर्थ होते हैं। उन्हें महीन पिसे हुए रहने से क्रिया शीघ्रता से होती है, अन्यथा क्रिया में देर लगती है। बुझे चूने अथवा अनबुझे चूने के उपयोग से नाइट्रोजन का विनाश होता है, पर इनसे मिट्टी के दानेदार बनने में सहायता मिलती है।

चूना-पत्थर का प्रभाव सूक्ष्मता पर निर्भर करता है। ५० या ६०-अक्षि चलनी में छना चूना-पत्थर प्रथम वर्ष में ही प्रभावोत्पादक होता है। मोटा होने से क्रिया मन्द होती है पर उसका प्रभाव अधिक दिन तक बना रहता है। अनेक लोगों ने प्रयोग कर यह जानने की चेष्टा की है कि कितना महीन पीसने से प्रभाव महत्तम होता है। प्रयोगों से जो परिणाम निकला है उससे मालूम होता है कि १०- या २०- अक्षि चलनी में छने चूना-पत्थर से सन्तोषप्रद प्रभाव प्राप्त होता है। महीन पीसने में खर्च अधिक पड़ता है। उसका प्रभाव भी जल्दी समाप्त हो जाता है। इससे गार्डनर (१९१८) का मत है कि मिट्टी के संशोधन के लिए पत्थर ऐसा पीसा हुआ होना चाहिए कि वह १०- अक्षि या अधिक से अधिक २०- अक्षि चलनी में पूरा छन जाय। यदि मोटा चूना-पत्थर इस्तेमाल करना है तो चूना-पत्थर की मात्रा अधिक रहनी चाहिए।

अनेक देशों में चूना और चूना-पत्थर के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। अमेरिका के एक फार्म में प्रति एकड़ दो टन की दर से प्रति चार वर्षों में बुझे चूने का

उपयोग हुआ था। साथ-साथ ठीक वैसे ही फार्म में प्रति एकड़ दो टन की दर से प्रति दो वर्षों में पीसे हुए चूना-पत्थर का उपयोग हुआ था। २० वर्षों में जो परिणाम निकले उनसे सिद्ध हुआ कि पीसे हुए चूना-पत्थर के उपयोग से फसल की उपज अधिक हुई। इन खेतों में १४ वर्षों के उपचार के बाद मिट्टी की ऊपरी नौ इंच की सतह पर चूना-पत्थर-उपचारित खेत में प्रति एकड़ नाइट्रोजन की मात्रा २९७९ पौण्ड पायी गयी थी, जब कि चूना-उपचारित खेत में नाइट्रोजन की मात्रा केवल २६०४ पौण्ड थी। इससे मालूम होता है कि चूने से कार्बनिक पदार्थों का विनाश कुछ अधिक होता है।

पेटर्सन ने ११ वर्षों तक मकई, गेहूँ और सूखी घास पर दाहक चूना, सीप से बना चूना, पीसे हुए सीप और मार्ल के कार्बोनेट का उपयोग कर देखा कि कार्बोनेट द्वारा उपचारित खेतों की पैदावार अधिक थी। ओहियो फार्म में पीसे हुए महीन चूना-पत्थर, मोटे चूना-पत्थर और बुझे चूने के उपयोग से मालूम हुआ है कि पीसे हुए चूने से पैदावार अधिक होती है।

अनबुझे चूने का लाभ यह है कि मिट्टी दानेदार बनती है। भारी मिट्टी में इससे अधिक लाभ होता है। बलुआर मिट्टी में उतना अधिक लाभ नहीं होता। ह्वाइट और होल्बेन (White and Holben, १९२७) का मत है कि चूना किसी भी रूप में दिया जा सकता है और उससे कोई अन्तर नहीं होता, यदि वह सामान्य रूप से पीसा हुआ हो और सतह की मिट्टी से एक सा मिला हुआ हो।

चूने का उपयोग

चूने का उपयोग खाद के रूप में नया नहीं है। ईसा के जन्म के पूर्व से इसका उपयोग होता आ रहा है। पहले यह यूरोपीय देशों में ही प्रयुक्त होता था, पीछे अमेरिका में उपयोग होने लगा। आज सारे संसार में जहाँ-जहाँ उर्वरक प्रयुक्त होता है इसका उपयोग हो रहा है। अमेरिका में सन् १७९४ से इसके उपयोग का पता लगता है। पहले केवल खाद के रूप में चूने का उपयोग होता था पर आज मिट्टी-संशोधक के रूप में भी इसका उपयोग व्यापकता से होता है।

चूना-व्यवहार की बारम्बारता—चूना प्रति वर्ष खेतों में नहीं डाला जाता है। प्रति वर्ष डालने से विशेष लाभ नहीं होता। प्रति तीन वर्ष या प्रति पाँच वर्ष में एक बार सामान्य मात्रा में डालना अच्छा होता है। यदि इससे भी अधिक समय पर चूना डालना हो तो चूने की मात्रा उसी अनुपात में बढ़ायी जा सकती है।

चूना डालने का समय—खेत जोतने अथवा बीज बोने के पहले क्यारी बनाने के

पूर्व चूना डालना अच्छा होता है। चूना ऐसा डालना चाहिए कि चूना मिट्टी में भली भाँति मिल जाय। जब भी सुविधा हो और कम खर्च में चूना मिलाया जा सके मिट्टी में चूना मिला देना चाहिए।

कितना चूना डालना चाहिए—कितना चूना डालना चाहिए, यह मिट्टी की प्रकृति, मिट्टी की अम्लता और मिट्टी की प्रत्यारोध क्षमता[१] पर निर्भर करता है। मिट्टी-संशोधक के रूप में पिसा हुआ चूना-पत्थर प्रति एकड़ एक से पाँच टन तक इस्तेमाल हो सकता है। साधारणतया प्रति एकड़ दो टन जला हुआ चूना अथवा ३½ टन चूना-पत्थर पर्याप्त होता है। मिट्टी की प्रतिक्रिया को ठीक रखने के लिए प्रति एकड़ २००० से ४००० पौण्ड पीसा हुआ चूना-पत्थर पर्याप्त समझा जाता है। फसल बोने के समय ४०० से ६०० पौण्ड डाल सकते हैं। यदि मिट्टी बहुत अधिक अम्लीय है तो अधिक की आवश्यकता पड़ सकती है। वस्तुतः चूने की मात्रा मिट्टी के पी एच पर निर्भर करती है। पी एच के १ बढ़ जाने से बलुआर दोमट में प्रति एकड़ एक टन और भारी दोमट में प्रति एकड़ डेढ़ टन के लगभग चूने-पत्थर की आवश्यकता पड़ती है।

यदि मिट्टी बलुआर है और उसमें लोहा, जस्ता, मैगनीशियम और मैंगनीज की मात्रा कम है तो कम चूना इस्तेमाल करना चाहिए। अधिक चूने से उपर्युक्त धातुएँ अप्राप्य रूप में परिणत हो जाती हैं। कूपर का मत है कि अधिक चूना डालने से लोहा, मैंगनीज़ और मैगनीशियम हाइड्राक्साइड बनते हैं जो जल में कम विलेय होने के कारण पौधों को सरलता से प्राप्य नहीं होते।

पैदावार की वृद्धि के लिए प्रति एकड़ १० हंडरवेट से २ या ३ टन तक चूना-पत्थर डाला जा सकता है। ४ टन चूना पत्थर डालना अवश्य ही आवश्यकता से बहुत अधिक है।

चूना डालने की रीति—चूना या चूना-पत्थर को खेतों में छींटते हैं। खेतों के जोतने के पहले की अपेक्षा खाद देकर जोतने के बाद छींटना अच्छा होता है। जोते खेतों में चूना छींटकर तब खेतों में हेंगा देकर बराबर कर देते हैं। इससे चूना ऊपर की मिट्टी में मिल जाता है। यदि चूना अधिक मात्रा में, प्रति एकड़ डेढ़ टन या इससे अधिक, डालना हो तो आधा चूना जोतने के पहले और आधा जोतने के बाद डाल सकते हैं। खाद के साथ मिलाकर चूना डालना अच्छा नहीं होता। यदि खेतों में गोबर की खाद या कम्पोस्ट डालना हो तो जोतने के पहले खाद बिखेरकर तब

[१] Buffer capacity

जोतना चाहिए। खाद डाले खेत में जोतने के बाद चूना डालना चाहिए और तब हेंगा देकर मिला देना चाहिए। उर्वरक साधारणतया बीज बोने से पहले अथवा पौधे लगाने के समय कतार में डालना चाहिए।

मिट्टी में चूने का परिवर्तन

ज्यों ही अनबुझा चूना मिट्टी में डाला जाता है, वह पानी को शीघ्र ही सोखकर बुझ जाता है। इस प्रकार बुझकर वह जलीयित चूना बनता है।

$$CaO + H_2O = Ca(OH)_2$$
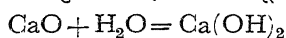
जलीयित चूना वायु के कार्बन डाइ-आक्साइड को अवशोषित कर कैलसियम कार्बोनेट बनता है।

$$Ca(OH)_2 + CO_2 = CaCO_3 + H_2O$$
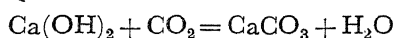
कैलसियम कार्बोनेट अविलेय होता है। यह वायु के कार्बन डाइ-आक्साइड और मिट्टी की आर्द्रता से मिलकर कैलसियम बाइ-कार्बोनेट बनता है।

$$CaCO_3 + CO_2 + H_2O = Ca(HCO_3)_2$$
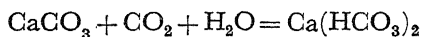
कैलसियम बाइ-कार्बोनेट जल में विलेय होता है। चूना-पत्थर के साथ अन्तिम क्रिया ही होती है। चूना के साथ ये क्रियाएँ शीघ्रता से होती हैं। कैलसाइट चूना-पत्थर से कुछ देर से कैलसियम बाइ-कार्बोनेट बनता है। डोलोमाइट के कैलसियम और मैगनीशियम कार्बोनेट अपेक्षया शीघ्रता से घुलते हैं। चूने के सभी रूप पहले कार्बोनेट में होते, तब फिर बाइ-कार्बोनेट में परिणत हो मिट्टी में मिलते हैं।

फसलों पर चूने का प्रभाव

फसलों पर चूने का क्या प्रभाव पड़ता है; इसका अध्ययन बड़े विस्तार से हुआ है। अनेक लोगों ने विभिन्न देशों और विभिन्न फसलों पर प्रयोग किये हैं। साधारणतया देखा गया है कि फलीदार पौधों पर चूने का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। सम्भवतः कैलसियम के कारण फलीदार पौधों के बैक्टीरिया अधिक प्रभावशाली होते हैं। ऐसे पौधों में ऑक्सलेट के रूप में कैलसियम का अवक्षेपण भी होता है। पौधों में कैलसियम लवणों का स्थानान्तरण साधारणतया नहीं होता। अल्फाल्फा तथा लाल और डच सेंजी पर इसका स्पष्ट प्रभाव देखा गया है। मटर और सोयाबीन भी चूने से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। मकई और गेहूँ में पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। जहाँ बिना उपचारित खेतों में प्रति एकड़ केवल ३०·८ बुशेल मकई पैदा हुई थी वहाँ चूना उपचारित खेत में पैदावार ३६·५ बुशेल हो गयी थी। गेहूँ में भी इसी

प्रकार की वृद्धि पायी गयी है। बाग की फसलों, चारे की फसलों और घासों में चूने से वृद्धि पायी गयी है। शीत मटर और मूँग-मोठ (common vetch) में भी अमेरिका में पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। कपास पर भी चूने का प्रभाव अच्छा पड़ता है।

डेविस और ब्रुअर (१९४०) ने देखा कि चूना डालने से शीत मटर और मूँग-मोठ में कैलसियम, फास्फरस और नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ गयी थी। सेराडेला (serra-della) पर चूने का बुरा प्रभाव देखा गया है।

अ-फलीदार फसलों पर चूने के प्रभाव के सम्बन्ध में जो रिपोर्टें मिली हैं वे एक सी नहीं हैं। कुछ पौधों पर चूने का अच्छा प्रभाव पाया गया है, कुछ पौधों पर कोई प्रभाव नहीं देखा गया है और कुछ पौधों पर बुरा प्रभाव देखा गया है।

काली मिट्टी पर, जिसमें नाइट्रोजन और फास्फरस की कमी थी, चूने से ३२·७ प्रतिशत ज्वार की पैदावार में वृद्धि पायी गयी है। बोगरा फार्म में आमन धान की पैदावार में ३६ प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी थी (प्रति एकड़ ८०० पौण्ड चूने का उपयोग हुआ था)। बाँकुरा फार्म में ज्वार और लोबिया की पैदावार में ८२ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, जब प्रति एकड़ १० मन चूने का व्यवहार हुआ था।

चूने का प्रभाव-काल

चूने का प्रभाव फसलों पर कितनी शीघ्रता से पड़ता है यह मिट्टी की प्रकृति और चूना डालने की रीति पर निर्भर करता है। यदि चूना बहुत महीन दशा में है तो उसका प्रभाव बहुत जल्द पड़ता है पर वह बहुत समय तक कायम नहीं रहता। यदि चूना ढेले के रूप में डाला जाय तो उसका प्रभाव अधिक समय तक, २० वर्षों या इससे अधिक रहता है। हौल और वोएल्कर (Hall and Voelcker) का मत है कि कृषि योग्य भूमि में पाँच वर्षों पर और घास की भूमि में सात वर्षों पर चूना डालना चाहिए। अनुभव से पता लगता है कि यदि भूमि में कैलसियम की कमी है तो प्रति एकड़ एक या दो टन पीसा हुआ चूना डालने से ८ से १० वर्षों तक काम चल जाता है।

अन्य उर्वरकों का चूना

ऊपर कहा गया है कि कुछ उर्वरकों में चूना रहता है। बेसिक स्लैग और हड्डी के चूरे में कैलसियम रहता है। मिट्टी में कैलसियम की कमी तो ऐसे चूने से पूरी हो सकती है पर मिट्टी की अम्लता इससे दूर नहीं होती। अम्लता को दूर करने में चूना या चूना-पत्थर का उपयोग आवश्यक होता है।

चूने से हानि

कुछ पौधों पर चूना देने से बुरा प्रभाव पड़ता है। तरबूज, नील बदर (blue berries), सेराडेला (serradella) पर चूना देने से बुरा प्रभाव देखा गया है। चूने का बुरा प्रभाव विशेष रूप से बलुआर और ककरीली भूमि में देखा गया है। दाहक चूने का बुरा प्रभाव अधिक स्पष्ट देखा गया है।

चूने के बार बार और अधिक मात्रा के उपयोग से कुछ बहुमूल्य खनिज तत्त्व मुक्त होकर मिट्टी से निकल जाते हैं। इससे मिट्टी हलकी हो जाती है और उर्वरता कुछ नष्ट हो जाती है।

चूने के बार बार के और अधिक मात्रा के व्यवहार से मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों का शीघ्रता से और अधिक मात्रा में विनाश होता है। यह विनाश बलुआर मिट्टी में अधिक होता हुआ देखा गया है। कार्बनिक पदार्थों की कमी से मिट्टी में कुछ उपयोगी बैक्टीरिया नष्ट हो जाते अथवा निष्क्रिय हो जाते हैं। इससे मिट्टी की उर्वरता घट जाती है।

सोडियम लवण

पौधों के लिए सोडियम लवण अत्यावश्यक नहीं समझा जाता। सोडियम के अभाव में भी पौधे उग सकते हैं, ऐसी धारणा है। स्टौकमैन (Stockman) जल संवर्धन प्रयोगों से इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि मकई के पूर्ण विकास के लिए सोडियम आवश्यक है। ऐकमैन और जौनसन तथा कुछ अन्य व्यक्तियों का मत है कि यदि पौधों को सोडियम की आवश्यकता पड़ती है तो अवश्य ही बड़ी अल्प मात्रा में। ऐसा मालूम होता है कि कुछ पौधों, चुकन्दर और शाक-भाजियों के लिए सोडियम अत्यावश्यक है। पशुओं के लिए तो सोडियम आवश्यक है ही पर समुद्री पौधों के लिए भी सोडियम आवश्यक समझा जाता है।

आज प्राय: सभी स्वीकार करते हैं कि कुछ पौधों के लिए सोडियम अत्यावश्यक है। सोडियम लवणों से प्राय: निम्नलिखित कार्य होते हैं—

१. सब पौधों के कुछ कार्यों में पोटेसियम का स्थान अंशत: सोडियम ले सकता है। इससे मिट्टी के पोटाश के संरक्षण में सोडियम सहायक होता है।

२. आर्द्र जल-वायु में मिट्टी की अम्लता के दूर करने में सोडियम लवण सहायक हो सकता है।

३. सुपर-फास्फेट से फास्फरस ग्रहण करने में सोडियम लवण सहायक होता है।

खाद के रूप में नमक का उपयोग बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। प्राचीन काल में ईरान और चीन में इसका उपयोग होता था। खजूर के पेड़ों में डालने से

पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी जाती थी। खाद के रूप में नमक का उपयोग आज भी अनेक देशों में होता है। अनेक लोगों ने नमक के उपयोग से पौधों को लाभ होने और पैदावार में स्पष्ट वृद्धि की रिपोर्ट दी है।

रसेल (१९४५) की रिपोर्ट है कि गेहूँ की पैदावार पर सोडियम का अच्छा प्रभाव पड़ता है। जोन्स और और्टन ने भी नमक से गेहूँ की पैदावार बढ़ी हुई पायी है। शेल्टन (१८८९) ने प्रति एकड़ ३०० पौण्ड नमक डालने से गेहूँ की पैदावार में ४·७ बुशेल की वृद्धि पायी है। चुकन्दर और पालक सोडियम लवणों से अच्छे उगते हुए पाये गये हैं। आलू, मैंजेल, मैनगोल्डस्, शतावरी में नमक से पैदावार अच्छी होती है। धान, नारियल और आम की फसल भी नमक की खाद से अच्छी होती हुई पायी गयी है। नारियल के २० पेड़ों में नमक की खाद डाली गयी थी और २० पेड़ों में नमक की खाद नहीं डाली गयी थी। नमकवाले पेड़ों में ४६१ फल लगे थे जब कि बिना नमकवाले पेड़ों में केवल ३६२ फल लगे। इसी प्रकार आम के १० पेड़ों में नमक दिया गया था और १० पेड़ों में नहीं। नमकवाले आम के पेड़ों में ४९८ फल लगे; जब कि बिना नमकवाले पेड़ों में केवल २०१ फल लगे थे। धान के खेतों में भी प्रति एकड़ ४०० से ८०० प ण्ड नमक देने से पैदावार बहुत बढ़ गयी थी। गार्डनर (१९३१) ने प्रति एकड़ ५०० पौण्ड नमक देने से चुकन्दर की पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी थी। जौनसन (१९३१) ने अन्य खादों के साथ-साथ नमक डालने से आलू की पैदावार स्पष्ट रूप से बढ़ी हुई पायी थी।

सोडियम का कार्य

ऐसा कहा जाता है कि कोशिकाओं की आशुनता (turgour) के लिए सोडियम अत्यावश्यक है और इससे पौधों का उपापचय (metabolism) भी प्रभावित होता है। कपास, जई, गेहूँ, चुकन्दर, मूंग-मोठ (vetch), मटर और शलजम के महत्तम उत्पादन के लिए सोडियम अत्यावश्यक है। यदि खेतों में पोटेसियम की कमी हो तो सोडियम से विशेष लाभ होता पाया गया है। मिट्टी के संशोधन में भी नमक का हाथ है। इससे सोडियम लवणों की गणना 'मिट्टी सुधारकों' में की जाती है।

लोएव (Loew, १९०१) का मत है कि प्रकाश-संश्लेषण प्रक्रियाओं पर सोडियम का अवसादी प्रभाव (depressing effect) पड़ता है जिससे चुकन्दर में चीनी की प्रतिशतता और आलू में स्टार्च की प्रतिशतता कम हो जाती है। सम्भवतः यह अव-सादी प्रभाव क्लोरीन के कारण होता है।

सोडियम की उपस्थिति से फास्फरस की प्राप्यता बढ़ जाती है, इसका स्पष्ट देशन

प्राप्त होता है। सम्भव है सोडियम नाइट्रेट खाद का अच्छा प्रभाव अंशतः सोडियम के कारण हो। केवल कैलसियम नाइट्रेट के उपयोग से वैसा अच्छा परिणाम नहीं प्राप्त होता जैसा कैलसियम नाइट्रेट और सोडियम क्लोराइड के मिश्रण के व्यवहार से प्राप्त होता है।

मिट्टी और पौधों में सोडियम

प्रायः सब ही मिट्टियों में सोडियम रहता है। समुद्र तट की मिट्टियों में सोडियम विशेष रूप से पाया जाता है। अनेक खनिजों में जिनसे मिट्टी बनती है १·५ से ६·० प्रतिशत तक सोडियम रहता है। मिट्टी का सोडियम बहुत कुछ पानी में घुलकर निकलता रहता है। यह पानी फिर समुद्र में चला जाता है। यही कारण है कि समुद्र के पानी में लवण की मात्रा क्रमशः बढ़ती जा रही है। आर्द्र मिट्टी में सोडियम की मात्रा अपेक्षया कम रहती है।

सज्जी मिट्टी में सोडियम कार्बोनेट रहता है। धोबी इसी मिट्टी का कपड़ा धोने में व्यवहार करते हैं। कहीं कहीं इसकी मात्रा अधिक रहती है। वहीं से यह इकट्ठी की जाती है। सज्जीवाली मिट्टी में फसल नहीं उगती। ऐसी मिट्टी के कृष्यकरण की आवश्यकता होती है। किसी-किसी मिट्टी में सफेद पपड़े पड़ जाते हैं। ऐसी मिट्टी को खारी मिट्टी कहते हैं। खारी मिट्टी में सोडियम सल्फेट रहता है। सज्जी मिट्टी और खारी मिट्टी प्रधानतया उष्ण देशों में ही बनती है जहाँ सूर्य की गरमी पर्याप्त तेज़ रहती है।

अधिकांश पौधों में सोडियम रहता है। विभिन्न पौधों में सोडियम की मात्रा विभिन्न रहती है। जिस मिट्टी में सोडियम अधिक होता है उस मिट्टी के पौधों में सोडियम की मात्रा अधिक रहती है। समुद्र तट पर उगनेवाले पौधों में सोडियम की मात्रा अधिक पायी जाती है।

सोडियम उर्वरक

खाद के लिए सोडियम लवणों में नमक ही अधिकता से व्यवहृत होता है। खेतों में नमक ऊपर से डाला जाता है। मैंजेल, चुकन्दर, शतावरी और आलू में प्रति एकड़ २०० से ३०० पौण्ड नमक इस्तेमाल हो सकता है। धान के खेतों में प्रति एकड़ ४०० से ८०० पौण्ड तक डाला जा सकता है। गेहूँ के खेतों में प्रति एकड़ ३०० पौण्ड डालने से लाभ हुआ है। चुकन्दर में प्रति एकड़ ५०० पौण्ड नमक के उपयोग से उत्पादन में विशेष वृद्धि पायी गयी है। सोडियम खादवाले खेतों में उपजे घास-पात को पशु अधिक पसन्दगी से खाते हैं।

जिपसम

सिन्दरी-कारखाने के प्रकरण में जिपसम की उपस्थिति और निक्षेप का विस्तार से वर्णन हुआ है, क्योंकि कारखाने में जो अमोनियम सल्फेट बनता है उसका सल्फेट जिपसम से ही प्राप्त होता है। पर्याप्त मात्रा में जिपसम उस कारखाने में खपता है। जिपसम से कुछ सलफ्यूरिक अम्ल भी आज इंग्लैण्ड और जर्मनी में तैयार होता है।

खाद के रूप में जिपसम का उपयोग बहुत प्राचीन है। यूनानी और रोमन लोगों ने प्राचीन काल में इसका उपयोग किया था। यूरोप में इसका उपयोग बहुत दिनों से होता आ रहा है। जर्मनी वालों के द्वारा यह यूरोप से अमेरिका गया। आज तो इसका उपयोग सर्वव्यापक है। जहाँ जहाँ कृत्रिम उर्वरक प्रयुक्त होता है वहाँ-वहाँ जिपसम भी प्रयुक्त हो रहा है।

खनिज जिपसम शुद्ध नहीं होता, उसमें अन्य पदार्थ भी मिले रहते हैं। खनिज जिपसम में ५० से ९५ प्रतिशत शुद्ध जिपसम रहता है। जिपसम जल में अधिक घुलता नहीं पर इसकी विलेयता चूना-पत्थर से अधिक होती है।

अनेक लोगों ने प्रयोग करके देखा है कि खेतों में जिपसम डालने से पैदावार बढ़ जाती है। अमेस और ब्लोट्स (Ames and Blotz, १९१६) २० वर्षों के प्रयोगों से इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यदि फास्फरीय खाद के साथ जिपसम भी रहे, जैसे सुपर-फास्फेट और प्रविलीन अस्थि-काल में होता है, तो मकई, जई और गेहूँ की पैदावार बढ़ जाती है। हड्डी-चूरा और बेसिक स्लैग से, जिसमें जिपसम नहीं होता, पैदावार उतनी बढ़ी हुई नहीं पायी गयी है।

एर्डमैन और बोलेन (Erdsman and Bollen, १९२५) का अनुभव है कि जई, लालसेंजी और अल्फाल्फा में जिपसम से पैदवार बढ़ जाती है।

वैद्यनाथन (१९३३) की रिपोर्ट है कि कपास, ज्वार और मूँगफली की पैदावार जिपसम से बढ़ जाती है। उनके आँकड़े निम्नलिखित हैं—

परुलिया फार्म में मूँगफली की पैदावार में वृद्धि

प्रति एकड़ जिपसम	प्रति एकड़ उपलब्धि	वृद्धि की प्रतिशतता
जिपसम, १०० पौण्ड	१४०	९.६
जिपसम, २४० पौण्ड	२००	५२.०
जिपसम, ३२० पौण्ड	१७०	२८.०
जिससम, शून्य	१३०	—

सूरत फार्म में कपास और ज्वार की पैदावार में वृद्धि

प्रति एकड़ जिपसम	कपास		ज्वार	
	प्रति एकड़ उपलब्धि	प्रतिशत वृद्धि	प्रति एकड़ उपलब्धि	प्रतिशत वृद्धि
जिपसम २००० पाउण्ड	५९०	३१·१	११२०	४·७
गोवर खाद ५ टन	६३०	४०·०	१२६०	१८·९
कोई खाद नहीं	४५०	—	१०६०	—

विलिस और रैंकिन (१९३०) ने दिखलाया है कि कार्बनिक पदार्थों के सड़ने-गलने से जो अमोनिया बनता है उसके विषैले प्रभाव को जिपसम दूर करता है। विलिस और पिलैण्ड (१९३१) का सुझाव है कि अमोनियम खाद के उपयोग से जो अमोनियम मुक्त होकर विषैला प्रभाव उत्पन्न करता है उसे दूर करने के लिए अमोनियम खाद के साथ-साथ जिपसम का रहना अच्छा होता है। विषैले प्रभाव को दूर करने में कैलसियम कार्बोनेट और फास्फेट से जिपसम अधिक प्रभावशाली होता है।

मिट्टी के संशोधन में जिपसम उपयोगी सिद्ध हुआ है। यदि मिट्टी में किसी पोषक तत्व की कमी या आधिक्य हो तो जिपसम से उसका निराकरण हो जाता है। मिट्टी के पोटेसियम, फास्फरस, मैगनीशियम और सिलिकन को यह मुक्त कर ऐसे रूप में रखता है कि पौधे उन्हें ग्रहण कर सकें। इसके रहने से अमोनिया बनने में भी सहायता मिलती है। इससे खेतों की महीन मिट्टी जमकर मोटी हो जाती है। अन्ड्रे (Andre, १९१३) की रिपोर्ट है कि जिपसम माइक्रोलिन (microline) के पोटेशियम को ग्रहण करने योग्य अवस्था में लाता है, जब कि ब्रिग्स एवं ब्रिएज़ील (Breazeale, १९२७) का मत है कि अर्थोक्लेस (Orthoclase) वाली चट्टानों के पोटेसियम को ग्रहणयोग्य दशा में लाने की इसमें कोई क्षमता नहीं है। उनका मत है कि जिपसम की उपस्थिति से पोटेसियम की विलेयता का स्पष्ट रूप से अवसादन होता है।

मिट्टी की अम्लता दूर करने में जिपसम सहायक नहीं होता। बोलेन (१९२५) का स्पष्ट मत है कि मिट्टी की प्रतिक्रिया में जिपसम कोई परिवर्तन नहीं लाता।

काली क्षारीय मिट्टी के कृष्यकरण में जिपसम का उपयोग अमेरिका में व्यापक रूप से हुआ है। ऐसी मिट्टी में सोडियम कार्बोनेट रहता है। जिपसम और सोडियम कार्बोनेट के वीच प्रतिक्रिया होकर सोडियम सल्फेट बनता है जिससे काली मिट्टी उजली हो जाती है। लाखों टन जिपसम अमेरिका में कृष्यकरण में प्रयुक्त होता है। वेयर (१९४९) का मत है कि सिंची हुई खारी मिट्टी में प्रति एकड़ एक टन जिपसम और

काली खारी मिट्टी में प्रति एकड़ दो टन जिपसम प्रति वर्ष डालने से भूमि अच्छी दशा में रखी जा सकती है।

जिपसम को मिट्टी में ऐसा डालना चाहिए कि वह भली भाँति मिल जाय। जिपसम को जुते खेत में छींटकर हेंगा देकर मिला देना चाहिए। ऐसा करने के बाद ही उस खेत में फसल बोना चाहिए। साधारणतया प्रति एकड़ २०० पौण्ड जिपसम डाला जाता है। कभी-कभी ५०० पौण्ड भी डालते हैं। मूँगफली के खेत में फूल लगने के समय ४०० से ५०० पाउण्ड जिपसम देने से छिलका कम बनता है। काल्डवेल और ब्रैडी (१९४५) का मत है कि जिपसम के उपयोग से मूँगफली की गुद्दी बढ़ी हुई पायी जाती है।

सत्रहवाँ अध्याय

लेशपोषक-तत्त्व

उद्दीपक और रोगरोधक खाद

कुछ खादें ऐसी हैं जो पौधों के विकास को उद्दीप्त करतीं और रोगों के आक्रमण से पौधों को सुरक्षित रखती हैं। ऐसी खादों में ऐसे तत्त्व रहते हैं जिनका होना पौधों की स्वस्थ वृद्धि के लिए अत्यावश्यक समझा जाता है, पर इनकी अपेक्षया बड़ी अल्प मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे तत्त्वों को 'लेश तत्त्व'[1] कहते हैं। पौधों के लिए लेशतत्त्व उतने ही आवश्यक हैं जितने अन्य पोषक तत्त्व। ये लेशतत्त्व मिट्टी में भी बड़ी अल्प मात्रा में ही रहते हैं। ऐसे लेश तत्त्वों में छः तत्त्व बड़े महत्त्व के हैं। वे हैं बोरन, लोहा, ताँबा, मैंगनीज़, जस्ता और मोलिबडेनम। इनके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट पौधों के लिए, विशेषतः पर्णांगों (ferns) के लिए, अलूमिनियम भी आवश्यक समझा जाता है। ऐसे तत्त्वों की बड़ी अल्प मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। एक लाखवें भाग में ०·०३ भाग या इससे कम का सान्द्रण इन तत्त्वों के लिए पर्याप्त समझा जाता है। यदि इनकी मात्रा एक लाख भाग में ०·२ भाग से अधिक हो तो ये पौधों के लिए विषैले हो सकते हैं। अतः इन विशिष्ट खादों के व्यवहार में बड़ी सावधानी बरतना आवश्यक है। मिट्टी के सूक्ष्म विश्लेषण पर ही जब निश्चित रूप से पता लग जाय कि मिट्टी में इनकी कमी है, तब इनका प्रयोग नियमित मात्रा में करना चाहिए।

इन तत्त्वों की उपस्थिति के सम्बन्ध में पाश्चात्य देशों में, विशेषतः यूरोप और अमेरिका में, बहुत अधिक अनुसन्धान हुए हैं। भारत की मिट्टियों का विश्लेषण और अन्वेषण उतनी सूक्ष्मता से अभी तक नहीं हुआ है, यद्यपि भारत सरकार इस अनुसंधान के महत्त्व को अब समझ गयी है और मिट्टी के विश्लेषण के लिए देश के विभिन्न भागों में २५ प्रयोगशालाएँ खोलने का निश्चय कर चुकी है।

पौधों के इन आवश्यक तत्त्वों को 'अमुख तत्त्व'[2] इस कारण कहते हैं कि इन तत्त्वों

1. Trace elements 2. Minor elements

की अधिक मात्रा की आवश्यकता नहीं पड़ती, पर इनका मिट्टी में रहना उतना ही आवश्यक है जितना 'प्रमुख तत्त्वों' (मेजर एलेमेण्टस्) का रहना। पौधों की स्वस्थ वृद्धि के लिए प्रमुख और अमुख दोनों प्रकार के तत्त्वों की सामान्य रूप से आवश्यकता पड़ती है।

अमुख तत्त्वों की आवश्यकता का तीन रीतियों से पता लगता है। किसी-किसी मिट्टी में ये तत्त्व पाये नहीं जाते। ऐसी मिट्टी की फसलों में तत्त्व-हीनता के लक्षण प्रकट होते हैं। पौधे रोगों से आक्रान्त हो जाते और उपज अच्छी नहीं होती। एक ही फसल के बार-बार बोने से मिट्टियों में इन तत्त्वों की कमी हो जाती है। इन तत्त्वों की जितनी मात्रा मिट्टी से निकल जाती है उतनी मात्रा फिर लौटकर नहीं आती।

विभिन्न पौधों के लिए इन अमुख तत्त्वों की विभिन्न मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न मिट्टियों में भी इनकी मात्रा विभिन्न रहती है। पावर्स (Powers, १९४०) का मत है कि अमुख तत्त्वों के कार्य निम्नलिखित होते हैं।

१. पौधों के जीवन और वृद्धि के लिए ये अत्यावश्यक पोषक-तत्त्व हो सकते हैं।

२. ये तत्त्व कुछ अन्य तत्त्वों को अंशतः प्रतिस्थापित कर सकते हैं।

३. ये तत्त्व प्रकिण्व या विटामिनों के निर्माण में सहायक हो सकते हैं।

४. ये पौधों की विषालुता को रोक सकते हैं।

५. एक तत्त्व दूसरे तत्त्व के अवकरण या आक्सीकरण में सहायक हो सकता है।

६. एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को मुक्त कर सकता है।

७. ये पौधों के रोगों को रोकने की क्षमता को बढ़ा सकते हैं।

८. एक तत्त्व की उपस्थिति से अथवा डालने से दूसरे तत्त्व के आयनों का अवक्षेपण हो सकता है।

९. किसी तत्त्व का सूक्ष्म जीवाणुओं पर की क्रिया या प्रतिक्रिया पर परोक्ष प्रभाव पड़ सकता है।

१०. इन तत्त्वों का उद्दीपक प्रभाव पड़ सकता है।

११. इन तत्त्वों का कोलायडल प्रभाव सम्भव हो सकता है।

बोरन

बोरन एक तत्त्व है। असंयुक्तावस्था में यह प्रकृति में नहीं पाया जाता। इसके यौगिक विस्तृत रूप में पाये जाते हैं। यह चट्टानों, मिट्टियों और प्राणी एवं और वानस्पतिक तन्तुओं में पाया जाता है। सन् १८५७ में विट्टस्टाइन (Wittstein) और एपायजर (Apoigers) ने बताया था कि पौधों में बोरन रहता है। पीछे इसकी उपस्थिति का

मिट्टी में पता लगा। टुरमेलिन नामक खनिज में बोरन प्राय: १० प्रतिशत रहता है। टुरमेलिन मिट्टी में बड़ी अल्प मात्रा में पाया जाता है। मिट्टी में सुहागे के रूप में भी बोरन पाया जाता है। सुहागे के निक्षेप अनेक स्थलों में पाये जाते हैं।

सुहागे का ज्ञान लोगों को बहुत प्राचीन काल से है। यह धातु-कर्म में प्रयुक्त होता आ रहा है। पहले-पहल यह तिब्बत से आया था। वहाँ इसका नाम टंकण या टिंकल (tincal) था। आज भी भारत में तिब्बत से ही सुहागा आता है। कैलिफोर्निया में एक सरल झील (Searle's lake) है। उसके प्रति गैलन पानी में एक या दो औंस सुहागा रहता है। खनिज के रूप में कोलेमेनाइट नामक खनिज, $Ca_2B_6O_{11}$, $5H_2O$, एशिया माइनर और अमेरिका में, बोरेसाइट नामक खनिज, $^2Mg_3B_8O_{15}$, $MgCl_2$ स्टास्फर्ट में और बोरोनैट्रोकैलसाइट, CaB_4O_7 $NaBO_2$, $8H_2O$ चिली में पाया जाता है। तिब्बत के अतिरिक्त भारत और सीलोन में भी सुहागा पाया जाता है।

मैकहार्ग ने (१९४०, McHargue) ने पहले-पहल दिखलाया कि वानस्पतिक और प्राणी-तन्तुओं में बोरन रहता है। अधिकांश पौधों में प्रति लाख में २० भाग बोरन रहता है। फलीदार पौधों में अ-फलीदार पौधों की अपेक्षा अधिक बोरन पाया जाता है। अल्फाल्फा के एक टन में लगभग एक औंस बोरन रहता है। रोबिन्सन और एडिंगटन (Robinson and Edington), (१९४९) का मत है कि सामान्यत: किसी पौधे में प्रति एक लाख भाग में ७ भाग से अधिक बोरन नहीं रहता। मैकहार्ग का मत है कि विभिन्न पौधों में प्रति लाख में ०·०४ से १४·३ भाग बोरन रहता है। धान्य (cereal) में प्रति लाख में औसत बोरन ०·११९ भाग, सूखी घास और चारे में ०·६५९ और फलीदार घास-पातों में ३·०० भाग रहता है।

पौधों की राख में बोरन होता है यह पहले से मालूम था। यह भी मालूम था कि कुछ पौधों पर बोरन का विषैला प्रभाव पड़ता है। सन् १९१० में पहले-पहल मालूम हुआ कि कुछ पौधों को बोरन की आवश्यकता पड़ती है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह निश्चित रूप से मालूम हो गया कि पौधों को बोरन की जरूरत पड़ती है और उसके अभाव में पौधे ठीक तरह से उगते नहीं हैं। पर बोरन से क्या कार्य होता है इसका ठीक-ठीक पता अब तक भी नहीं लगा है। यह ज्ञात हुआ है कि भिन्न-भिन्न स्पीशीज के पौधों को विभिन्न मात्राओं में बोरन की आवश्यकता पड़ती है। द्विबीज-पत्रक पौधों को जितने बोरन की आवश्यकता होती है उसका प्राय: चतुर्थांश ही एकबीज-पत्रक पौधों को आवश्यक होता है।

अनेक वैज्ञानिकों ने जिनमें कुछ तो यूरोप के हैं, जैसे वारिंगटन (Warington,

१९२३) ब्रेंचले (Brenchley, १९२७), सोमर और लिपमैन (Sommer and Lipman, १९२६) जौन्सन और डोर (Johnson and Dore, १९२८); कुछ अमेरिका के हैं, जैसे पार्क्स (Parks), लियन और हूड, (Lyon and Hood, १९४४) हैं—स्पष्ट रूप से बतलाया कि पौधों के लिए बोरन आवश्यक है। बोरन के रहने से पौधे अन्य खनिज लवणों को अधिक मात्रा में, कुछ दशा में शत-प्रतिशत, ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। यह भी सम्भव है कि कैलसियम के ग्रहण करने में बोरन का हाथ हो। अन्य खनिज लवणों के ग्रहण करने में बोरन से वृद्धि हो सकती है।

पौधे बोरन को बड़ी अल्प मात्रा में ग्रहण करते हैं। यदि मिट्टी में बोरन की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो तो पौधों के लिए बोरन विषाक्त भी हो सकता है। सूखी मिट्टी में बोरन का विषाक्त प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा गया है। कुछ सीमा तक ही इसके रहने से उपज अच्छी होती है। उस सीमा के पार कर जाने पर बोरन से हानि होती है। सोयाबीन पर जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि प्रति लाख भाग में यदि बोरन का ०.०३५ भाग हो तो उससे उपज अच्छी होती है। मक्विकर (McVikar) ने देखा था कि जलविलेय बोरन की मात्रा प्रति लाख में ०.५ भाग से अधिक होने पर उसका विषैला प्रभाव आयरलैंड के आलू पर पड़ता था कूक और मिलर (Cook and Millar, १९४९) का कथन है कि सेम पर प्रति एकड़ १.८ पौण्ड सुहागा डालने से सेम का क्षय होता पाया गया है। ऐसी क्षति के कारण ही घास-पात के नष्ट करने में सुहागे का उपयोग होता है।

अमेरिका में एक बार पोटाश खाद का उपयोग हुआ था। उस पोटाश लवण में कुछ सुहागा मिला हुआ था। उससे फसल को, विशेषतः बलुआर मिट्टी में, नुकसान होते देखा गया। इससे आजकल पोटाश खादों से सुहागे को पूर्ण रूप से निकालकर ही बेचते हैं। कैलिफोर्निया के सिंचाई के जल में अल्प मात्रा में—प्रति लाख भाग जल में ०.५ भाग से अधिक नहीं—बोरन पाया गया है। इतनी अल्प मात्रा से भी नीबू के पेड़ों पर विषैला प्रभाव देखा गया है। साधारणतया अम्लीय मिट्टी पर विषैला प्रभाव अधिक देखा गया है। क्षारीय या चूना डाली मिट्टी पर विषैला प्रभाव इतनी मात्रा में होता हुआ नहीं पाया गया है।

मिट्टी में बोरन की कमी से पौधों में अनेक शरीर-क्रियात्मक रोग प्रकट होते हैं। पहला लक्षण पौधों की वृद्धि में कमी होना है। अनेक पौधों के तन्तु बिखरने (disinstegrate) लगते हैं और पौधों में दरारें पड़नी शुरू होती हैं। पौधों को बराबर नियमित रूप से बोरन मिलता रहना चाहिए, क्योंकि अन्य खनिज लवणों के सदृश बोरन

चित्र ३८––फूलगोभी में बोरन की कमी (बायें),
स्वस्थ फूल (दायें), पृ० ४२०

चित्र ३९––अनन्नास पर लोहे का प्रभाव (बायीं ओर
लोहे का फास्फेट या विलयन छिड़का गया है, दायीं
ओर नहीं छिड़का गया है), पृ० ४२३

का संचयन नहीं होता। बर्जर (१९४९), कहते हैं कि पौधों की कोशिकाओं (cells) के विभाजन और प्रोटीन के संश्लेषण में बोरन का महत्त्वपूर्ण हाथ है। मैकहार्ग का सिद्धान्त है कि कार्बोहाइड्रेट के उपापचय और स्थानान्तरण (translocation) में बोरन सहायक होता है। हागलैण्ड (Haagland) का सुझाव है कि पेक्टिन बनने में बोरन का हाथ है। मैकमुर्ट्रे (McMurtrey) ने दिखलाया है कि बोरन की कमी से तम्बाकू की कलियाँ हलके रंग की होकर मर जाती हैं। फूलगोभी में कुछ रंग का आना, शलजम में भूरे रंग का होना और स्वीडन शलजम में जल-गूदे का होना, सेलरी में मार्ल (marl) रोग का होना, ये सब बोरन की कमी के लक्षण हैं। स्वानबैक (१९४६) (Swanback) का विचार है कि तम्बाकू में भूरा जड़-गलन, (root rot) बोरन की कमी से होता है। अल्फाल्फा का पीला होना भी बोरन की कमी का लक्षण है। यदि प्रति एकड़ भूमि में ५ पौण्ड सुहागा छींटा या छिड़का जाय तो यह दोष दूर हो जाता है। अंगूर की खेती में सुहागा देने से उपज बढ़ी हुई पायी गयी है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कुछ पौधों को बोरन की अधिक मात्रा में जरूरत पड़ती है और कुछ पौधों को कम मात्रा में।

जिस मिट्टी में बोरन की कमी है उसमें कितना बोरन डालना चाहिए कि बोरन की मात्रा अपर्याप्त न हो और साथ ही इतना अधिक भी न हो कि पौधों पर उसका विषैला प्रभाव पड़े, यह अनेक बातों पर निर्भर करता है। वास्तविक मात्रा फसल की किस्म, मिट्टी की प्रकृति, ऋतु और उपयोग करने के ढंग एवं विशिष्ट बोरन यौगिक के उपयोग पर निर्भर करती है।

यह सभी स्वीकार करते हैं कि क्षारीय और उदासीन मिट्टी में अधिक बोरन डालने से कोई विशेष नुकसान नहीं होता, पर अम्लीय मिट्टी में बोरन की अधिकता से पौधों को नुकसान पहुँचता है। जिस मिट्टी का पी एच ऊँचा हो उसमें पौधों को अधिक बोरन की आवश्यकता पड़ सकती है। फल-वृक्षों के लिए ब्रिटिश कोलम्बिया में प्रति एकड़ भूमि में ३० पौण्ड दानेदार बोरिक अम्ल देने से लाभ होता पाया गया है। सेव के वृक्ष पर बोरिक अम्ल के छिड़कने से उसके कीड़े मर जाते हैं। झिंगुर भी सुहागा के विलयन से मर जाता है। जिस मिट्टी में आवश्यकता से अधिक चूना डाला गया है उसमें बोरन की कमी होती है। कमी का कारण बोरन का अवक्षेपण नहीं है वरन् बोरन के संचालन का रुक जाना है। अतः केवल बोरन की कमी से ही बोरन का सम्ब्रन्ध नहीं है पर मिट्टी की प्रकृति से भी इसका घना सम्बन्ध समझा जाता है।

मिट्टी में बोरन सिलिकेट के रूप में स्थिरीकृत नहीं होता। क्योंकि ऐसा स्थिरीकृत बोरन स्थायी रूप से अप्राप्य नहीं होता। अम्लीकरण से यह प्राप्य रूप में आ जाता

है। कुबोटा (Kubota, १९४८) का अनुभव है कि हलकी मिट्टी में ६ मास में बोरन केवल २४ इंच की गहराई तक ही पहुँचता है। यदि चूने वाली मिट्टी का पी एच ६·५ या ७·० कर दिया जाय तो उससे संकर्षण द्वारा बोरन की क्षति नहीं होती।

उर्वरक के रूप में साधारणतया सुहागे का उपयोग होता है। पर जो प्रयोग पोटैसियम बोरेट, बोरिक अम्ल और महीन पीसे हुए बोरोसिलिकेट से हुए हैं उनसे भी सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त हुए हैं। कुछ परिस्थितियों में अपेक्षया अविलेय खनिज, उलेक्साइट और कोलेमेनाइट का भी सामान्य रूप से व्यवहार हो सकता है। बोरन उर्वरक का व्यवहार अकेले अथवा अन्य उर्वरकों के साथ मिलाकर किया जा सकता है।

अनेक फसलों और अनेक मिट्टियों के लिए अन्य उर्वरकों के साथ १० से ५० पौण्ड तक सुहागा प्रयुक्त हो सकता है। पर तम्बाकू के लिए प्रति एकड़ के लिए एक पौण्ड और अन्य फसलों के लिए २ से ५ पौण्ड सन्तोषप्रद समझा जाता है। प्रति एकड़ १५ पौण्ड के व्यवहार से शीत मटर, किरमिजी सेंजी, लाल सेंजी और सफेद सेंजी में नुकसान होते देखा गया है। अच्छे परिणाम के लिए एक बार के स्थान में दो या तीन बार करके डालना अच्छा समझा जाता है। खेतों में बोरन-उर्वरक का डालना सावधानी से होना चाहिए। अच्छी उपज के लिए इसकी बड़ी अल्प मात्रा की ही जरूरत पड़ती है। अधिक मात्रा से लाभ के स्थान में हानि होने की अधिक संभावना है।

भारत की मिट्टी में बोरन की उपस्थिति के संबन्ध में अभी तक विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ है। इसका अध्ययन बड़ा आवश्यक है और शीघ्र होना चाहिए। जहाँ की मिट्टी में बोरन की कमी हो वहाँ ही बोरन-उर्वरक का व्यवहार करना चाहिए।

लोहा

बहुत दिनों से मालूम है कि पौधों की वृद्धि के लिए लोहा एक अत्यावश्यक तत्त्व है। यदि पौधों को लोहा न मिले तो उनमें 'पीतता' (chlorosis) का रोग हो जाता है। पीतता का होना हरे क्लोरोफिल के अभाव का सूचक है। क्लोरोफिल में लोहा नहीं होता पर लोहे के अभाव में क्लोरोफिल नहीं बनता है। क्लोरोफिल के बनने में लोहे का कार्य उत्प्रेरण का होता है। जल या बालू संवर्धन में जो पौधे उगाये गये हैं उनसे लोहे के कार्य का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। फ्रांसीसी रसायनज्ञ ग्रिस (Gris) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सन् १८४४ ई० में बताया था कि लोहे के अभाव में पीतता का रोग होता है। पीतता का निवारण लोहे के उपयुक्त लवणों से हो जाता है। पीतता

पहले पौधों के छोटे-छोटे नये पत्तों में होती है । देखने में यह दोष ऐसा ही लगता है जैसा कि नाइट्रोजन या मैगनीशियम के अभाव में होता है। पर लोहे के अभाव से होनेवाली पीतता बड़ी तेजी से बढ़ती है। यह पीतता अनेक फल और छाया-वृक्षों में देखी जाती है। नाशपाती, सेव, बिही, (quince), सत्तालू, आलू-बुखारा, जामुन (prune), बेर, चेर, अखरोट, नारंगी और नीबू के पेड़ों में लोहे के अभाव में पीतता रोग देखा जाता है। फ्रांस में अंगूर में, अमेरिका में ईख में और हवाई टापुओं में अनन्नास में पीतता देखी गयी है। बेनेट (Bennette, १९३१) ने चूर्णीय मिट्टी में उगे फल के पेड़ों में पीतता देखी है और जौनसन (१९१६) ने मैंगनीज डाइ-आक्साइड के अतिरेक वाली मिट्टी में उगे अनन्नास में पीतता देखी है।

लोहे का कार्य

पौधों के उपापचय में लोहे का क्या हाथ है, यह मालूम नहीं है। बेनेट (१९४५) ऐसा समझते हैं कि लोहे के अभाव में नाइट्रोजन और लोहा दोनों के उपापचय में कुछ गड़बड़ी (अव्यवस्था) हो जाती है और इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ है। एक बार जब लोहे का स्थिरीकरण हो जाता है तब फिर वह वहाँ से हटकर दूसरे स्थल पर नहीं जाता। जो पौधे अधिक तीव्र प्रकाश में उपजते हैं उनको अधिक लोहे की जरूरत होती है, बनिस्बत उन पौधों के जो कम प्रकाश में उपजते हैं। चूर्णीय मिट्टी की अपेक्षा अचूर्णीय मिट्टी में उपजनेवाले पौधों में लोहे की मात्रा अधिक पायी जाती है। अधिकांश पौधे लोहे को अपेक्षया कम मात्रा में ही ग्रहण करते हैं। यदि पौधों में लोहे का अभाव हो जाय तो उसकी पूर्ति उतनी सरल नहीं है जितनी अन्य तत्त्वों की पूर्ति सरल होती है।

लोहे की हीनता

प्रायः सभी मिट्टियों में लोहे की मात्रा आवश्यकता से अधिक रहती है। तो भी कुछ मिट्टियों, कुछ अम्लीय और अधिकांश क्षारीय मिट्टियों में लोह-हीनता पायी जाती है। यह लोह-हीनता फल के वृक्षों में, जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है, कैलिफोर्निया और फ्लोरिडा में विशेष रूप से देखी गयी है। यदि भूमि के ऊपर की छः इंच मिट्टी को लें तो प्रति एकड़ लोहे की मात्रा २० टन या इससे अधिक रहती है।

मिट्टी में इतना लोहा रहते हुए भी कुछ खेतों के पौधों में लोह-हीनता देखी जाती है, इसका कारण लोहे की दशा है। लोहा दो रूपों में मिट्टी में रहता है। एक द्विबन्धक फेरस लवण के रूप में और दूसरा त्रिबन्धक फेरिक लवण के रूप में। द्विबन्धक फेरस

लवण ही पौधों को प्राप्य है, त्रिबन्धक फेरिक लवण नहीं। यदि मिट्टी क्षारीय है और वातावरण आक्सीकरण, तो लोहा त्रिबन्धक रूप में रहता है। यदि मिट्टी अम्लीय है और वातावरण अवकरण, तो लोहा द्विबन्धक रूप में रहता है। द्विबन्धक रूप में न रहने के कारण मिट्टी में लोहा रहते हुए भी वह पौधों को प्राप्य नहीं होता और पौधों में लोह-हीनता के लक्षण देख पड़ते हैं। आक्सीकरण वातावरण में द्विबन्धक लोहा डालने से भी दशा इस कारण नहीं सुधरती कि लोहा त्रिबम्धक रूप में बदल जाता है। फेरस लवण के विलयन का ऐसी दशा में छिड़कना भी लाभप्रद इस कारण नहीं होता कि छिड़कने से पौधों के पत्ते क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

मिट्टी में कैलसियम और मैंगनीज के अतिरेक से भी लोह-हीनता होती है। बलुआर मिट्टी में चूना या चूना-पत्थर के डालने से प्राप्य लोहे की मात्रा कम हो जाती है। मैंगनीज डाइ-आक्साइड के अतिरेक में लोहा फेरिक लवण में आक्सीकृत हो जाता है। अतः कैलसियम और मैंगनीज के कारण मिट्टी का लोहा स्थिरीकृत हो जाता है। यदि पौधे को लोहा न मिले तो पुराने पत्तों में संचित लोहा नये पत्तों में स्थानान्तरित नहीं होता। इस कारण नये पत्तों में लोह-हीनता के लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

लोह-हीनता निवारक

यदि लोहे के अभाव में पौधों में पीतता रोग हो जाय तो उसका निराकरण कैसे हो, यह महत्त्व का प्रश्न है। ऊपर कहा गया है कि लोहे के फेरस लवणों को ही पौधे ग्रहण कर सकते हैं। यदि फेरस लवण को मिट्टी में डाला जाय तो मिट्टी की दशा से सम्भव है कि फेरस लवण फेरिक लवण में परिणत हो जाय और तब वह फिर पौधों को ग्राह्य नहीं होगा। यदि लवणों के विलयन को पौधों पर छिड़का जाय तो उससे पत्ते क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। हवाई में मैंगनीजवाली मिट्टी में प्रति सप्ताह अथवा दस-दस दिनों पर प्रति एकड़ ५० से १०० गैलन ५ प्रतिशत फेरस सल्फेट का विलयन वास्तव में प्रयुक्त हुआ है और उससे लोह-हीनता का सफल निवारण हुआ है। ऐसा छिड़काव सस्ता भी होता है पर सब पौधों में इसका व्यवहार नहीं हो सकता।

ऐसा देखा गया है कि बड़े-बड़े फल या छाया-वृक्षों में लोहे की कँटिया ठोकने से पीतता का निवारण हो जाता है। पीतता से ग्रस्त पेड़ की एक शाखा में कँटिया ठोकने से उस शाखा की पीतता दूर हो गयी है, जब कि उसी पेड़ की दूसरी शाखा में जिसमें कँटिया नहीं ठोकी गयी है, पीतता ज्यों की त्यों बनी हुई थी। कुछ लोगों ने पेड़ के स्तम्भ में छोटे-छोटे छेद कर उनमें फेरस लवण भरकर पीतता दूर करने का सुझाव (१९३१) दिया है।

स्टीवर्ट और लियोनार्ड (Stewart and Leonard) ने पीतता दूर करने की एक दूसरी विधि बतायी है। इस विधि से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। यह विधि है लोहे के लवणों का पेड़ में इंजेक्शन देना। इंजेक्शन अधिक लाभप्रद और व्यवहारिक सिद्ध हुआ है।

खेतों में बेसिक स्लैग का उपयोग भी लोह-हीनता निवारण में सफल सिद्ध हुआ है। यहाँ लोहे के साथ फास्फरस भी पौधों को प्राप्त होता है।

कुछ लोगों ने लोहे के सिट्रेट का व्यवहार अच्छा बतलाया है। पर मिट्टी में अणु-जीवों के द्वारा सिट्रेट आयन आक्रान्त होने से सिट्रेट के नष्ट हो जाने का उल्लेख किया है। इस कारण उर्वरक के रूप में उपयोग के लिए सिट्रेट ठीक नहीं समझा जाता। यदि लोहे का कोई दूसरा ऐसा कार्बनिक हो जो अणुजीवों से आक्रान्त न हो तो वह कहीं अच्छा होगा। इस दृष्टि से लोहे के अनेक कार्बनिक यौगिकों का अध्ययन हुआ है। बीस ऐसे यौगिकों के साथ स्टीवर्ट और लियोनार्ड ने प्रयोग करके देखा कि इनमें सबसे अधिक सन्तोषप्रद परिणाम लोहे के एक पेचीदा यौगिक से प्राप्त हुआ है जो लोहा और एथिलीन डाइ-एमिन टेट्रा-एसिटिक एसिड, संक्षिप्त नाम ई-डी-टी-ए (E D T A) से बना है। यह यौगिक स्थायी होता है और मिट्टी से इसका विच्छेदन या विनाश नहीं होता। ऐसे पदार्थों को एक विशिष्ट नाम 'चीलेटिंग एजेन्ट' (chelating agent, 'पंजीकारक') दिया गया है।

यदि चूने के अतिरेक से लोह-हीनता हुई है तो उसका निवारण किसी अम्ल-जनक उर्वरक के डालने से होता है। इससे चूना हट जाता और लोह-लवण फिर ऐसे रूप में प्राप्त होता है जिसे पौधे ग्रहण कर सकते हैं।

कभी-कभी मैंगनीज विषालुता के निवारण के लिए प्रतिविष के रूप में भी लोहा प्रयुक्त होता है।

लोह-यौगिकों की विषालुता

मिट्टी में कुछ ऐसे सूक्ष्म जीव रहते हैं जो फेरिक लवणों को फेरस लवणों में परिणत कर सकते हैं। ये जीव अम्लीय मिट्टी में अधिक रहते हैं। इनसे जो लवण बनते हैं वे फेरस सल्फेट अथवा फेरस बाइ कार्बोनेट होते हैं, ये कुछ पौधों के लिए विषैले होते हैं। यदि भूमि के पानी को पूर्ण रूप से निकाल दिया जाय तो ये जीव निकल जाते अथवा नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार बने विषैले लवणों को निकाल डालना आवश्यक होता है। यह काम या तो पानी के निकास से अथवा वातन द्वारा किया जाता है। वातन से फेरस लवण आक्सीकृत हो फेरिक लवण बनकर निर्दोष हो जाते हैं। कुछ भूमि में मैंगनीज

के अभाव में लोह-विषालुता देखी जाती है। टौमस का मत है कि विषालुता का कारण लोहे की वास्तविक मात्रा या प्रकृति नहीं है वरन् लोहा और मैंगनीज का परस्पर अनुपात है।

ताँबा

अपेक्षया थोड़े समय से ही पता लगा है कि पौधों की वृद्धि के लिए ताँबा एक आवश्यक तत्त्व है। पौधों में ताँबा पाया जाता है। अधिकांश पौधों में ताँबे की मात्रा एक लाख भाग में १० भाग रहती है और अधिकांश खेतों की मिट्टियों में प्रति लाख में पाँच भाग ताँबा रहता है। कुछ पौधों, जैसे छत्रक (mushrcom) और कुछ बीजों में ताँबे की मात्रा बहुत अधिक पायी जाती है। तांबा मिट्टी के कोलायड में बड़ी शीघ्रता से अवशोषित हो जाता है। चूँकि ताँबा आयन दुर्बल आयन है, अधिकांश अन्य धनायन से यह सरलता से विस्थापित हो जाता है।

मिट्टी में ताँबा पाया जाता है। कुछ मिट्टियों, विशेषतः कार्वनिक मिट्टियों में, ताँबे की मात्रा कम रहती है और कुछ में कुछ अधिक। अमेरिका के कुछ राज्यों की शाक-भाजियों में ताँबे की मात्रा कम पायी गयी है; विशेषतः जीर्णकी और प्रजीर्णकी मिट्टियों में उपजी शाक-भाजियों में। फ्लोरिडा की अम्लीय ब्लुआर मिट्टी में मैगनी-शियम के साथ-साथ ताँबे की कमी देखी गयी है। कैलिफोर्निया, हालैण्ड और आस्ट्रेलिया की मिट्टियों में भी ताँबे की कमी पायी गयी है। यह कमी विशेष रूप से अम्लीय जीर्णकी में देखी जाती है जिसका कृष्यकरण (reclamation) हाल में हुआ है। ताँबे की कमी से ऐसी मिट्टी के पौधों में एक रोग देखा जाता है जिसका नाम 'कृष्यकरण रोग' दिया गया है। इस रोग में पौधे के पत्तों के अग्रभाग (अन्तिम किनारे) नष्ट हो जाते हैं और बीज का उत्पादन कम हो जाता है। ताँबे की कमी वाले पौधों के खाने से पशुओं में भी कुछ रोग देखे गये हैं। सन् १९२५ में रिपोर्ट मिली थी कि प्रति एकड़ भूमि की मिट्टी में ५० से ६० पौण्ड तूतिया डालने से रोग पर नियंत्रण हो जाता है।

दक्षिण आस्ट्रेलिया की क्षारीय मिट्टी में भी सीरियल में ऐसे ही रोग देखे गये थे। इन रोगों का नियंत्रण भी खेतों में ताँबा डालने से हो गया था। दक्षिण अफ्रीका में खूबानी (apricot), सत्तालू (peaches) और बेर (plum) में पीतता (Chlorosis) का रोग पाया गया था। इसका नियंत्रण भी ताँबे से हो गया। नीबू के पेड़ों में एक रोग देखा गया था। इस रोग को डाई-बैक (die-back) धीरे धीरे मरने का 'मारी रोग' कहते हैं। इस रोग का भी नियंत्रण ताँबे से हो गया।

अमेरिका की मिट्टियों में ताँबे की मात्रा होम्स (१९४३) और डेविस (१९४८) द्वारा निर्धारित किये जाने पर पता लगा कि अनेक मिट्टियों में ताँबे की कमी रहती है। अधिकांश भूमि की मिट्टियों में ताँबे की मात्रा प्रति एकड़ ५ से १२५ पौण्ड पायी गयी। प्रति लाख भाग ताँबे की मात्रा ०·५ से २·७ भाग तक, औसत मात्रा १·५ भाग पायी गयी है। पौधे मिट्टी से ताँबे को ग्रहण करते हैं। पौधों से यह पशुओं में जाता है। पशुओं द्वारा उस का स्वांगीकरण होता है। लोहे के स्वांगीकरण में ताँबे का विशेष हाथ समझा जाता है। कुछ समुद्री जीवों में बड़ी मात्रा में ताँबा पाया जाता है।

पौधों के पोषण में ताँबे का क्या हाथ है, इसका ठीक-ठीक पता अभी नहीं लगा है। होआगलैण्ड (Hoagland, १९४४) का सुझाव है कि क्लोरोफिल के संश्लेषण में ताँबे का हाथ है। ताँबे की कमी से टमाटर का पौधा और फल छोटे-छोटे होते हैं और फल पर आनील हरित रंग चढ़ जाता है। ताँबे की कमी से प्याज का रंग कुछ पीला हो जाता है और उसमें दृढ़ता या कठोरता नहीं होती। नीबू के पेड़ों में 'डाई-बैक' का रोग हो जाता है। जैक और शेरबैटोल (Jack and Scherbatoll, १९२४) का विचार है कि ताँबे का प्रधान कार्य पौधों और मिट्टियों में आक्सीकरण का सम्पादन करना है। मैक्मुर्ट्रे और रोबिन्सन (McMurtrey and Robinson, १९३८) का विचार है कि ताँबे की खाद से लाभ होने का कारण जीर्णकी मिट्टी में विषैले सल्फाइड का अवक्षेपण है। विलिस और पिलैण्ड (Willis and Piland, १९३४, १९३८) का मत है कि ताँबे से पौधों को पोषण नहीं प्राप्त होता वरन् उससे लोहा और सम्भवतः मैंगनीज की प्राप्यता घटकर मिट्टी का सुधार होता है। सोमर (Sommer, १९३४) का कथन है कि जिस मिट्टी में ह्यूमस अधिक होता है उसमें ताँबे की कमी के दूर करने में आवश्यकता से अधिक जरूरत पड़ती है। कुछ प्रजीर्णकी मिट्टियों में तूतिया के डालने से प्याज की अकाल मृत्यु रोकी जा सकती है।

मैक्मुर्ट्रे और रोबिन्सन (१९३८) ने देखा है कि ताँबे की कमी से तम्बाकू के ऊपर के पत्तों में ओज (Vigour) का अभाव होता और उनको म्लान या मुरझान का रोग (Wilt) हो जाता है। ताँबे की कमी के अनुपात में ही उनकी वृद्धि कम हो जाती है। कुछ पौधों में पीतता का रोग हो जाता है। नाइश (Neisch, १९३९) ने देखा है कि ताँबे का सबसे अधिक संचय हरिम कणक (क्लोरोप्लास्ट) में होता है।

ताँबे की कमी का प्रभाव सब मिट्टियों में और सब पौधों पर एक सा नहीं पड़ता। कुछ मिट्टियों और कुछ पौधों पर प्रभाव विशेष रूप से, कुछ पर कम और कुछ पर बिल्कुल नहीं अथवा बहुत थोड़ा पड़ता है। जिस मिट्टी में प्रति लाख भाग में ताँबे की मात्रा ०·४

भाग से अधिक रहती है उस मिट्टी में ताँबे की कमी के लक्षण कदाचित् ही देखे जाते हैं। कार्बनिक मिट्टी में ताँबे की कमी साधारणतया देखी जाती है। मिचिगन (Michigan) ने कुछ फसलों पर तूतिया के प्रभाव का अध्ययन कर निम्नलिखित परिणाम प्राप्त किया है :—

विभिन्न फसलों पर तूतिया का प्रभाव

तूतिया का प्रबल प्रभाव	तूतिया का सामान्य प्रभाव	तूतिया का सामान्य से कम प्रभाव	अत्यल्प प्रभाव या बिल्कुल नहीं
सोआ	जौ	बन्द गोभी	सेम
सलाद	बाजरा	मैन्जेल	सेलेरी
प्याज	फूलगोभी	शलजम	मकई
पालक	गाजर	आलू	राई
सूदानी घास	जई	चुकन्दर (चीनीवाला)	स्वीडन शलजम (रुटबागा)
गेहूँ	मूली	टमाटर	पुदिना (spearmint)
	सूर्यमुखी		
	चुकन्दर (खानेवाला)		

ताँबा-उर्वरक

यह निश्चित है कि पौधों को तांबे की जरूरत पड़ती है। किसी पौधे का कम ताँबा से काम चल जाता है और किसी को अधिक ताँबा चाहिए। मिट्टी में साधारणतया ताँबा रहता है, किसी में अधिक और किसी में कम। जीर्णकी, प्रजीर्णकी, और कार्बनिक मिट्टियों में ताँबा कम रहता है। यदि पौधों को पर्याप्त ताँबा न मिले तो वे ठीक-ठीक नहीं बढ़ते, उनमें बीज पूरा नहीं लगता और उनमें कुछ रोग 'कृष्यकरण रोग', 'मारी रोग' हो जाते हैं। यह देखा गया है कि कुछ किस्म की मिट्टी में ताँबा-उर्वरक देने से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है, उनका रोग हट जाता और बीज अधिक बनते हैं।

अतः कुछ खेतों और कुछ फसलों के लिए ताँबा उर्वरक का डालना आवश्यक होता है। फ्लोरिडा में प्रति एकड़ ७५ से २०० पौण्ड तूतिया देने से उपज अच्छी होती हुई देखी गयी है। वहाँ नारंगी और नीबू के पेड़ों की खेती में प्रति एकड़ ५० से ७५ पौण्ड डालने से उनका 'मरी' रोग हट जाता है। सलाद के खेतों में प्रति एकड़

२५ से ५० पौण्ड तूतिया देने से सलाद की उपज कार्बनिक मिट्टी में अच्छी होती है। अन्य उर्वरकों के साथ प्रति एकड़ पाँच पौण्ड तूतिया के उपयोग से मकई के भुट्टे में ५ से ४० प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है।

मिट्टी में कितना ताँबा-उर्वरक डालना चाहिए कि पौधों की उपज अधिकतम हो, यह मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करता है। अधिक ताँबे के उर्वरक से पौधों पर विषैला प्रभाव पड़ता है। यह विषैला प्रभाव अम्लीय मिट्टी पर विशेष रूप से देखा जाता है। सोयाबीन की फसल में प्रति एकड़ ७५ पौण्ड तूतिया देने से अनेक लोगों ने (१९३७) विषैला प्रभाव देखा है। विलयन संवर्धन (solution culture) में पौधों के उपजाने पर लिपमैन और मैक्कीनिंग (Lipmann and Mackining, १९३१) ने फ्लक्स और जौ पर प्रति करोड़ भाग में एक भाग तूतिये से स्पष्ट विषैला प्रभाव देखा है।

ताँबे के उर्वरकों में सबसे अधिक उपयोगी लवण तूतिया है। अन्य लवणों से यह सस्ता भी होता है। साधारणतया उर्वरक के रूप में इसीका उपयोग होता है। इसे पीसकर महीन चूर्ण बनाकर या अन्य उर्वरकों के साथ मिलाकर खेतों में डालना अच्छा होता है। इसका विलयन भी पौधों पर छिड़का जा सकता है।

ताँबा-उर्वरकों को फासफोरीय उर्वरकों के साथ मिलाकर डालना ठीक नहीं है, क्योंकि इससे ताँबे का फास्फेट बन सकता है और यह फास्फेट जल में अधिक विलेय नहीं होता और पौधों को ताँबा तब शीघ्र प्राप्य नहीं होता। गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, घूरे की खाद अथवा अमोनियम खाद के साथ मिलाकर इस्तेमाल करने से कोई हानि नहीं है।

ताँबा-उर्वरक के व्यवहार में सावधानी रखना बहुत आवश्यक है, ताकि उसका विषैला प्रभाव पौधों पर न पड़े। साधारणतया प्रति एकड़ भूमि में १५ से २० पौण्ड तूतिया का ही उपयोग निरापद है। इससे अधिक उपयोग के लिए अधिक सोच-विचार और अधिक सावधानी की जरूरत है।

मैंगनीज

शील (Scheele) ने सन् १७७४ ई० में पहले-पहल बतलाया कि सौंफ (aniseed) में मैंगनीज़ रहता है। उसके बाद लेक्लेयर (Leclere) ने अनेक पौधों और मिट्टियों का विश्लेषण कर देखा कि प्रायः सब ही पौधों और मिट्टियों में मैंगनीज़ रहता है। सन् १९२६ ई० में मैक्हार्ग (McHargue) ने जो प्रयोग किये उनसे स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि पौधों की वृद्धि के लिए मैंगनीज़

अत्यावश्यक है। मैक्हार्ग (१९४५) का मत है कि फलीदार पौधों में मैंगनीज़ की मात्रा अल्पतम रहती है और घास-पातों में अधिकतम, यद्यपि मैंगनीज़ की हीनता का सबसे अधिक प्रभाव फलीदार पौधों पर ही पड़ता है। अनेक अन्वेषकों का मत है कि पौधों के पत्तों में मैंगनीज़ सबसे अधिक मात्रा में रहता है। आस्ट्रेलिया के
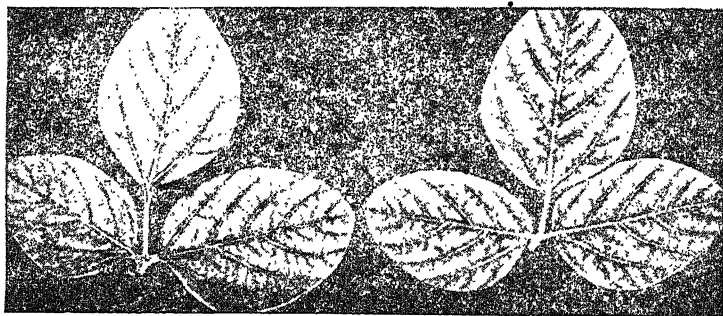
चित्र ४०—सोयाबीन के पत्तों पर मैंगनीज़ की कमी के चिन्ह

जंगलों के पेड़ों के पत्तों के अन्वेषण से पता लगता है कि अम्लीय मिट्टी में उगे पेड़ों के पत्ते की राख में मैंगनीज़ की मात्रा आधा से एक प्रतिशत पायी गयी है। विभिन्न फसलों में मैंगनीज़ की मात्रा विभिन्न रहती है। न्यूज़ीलैण्ड के चरागाहों के पत्तों में लोहे की अपेक्षा मैंगनीज़ अधिक पाया जाता है यद्यपि मिट्टी में लोहे का अभाव नहीं रहता। इससे प्रकट होता है कि कुछ सीमा तक लोहे का स्थान मैंगनीज़ ले सकता है और कुछ पौधे लोहे के स्थान में मैंगनीज़ को ग्रहण कर सकते हैं।

मिट्टी में मैंगनीज़

प्रायः सब ही मिट्टियों में मैंगनीज पाया जाता है। मैंगनीज़ जलीयित आक्साइड पाइरोलुसाइट (pyrolusite, $Mn\ O_2$), रोडोनाइट (rhodonite, $Mn\ SiO_3$) और रोडोक्रोसाइट (Rhodochrosite, $MnCo_3$) के रूपों में रहता है। मिट्टी में मैंगनीज़ की मात्रा साधारणतया बड़ी अल्प रहती है, पर उसमें वह ऐसे रूप में रहता है कि पौधे उसे ग्रहण कर सकते हैं और बाहर से देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल बलुआर या चूर्णीय मिट्टी में मैंगनीज की मात्रा कम रहती है। यदि मिट्टी में मैंगनीज़ की मात्रा बहुत अधिक हो तो अत्यधिक वातन (aeration) से आक्सीकरण होकर वह अविलेय रूप में परिणत हो सकता है, तब बलुआर या दोमट मिट्टी के पौधों

में मैंगनीज़ की कमी हो सकती है। पौधों के लिए मैंगनीज़ प्राप्य हो इसके लिए आवश्यक है कि मैंगनीज़ या तो कार्बनिक रूप में रहे अथवा ऐसे अकार्बनिक रूप में रहे जिसका अवकरण सरलता से हो सके। साधारणतया मैंगनीज़ का मैंगेनस (Manganous) लवण ही पौधों को प्राप्य होता है; मैंगेनिक (Manganic) लवण प्राप्य नहीं होता। मिट्टी में मैंगेनस और मैंगेनिक लवणों के बीच साम्य रहना चाहिए।

मैंगनीज़ की प्राप्यता मिट्टी की अम्लता या क्षारीयता, मिट्टी में चूने और फास्फेट की उपस्थिति, वायु के ताप, मिट्टी की प्रकृति और मिट्टी में कुछ आक्सीकरण तथा अवकरण पदार्थों की उपस्थिति पर निर्भर करती है। क्षारीय मिट्टी में मैंगनीज़ की प्राप्यता इस कारण कम होती है कि वहाँ आक्सीकरण-अवस्था रहती है। कुछ मिट्टी में ऐसे जीवाणु (bacteria) रह सकते हैं जो मैंगनीज़ को अविलेय बनाकर पौधों के लिए अप्राप्य कर दें। यह भी सम्भव है कि मिट्टी के ताँबे की उद्दीपक क्रिया से मैंगनीज़ लवणों का आक्सीकरण होकर मैंगनीज़ अविलेय हो जाय।

कुछ मिट्टी में मैंगनीज़ की मात्रा ८ से १० प्रतिशत पायी गयी है। श्राइनर (Schreiner, १९३०) की रिपोर्ट है कि मिट्टी में मैंगनीज़ की अत्यधिक मात्रा से अनन्नास (Pine apple) के उपजाने में कठिनता होती है। हेस्टर (Hestor) ने देखा है कि जिस मिट्टी में मैंगनीज़ कम रहता है उस मिट्टी के टमाटर में विटामिन 'सी' कम पाया गया है।

मैंगनीज़ का प्रकार्य (function)

पौधों पर मैंगनीज़ का क्या प्रकार्य होता है इसका स्पष्ट ज्ञान हमें नहीं है। ऐसा सुझाव दिया गया है कि प्रकाश-संश्लेषण में इसका कुछ हाथ है जिससे कार्बन का स्वांगीकरण (assimilation) होता है। सम्भवतः यह पौधों में आक्सीकरण-प्रकिण्व (enzyme, oxidase) 'आक्सिडेस' की सक्रियता को बढ़ाता है। ऐसा मालूम होता है कि पौधों में लोहे के आक्सीकरण का यह नियंत्रण भी करता है ताकि पौधों के लिए लोहा विषैला न हो जाय। एक सुझाव यह भी है कि नाइट्रेट के अवकरण में जो प्रकिण्व कार्य करते हैं उसमें मैंगनीज़ का कुछ हाथ है। मैंगनीज़ का प्रभाव पौधों पर विभिन्न प्रकार का होता है। कुछ पौधों पर इससे उद्दीपन प्राप्त होता है और कुछ पर इससे नुकसान होता है। जितने मैंगनीज़ से कुछ पौधे बढ़ते, फूलते और फलते हैं उतने ही मैंगनीज से कुछ पौधे क्षतिग्रस्त हो नष्ट हो जाते हैं।

यदि विलेय मैंगनीज़ लवण की मात्रा बहुत अधिक हो तो वह पौधों के लिए विषाक्त

भी हो सकता है। यदि मिट्टी का पी एच ७·५ से ऊपर हो तो ऐसी मिट्टी का मैंगनीज़ अप्राप्य होता है। ६·५ से ८·५ पी एच के बीच मैंगनीज़ की विलेयता अल्प होती है।

मिट्टी में पर्याप्त मैंगनीज़ रहने पर भी यदि मिट्टी उदासीन है अथवा अल्पक्षारीय है तो ऐसी मिट्टी के पौधों में मैंगनीज-हीनता से अपोषण (mal-nutrition) हो सकता है। जिस मिट्टी में बहुत चूना डाला गया है उस मिट्टी में ऐसी मैंगनीज़-हीनता देखी जाती है। चूने के डालने से पी एच बढ़ जाता है और यदि वह ६·५ या इससे ऊपर हो जाय तो उससे मैंगनीज़ की विलेयता घट जाती है। क्षारीय होने से मैंगेनस लवण मैंगेनिक लवण में परिणत हो जाता है, जिससे विलेयता कम होकर मैंगनीज़ पौधों को प्राप्त नहीं होता। पर मैंगेनस लवण के कारण मैंगनीज़ का संकर्षण सरलता से होता है।

अनेक अन्वेषकों के प्रयोगों पर आधारित यह स्पष्ट मत है कि मिट्टी में चूना देने से सक्रिय मैंगनीज़ की मात्रा कम हो जाती है। शर्मन और फुजिमोटो (Sherman and Fujimoto, १९४७) ने देखा है कि प्रति एकड़ भूमि में २ टन बुझा चूना डालने से प्राप्य मैंगनीज़ की मात्रा पंचमांश ($\frac{1}{5}$) हो जाती है। प्रबल अम्लीय मिट्टी में इतना चूना डालने से उसकी प्रतिक्रिया क्षारीय हो जाती है और तब मैंगनीज़ की हीनता का स्पष्ट अनुभव होता है। मैंगनीज़-हीनता ऐसी मिट्टी में भी देखी गयी है जिसमें बहुत अधिक मात्रा में राख डाली गयी है, क्योंकि राख में चूना अधिक रहता है।

मैंगनीज़-हीनता के लक्षण

मैंगनीज़-हीनता से अनेक पौधे रोग-ग्रस्त हो जाते हैं। पौधों में एक रोग होता है जिसे 'ग्रे स्पौट' या 'ग्रे स्पेक' (grey spot or grey speck) ('धूसर धब्बा') कहते हैं। यह रोग पत्तों में होता है। पुराने पत्तों पर हरे रंग का धब्बा पड़ जाता है। बहुधा धब्बों के छोरों पर लालिमा लिये (reddish) आराग (tint) होता है। धब्बा धीरे-धीरे बढ़ता और अन्त में पत्ता मरकर गिर जाता है। जई में यह रोग विशेष रूप से देखा गया है। पालक में एक रोग देखा गया है जिसे 'पीतरोग' (yellow disease) कहते हैं। मटर में एक रोग होता है जिसे 'मार्श स्पौट' रोग कहते हैं। इन सब रोगों में पत्तों के सिरों के बीच हलके हरे, पीले और लाल रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं। ये सब रोग मैंगनीज़-हीनता के कारण होते हैं। इसी प्रकार के इससे मिलते जुलते अन्य रोग भी रोग-कीटाणुओं के कारण हो सकते हैं। अतः यह

स्मरण रखना चाहिए कि ये रोग मैंगनीज़-हीनता के कारण हैं अथवा रोग के कीटाणुओं के कारण। आलू के पत्तों के सिरे पर भूरे रंग का धब्बा पड़ जाता है और यदि उपाय न किया जाय तो सारा पौधा भूरे रंग का होता जाता है। चुकन्दर और मैनगोल्ड (mangold) के पत्ते ऐंठकर त्रिभुजाकार हो जाते हैं। कुछ पत्तों में सिरान्तर
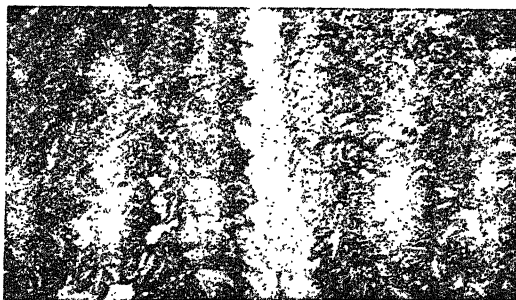
चित्र ४१—पालक पर मैंगनीज का प्रभाव

(बायीं ओर के पौधों में मैंगनीज़ डाला गया है, दायीं ओर नहीं डाला गया।)

रक्तपीतता हो जाती है। ये सब रोग मैंगनीज़-हीनता के कारण ही होते हैं। यह देखा गया है कि मैंगनीज़-हीनता के इन रोगों में प्रति एकड़ भूमि में २० पौण्ड मैंगनीज़ लवण का विलयन छिड़कने से अथवा २५ पौण्ड ठोस लवण को जड़ों के पार्श्व में देने से पौधे रोगमुक्त हो जाते हैं।

मैंगनीज़ का विषैला प्रभाव अम्लीय मिट्टी में उगे कुछ पौधों पर देखा गया है। पौधे रोगग्रस्त हो जाते हैं। अनन्नास का रोग 'अनन्नास पीत', तम्बाकू का रोग 'रक्तपीतता', कपास का रोग 'सिकुड़न रोग (crinkle disease) मैंगनीज़ के अतिरेक से होते हैं। मैंगनीज-हीन मिट्टी पर उगे घास-पातों को पशुओं को खिलाने से उनकी हड्डी ठीक से नहीं बनती, उनमें भी कुछ रोग हो जाते हैं।

पाइपर (Piper १९३१) का मत है कि बीज बोने से पहले यदि खेतों में कुछ दिनों तक पानी भर रखा जाय तो खेतों का अप्राप्य मैंगनीज़ प्राप्य रूप में परिणत हो जाता है। इसका कारण यह समझा जाता है कि पानी में डूबे रहने से मैंगनीज़ का अवकरण होकर मैंगेनस लवण बनता है जिसे पौधे शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। मिट्टी की प्रतिक्रिया के बदलने से भी क्षारीय मिट्टी के अम्लीय करने से, यही कार्य होता है। यदि मिट्टी में गन्धक अथवा अन्य किसी अम्ल-जनक पदार्थ को डालें तो उससे भी मिट्टी

की प्रतिक्रिया अम्लीय हो जाती है। यदि मिट्टी में मैंगनीज़ बहुत अधिक मात्रा में हो तो पलवार रहने से उसका निराकरण हो जाता है, क्योंकि इससे मैंगनीज़ डाइ-आक्साइड जलीयित दशा में आ जाता है जिससे मैंगनीज़ की विषालुता कम हो जाती है।

मैंगनीज़ उर्वरक

यदि मैंगनीज-हीनता के कारण पौधे रोग-ग्रस्त हो गये हों तो ऐसे खेतों में मैंगनीज़ उर्वरक डालने से रोगों का निवारण हो जाता है। रोग-निवारण के लिए मैंगनीज़ के कई लवण इस्तेमाल हो सकते हैं। साधारणतया मैंगनीज़ सल्फेट, क्लोराइड, कार्बोनेट, नाइट्रेट और डाइ-आक्साइड इस्तेमाल हो सकते हैं, पर सामान्यतः मैंगनीज़ सल्फेट ही इस्तेमाल होता है। रोग-निवारण के लिए प्रति एकड़ भूमि में २० से ६० पौण्ड मैंगनीज़ सल्फेट के उपयोग की लोगों ने सिफारिश की है, पर अधिक क्षारीय मिट्टी में इससे अधिक, प्रति एकड़ १०० पौण्ड तक और अम्लीय मिट्टी में कमकी आवश्यकता पड़ती है। फ्लोरिडा की मार्ल मिट्टी में २०० पौण्ड तक डालने की सिफारिश हुई है। कार्बनिक मिट्टी में अधिक मैंगनीज़ सल्फेट, १०० से ४०० पौण्ड तक, डालने की शर्मन और हार्मर (Sherman and Harmer) ने सिफारिश की है।

मैंगनीज़ सल्फेट डालने के लिए साधारणतया ठोस लवण या उसका विलयन उपयुक्त होता है। विलयन पेड़ों के पत्तों पर छिड़का जाता है। पाँच पौण्ड मैंगनीज़ सल्फेट को २०० पौण्ड जल में घोलकर पेड़ों पर छिड़कना अच्छा होता है। ठोस लवण पेड़ों की बगल में डाला जाता है। ठोस मैंगनीज़ सल्फेट को सुपर-फास्फेट के साथ मिलाकर इस्तेमाल करना भी अच्छा होता है। घूरे की खाद के उपयोग से भी मैंगनीज़-हीनता कम हो जाती है।

ऐसे भी मैंगनीज़ उर्वरक के उपयोग से लाभप्रद परिणाम प्राप्त हुए हैं। साधारणतया फसलों की पैदावार इससे बढ़ी हुई पायी गयी है। मैंगनीज़ डाइ-आक्साइड के उपयोग से गिगलियोली (Giglioli) ने गेहूँ और मकई की पैदावार बढ़ी हुई पायी है। गैरोला ने देखा है कि मैंगनीज़ लवण के उपयोग से फ्लैक्स (flax) की मात्रा बढ़ी हुई थी। जैक्स और शरबैटोफ (Jacks and Scherbatof, १९४०) ने देखा कि मैंगनीज़ लवणों के कारण नाइट्रेट, फास्फरस, पोटेसियम और कैलसियम आदि का स्वांगीकरण बढ़ा हुआ था।

अय्यर, राजगोपालन और सुब्रह्मण्यम (१९३५) ने देखा कि अनेक उर्वरकों के साथ मैंगनीज़ डाइ-आक्साइड के रहने से टमाटर की पैदावार दुगुनी बढ़ गयी थी। नागाओका (Nagooka) ने रिपोर्ट दी है कि प्रति एकड़ भूमि में १३·७

पौण्ड मैंगनीज़ सल्फेट डालने से धान की पैदावार ३७ प्रतिशत बढ़ गयी थी। शाइनर और डौसन (Scheiner and Dawson) की रिपोर्ट है कि फ्लोरिडा के कुछ खेतों में विना मैंगनीज़ डाले कोई फसल उगती नहीं है।

पावर्स (Powers, १९४०) की रिपोर्ट है कि अनेक फसलों की पैदावार मिट्टी में मैंगनीज़ सल्फेट के डालने से बहुत बढ़ जाती है, अम्लीय जीर्णकी मिट्टी में टमाटर के उत्पादन में ८२ प्रतिशत वृद्धि पायी गयी है। पीछे उन्होंने यह भी रिपोर्ट की है कि भास्मिक जीर्णकी मिट्टी में भी मैंगनीज़ की आवश्यकता पड़ती है।

अधिक मैंगनीज़ उर्वरक से पौधों की क्षति भी हो सकती है। मैंगनीज़-विषालुता के निवारण के लिए चूना या फास्फेट डाला जा सकता है। कुछ अमेरिकी उर्वरक निर्माणकर्त्ता अन्य उर्वरकों में अल्प मैंगनीज़ लवण डालकर बेचते हैं।

मैगनीशियम

मैगनीशियम की उपस्थिति

मिट्टी में जो खनिज रहते हैं उनके अधिकांश में मैगनीशियम रहता है। मैगनीसाइट, डोलोमाइट, वायोटाइट, अभ्रक, औगाइट (augite), ओलिवाइन (olivine), सर्पेन्टाइन (surpentine), टालक (talc) और क्लोराइट, चूना-पत्थर, कार्नेलाइट (carnallite) और कीसेराइट (kiesirite) में मैगनीशियम रहता है। समुद्र से बने नमक में कुछ मैगनीशियम लवण रहता है, यद्यपि समुद्र में उपस्थित लवणों में मैगनीशियम लवण की मात्रा १५ प्रतिशत तक रह सकती है।

मैगनीसाइट में मैगनीशियम कार्बोनेट रहता है। दक्षिण भारत के सलेम जिले में यह प्रचुरता से पाया जाता है। डोलोमाइट में कैलसियम और मैगनीशियम दोनों के कार्बोनेट रहते हैं। डोलोमाइट भी भारत में पाया जाता है। पीसा हुआ डोलोमाइट उर्वरक के लिए इस्तेमाल हो सकता है। तपाया हुआ डोलोमाइट और अच्छा होता है।

प्रायः सब ही चूना-पत्थरों में कुछ न कुछ मैगनीशियम रहता है। सीमेंट निर्माण योग्य चूना-पत्थर में मैगनीशियम नहीं रहना चाहिए। मैगनीशियम के रहने से सीमेंट कमजोर होता है और प्लास्टर के फट जाने का भय रहता है। चूना-पत्थर का मैगनीशियम जल में प्रायः अविलेय होता है पर फास्फेट के कारण धीरे-धीरे विलीन होकर पौधों को प्राप्य होता है।

सब प्रकार की मिट्टियों में मैगनीशियम रहता है। साधारणतया इसकी मात्रा

०·३ प्रतिशत के लगभग (प्रति एकड़ ६००० पौण्ड) रहती है, पर किसी मिट्टी में जो सरपेन्टाइन चट्टान से बनी है, मैगनीशियम की मात्रा बहुत अधिक रह सकती है। कुछ मिट्टियों में, विशेषतः अम्लीय बलुआर मिट्टी में, प्रायः मैगनीशियम की मात्रा थोड़ी, प्रति एकड़ ५० पौण्ड से भी कम, रह सकती है। जिस मिट्टी में प्राप्य मैगनीशियम की मात्रा प्रति एकड़ १०० पौण्ड से कम रहती है उसमें मैगनीशियम-हीनता के लक्षण प्रकट हो सकते हैं।

पेड़-पौधों में मैगनीशियम रहता है। पेड़-पौधों की राखों में मैगनीशियम की मात्रा ३·५ से ७·० प्रतिशत रहती है। फसल के उगाने से मिट्टी से प्रति एकड़ कम से कम १० पौण्ड मैगनीशियम निकल जाता है।

टौमस ग्रीन क्लेमसन ने सन् १८५९ में लिखा था कि "उर्वरता के लिए मिट्टी में मैगनीशियम रहना अत्यावश्यक है और जहाँ इसकी कमी हो वहाँ इसे डालना आवश्यक है।" मैगनीशियम का विशेष कार्य क्लोरोफिल का निर्माण करना है। विल्सटेट्टर ने पहले-पहल १९०६ ई० में बताया कि क्लोरोफिल में मैगनीशियम रहता है। क्लोरोफिल के प्रत्येक अणु में कम से कम मैगनीशियम का एक परमाणु रहता है। क्लोरोफिल में मैगनीशियम २·७ प्रतिशत रहता है। क्लोरोफिल के कारण ही पौधे वायु के कार्बन डाइ-आक्साइड को ग्रहण कर उसके कार्बन से बढ़ते हैं। मैगनीशियम कैसे कार्य करता है यह ठीक से अभी समझ में नहीं आया है। एक समय समझा जाता था कि प्रोटीन के संश्लेषण में मैगनीशियम का हाथ है पर यह मत आज ठीक नहीं समझा जाता। ऐसा मालूम होता है कि तेल और वसा के निर्माण में मैगनीशियम का हाथ है और फास्फरस के ग्रहण करने और स्वांगीकरण में इसका सहारा मिलता है। विलेय मैगनीशियम लवणों के कारण फास्फरस का अवशोषण बढ़ा हुआ पाया गया है। यह सम्भव है कि फास्फरस के स्थानान्तरण में भी मैगनीशियम का हाथ हो।

मैगनीशियम-हीनता

मैगनीशियम-हीनता के लक्षण पहले-पहल गार्नर और ब्राउन द्वारा १९१९ ई० में तम्बाकू में देखे गये थे। उन्होंने मैगनीशियम के अभाव में तम्बाकू में एक रोग देखा। इस रोग को 'सैण्ड ड्राउन' (sanddrown) कहते हैं। इससे तम्बाकू की पत्तियाँ पीली पड़ जातीं और आक्रमण की तीव्रता से सफेद भी हो जाती हैं। धीरे-धीरे ऐसी दशा पत्तियों के समग्र भाग में फैल जाती है और सारा पत्ता आक्रान्त हो जाता है। पीतता छोरों या किनारों से शुरू होकर मध्य और आधार की ओर

बढ़ती जाती है। कपास में भी कुछ ऐसे ही लक्षण प्रकट होते हैं। उसका सिरा हरा रहता पर पत्ते गुलाबी-रक्तवर्ण के हो जाते हैं। मकई और ज्वार (sorghum) में धारियाँ पड़ जाती हैं। उनका सिरा हरा ही रहता पर उन के बीच के भाग, पत्रदल (lamina) मकई में अंशतः पीले और ज्वार में अंशतः नीलारुण (purple) हो जाते हैं। फलीदार पौधों में भी सिरा हरा रहते हुए पत्ते पीले
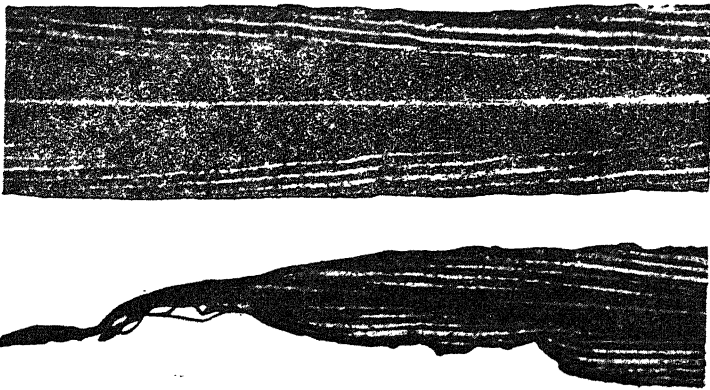
चित्र ४२——मक्का की पत्तियों पर मैगनीशियम की कमी का प्रभाव

पड़ जाते हैं। आलू में नीचे की पत्तियाँ चितकबरी होकर फिर सूखकर मर जाती हैं। नीबू के पेड़ों में 'कांस्य रोग' (bronzing disease) हो जाता है। मिट्टी में ऐसा चूना डालने से जिसमें मैगनीशियम नहीं है, मैगनीशियम-हीनता बढ़ जाती है। अतः यदि मिट्टी में चूना डालना हो तो मैगनीशियम वाला चूना डालना ही अच्छा होता है। कैलसाइट चूना-पत्थर के स्थान में डोलोमाइट चूना-पत्थर का उपयोग अच्छा है।

मैगनीशियम-हीनता का कारण

अधिकांश मैगनीशियम लवण जल में विलेय होते हैं। अतः सक्षर्षण द्वारा मैगनीशियम का नष्ट होना स्वाभाविक है। बरसात में मिट्टी का मैगनीशियम बहुत कुछ निकल जाता है। खेतों से जितना मैगनीशियम निकलता है उसका प्रायः ८० प्रतिशत पानी द्वारा घुलकर निकल जाता है। लियन और बिज्ज़ेल (Lyon and Bizzell, १९१८) का अनुमान है कि प्रति एकड़ २८ से ७० पौण्ड मैगनीशियम संकर्षण से निकल जाता है। फसलों से भी मैगनीशियम निकलता है पर ऐसे निकले मैगनीशियम

की मात्रा अपेक्षया कम होती है। मकई और तम्बाकू से प्रति एकड़ १५ से २० पौण्ड मैगनीशियम निकलता है।

संकर्षण द्वारा मैगनीशियम निकल जाने के कारण ही सतह की मिट्टी में मैगनीशियम की मात्रा कम रहती है। वास्टिस्से (१९३६) ने देखा है कि नीचे की मिट्टी में ऊपर की मिट्टी से तिगुना मैगनीशियम रहता है।

कैलसियम-मैगनीशियम अनुपात

एक समय ऐसा सुझाव था कि पौधों की ठीक-ठीक उपज के लिए मिट्टी में कैलसियम और मैगनीशियम का एक निश्चित अनुपात रहना चाहिए। लोएव (Loew) का सुझाव था कि कैलसियम-मैगनीशियम का अनुपात २ : १ रहना चाहिए। अधिक सूक्ष्म और विस्तृत अध्ययन से लिपमैन (Lipman, १९१६) इस परिणाम पर पहुँचे कि अनुपात वाली बात कुछ ठीक नहीं है। इन दो तत्त्वों के बीच किसी निश्चित अनुपात का होना आवश्यक नहीं है। अनेक पौधों के विश्लेषण से भी ऐसा ही परिणाम निकला। मैक्मुट्रे (१९४४) की रिपोर्ट है कि कैलसियम की उपस्थिति में जितने मैगनीशियम से पौधों की वृद्धि सामान्य रूप से होती है, उतना ही मैगनीशियम कैलसियम की अनुपस्थिति में पौधों के लिए विषैला हो जाता है। अनेक अन्वेषकों का स्पष्ट मत है कि फास्फरस के स्वांगीकरण में मैगनीशियम सहायक होता है। हण्टर ने १९४९ में देखा कि कैलसियम-मैगनीशियम अनुपात के कम होने से पौधों में फास्फरस की मात्रा बढ़ जाती है और प्राप्य मैगनीशियम की मात्रा बढ़कर कैलसियम के बराबर या उससे अधिक हो जाती है। यदि पोटेसियम और मैगनीशियम साथ-साथ रहें तो पौधे मैगनीशियम के ग्रहण करने से पूर्व पोटेसियम को पहले ग्रहण कर लेते हैं। अतः पोटेसियम उर्वरक की वृद्धि के साथ-साथ मैगनीशियम उर्वरक की वृद्धि आवश्यक हो जाती है।

मैगनीशियम उर्वरक

मैगनीशियम-हीनता के दूर करने में अनेक पदार्थों का उपयोग होता है। सबसे सस्ता पदार्थ इसके लिए डोलोमाइट वाला चूना-पत्थर है। ऐसे पत्थर में मैगनीशियम कार्बोनेट की मात्रा २० प्रतिशत या इससे अधिक रहती है। मैगनीशियम सल्फेट, मैगनीशियम कार्बोनेट, पोटेसियम-मैगनीशियम सल्फेट, मैगनीशियम-अमोनियम फास्फेट, मैगनीशियम चूना-पत्थर, मैगनीसाइट और मैगनीसाइट से बने आक्साइड तथा हाइड्राक्साइड इस्तेमाल हो सकते हैं। केनाइट में भी मैगनीशियम रहता है। अधिकांश मैगनीशियम सिलिकेट जल में अविलेय होते हैं, अतः उनका मैगनीशियम

पौधों को प्राप्य नहीं होता। मैगनीशियम सल्फेट और क्लोराइड जल में विलेय होते हैं। मैगनीशियम कार्बोनेट जल में अविलेय है पर कैलसियम कार्बोनेट से दसगुना अधिक विलेय होता है।

मिट्टी के सुधारने में और उर्वरक के रूप में पर्याप्त मैगनीशियम लवण खपता है। मेहरिंग (१९४८) का अनुमान है कि सन् १९४६ में २,२४७,००० टन मैगनीशियम उर्वरक की खपत हुई थी। विभिन्न खादों में भी मैगनीशियम रहता है। पशु-पक्षियों की विष्ठा में मैगनीशियम की मात्रा इस प्रकार पायी गयी है:—

किस्म विष्ठा	प्रतिशत मैगनीशियम
ढोर	०·११
घोड़ा	०·१०
मुर्गी	०·४३
कबूतर	०·३०
भेड़	०·१३
सूअर	०·०३

आजकल जो उर्वरक प्रयुक्त होते हैं उनमें बड़ी अल्प मात्रा में मैगनीशियम अवश्य रहता है। पोटाश निक्षेप में भी मैगनीशियम रहता है। विभिन्न उर्वरकों में मैगनीशियम की मात्रा इस प्रकार पायी जाती है—

विभिन्न उर्वरकों में मैगनीशियम की मात्रा

उर्वरक	प्रतिशत मैगनीशियम
मैगनीसाइट	२७·२
कीसेराइट	१८·४
डोलोमाइट	११·४
पोटेसियम-मैगनीशियम सल्फेट	११·२
मैगनीशियम सल्फेट	९·७
कैल-नाइट्रो	४·५
वेसिक स्लैग	३·४
कैलसियम नाइट्रेट	१·५
पोटेसियम सल्फेट	०·६
सुपर-फास्फेट	०·३

मैगनीशियम लवण की कितनी मात्रा प्रयुक्त करनी चाहिए; यह मिट्टी की दशा, फसल की प्रकृति और वर्षा पर निर्भर करता है। गार्नर का अनुमान है कि मैगनीशियम-हीनता से उत्पन्न तम्बाकू के रोग के निवारण के लिए प्रति एकड़ लगभग २० पौण्ड मैगनीशियम लवण का उपयोग पर्याप्त है। मासाचुसेट में मकई की पीतता के नियंत्रण के लिए प्रति एकड़ २० से ४० पौण्ड मैगनीशियम का उपयोग हुआ है। आलू में मैगनीशियम-हीनता रोग के निवारण के लिए प्रति एकड़ २५ से ३५ पौण्ड मैगनीशियम प्रयुक्त हुआ है।

कुछ पौधे मैगनीशियम-हीनता से अधिक प्रभावित होते हैं। ऐसे पौधों में कुट्टक, पालक, शलजम, मैंजेल, मकई और तम्बाकू हैं। कुछ पौधे, जैसे छोटे-छोटे दाने वाले पौधे, घास, सेंजी (clover), और आलू न्यूनतम प्रभावित होते हैं। जो पौधे मैगनीशियम-हीनता से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं वे सबसे अधिक मैगनीशियम को ग्रहण भी करते हैं।

गन्धक

गन्धक का ज्ञान हमें बहुत प्राचीन काल से है। भारत के प्राचीन ग्रन्थों में गन्धक का उल्लेख मिलता है। संस्कृत में इसे 'शुल्वारि' कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'ताँबे का शत्रु'। शुल्वारि शब्द से ही अंग्रेजी का 'सल्फर' शब्द बना है। गन्धक असंयुक्त और संयुक्त दोनों अवस्थाओं में पाया जाता है। गन्धक के यौगिकों में सल्फाइड और सल्फेट विस्तृत रूप से पाये जाते हैं। सोडियम सल्फेट खारी मिट्टी में सफेद पपंटी के रूप में पाया जाता है। कैलसियम सल्फेट (जिपसम) और बेरियम सल्फेट (बेराइटीज़) के निक्षेप संसार के अनेक स्थलों में पाये जाते हैं। भारत में भी इनके विस्तृत निक्षेप हैं।

मिट्टी में गन्धक रहता है। क्लार्क (१९२४) के अनुसार धरती की पर्पटी में ०·०६ प्रतिशत गन्धक रहता है। मिट्टी में गन्धक की औसत मात्रा ०·०५ प्रतिशत (प्रति एकड़ १००० पौण्ड) पायी जाती है। अमेरिकी मिट्टी में प्रति एकड़ २०० से ५००० पौण्ड गन्धक पाया जाता है। साधारणतया गन्धक की मात्रा फास्फरस से कम रहती है।

१८६० ई० में ही पता लगा था कि पौधों के लिए गन्धक एक आवश्यक तत्त्व है। पौधों में प्रोटीन रहता है। प्रोटीन एक पेचीदा कार्बनिक पदार्थ है। इसका अणुभार बहुत ऊँचा होता है। इसके अणु का ठीक-ठीक ज्ञान हमें नहीं है पर यह मालूम है कि प्रोटीन अनेक छोटे-छोटे अणुओं से बना है जिन्हें हम 'एमिनो अम्ल' कहते हैं। प्रत्येक

प्रोटीन के अणु में दस से बीस एमिनो अम्ल रहते हैं। ऐसे एमिनो अम्ल में सिस्टाइन (Cystine) और मेथियोनिन (methionine) ऐसे अम्ल हैं जिनमें गन्धक रहता है। पौधों में एक और पदार्थ ग्लुटाथायोन (glutathione) होता है जिसका सम्बन्ध पौधों के श्वसन (respiration) से है। इसमें भी गन्धक रहता है। पौधों में कुछ वाष्पशील तेल रहते हैं। इनके संश्लेषण में गन्धक की आवश्यकता पड़ती है। सरसों-तेल की गन्ध का कारण एक गन्धक का यौगिक एलील थायोसायनेट (allyl thiocyanate) है। प्याज और लहसुन की गन्ध का कारण एलील सल्फाइड और विनील सल्फाइड है। कुछ विटामिनों, थायमिन और बायोटिन, में गन्धक रहता है। कुछ जाति के पौधों में गन्धक विशेष रूप से पाया जाता है। वे गन्धक यौगिकों का संश्लेषण करते हैं।

गन्धक-हीनता

साधारणतया पौधों को गन्धक की कमी नहीं होती, पर यदि पर्याप्त गन्धक पौधों को न मिले तो गन्धक-हीनता के लक्षण उनमें प्रकट होते हैं। ये लक्षण उसी प्रकार के हैं जैसे नाइट्रोजन-हीनता में देखे जाते हैं। उनके पत्ते पीले पड़ जाते हैं। ऐसी गन्धक-हीनता चाय में स्टौर और लीच (Storey and Leach) द्वारा १९३५ में, तम्बाकू में मैक्मुर्ट्रे द्वारा १९३८ में, टमाटर में फिशर द्वारा १९३५ में, ईख में मार्टिन द्वारा १९३४ में, नीबू में हाँस द्वारा १९३६ में, संतरे में चैपमैन और ब्राउन द्वारा १९४१ में और धान में अय्यर द्वारा १९४५ में देखी गयी थी। धान में पीतता होने से पेड़ छोटे-छोटे होते और पत्तों का क्षेत्र संकुचित हो जाता और उसमें दौजी (tillering) हो जाती है। ऐसा धान जल्दी पकता नहीं और पैदावार कम हो जाती है।

पौधे जड़ों द्वारा मिट्टी से गन्धक ग्रहण करते हैं। फ्रायड (१९४८) ने बतलाया है कि पत्तों द्वारा भी वायु के सल्फर डाइ-आक्साइड को पौधे ग्रहण कर कार्बनिक गन्धक यौगिक-बनाते हैं।

फसलों में गन्धक

अनेक पौधों में, विशेषतः फलीदार और क्रुसिफेरी कुल के पौधों में गन्धक की मात्रा फास्फरस से अधिक रहती है। कुछ पौधों में गन्धक की मात्रा कैलसियम और मैगनीशियम से भी अधिक रहती है। हार्ट और पिटरसन (१९११) ने विभिन्न फसलों में गन्धक की मात्रा के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट तैयार की है वह इस प्रकार है—

कुछ फसलों में गन्धक की मात्रा; प्रति एकड़ भूमि से प्राप्त

फसल	सूखा भार पौण्ड में	गन्धक पौण्ड में
गेहूं, दाना, ३० बुशेल	१५३०	२·६
गेहूं, पयाल	२६५३	३·७
समस्त	४१८३	६·३
जौ, दाना, ४० बुशेल	१७४७	२·६
जौ, पयाल	२०८०	३·२
समस्त	३८२७	५·७
जई, दाना, ३० बुशेल	१६२५	३·०
जई, पयाल	२३५३	४·९
समस्त	३९७८	७·९
मक्का, दाना, ३० बुशेल	१५००	२·६
मक्का, डंठल	१८७७	२·२
समस्त	३३७७	४·८
तम्बाकू, पत्ता	१८००	६·४
तम्बाकू, डंठल	३२००	२·०
समस्त	५०००	८·४
चारा, सूखी घास	२८२२	४·५
लाल सेंजी, सूखी घास	३७६३	६·२
अल्फाल्फा, सूखी घास	९०००	२५·९
आलू	३३६०	४·६
बंदगोभी	४८००	३९·२

पानी निकास द्वारा गन्धक की क्षति

मिट्टी से पानी द्वारा घुलकर गन्धक निकल जाता है। कितना गन्धक निकलता है यह मिट्टी में उपस्थित गन्धक और मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करता है। रौथमस्टेड में जो अन्वेषण हुए हैं उनसे हार्ट और पिटरसन (१९११) का अनुमान है कि प्रति एकड़ प्रायः २० पौण्ड गन्धक निकल जाता है। अमेरिका के आयोवा में एर्डमैन और बोलेन (Erdman and Bollen, १९२५) का अनुमान है कि

प्रति एकड़ ५० पौण्ड के लगभग गन्धक निकल जाता है। हार्ट और पिटरसन (१९११) का अनुमान है कि विस्कोनसिया में १५ से २० पौण्ड गन्धक इस प्रकार निकलता है।

वर्षा से मिट्टी में गन्धक

जहाँ मिट्टी से पानी द्वारा घुलकर गन्धक निकल जाता है वहाँ वर्षा द्वारा वायु से गन्धक मिट्टी में आता भी है। वायु में सल्फर डाइ-आक्साइड रहता है। वानस्पतिक पदार्थों के जलने से सल्फर डाइ-आक्साइड बनता है और हवा में चला आता है। कोयले के जलने से भी सल्फर डाइ-आक्साइड बनता है। वायु में हाइड्रोजन सल्फाइड (सलफ्युरेटेड हाइड्रोजन) भी रहता है। कार्वनिक पदार्थों के सड़ने गलने से यह बनता है। ये गैसें वायुमण्डल में रहती हैं और वर्षा से पानी में घुलकर ज़मीन पर गिरने पर मिट्टी द्वारा पकड़ ली जाती हैं। बड़े-बड़े नगरों के आस-पास में जहाँ कोयला और लकड़ी बहुत जलती है, मिट्टी में गन्धक की मात्रा अधिक पायी जाती है। हार्ट और पिटरसन (१९११) का अनुमान है कि रौथमस्टेड के निकट प्रति एकड़ ७ पौण्ड गन्धक इस प्रकार धरती में आता है। कौलिसन और मेन्शिंग (Collison and Mensching, १९३२) का अनुमान है कि न्यूयार्क में प्रति एकड़ ४१ पौण्ड गन्धक, हार्बर की रिपोर्ट है कि ओक्लाहोमा के स्टिलवाटर में प्रति एकड़ ८·७ पौण्ड गन्धक इस प्रकार मिट्टी में आता है।

पौधे गन्धक को मिट्टी और वायु दोनों से ग्रहण करते हैं। पर जितना गन्धक इन स्रोतों से प्राप्त होता है उससे अधिक गन्धक पानी के निकास और पैदावार द्वारा मिट्टी से निकल जाता है। बिज्ज़ेल और लियन (१९२७) की गणना है कि कौर्नेल यूनिवर्सिटी के आस-पास मिट्टी में प्रति एकड़ लगभग ३०·१ पौण्ड गन्धक आता है जब कि मिट्टी से प्राय: ४४·१ पौण्ड गन्धक निकल जाता है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि उर्वरक के रूप में बाहर से गन्धक खेतों में डाला जाय।

गन्धक-उर्वरक

मिट्टी में गन्धक डालने से पैदावार बढ़ जाती है, इसका ज्ञान अपेक्षया आधुनिक है। पहले पहल १९१२ में पता लगा कि खेतों में गन्धक डालने से पैदावार बढ़ जाती है। तम्बाकू के खेतों में गन्धक डालने से इसकी पैदावार बढ़ जाती है, इसका ज्ञान १९१४ में, अल्फाल्फा की पैदावार बढ़ जाती है इसका ज्ञान १९१९ में, शर्करा-चुकन्दर की पैदावार बढ़ जाती है इसका ज्ञान १९४१ में, सेंजी की पैदावार बढ़ जाती है

इसका ज्ञान १९४७ में हुआ। अनेक फसलों में देखा गया है कि यदि उर्वरकों में गन्धक भी मिला हो तो पैदावार बढ़ जाती है। कुछ फलीदार पौधों में तो गन्धक-उर्वरकों से पैदावार ५०० से १००० प्रतिशत तक बढ़ी हुई पायी गयी है, यद्यपि ५० से ५०० प्रतिशत की वृद्धि सामान्य घटना है।

चित्र ४३—अल्फाल्फा पर गन्धक का प्रभाव

(गन्धक वाले पौधे अच्छे उगे हैं, बिना गन्धक वाले उतने अच्छे नहीं उगे।)

गन्धक-उर्वरक के उपयोग की आवश्यकता बहुत कुछ मिट्टी में गन्धक या गन्धक यौगिकों की उपस्थिति और प्राप्यता पर निर्भर करती है। उर्वरक के रूप में जो गन्धक-लवण प्रयुक्त होते हैं वे निम्नलिखित हैं—

उर्वरक	प्रतिशत गन्धक
अमोनियम सलफेट	२४·०
जिपसम	२०·५
सुपर-फास्फेट	११·६
पोटेसियम सल्फेट	१८·०
पोटेसियम-मैगनीशियम सल्फेट	२३·०

यह स्मरण रखना चाहिए कि सुपर-फास्फेट उर्वरक और अमोनियम सल्फेट उर्वरक में फास्फरस और नाइट्रोजन के साथ-साथ पौधों को गन्धक भी प्राप्त होता है। जहाँ उपर्युक्त दोनों उर्वरक प्रर्युक्त होते हैं वहाँ मिट्टी को स्वत: गन्धक प्राप्त हो जाता है। जहां ये उर्वरक प्रयुक्त न होते हों वहां गन्धक-उर्वरक के उपयोग का प्रश्न उपस्थित

होता है। गन्धक-हीनता के दोषों के दूर करने में गन्धक का उपयोग आवश्यक है। इसके लिए सामान्यतः १० से ५० पौण्ड गन्धक पर्याप्त समझा जाता है।

तात्त्विक गन्धक का उपयोग

गन्धक यौगिकों के स्थान में तात्त्विक गन्धक का उपयोग मिट्टी के अम्लीय बनाने में और फलीदार फसलों में किया जाता है। मिट्टी में गन्धक देने से गन्धक का परिवर्तन होकर वह अन्त में सल्फेट में परिणत हो जाता है। इस क्रिया को 'सल्फो-करण' (sulfo-fication) कहते हैं। जल और आक्सिजन के योग से गन्धक पहले सलफ्यूरिक अम्ल बनता है जो कैलसियम बाई-कार्बोनेट के साथ मिलकर कैलसियम सल्फाइट बनता और अन्त में कैलसियम सल्फेट में परिणत हो जाता है। इस क्रिया के सम्पन्न होने में कुछ सप्ताह लग जाते हैं।

$$S + H_2O + O_2 = H_2SO_3$$

$$H_2SO_3 + Ca(HCO_3)_2 = CaSO_3 + 2H_2O + 2CO_2$$

$$2CaSO_3 + O_2 = 2CaSO_4$$
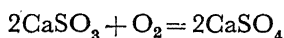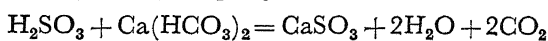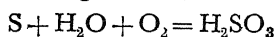
यदि मिट्टी में पर्याप्त चूना न रहे तो सम्भव है कि गन्धक से मिट्टी की अम्लता बढ़ जाय। इससे आलू का कलंकिका रोग दूर होता पाया गया है। मिट्टी की क्षारीयता से यह रोग बढ़ता है और अम्लता से घटता है। अमेरिका के किसान तात्त्विक गन्धक का स्वच्छन्दता से उपयोग करते हैं। वहाँ तात्विक गन्धक बहुत सस्ता प्राप्त होता है। भारत में गन्धक न पाये जाने से बाहर से आकर यह विकता है, अतः यहाँ बहुत महँगा पड़ता है और साधारणतया इसका उपयोग भारत में नहीं होता।

यदि मिट्टी का पी एच ५·८ या इससे कम हो तो प्रति एकड़ ३०० से ५०० पौण्ड गन्धक से, और यदि पी एच ६·० या इससे ऊपर हो तो प्रति एकड़ ७०० से १२०० पौण्ड गन्धक के उपयोग से आलू की 'कलंकिका' पर नियंत्रण हो जाता है। आलू के लिए मिट्टी का उत्कृष्ट पी एच ५·०–६·० है। यदि पी एच ५·४ रहे तो आलू का जड़-गलन (root rot) रोग भी नहीं होता है। संकर्षण से मिट्टी की अम्लता कम हो जाती है। इस कारण अम्लता कायम रखने के लिए गन्धक का उपयोग प्रति वर्ष करना आवश्यक होता है। अम्लता मिट्टी के अन्दर दो या तीन इंच से अधिक प्रवेश नहीं करती।

अन्य उर्वरकों के साथ मिलाकर गन्धक का उपयोग किया जा सकता है। पर नाइट्रेट उर्वरक के साथ गन्धक कभी नहीं मिलाना चाहिए। इससे आग लगने और विस्फोट होने का भय रहता है। एक पौण्ड गन्धक से प्रायः तीन पौण्ड सलफ्यूरिक अम्ल

बनता है। मिट्टी में कितना गन्धक डालना चाहिए यह उस के पी एच पर निर्भर करता है। यदि पी एच बहुत ऊंचा है तो अधिक गन्धक डालना चाहिए, अन्यथा कम से भी काम चल जाता है।

जीर्णकी और प्रजीर्णकी मिट्टी की क्षारीयता के दूर करने में भी गन्धक का उपयोग हुआ है। गन्धक से पौधों के लिए मैंगनीज़ की प्राप्यता बढ़ जाती है।

कम्पोस्ट के साथ गन्धक को मिलाकर खेतों में डालने से सल्फोकरण शीघ्रता से होता है। कम्पोस्ट के सूक्ष्म जीवाणु गन्धक के आक्सीकरण में सहायता देकर आक्सीकरण के सम्पादन में शीघ्रता करते हैं।

गन्धक का प्रभाव

पिट्ज़ (Pitz, १९१५) ने गन्धक से अल्फाल्फा में और मिलर (Miller, १९१९) ने रक्त सेंजी में ग्रन्थियों का विकास, हार्ट और टौटिंगहम (१९१५) तथा राइमर और टारटर (१९१९) ने जड़ों का विकास देखा है। यह सम्भव है कि सुपर फास्फेट के उपयोग से पौधों का जो विकास देखा जाता है वह उसमें उपस्थित कैलसियम सल्फेट के कारण हो। यह भी सम्भव है कि क्लोरोफिल के विकास में गन्धक का हाथ हो, क्योंकि अल्फाल्फा के गन्धक के साथ उपचार से उस पर गाढ़ा हरा रंग चढ़ा हुआ पाया गया है। मकई और फलीदार पौधों पर गन्धक के उपचार से उस पर गाढ़ा हरा रंग चढ़ा हुआ पाया गया है। तम्बाकू की फसल गन्धक के कारण देर से पकी हुई पायी गयी है। रक्त सेंजी में गन्धक से प्रोटीन का निर्माण होता हुआ टौटिंगहम द्वारा पाया गया है। गन्धक के उपचार से काँटेदार सेंजी की पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है।

गन्धक की उपलब्धि

गन्धक प्राप्त करने के प्रधानतया चार स्रोत हैं; एक प्राकृतिक गन्धक, दूसरा जिपसम, तीसरा बेराइटीज़ और चौथा माक्षिक।

प्राकृतिक गन्धक

भारत में प्राकृतिक गन्धक नहीं पाया जाता। पर संसार में पर्याप्त प्राकृतिक गन्धक के निक्षेप पाये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के भौमिक सर्वेक्षण विभाग का अनुमान है कि समस्त संसार के प्राकृतिक गन्धक की संचिति ५६,०००,००० और १२१,०००,०००, मेट्रिक टन के बीच है। इसमें इटली की संचिति २५,५००,००० से ८४,२००,००० मेट्रिक टन, टेक्सास लुयिसियाना क्षेत्र की संचिति प्रायः ३ करोड़

मेट्रिक टन, चिली की संचिति ५२५,००० से १,७५०,००० मेट्रिक टन कूती गयी है। जापान में भी गन्धक पाया जाता है पर उसकी संचिति का ठीक-ठीक पता नहीं है। सिसिली और स्पेन में भी गन्धक के निक्षेप हैं।

अमेरिका में पेट्रोलियम कूप से निकली प्राकृतिक गैस में भी गन्धक के यौगिक रहते हैं। इससे भी गन्धक प्राप्त किया जाता है। १००,००० टन से अधिक गन्धक इस स्रोत से प्रति वर्ष अमेरिका में प्राप्त होता है। धातुओं के निर्माण में जो गैसें भट्ठे से निकलती हैं उनमें पर्याप्त गन्धक रहता है। यह गन्धक वायु में प्रायः नष्ट हो जाता है। पर इसका बहुत कुछ अंश वर्षा द्वारा वायु से मिट्टी में जरूर लौट आता है।

जिपसम

उर्वरक के रूप में जिपसम का उपयोग बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। पहले यह यूरोपीय देशों में प्रयुक्त होता था, फिर अमेरिका में होने लगा और आज प्रायः सारे संसार में, जहाँ उर्वरक का उपयोग होता है, हो रहा है।

जिपसम सब देशों में प्रचुरता से पाया जाता है। भारत में भी यह पर्याप्त पाया जाता है जिसका उल्लेख सिन्दरी उर्वरक कारखाना प्रकरण में हुआ है। वहाँ अमोनियम सल्फेट के निर्माण में इसका उपयोग हो रहा है। जिपसम का उपयोग पोर्टलैण्ड सीमेंट के निर्माण में भी होता है। इसी से प्लास्टर आफ पेरिस बनता है। खनिज जिपसम में जिपसम की वास्तविक मात्रा ५० से ९५ प्रतिशत रहती है। सुपर-फास्फेट में भी जिपसम रहता है। जिपसम जल में बहुत विलेय नहीं है पर चूना-पत्थर से कहीं अधिक विलेय होता है। मिट्टी में यह जल्दी विच्छेदित नहीं होता। जिपसम के उपयोग से अल्फाल्फा, जई, रक्त सेंजी की उपज बढ़ी हुई पायी गयी है। कुछ मिट्टी, विशेषतः क्षारीय मिट्टी के कृष्यकरण में जिपसम का उपयोग सफलता से हुआ है। प्रति एकड़ एक से दो टन जिपसम का उपयोग हो सकता है। घरेलू खाद के संरक्षण में भी जिपसम का उपयोग होता है। प्रति टन खाद के लिए यह १०० पौण्ड के लगभग प्रयुक्त हो सकता है।

खेतों में डालने के लिए जिपसम को पहले चूर-चूर कर तब छींटते और जोतकर मिट्टी में मिला देते हैं। साधारणतया इसे प्रति एकड़ भूमि में २०० पौण्ड प्रयुक्त करते हैं पर इसकी मात्रा ५०० पौण्ड तक कभी-कभी बढ़ायी जा सकती है।

माक्षिक

माक्षिक में गन्धक रहता है। यह गन्धक सलफ्यूरिक अम्ल के निर्माण में उपयुक्त हो सकता है। उर्वरक के लिए माक्षिक का उपयोग नहीं होता। माक्षिक की संचिति

बहुत बड़ी मात्रा में स्पेन, रूस, अमेरिका के वर्जीनिया, जर्मनी, पोर्तुगाल, इटली, स्वीडन, फ्रांस और भारत में पायी जाती है। माक्षिकों में लौह-माक्षिक और ताम्र-माक्षिक दोनों पाये जाते हैं।

जस्ता

जस्ते की आवश्यकता

आज से पचास वर्ष से अधिक हुए जब वर्ट्रॉण्ड्र ने यह सुझाव दिया था कि पौधों की वृद्धि के लिए जस्ता एक आवश्यक तत्त्व है। पर अपेक्षया थोड़े समय से ही, विशेषतः लिपमैन और सोम्मर (Lipmann and Sommer, १९२६) के अन्वेषणों से यह बात पूर्ण रूप से प्रमाणित हो गयी कि पौधों के लिए जस्ता एक आवश्यक तत्त्व है। इसके बाद अनेक अन्वेषकों द्वारा इसकी हीनता से उत्पन्न लक्षण, विशेषतः नीबू की खेती में, देखे गये। पौधों को जस्ते की अधिक जरूरत नहीं पड़ती। यह जरूर है कि कुछ पौधों को अधिक जस्ता चाहिए और कुछ का काम कम मात्रा से भी चल जाता है। यह भी सम्भव है कि कुछ मिट्टी से पौधे जस्ते को अधिक ग्रहण कर लेते हैं और कुछ से कम।

जस्ते की उपस्थिति

मिट्टी में जस्ता बहुत अधिक फैला हुआ पाया जाता है। पौधों और पशुओं में भी जस्ता रहता है। मिट्टी में प्रायः प्रति लाख भाग में जस्ता ०·५ से ५·० भाग रहता है। बलुआर मिट्टी में मात्रा बहुत अल्प रहती है। कुछ मिट्टियों, विशेषतः प्रजीर्णकी मिट्टी में जस्ता इतना अधिक पाया गया है कि उसके विषैले प्रभाव से पौधे उस मिट्टी में उपज नहीं सकते। यह देखा गया है कि मिट्टी के पी एच की वृद्धि से जस्ते की प्राप्यता कम हो जाती है। ५·५ और ६·५ के बीच पी एच से जस्ते की प्राप्यता महत्तम होती है। यदि वह ७·८ से ऊपर हो जाय तो प्राप्यता फिर कुछ बढ़ जाती है। सम्भवतः क्षारीय विलयन में जिंक के ऋणायन के बनने से ऐसा होता है। मिट्टी में जस्ते की सबसे अधिक मात्रा मिट्टी की ऊपरी सतह पर ही पायी जाती है। पौधों में जस्ते की मात्रा कम, प्रति लाख भाग में ०·१ से ५·० भाग रहती है। कुछ पौधों में प्रति लाख भाग में १० से २० भाग तक जस्ता पाया गया है। खाद्य शुक्ति (oyster) और यकृत में अपेक्षया अधिक जस्ता पाया जाता है।

जस्ते की हीनता

पौधों में जस्ते का अभाव साधारणतया उदासीन या क्षारीय मिट्टी में देखा जाता है। अम्लीय मिट्टी में कम देखा जाता है। फ्लोरिडा में नीबू, तुंग और पिकान के पेड़ों में जस्ते का अभाव देखा गया है। कैम्प (१९४५) का मत है कि जहाँ-जहाँ नीबू उपजता है वहाँ-वहाँ जस्ते का अभाव देखा जाता है। जस्ते के अभाव में पत्ते चितकबरे हो जाते हैं। पत्तों पर पीले-पीले दाग़ पड़ जाते हैं। होआगलैण्ड (१९४४) का मत है कि पेड़ के जिस अंग पर अधिक ग्रीष्म प्रकाश पड़ता और ताप ऊँचा होता है, उसके पत्ते जस्ते की हीनता के रोग से अधिक आक्रान्त होते हैं। स्टाउट (Stout) का अनुभव है कि यदि पौधे कम प्रकाश में उगें तो उनमें जस्ते की हीनता के रोग कम होते हैं।

जस्ते की हीनता से पिकान में एक रोग होता है जिसे रोज़ेट (rosete) कहते हैं। इसमें शाखाओं के छोर के पत्ते पीले चितकबरे हो जाते हैं। पहले छोर के पत्ते ही आक्रान्त होते हैं। जैसे-जैसे रोग बढ़ता है पत्ते छोटे होते जाते, भंगुर होते जाते और आकार विकृत होता जाता है, पर सिरा ज्यों का त्यों बना रहता है। अन्त में शाखा सूख जाती और सूखी शाखा के पार्श्व में रोजेट आकृति की कलियाँ निकलती हैं जिससे इस रोग का नाम रोजेट पड़ा है।

नीबू वर्ग के पेड़ों में 'चितकबरे पत्ते' का एक रोग होता है। इसमें पत्तों के सिरों के बीच के भागों में पीले पीले चिह्न पड़ जाते हैं जिससे पत्ते चितकबरे देख पड़ते हैं। तुंग तैल के वृक्षों में एक रोग हो जाता है जिसे कांस्य (bronzing) का रोग कहते हैं। मकई में एक रोग हो जाता है जिसे 'सफेद कली' (white bud) का रोग कहते हैं। अखरोट में 'पीलिया' रोग हो जाता है। अनन्नास, अंगूर आदि में जस्ते की हीनता से ऐसे रोग होते हैं जिनमें पत्ते चितकबरे होकर किनारे से सिकुड़-कर अन्त में गिर पड़ते हैं। कपास, लोबिया, केवाँछ (velvet bean) और बाजरे में जस्ते की हीनता के रोग देखे गये हैं। कहा गया है कि पौधों के इस प्रकार के रोग कुछ जीवाणुओं से भी हो सकते हैं।

जस्ते का कार्य

जस्ते का कार्य कैसे होता है, यह ठीक-ठीक मालूम नहीं है। पर ऐसा समझा जाता है कि क्लोरोफिल के बनने और पौधों की वृद्धि में इसकी आवश्यकता पड़ती है। चूँकि जस्ता पौधों में पाया जाता है इससे यह स्पष्ट है कि पौधों के निर्माण में इसका सीधा हाथ अवश्य है। पर यह कैसे कार्य करता है, यह समझ में अभी नहीं आया है।

जस्ते की हीनता और मिट्टी

जस्ते की हीनता का मिट्टी की प्रकृति से बहुत घना सम्बन्ध है। साधारण भारी मिट्टी, मटियार दोमट, हलकी बलुआर मिट्टी जिसमें कोलायड कार्बनिक पदार्थ हों, प्रजीर्णकी मिट्टी और ऐसी मिट्टी, जिसमें चूना-पत्थर ८० प्रतिशत हो, जस्ते की हीनता पायी जाती है। फ्लायड (Floyd, १९१६) का मत है कि चूने के अतिरेक से नीबू के पेड़ों में जस्ते की हीनता होती है। 'कैम्प (१९४५) का मत है कि मिट्टी के पी एच के ६·० से ऊपर होने पर जस्ते की हीनता देखी जाती है। यह निश्चित है कि जस्ते की प्राप्यता बहुत कुछ मिट्टी के पीएच पर निर्भर करती है और जैसे ऊपर कहा गया है केवल ५·५ से ६·६ पीएच के बीच प्राप्यता महत्तम होती है। पीच (Peacy, १९४१) और जैनिसन (१९४३) के मत हैं कि मिट्टी में कार्बनिक अवयवों के साथ संयुक्त रहने से जस्ते की विलेयता बहुत कम हो जाती है अथवा बिल्कुल नहीं रहती।

जस्ता-उर्वरक

जस्ते की हीनता में जस्ता-उर्वरक देने से पौधों के दोष दूर हो जाते हैं। साधारणतया जस्ते के लवण, जिंक सल्फेट, जिंक नाइट्रेट, जिंक अमोनियम हाइड्रॉक्साइड और सोडियम जिंकेट समान रूप से लाभप्रद हैं पर व्यवहार में केवल जिंक सल्फेट ही आता है। जिंक सल्फेट जड़ों में डाला जा सकता है अथवा इसका विलयन पेड़ों पर छिड़का जा सकता है। अलबेन और बौग्गस् (Alben and Boggs, १९३६) की सिफारिश है कि पेकान के रोजेट के नियंत्रण के लिए एक पौण्ड जिंक सल्फेट को ५० गैलन जल में घोलकर तीन या चार बार छिड़कने से रोग का नियंत्रण हो जाता है। नीबू के पेड़ों पर जिंक सल्फेट के पाँच पौण्ड और जलीयित चूने के २·५ पौण्ड को ५० गैलन जल में मिलाकर छिड़का जा सकता है। इससे पत्ते का चितकबरा रोग दूर हो जाता है। विलयन छिड़कना मिट्टी में उर्वरक देने की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय पाया गया है। सत्तालू के पत्ते का छोटा-छोटा होना जिंक सल्फेट का विलयन छिड़ककर डिक्की और ब्लैकमोन (Dickey and Blackmon, १९४०) ने दूर किया है। फल-उत्पादकों ने फल के पेड़ों की जड़ों के आस-पास $\frac{1}{4}$ पौण्ड सूखा जिंक सल्फेट रखकर जस्ते की हीनता के दूर करने में सफलता प्राप्त की है। इतनी मात्रा से अम्लीय मिट्टी में विषालुता का भय हो सकता है। जल-संवर्धन (culture) में विलेय जिंक लवण का विषैला प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा गया है। सोयाबीन की खेती में प्रति एकड़ ७५ पौण्ड जिंक सल्फेट के उपयोग से विषैले प्रभाव की रिपोर्ट मिली है।

प्रति पेड़ पाँच पौण्ड जिंक सल्फेट के व्यवहार से सत्तालू पर भी विषैला प्रभाव देखा गया है। पर मिट्टी में जस्ते का स्थिरीकरण अनेक कारणों से हो सकता है जिससे जस्ते का विषैला प्रभाव न पड़े। मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों से मिलकर जस्ता अविलेय

चित्र ४४—सत्तालू के पेड़ पर जिंक सल्फेट का प्रभाव

(बायाँ पेड़ जिंक लवण की कमीवाली मिट्टी का है, दायाँ पेड़ जिंक लवण की मिट्टी का)

लवण बन सकता है। फास्फेट के साथ मिलकर जस्ता अविलेय फास्फेट बन सकता है। यदि मिट्टी में चूने की मात्रा अधिक हो तो ऐसे अविलेय लवणों के बनने में बाधा पहुँच सकती है और तब जिंक लवणों का विषैला प्रभाव दिखाई पड़ सकता है।

कुछ लोगों ने जस्ते की हीनता की दशा में पेड़ों के तने में जस्ते के बनें स्फान (wedge) को घुसाकर हीनता के दूर करने में सफलता प्राप्त की है।

सामान्य रूप से भी जस्ता-उर्वरक के उपयोग से पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। अन्य उर्वरकों के हाथ प्रति एकड़ १० से २० पौण्ड जिंक सल्फेट के उपयोग से भुट्टे की पैदावार ४५ प्रतिशत बढ़ी हुई बर्जर और ट्रुओग (Berger and Truog १९४९) द्वारा पायी गयी है।

मोलिबडेनम

बहुत दिनों से मालूम था कि घास-पातों में मोलिबडेनम रहता है, पर मोलिबडेनम की हीनता हो सकती है इसका पता कुछ थोड़े वर्षों से ही लगा है। इस सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धान और विश्लेषण अमेरिका के कैलिफोर्निया, फ्लोरिडा, न्यूजर्सी न्यूयार्क, यूरोप, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड में हुए हैं। इन सब देशों में मोलिबडेनम की उपस्थिति, विस्तार और कार्य के सम्बन्ध में अन्वेषण हुए हैं। इसके फलस्वरूप पता लगा है कि मोलिबडेनम की कमी से पौधे रोगग्रस्त भी हो जाते हैं। अनेक पौधों, नीबू, टमाटर, फूलगोभी, सलाद और अल्फाल्फा में मोलिबडेनम की हीनता से उत्पन्न रोग पाये गये हैं। नीबू में पीले दाग का रोग था फूलगोभी में 'विपटेल' (whiptail) का रोग हो जाता है। इस रोग में फूलगोभी के पत्ते संकीर्ण, ऊबड़खाबड़ और किनारे अनियमित तथा सिकुड़ कर मध्य सिरे के निकट चले आते हैं। आरनन (Arnon) ने १९३७ में पहले-पहल बतलाया कि जौ को, आरनन और स्टाउट ने १९३९ में बतलाया कि टमाटर को मोलिबडेनम की आवश्यकता होती है। अन्य देशों के विभिन्न अन्वेषकों, अंग्रेज, डच और आस्ट्रेलियावालों ने भी बतलाया है कि खेतों में बड़ी अल्प मात्रा में मोलिबडेनम देने से फसलों की पैदावार बढ़ जाती है।
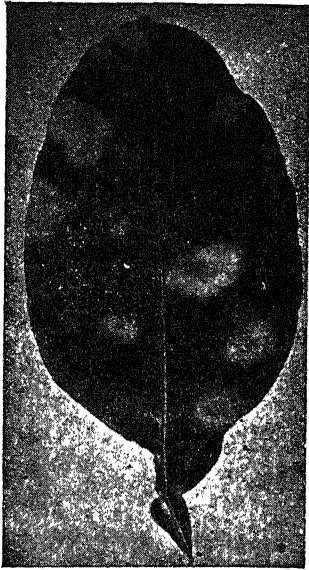
चित्र ४५—अंगूर पत्ते पर मोलिबडेनम की कमी के दाग

रोबिन्सन और अलेक्जेण्डर (१९५३) ने मिट्टी के ५०० नमूनों का विश्लेषण कर देखा है कि अधिकांश नमूनों में प्रति लाख भाग में ०.२५ भाग मोलिबडेनम रहता है। फ्लोरिडा की नीबू फसलवाली मिट्टी में मोलिबडेनम की मात्रा प्रति लाख ०.०२

में ०·०४ भाग स्टिवर्ट और लियोनार्ड द्वारा पायी गयी थी। रोबिन्सन और एड-गिंगटन (१९४८) की रिपोर्ट है कि कुछ घास-पातों में मोलिबडेनम की मात्रा प्रति लाख १३·७ भाग रहती है।

साधारणतया मोलिबडेनम की कमी ऐसी मिट्टी में देखी जाती है जिसका पी एच ५·२ से कम रहता है। ऐसी मिट्टी में चूना डालने से हीनता दूर हो जाती है। बेयर (Bear, १९५२) की रिपोर्ट है कि न्यूजर्सी की उर्वरा भूमि में समस्त मोलिबडेनम की मात्रा प्रति लाख भाग में ०·०१ से ०·०३ भाग पायी गयी है। यदि मिट्टी में मोलिब-डेनम की मात्रा बहुत अधिक हो तो पौधे अधिक मोलिबडेनम ग्रहण कर लेते हैं। ऐसे घास-पातों को पशुओं को खिलाने से उन को नुकसान हो सकता है। फरगसन (१९४८) की रिपोर्ट है कि पशुओं में teart का रोग ऐसे घास-पातों के खिलाने से, जिनमें मोलिबडेनम की मात्रा प्रति लाख २ या इससे अधिक थी, होता है।

वारिंगटन (१९४६) की रिपोर्ट है कि सलाद के खेतों में मोलिबडेनम देने से सलाद स्वस्थ होता और वृद्धि अच्छी होती है। वान्सेलो और दत्त (Vanselow and Datta, १९४९) ने देखा है कि नीबू के रोग में प्रति लाख में ०·००१ भाग मोलिबडेनम देने से रोग छूट जाता है। बेयर (१९५३) का मत है कि जल संवर्धन के प्रति अरब भाग में एक भाग मोलिबडेनम के रहने से भी काम चल जाता है।

साधारणतया मोलिबडेनम के जो लवण प्रयुक्त होते हैं वे सोडियम मोलिबडेट ($Na_2MoO_4, 2H_2O$) और अमोनियम मोलिबडेट [$(NH_4)_6 Mo_7O_{.4}4H_2O)$] हैं। प्रति एकड़ में दो औंस से लेकर एक पौण्ड तक यह प्रयुक्त हो सकता है। अन्य उर्वरकों के साथ मिलाकर खेतों में डाल सकते हैं अथवा इसका विलयन छिड़क सकते हैं। अल्फाल्फा के खेतों में प्रति एकड़ एक पौण्ड के उपयोग से पैदावार में औसत १३ प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी है। बोने से पहले अल्फाल्फा के बीज के १० पौण्ड में एक औंस सोडियम मोलिबडेट मिलाकर बोने से भी सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त हुआ है। एक एकड़ के लिए बीज में एक औंस मोलिबडेनम आक्साइड (MoO_3) भी सम्भवतः पर्याप्त होगा।

मोलिबडेनम कैसे कार्य करता है, इसका ठीक-ठीक पता अभी नहीं लगा है। ऐसा मालूम होता है कि नाइट्रोजन के चक्र से मोलिबडेनम का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्भवतः नाइट्रेट के अवकरण में यह उत्प्रेरक का कार्य करता है। खेतों में जो नाइट्रेट खाद डाली जाती है उसे इसी के सहारे पौधे ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। फलीदार

पौधे जो वायु से नाइट्रोजन ले सकते हैं उनमें जो जीवाणु कार्य करते हैं उनको भी मोलिबडेनम से उत्प्रेरणा मिलती है। यही कारण है कि प्रति एकड़ १/६४ से लेकर एक औंस तक MoO_3 के डालने से फलीदार फसलों की पैदावार बहुत अधिक, ५९० से २०२५ पौण्ड बढ़ी हुई पायी जाती है। पौधे के उस भाग में मोलिबडेनम सबसे अधिक पाया जाता है, जहाँ उस से सबसे अधिक पानी सूखता है।

सामान्यत: सुपर-फास्फेट में बड़ी अल्प मात्रा में मोलिबडेनम रहता है। इस अल्प मोलिबडेनम से ही अधिकांश पौधों की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है।

एल्यूमिनियम

पौधों की वृद्धि में एल्यूमिनियम का प्रभाव

मिट्टी में एल्यूमिनियम रहता है। खेती की मिट्टी में एल्यूमिनियम की मात्रा ७ से ८ प्रतिशत रहती है। अनेक पौधों में एल्यूमिनियम पाया गया है। कुछ पौधों की राखों में एल्यूमिनियम की मात्रा ७० प्रतिशत तक पायी गयी है। कुछ मिट्टी में एल्यूमिनियम की मात्रा अधिक रहने पर भी पौधों में एल्यूमिनियम अधिक नहीं पाया जाता। कुछ वनस्पति-वेत्ताओं का मत है कि पौधों की जड़ों में एल्यूमिनियम की मात्रा अधिकतम रहती और जैसे-जैसे पौधों के अंग दूर होते जाते, मात्रा कम होती जाती है। पत्तों में एल्यूमिनियम की मात्रा न्यूनतम रहती है। सम्भवत: अनेक पौधों के लिए, विशेषत: भारी अम्लीय मिट्टी में उगनेवाले पौधों में, यह बात सच हो सकती है।

हटचिनसन (१९४५) का विचार है कि पर्णांगका एल्यूमिनियम एक आवश्यक तत्त्व है। उनका यह भी विचार है कि जीवाणुओं के लिए एल्यूमिनियम किसी महत्त्व का नहीं है। इसका कारण उदासीन विलयन में एल्यूमिनियम की न्यून विलेयता सम्भवत: हो सकती है। पशुओं द्वारा एल्यूमिनियम के सेवन से यह मल द्वारा निकल जाता है, यद्यपि इसका कुछ अंश पित्त (biles) में सान्द्रित हो सकता है।

यदि मिट्टी का पी एच ५·५ से कम है तो ऐसी अम्लीय मिट्टी में विलेय एल्यूमिनियम बहुधा रहता है। यदि मिट्टी का पी एच ८·० से अधिक है तो ऐसी मिट्टी में भी विलेय एल्यूमिनियम बहुधा पाया जाता है। विलेय एल्यूमिनियम पौधों के लिए विषैला होता है पर चूना फास्फेट से इसका अवक्षेपण हो जाता है। क्षारीय मिट्टी में सक्रिय एल्यूमिनियम की विषालुता का निश्चित रूप से पता नहीं है, पर ऐसा मालूम होता है कि एल्यूमिनियम विषैला हो सकता है।

कुछ पौधों के लिए यदि मिट्टी को अम्लीय बनाना हो तो मिट्टी में एल्यूमिनियम सल्फेट डालकर ऐसा किया जा सकता है। इसके लिए प्रति १०० वर्गफुट में ५ से १० पौण्ड एल्यूमिनियम सल्फेट का उपयोग हो सकता है।

कोबाल्ट

पशुओं के लिए कोबाल्ट आवश्यक तत्त्व है पर पौधों के लिए यह आवश्यक नहीं समझा जाता। यंग (१९३५) का मत है कि बहुत तनु सान्द्रण से कुछ पौधों में यह अल्प उद्दीपन करता है पर पशुओं के चारा में कोबाल्ट का रहना बहुत आवश्यक है ताकि पशुओं को उससे कोबाल्ट प्राप्त हो सके।

अम्लीय आग्नेय चट्टानों से बनी मिट्टी में कोबाल्ट की कमी रह सकती है। प्रवाल-श्रृंखला वाली मिट्टी में कोवाल्ट की मात्रा बहुत अल्प रह सकती है पर ज्वाला मुखी-वाली मिट्टी में इसकी मात्रा बहुत अधिक रहती है। जिन चट्टानों में लोहा और मैगनीशियम अधिक रहते हैं उनमें कोबाल्ट अधिक रह सकता है।

मिचेल (१९४५) का मत है कि पशुओं को स्वस्थ रखने के लिए उनके चारे में कोबाल्ट का रखना आवश्यक है। प्रति लाख भाग में यदि कोबाल्ट की मात्रा ०·००८ भाग रहे तो यह पर्याप्त समझा जाता है। कुछ देशों, जैसे अमेरिका, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका में चारे में कोबाल्ट की कमी से पशुओं में कोबाल्ट-हीनता के कुछ रोग देखे गये हैं। ऐसे रोगों को 'समुद्रतटीय रोग' (coastal disease), नेकुरिटिस (nakuritis) और पाइनिंग (pining) कहते हैं। यदि ऐसी मिट्टी में प्रति एकड़ २८ औंस कोबाल्ट सल्फेट डाला जाय तो चारे में कोबाल्ट की कमी साधारणतया दूर हो जाती है। कोबाल्ट मिले हुए सुपर फास्फेट के प्रति एकड़ २ पौण्ड डालने से भी कोबाल्ट-हीनता के रोग दूर हो जाते हैं। प्रति एकड़ ०·२५ से २५ पौण्ड तक आवश्यकता के अनुसार कोवाल्ट के ऊपर से डालने से काम चल सकता है। यह देखा गया है कि मिट्टी में यदि प्रति एकड़ पाँच पौण्ड कोबाल्ट नाइट्रेट डाला जाय तो अल्फाल्फा में कोवाल्ट की मात्रा ०·००७ से ०·०५० प्रति लाख भाग बढ़ जाती है।

आयोडीन

पौधों के लिए आयोडीन आवश्यक नहीं है पर मनुष्यों और पशुओं के लिए यह अत्यावश्यक है। यदि मनुष्यों को आहार या पानी में आयोडीन न मिले तो उनको गले का एक रोग 'गलगण्ड, (goitre) हो जाता है। पशुओं में, विशेषतः भेड़ों

में, ऐसा ही रोग हो जाता है। कुछ स्थलों के पानी में आयोडीन का अभाव रहता है। ऐसे स्थानों के निवासियों को गलगण्ड का रोग बहुधा हो जाता है। चम्पारन जिले के मझौआ स्थान के अधिकांश अधिवासी गलगण्ड से ग्रस्त होते हैं। पौधों में इसकी कमी की पूर्ति आयोडीन उर्वरक डालकर की जाती है। इसके लिए पोटेसियम आयोडाइड का उपयोग होता है।

रेडियम-धर्मी उर्वरक

कुछ लोगों का ऐसा खयाल था कि सम्भवतः रेडियम धर्मी उर्वरकों के उपयोग से पौधों के विकास में वृद्धि हो सकती है। इधर अनेक प्रयोग रेडियम-धर्मी उर्वरकों के साथ किये गये हैं। पर किसी में भी पौधों के विकास में कोई वृद्धि नहीं देखी गयी है। इसके विपरीत यह देखा गया है कि रेडियम-धर्मी तत्त्वों से कुछ पौधों को निश्चित रूप से क्षति पहुँची है। रेडियम-धर्मी तत्त्वों के उपयोग से उर्वरक किस प्रकार पौधों में प्रविष्ट होकर भिन्न-भिन्न भागों में जाते हैं इसका अध्ययन बड़ी सरलता से हो जाता है। रेडियम-धर्मी किरणों से कोशिकाओं की प्रकृति बदली जा सकती है जिससे विभिन्न किस्मों के पौधे उगाये जा सकते हैं।

सिलिकन

अनेक पौधों में सिलिकन पाया जाता है। पौधों की राख में ४० से ७० प्रतिशत सिलिकन पाया जाता है। धान के छिलके की राख में सिलिकन की मात्रा बहुत अधिक रहती है। मिट्टी में आक्सिजन के बाद सिलिकन का ही स्थान है।

पौधों की वृद्धि के लिए सिलिकन आवश्यक नहीं समझा जाता। सिलिकन के अभाव में अनेक पौधे उगाये जा सकते हैं। एक समय ऐसा समझा जाता था कि सिलिकन के कारण घास या पयाल में दृढ़ता आती है, पर रसेल ऐसा नहीं समझते। कुछ पौधों, विशेषतः सूरजमूखी, जौ, तोरिया और सूडान घास, में देखा गया है कि सिलिकन के कारण बीज बनने में सहायता मिलती है। हॉल और मोरिसन का मत है कि सिलिकेट की उपस्थिति से फास्फरस का स्वांगीकरण बढ़ जाता है। एक विद्वान् का मत है कि फास्फरस का स्थान अंशतः सिलिकन ले सकता है। दूसरे का मत है कि फास्फरस का स्थान सिलिकन नहीं ले सकता।

सिलिकन का भौतिक प्रभाव मिट्टी पर पड़ता है, यह भुलाया नहीं जा सकता। सिलिकन के कारण मिट्टी ऐसे रूप में रहती है कि पौधे उससे अधिकतम लाभ उठा सकते हैं। ऐसी मिट्टी में आयन विनिमय की क्षमता अधिकतम रहती है। अतः

महत्तम उर्वरता के लिए मिट्टी में सिलिकन का रहना आवश्यक समझा जाता है। सिलिकन अंशतः सिलिका (iO_2) के रूप में और अंशतः सिलिकेट के रूप में मिट्टी में रहता है। सिलिका और सिलिकेट जल में घुलते नहीं हैं। केवल क्षारीय सिलिकेट, विशेषतः सोडियम सिलिकेट, जल में घुलता है।

क्लोरीन

पौधों में क्लोरीन रहता है। इसकी मात्रा फास्फरस और गन्धक से अधिक रहती है। यद्यपि फसलों की पैदावार क्लोरीन से बढ़ी हुई पायी गयी है, पर इसका कोई प्रमाण नहीं है कि पौधों के लिए क्लोरीन आवश्यक है। क्लोरीन का अच्छा प्रभाव शतावरी (asparagus), कुट्टक (buckwheat), कपास, आलू, तम्बाकू, टमाटर और अन्य फसलों पर स्पष्ट देखा गया है। लिपमैन (१९३८) ने कुट्टक और मटर पर क्लोरीन का अच्छा प्रभाव देखा है। पौधों के लाल, नीले और बैंगनी वर्णक (pigment) के उत्पादन में क्लोरीन आवश्यक समझा जाता है।

क्लोरीन की उपस्थिति में फसलें जल्दी पकती हैं। रसेल (१९३२) का मत है कि क्लोरीन के कारण वाष्पोत्सर्जन (transpiration) कम हो जाता और उससे गरम दिनों में पत्तों का ताप बढ़ जाता है।

कुछ पौधे ऊंचे ताप को सहन कर सकते हैं और कुछ पौधे ऊँचे ताप से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। चुकन्दर और जौ के लिए उच्च ताप अच्छा होता है पर आलू के लिए शीतकाल ही अच्छा होता है। क्लोरीन से ये दोनों प्रकार के पौधे क्षतिग्रस्त होते हैं। पौधों के ऊतकों में जल और क्लोरीन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। सूखा में पत्ता ऊतकों का विनाशकारी सूखना क्लोरीन रोकता है।

पौधों द्वारा मैगनीशियम का अवशोषण क्लोरीन से बढ़ जाता है पर प्रोटीन की मात्रा क्लोरीन के कारण कम हो जाती है।

आलू में पोटेसियम सल्फेट के स्थान में पोटेसियम क्लोराइड के व्यवहार से आलू के शुष्क अंश में कमी हो जाती है। रसेल (१९४८) का कथन है कि जिस आलू के खेत में पोटेसियम क्लोराइड की खाद प्रयुक्त हुई है उस खेत के आलू को इंग्लैण्ड में लोग पसन्द नहीं करते।

तम्बाकू के खेत में यदि क्लोराइड का अत्यधिक व्यवहार हो तो ऐसा तम्बाकू अच्छा नहीं समझा जाता। ऐसा तम्बाकू ठीक तरह से नहीं जलता। तम्बाकू की खेती में प्रति एकड़ २० से २४ पौण्ड से अधिक क्लोरीन, पोटेसियम क्लोराइड के रूप में,

व्यवहार नहीं करना चाहिए। इतनी मात्रा ही फसल के विकास और अधिकतम उत्पादन के लिए आवश्यक है। स्किनर (१९३१) का मत है कि कपास की खेती में ११२ पौण्ड क्लोरीन के व्यवहार से कपास की उपज कुछ मिट्टियों में कम पायी गयी है।

चित्र ४६——मक्का पर अपूर्ण और पूर्ण उर्वरक का प्रभाव, पृ० ४५९

बायें खेत में प्रति एकड़ ७६ किलोग्राम ट्रिबल फास्फेट और ६० किलोग्राम म्युरियेट आफ पोटाश डाला गया था। इसमें नाइट्रोजन उर्वरक बिल्कुल नहीं था। दायें खेत में उपर्युक्त उर्वरकों के अतिरिक्त ४४ किलोग्राम अमोनियम सल्फेट बोने के समय डाला गया था और जब पौधा ७५ सेंटीमीटर का हुआ तब पार्श्व में ४४० किलोग्राम सोडियम नाइट्रेट डाला गया था।

बायें खेत की पैदावार प्रति एकड़ ०·६ मेट्रिक टन थी।

दायें खेत की पैदावार प्रति एकड़ ३ मेट्रिक टन थी।

मिट्टी का पी एच ५·९ था।

चित्र ४७—ट्रिनिडाड में ईख की खेती, पृ० ४५९

खेत का पी एच ४·७ था। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ, नाइट्रोजन और उपलब्ध फास्फरस कम था। बायें खेत में प्रति हेक्टेयर ३७५ किलोग्राम अमोनियम सल्फेट (७७ किलोग्राम नाइट्रोजन) डाला गया था। उसकी पैदावार प्रति हेक्टेयर १०० मेट्रिक टन थी।

दायें खेत में प्रति हेक्टेयर १००० किलोग्राम अमोनियम सलफेट (२०५ किलोग्राम नाइट्रोजन) और ७५० किलोग्राम सुपर-फास्फेट (१३५ किलोग्राम फास्फरिक अम्ल) डाला गया था। पैदावार १३७ मेट्रिक टन थी। ईख २३ सप्ताह की पुरानी थी।

अठारहवां अध्याय

मिश्रित उर्वरक

भिन्न भिन्न फसलों को भिन्न भिन्न मात्रा में पोषक तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है। भूमि की प्रकृति पर भी पोषक तत्त्वों की मात्रा निर्भर करती है। कुछ कारखाने-वाले दो या तीन प्रमुख पोषक तत्त्वों को मिलाकर मिश्रित उर्वरक तैयार कर बचते हैं। जिस मिश्रित उर्वरक में केवल दो प्रमुख पोषक तत्त्व ही विद्यमान हों उसे 'अपूर्ण' उर्वरक कहते हैं। जिस मिश्रित उर्वरक में तीनों प्रमुख पोषक तत्त्व, नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटेसियम विद्यमान हों उसे 'पूर्ण' उर्वरक कहते हैं। ऐसे मिश्रित उर्वरक पहले पहल अमेरिका के बाल्टीमोर में सन् १८५० ई० में बने थे। अब तो अमेरिका के अनेक राज्यों में अनेक मिश्रित बनकर बिकते हैं। समस्त उर्वरकों का प्रायः ८० प्रतिशत आज मिश्रित उर्वरक के रूप में ही बिकता है। भिन्न भिन्न फसलों के लिए विशिष्ट मिश्रित उर्वरक आज बिकते हैं। एक मिश्रित उर्वरक गेहूँ के लिए, एक जौ के लिए, एक फूलगोभी के लिए, एक अन्य साग-भाजियों के लिए विकता है। गेहूँ के मिश्रित उर्वरक में फास्फेट की मात्रा अधिक रहती है। साग-भाजियों के लिए मिश्रित उर्वरक में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक और फास्फेट की मात्रा कम रहती है।

पहले जो मिश्रित उर्वरक बिकते थे वे 'ऊँची कोटि' के होते थे। ऐसे उर्वरकों की माँग बढ़ जाने से उनकी कमी होने पर निम्न कोटि के मिश्रित उर्वरक बिकने लगे। ऐसे मिश्रित उर्वरकों को देखकर यह निर्णय करना कठिन है कि वे ऊँची कोटि के हैं वा नीची कोटि के। राज्य की ओर से इस सम्बन्ध में अमेरिका में कानून बना, जिसके अनुसार प्रत्येक नमूने के साथ उर्वरक का विश्लेषण देने का आदेश था।

पहले जो विश्लेषण दिये जाते थे वे इस प्रकार होते थे —

नाइट्रोजन	५·०	प्रतिशत
अमोनिया का समतुल्य	६·०८	,,
उपलब्ध फास्फरिक अम्ल	१०·०	,,
अविलेय फास्फरिक अम्ल	१·०	,,
विलेय फास्फरिक अम्ल	८·०	,,

पोटाश (जलविलेय) ५·० प्रतिशत
पोटाश सल्फेट का समतुल्य ९·४ ,,

ऐसे विस्तार के साथ विश्लेषण देने से कुछ असुविधा थी। बाद में केवल "५–१०–५" ही बड़े अंकों में लिखे जाने लगे। इसका आशय यह है कि मिश्रित उर्वरक में नाइट्रोजन का ५ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल का १० प्रतिशत और पोटाश का ५ प्रतिशत है। ऐसी परिपाटी अमेरिका के संयुक्त राज्यों में है। अमेरिका के कुछ अन्य राज्यों में पहला अंक फास्फरिक अम्ल का, दूसरा नाइट्रोजन का और तीसरा जलविलेय पोटाश का होता है। कुछ राज्यों में नाइट्रोजन अमोनिया के रूप में दिया जाता था। पर अब कानून ऐसा बन गया है कि नाइट्रोजन को नाइट्रोजन के रूप में ही देना अनिवार्य है।
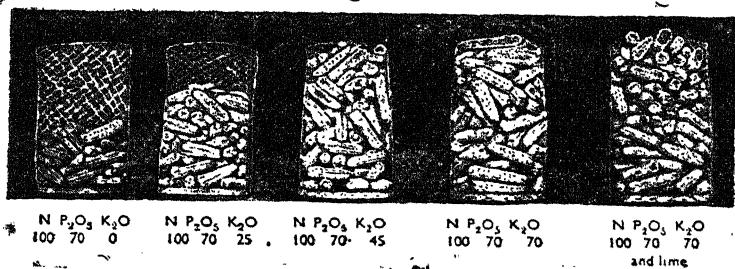
चित्र ४८—मिश्रित उर्वरकों के साथ चूने और पोटाश का प्रभाव

[पहले पात्र का उत्पादन उस खेत का है जिसमें प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन (अमोनियम नाइट्रेट के रूप में) १०० किलोग्राम, फास्फरिक अम्ल ७० किलोग्राम ट्रिबल सुपर-फास्फेट के रूप में और पोटाश बिलकुल नहीं था। उपज बहुत कम है।

दूसरे पात्र का उत्पादन उस खेत का है जिसमें नाइट्रोजन और फास्फरिक अम्ल के साथ २५ किलोग्राम पोटाश (म्युरियेट आफ पोटाश के रूप में) डाला गया है उत्पादन पहले खेत से अधिक है।

तीसरे और चौथे पात्र वाले मक्का के खेत में केवल पोटाश की मात्रा बढ़ायी गयी है। उससे पैदावार क्रमशः बढ़ती गयी है।

पांचवें पात्र में अन्य उर्वरकों के साथ चूना भी डाला गया है। पैदावार यहाँ बहुत बढ़ी हुई है।

जिस खेत में मक्का बोया गया था उसका पी एच ७·२ था।]

चित्र ४९—उर्वरक डाले हुए खेत में चुकन्दर, पृ० ४६०

चित्र ५०—बिना उर्वरकवाले खेत में चुकन्दर, पृ० ४६०

यदि उपर्युक्त तीनों अंकों के जोड़ १४ से कम हों तो ऐसे मिश्रित उर्वरकों को नीची कोटि का, यदि उनका जोड़ १५ से २४ हो तो उसे सामान्य कोटि का, और यदि उनका जोड़ २५ से ३५ हो तो उसे ऊँची कोटि का उर्वरक कहते हैं। २-८-२ नीची कोटि का और ५-८-७ सामान्य कोटि का मिश्रित उर्वरक है। यदि ये अंक ३५ से ऊपर हों तो ऐसे उर्वरक को 'सान्द्र' उर्वरक कहते हैं।

अमेरिका के संयुक्त राज्यों में जो कानून बने हैं उनके अनुसार उर्वरक विक्रेताओं को विश्लेषण का अंक देना अनिवार्य है। कृषि विभाग की ओर से इन अंकों की समय समय पर जाँच होती है। अमेरिका के कुछ राज्यों में तो २० से कम अंकवाले मिश्रित उर्वरकों का बचना कानून द्वारा वर्जित है। कुछ राज्यों में १६ अंकवाला उर्वरक भी बेचा जा सकता है। मिश्रित उर्वरक के प्रत्येक बोरे पर अथवा एक तख्ती पर लिखकर बोरे में नत्थी किया हुआ निम्नलिखित विवरण रहना चाहिए।

१. बोरे में कितना पौण्ड उर्वरक है

२. उर्वरक किस किस्म का है

३. उर्वरक के निर्माणकर्त्ता अथवा विक्रेता कौन हैं

४. कम से कम नाइट्रोजन, अमोनिया, उपलब्ध फास्फरिक अम्ल और जल-विलेय पोटाश कितना है।

जाँच से यदि पता लगे कि जितनी मात्रा लिखी हुई है उतनी मात्रा बोरे में नहीं है तो निर्माणकर्ताओं अथवा विक्रेताओं को सजा दी जाती है। विश्लेषण के परिणाम भी समय-समय पर बुलेटिन में छपते हैं और ये बुलेटिनें थोड़ी कीमत में बिकती हैं। सन् १९२३ ई० तक यदि लिखे और विश्लेषण से प्राप्त अंकों में १० प्रतिशत से कम की कमी होती थी तो उसके लिए सजा नहीं दी जाती थी। पर १९२४ में कानून में जो संशोधन हुआ उसमें यह बात हटा दी गयी। अब बोरे पर लिखे और विश्लेषण से प्राप्त अंकों में ०·१ से ०·३ प्रतिशत से अधिक का अन्तर नहीं रहना चाहिए।

मिश्रित उर्वरकों में नुसखे का देना भी आजकल आवश्यक समझा जाता है। कुछ निर्माणकर्त्ता यह भी लिखते हैं कि नाइट्रोजन किस प्रकार का है। मिश्रित उर्वरक की खपत पाश्चात्य देशों में दिन दिन बढ़ रही है। ऊँची कोटि के मिश्रित उर्वरक का उपयोग आज अधिकाधिक हो रहा है। अमेरिका में समस्त उर्वरकों का ७० प्रतिशत मिश्रित उर्वरक के रूप में और फ्रांस, नारवे और जर्मनी में २५ से ५० प्रतिशत मिश्रित उर्वरकों, के रूप में प्रयुक्त होता है।

१९५२ ई० में अमेरिका के संयुक्त राज्यों में जो मिश्रित उर्वरक प्रयुक्त हुए उनमें निम्नलिखित पाँच प्रकार के प्रमुख थे। खपत की मात्रा के क्रम में वे यहाँ दिये गये हैं।

मिश्रित उर्वरकों की क़िस्म

न्यू इंग्लैण्ड	५-१०-१०	६- ९-१२	०-१४-१४	८-१२-१६	५- ८- ७
मिडिल ऐटलैण्टिक	५-१०-१०	३-१२-१६	५-१०- ५	४- ८-१२	४-१२- ८
साउथ ऐटलैण्टिक	३- ९- ६	४-१०- ६	४ -८ -६	३- ९ -९	२-१२-१२
ईस्टनौर्थ सेन्ट्रल	३-१२-१२	२-१२- ६	४-१६-१६	०-२०-२०	३- ९-१८
वेस्टनौर्थ सेन्ट्रल	३-१२-१२	४-१२- ४	४-२४-१२	१०-२०- ०	८-२४- ८
ईस्ट साउथ सेन्ट्रल	४-१०- ७	६- ८- ४	६- ८- ८	५-१०- ५	३- ९- ६
वेस्ट साउथ सेन्ट्रल	५-१०- ५	४-१२- ४	८- ८- ८	०-१४- ७	३-१२-१२
माउन्टेन	१०-२०-०	१०-१०-०	१०-१६-८	१४-२४-०	१४-६- ०
पैसिफिक	१०-१०-५	१७- ७-०	८- ८- ४	६-१०- ४	८-१०-१२
कान्टिनेन्टल युनाइटेड स्टेट्स	३-१२-१२	५- १०-५	५-१०-१०	३-९- ६	३-१२-६

१८८०-१९५० तक मिश्रित उर्वरकों के औसत पोषक तत्त्वों की क्रमशः वृद्धि

वर्ष	नाइट्रोजन प्रतिशत	फास्फरिकअम्ल प्रतिशत	पोटाश प्रतिशत	समस्त पोषक तत्त्व प्रतिशत
१८८०	२·४०	९·१०	२·००	१३·५०
१८९०	२·३०	९·३०	२·१०	१३·७०
१९००	२·००	९·४०	२·५०	१३·९०
१९१०	२·१०	९·३०	३·४०	१४·८०
१९२०	२·३०	९·२०	२·४०	१३·९०
१९३०	३·१०	९·८०	५·००	१७·९०
१९४०	३·७६	९·६१	६·३७	१९·७४
१९५०	३·८०	११·००	८·२०	२३·००

उर्वरकों का मिश्रण

उर्वरक निर्माणकर्त्ता विभिन्न उर्वरकों और खादों को लेकर मिलाते हैं। ऐसे उर्वरकों और खादों में पोटाश लवण, सोडियम नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट, अमोनियम

नाइट्रेट, अमोनियम क्लोराइड, यूरिया, मछली के अवशिष्ट अंश, चमड़े के अवशिष्ट अंश, बाल-पंखादि, कम्पोस्ट, गोबर की खाद, घूरे की खाद, बिनौले और रेंड़ी आदि की खलियाँ रह सकती हैं। इन्हें सलफ्यूरिक अम्ल से अम्लीय बनाकर और फास्फेट चट्टान डालकर 'आर्द्र आधार' बनाते हैं जिसमें नाइट्रोजन और उपलब्ध फास्फरिक अम्ल रहते हैं। सलफ्यूरिक अम्ल से उर्वरक का नाइट्रोजन ऐसे रूप में आ जाता है कि पौधे उसे जल्दी ग्रहण कर लेते हैं।

यदि अमोनियम लवण और अम्लीय फास्फेट को मिलाया जाय तो मिश्रण कड़ा हो सकता है अथवा पिंड बन सकता है। ऐसे उर्वरक के वितरण में कठिनाई होती है। इसके अभिसाधन (curing) की आवश्यकता पड़ती है, ताकि वे ऐसे रूप में आ जायँ कि उनका वितरण सरलता से हो सके। इसके लिए 'आधार' पदार्थ को पोटाश या सोडा नाइट्रेट अथवा अमोनियम सल्फेट या इसी प्रकार के अन्य पदार्थों से मिलाकर छानकर बोराबन्दी करते हैं।

उर्वरक मिश्रण में अनेक पदार्थों का समावेशन हो सकता है। कुछ पदार्थ पौधों के लिए बड़े लाभकारी हो सकते हैं। कुछ अपद्रव्य रह सकते हैं जिनमें ऐसे तत्त्व हो सकते हैं जो पौधों के लिए अत्यावश्यक तो नहीं हैं पर उनको लाभ पहुँचा सकते हैं। जीर्णकी मिट्टी में ऐसे खनिज लवणों की कमी रह सकती है जिनकी बड़ी अल्प मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। जीर्णकी मिट्टी में सान्द्र उर्वरकों से उतना लाभ नहीं होता जितना सामान्य उर्वरकों से होता है। उर्वरकों की मात्रा उतने महत्त्व की नहीं है जितने उसमें उपस्थित पोषक तत्त्व महत्त्व के हैं। सान्द्र उर्वरक के उपयोग में सावधानी बरतने की आवश्यकता है। ऐसा उर्वरक बीज के संस्पर्श में नहीं आना चाहिए, नहीं तो अंकुरने में कठिनता हो सकती है और उससे फसल की पैदावार में कमी। अमेरिका में सात बड़ी बड़ी कम्पनियाँ हैं जो मिश्रित उर्वरक तैयार करने का काम करती हैं और जिनमें समस्त मिश्रित उर्वरक का एक तृतीयांश तैयार होता है। भारत में भी मिश्रित उर्वरक तैयार कर भिन्न भिन्न मिट्टियों और भिन्न भिन्न फसलों के लिए कृषि-विभाग की देख-रेख में बिकने चाहिए। इससे किसानों की कठिनता बहुत कुछ दूर हो जायगी।

अमेरिका में तीन प्रमुख पोषक तत्त्वों के १-२-२ अनुपात में मिश्रित उर्वरक तैयार होते हैं। ऐसे मिश्रित उर्वरक पाँच ग्रेड के होते हैं और उनके तैयार करने में भिन्न भिन्न अवयवों की मात्रा निम्नलिखित सारणी के अनुसार रहती है—

एक टन मिश्रित उर्वरक के लिए नुसखे

उर्वरक ग्रेड	नाइट्रोजन विलयन*	अमोनियम सल्फेट	सुपर-फास्फेट	डबल सुपर फास्फेट	पोटाश म्युरियेट	पूरक
	पौण्ड	पौण्ड	पौण्ड	पौण्ड	पौण्ड	पौण्ड
४- ८- ८	१००	१९०	८१७	—	२६३	६३०
५-१०-१०	१२५	२३७	१०२१	—	३२८	२८९
६-१२-१२	१४८	२८९	११२७	४२	३९४	—
७-१४-१४	१७२	३३८	७३५	२९६	४५९	—
८-१६-१६	१९७	३८५	३४३	५५०	५२५	—

*विलयन में ४०·६ प्रतिशत नाइट्रोजन, अमोनियम सल्फेट में २०·८ प्रतिशत नाइट्रोजन सुपर फास्फेट में १९·६ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल (P_2O_5), डबल सुपर फास्फेट में ४६ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल और पोटाश म्युरियेट में ६१ प्रतिशत पोटाश (K_2O) रहता है।

परिवर्तन गुणक

उर्वरक भिन्न भिन्न रूपों में मिलते हैं। कभी कभी उनके सक्रिय पोषक तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक रूप को दूसरे रूप में बदलने की जरूरत पड़ती है। लोग जानना चाहेंगे कि हड्डीवाले चूने के फास्फेट में कितना फास्फरिक अम्ल, पोटेसियम क्लोराइड में कितना पोटाश, अमोनिया में कितना नाइट्रोजन आदि रहता है। इसके लिए कुछ गुणक निकाले गये हैं जिनसे गणना करने पर परिवर्तन सरलता से निकल आता है। गणना से पता लगता है कि हड्डीवाले कैलसियम फास्फेट ([$Ca_2(PO_4)_3$] में फास्फरिक अम्ल (P_2O_5) ४६ प्रतिशत है। अतः ०·४६ यहाँ गुणक है। फास्फेट को इससे गुणा करने से फास्फरिक अम्ल की मात्रा मालूम हो जाती है। यदि किसी उर्वरक में कैलसियम फास्फेट २० प्रतिशत है तो उसमें फास्फरिक अम्ल की मात्रा २० × ०·४६ = ९·२ प्रतिशत होगी।

परिवर्तन सारणी

दी हुई प्रतिशतता	प्रतिशतता प्राप्त करना	गुणक
अमोनियम सल्फेट, $(NH_4)_2SO_4$	नाइट्रोजन (N)	०·२१२
अमोनिया	नाइट्रोजन (N)	०·८२३
सोडियम नाइट्रेट	नाइट्रोजन (N)	०·१६५
नाइट्रोजन	अमोनिया (NH_3)	१·२१६

नाइट्रोजन	सोडियम नाइट्रेट	६·०६७
नाइट्रोजन	अमोनियम सल्फेट	४·७१७
फास्फरिक अम्ल (P_2O_5)	फास्फरस (P)	०·४३६
फास्फरिक अम्ल	कैलसियम फास्फेट	२·२०
कैलसियम फास्फेट	फास्फरिक अम्ल	०·४६
पोटाश (K_2O)	पोटेसियम (K)	०·८३
पोटाश (K_2O)	म्युरियेट आफ पोटाश (KCl)	१·५८
म्युरियेट आफ पोटाश	पोटाश (K_2O)	०·६३२
पोटाश	पोटाश सल्फेट (K_2SO_4)	१·८४९
पोटाश सल्फेट	पोटाश	०·५४

भारत में पाये जानेवाले कुछ मिश्रित उर्वरकों के संगठन और लक्षण

उर्वरक	प्रतिशत संगठन			लक्षण
	नाइट्रोजन	फास्फरिक अम्ल	पोटाश	
एमो-फौस—ए	११·०	४५·४८	—	यह अमोनियम फास्फेट और अमोनियम सल्फेट का मिश्रण है, उपलब्ध P_2O_5 ८५ से ९५ प्रतिशत रहता है।
एमो-फौस बी	१६·०	२०.०	—	
एमो-फौस-के	१२·०	२४.०	१२·०	एमो-फौस और पोटेसियम सल्फेट का मिश्रण
नाइट्रो-फौस-के	१५·०	३०·०	१५·०	यह डाइ अमोनियम फास्फेट, अमोनियम नाइट्रेट या यूरिया और पोटाश म्युरियेट या सल्फेट का मिश्रण है, कई ग्रेड का बिकता है।
डाइअमोनियम फास्फेट	२१·०७	५३·८५	—	यह अल्प क्षारीय होता है; कम स्थायी और अधिक विलेय।

उर्वरक	प्रतिशत संगठन			लक्षण
	नाइट्रोजन	फास्फरिक अम्ल	पोटाश	
ल्यूनो-फौस	१८.५ २०.०	४९.०	—	यह डाइ अमोनियम फास्फेट औरअमोनियम सल्फेट का मिश्रण है।
ल्यूनो-फौस-के	१०	१०	१०	ल्यूनो-फौस और पोटाश लवण का मिश्रण है।
मोनो अमोनियम फास्फेट	१२.१	६१.७१	—	फास्फेट चट्टान से बना फास्फेरिक अम्ल और अमोनिया का मिश्रणहै।
निसि-फौस १	१३.०	४८.०	—	
निसि-फौस २	१८.०	१८.०	—	यह अल्प-अम्लीय होता है।
पोटेसियम अमोनियम नाइट्रेट	१६	—	२७	यह पोटेसियम क्लोराइड और अमोनियम नाइट्रेट का मिश्रण है।
पोटेसियम फास्फेट	—	३२–५३	३०–५०	यह पोटाश और कैलसियम हाइड्रोजन फास्फेट से बनता है।

मिश्रित उर्वरक के लाभ

१. मिश्रित उर्वरक सस्ता पड़ता है। अलग-अलग उर्वरक मँगाकर डालने से यातायात और वितरण में खर्च बढ़ जाता है।

२. मिश्रित उर्वरक अधिक सरलता से वितरित किया जा सकता है।

३. मिश्रित उर्वरक के उपयोग में उतनी सावधानी की आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी किसी एक उर्वरक के उपयोग में पड़ती है।

४. साधारण किसानों को ठीक ठीक पता नहीं लगता कि उनके खेतों के लिए किस प्रकार का उर्वरक चाहिए। ऐसी अनिश्चित परिस्थिति में मिश्रित उर्वरक का उपयोग अधिक लाभप्रद होता है।

५. स्थान और फसल की आवश्यकतानुसार कृषिविभाग के निर्देशन से मिश्रित उर्वरक तैयार होकर बिक सकता है। ऐसे मिश्रित उर्वरक का उपयोग अधिक सुविधा-जनक है। मिश्रित उर्वरकों के उपयोग में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

क. ऐसे ही मिश्रित उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए जिनमें पौधों के पोषक तत्त्व, नाइट्रोजन और फास्फरस, मिट्टी के अनुरूप उचित मात्रा में मौजूद हों।

ख. राज्य के कृषिविभाग की उर्वरक सम्बन्धी सूचनाओं पर विशेष ध्यान देना और पालन करना चाहिए।

ग. उर्वरकों से उन पोषक तत्त्वों की अतिरिक्त पूर्ति होती है जो गोबर की खाद और फसलों के अवशेष से प्राप्त होते हैं।

घ. फसल-चक्र की आवश्यकता के अनुसार विशेष फसल के लिए उर्वरक के पोषक तत्त्वों पर ध्यान देना चाहिए।

ङ. मिट्टी के पोषक तत्त्वों की कमी को समझकर ही उर्वरक का चुनाव करना चाहिए।

च. कमी की पूर्ति के लिए उर्वरक की उचित मात्रा का, उचित समय पर और निश्चित तरीके से व्यवहार करने से ही उत्तम परिणाम प्राप्त होता है।

मिश्रित उर्वरक से हानि

१. जिस भूमि में केवल एक पोषक तत्त्व की कमी है उसमें मिश्रित उर्वरक का उपयोग नहीं हो सकता।

२. मिश्रित उर्वरक के देखने से पता नहीं लगता कि उसमें क्या क्या मिला हुआ है। मिश्रित उर्वरक के पोषक तत्त्वों की गारण्टी अवश्य रहनी चाहिए।

३. मिश्रित उर्वरक की कीमत का ठीक-ठीक पता लगाना तब तक सम्भव नहीं है जब तक यह न मालूम हो कि उसमें कौन कौन पोषक तत्त्व कितनी मात्रा में विद्यमान हैं।

घर पर मिश्रित उर्वरक तैयार करना

कारखाने के बने-बनाये मिश्रित उर्वरकों के स्थान में घर पर भी मिश्रित उर्वरक तैयार कर उसका उपयोग हो सकता है। यदि उर्वरकों को ठीक-ठीक अनुपात में मिलाया जाय तो ऐसा मिश्रित उर्वरक अच्छा हो सकता है। मिश्रित उर्वरक बनाने के लिए मिट्टी में कौन कौन पोषक तत्त्वों की कितनी कमी है, इसका ज्ञान आवश्यक है। रसशाक (lettuce) और फूलगोभी भी ऊँची अम्लता को सहन नहीं कर सकते। अतः अम्लवाले उर्वरक इनके लिए अच्छे नहीं हैं। आलू के लिए अम्लीय उर्वरक अच्छा होता है। घर पर मिश्रित उर्वरक एक संगठन का बनाया जा सकता है। विभिन्न अवयवों में अधिक अन्तर नहीं होता। कारखाने के बने उर्वरक के संगठन में बहुत

अन्तर पाया जाता है। घर पर १०-२०-१० का एक मिश्रित उर्वरक तीन बार उलट-फेर करके तीन-अक्षि चलनी में चाला गया। इस मिश्रित उर्वरक के विश्लेषण से नाइट्रोजन की मात्रा १०·१ प्रतिशत पायी गयी।

उर्वरकों की उपलब्धि

साधारणतया जो उर्वरक पाये जाते हैं वे ये हैं—

नाइट्रोजन वाले उर्वरक	फास्फरस वाले उर्वरक	पोटाश उर्वरक
अमोनियम सल्फेट	एमो-फौस	म्युरियेट आफ
अमोनियम नाइट्रेट	नाइट्रो-फौस-के	पोटाश
अमोनियम क्लोराइड	पोटेसियम फास्फेट	पोटाश सल्फेट
सोडियम नाइट्रेट (चिली का शोरा)	सुपर-फास्फेट	पोटाश नाइट्रेट
पोटेसियम नाइट्रेट (भारतीय शोरा)	बेसिग स्लैग	(शोरा)
कैलसियम नाइट्रेट	हड्डी का चूरा	पोटेसियम
सोडा-पोटाश नाइट्रेट	चट्टान फास्फेट	क्लोराइड
यूरिया, कैलयूरिया, यूरेमन		
नाइट्रो-फौस-के		
एमो-फौस		
स्यानामाइड		
घरेलू खाद		
मछली खाद		
गोबर की खाद		
बाल, पंख, ऊन के अवशिष्ट अंश		
खली		

पोटाश लवण जल में घुलनेवाले होते हैं। अतः वे पौधों को जल्द, सब समय उपलब्ध होते हैं।

उर्वरकों को मिश्रित करने में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

चूनावाले पदार्थों, जैसे अनबुझा चूना, बुझा चूना, कैलसियम कार्बोनेट या बेसिक स्लैग को सुपर-फास्फेट के साथ अथवा अमोनियम लवणों, ल्यूना लवणों, ऐमो-फौस या यूरिया के साथ न मिलाना चाहिए। इनमें निम्नलिखित तीन दशाओं में क्रियाएँ हो सकती हैं—

१. अमोनिया मुक्त होकर निकल सकता है।

२. अम्लीय फास्फेट अविलेय फास्फेट में परिणत हो सकता है। इससे फास्फरस की उपलब्धि कम हो जाती है।

३. मिश्रण ऐसा बन सकता है कि वह वायु से भाप को खींचकर प्रक्लेद्य बन जाय और इससे ड्रिल द्वारा वितरण में कठिनता उत्पन्न करे।

उर्वरक जल का अवशोषण कर पिंड न बने और न कड़ा ही हो, इसके लिए उर्वरक में कभी-कभी शोषक पदार्थ डालने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे शोषक पदार्थों में कार्बनिक अमोनियम पदार्थ, सूखा खून, सूखी पिसी हुई मछली, घूरे या गोबर की खाद, बिनौले, अलसी या रेड़ी की खलियां और साइनेमाइड रह सकते हैं। एक टन में २ से ३ सौ पौण्ड अच्छा पोषक पदार्थ पर्याप्त समझा जाता है और इससे जो मिश्रण प्राप्त होता है वह ड्रिल द्वारा सरलता से वितरित किया जा सकता है। यदि मिश्रण को मिलाने के बाद जल्द ही खेतों में डालना हो तो शोषक पदार्थों के डालने की आवश्यकता नहीं रहती।

किस उर्वरक को किसके साथ न मिलाना चाहिए, यह बात निम्नांकित सारणी में दी जाती है। इस दृष्टि से उर्वरकों को तीन समूहों में विभक्त करते हैं।

१—समूह

बेबुझा चूना बुझा चूना काठ-राख बेसिक स्लैग कैलसियम साइनेमाइड बेसिक कैलसियम नाइट्रेट	को अमोनियम सल्फेट, जान्तव खादों और नाइट्रोजनीय ग्वानों के साथ न मिलाना चाहिए।

२—समूह

बेबुझा चूना बुझा चूना कैलसियम कार्बोनेट काठ-राख बेसिक कैलसियम नाइट्रेट	को किसी विलेय फास्फेट के साथ न मिलाना चाहिए।

३—समूह

बेबुझा चूना बुझा चूना बेसिक कैलसियम नाइट्रेट	को सोडियम नाइट्रेट, पोटेसियम क्लोराइड के साथ न मिलाना चाहिए। यदि मिलाना ही पड़े तो मिलाकर तुरन्त खेतों में डाल देना चाहिए।

मिश्रित उर्वरक को बनाकर तुरन्त खेतों में डालना अच्छा होता है। यदि उसे रखना पड़े तो मिट्टी के गच पर अथवा आर्द्र स्थान में न रखना चाहिए। सीमेंट के गच पर रखना ही अच्छा होता है! उस पर भी लकड़ी का तख्ता रखकर उस पर बोरा रखना चाहिए। एक के ऊपर दूसरा बोरा रखना भी अच्छा नहीं है। दबाव से उर्वरक के कड़ा हो जाने की सम्भावना रहती है। एक बरस का बना उर्वरक दूसरे बरस में इस्तेमाल करना अच्छा नहीं है। उर्वरक में परिवर्तन न होने पर भी बोरे के सड़ जाने की सम्भावना रहती है। जब तक उर्वरक सूखा रहता है उसके पोषक तत्त्वों में किसी प्रकार की कमी नहीं होती।

उर्वरक द्वारा जल का अवशोषण

कुछ उर्वरक जल का अवशोषण करते और कुछ अवशोषण नहीं करते हैं। अवशोषण करनेवाले उर्वरक की अवशोषण-क्षमता वायु की सापेक्ष आर्द्रता पर निर्भर करती है। यदि वायु का ताप ३०° से० रहे तो किस आर्द्रता पर कौन उर्वरक पानी का अवशोषण शुरू कर देता है इसका ज्ञान निम्नलिखित सारणी से प्राप्त होता है। जल के अवशोषण से उर्वरक पिंड बन सकता अथवा चिपचिपा हो सकता है, जिससे उर्वरक के मिलाने अथवा वितरण में कठिनता हो सकती है।

उर्वरकों के जल अवशोषण के लिए सापेक्ष आर्द्रता

पदार्थ	३०° से० पर क्रांतिक सापेक्ष आर्द्रता
डाइकैलसियम फास्फेट, जिपसम रेत, चूना-पत्थर और अन्य अविलेय पदार्थ	१००
अमोनियम फास्फेट	९१·६
पोटेसियम क्लोराइड	८४·०
अमोनियम सल्फेट	७९·२
यूरिया	७२·५
सोडियम नाइट्रेट	७२·४
अमोनियम नाइट्रेट	५९·४
कैलसियम नाइट्रेट	४६·७
यूरिया और सोडियम नाइट्रेट	४५·६
अमोनियम नाइट्रेट और मोनो कैलसियम फास्फेट	३८·६
यूरिया और सोडियम नाइट्रेट	१८·१

उर्वरकों का चुनाव

एक किसान को २४ एकड़ में आलू बोना है। खेत में प्रति एकड़ ५-१०-५ का २५०० पौण्ड उर्वरक डालना है। उसे कुल ३० टन मिश्रित उर्वरक की आवश्यकता पड़ेगी। आलू में रोग न हो इस कारण खेत अम्लीय रहना चाहिए। हरी खाद वह खेतों में नहीं डाल सकता। अम्लता के लिए गन्धक का भी उपयोग करना नहीं चाहता।

उसे मालूम है कि अमोनियम सल्फेट स्पष्ट अम्लीय प्रतिक्रिया देता है। आलू के रोग को रोकने के लिए वह अमोनियम सल्फेट चुनता है। आलू की अगली फसल उसे उगानी है। वह इसके लिए सोडियम नाइट्रेट का उपयोग आवश्यक समझता है, यद्यपि वह जानता है कि सोडियम नाइट्रेट क्षारीय होता है। उसकी क्षारीयता से अमोनियम सल्फेट की अम्लता का निराकरण हो जायगा। चूँकि मिश्रित खाद को वह कुछ समय के बाद जाड़े में इस्तेमाल करेगा इस कारण उसमें कुछ शोषक पदार्थ भी मिलाना चाहता है। शोषक पदार्थ के लिए वह सूखी पिसी हुई मछली चुनता है। फास्फरस के लिए १६ प्रतिशत सुपर-फास्फेट और पोटाश के लिए म्युरियेट आफ पोटाश चुनता है।

अब वह गणना कर निकालता है कि किस उर्वरक की कितनी मात्रा रहनी चाहिए। उसे ५-१०-५ मिश्रित उर्वरक तैयार करना है। १०० पौण्ड में ५ पौण्ड नाइट्रोजन रहना चाहिए। एक टन में २० हंडरवेट होता है। अतः मिश्रित उर्वरक में ५ × २० = १०० पौण्ड नाइट्रोजन, २०० पौण्ड फास्फरिक अम्ल और १०० पौण्ड पोटाश रहना चाहिए। वह निश्चित करता है कि १०० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट और ४०० पौण्ड जान्तव खाद प्रयुक्त करेगा।

१०० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट में	१६ पौण्ड नाइट्रोजन रहता है
४०० पौण्ड जान्तव खाद में ८·२%	३३ पौण्ड नाइट्रोजन रहता है
२५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट में	५१ पौण्ड नाइट्रोजन रहता है
१००० पौण्ड २०%सुपरफास्फेट में	२०० पौण्ड P_2O_5 रहता है
१६७ पौण्ड ६०%म्युरियेट आफ पोटाश में	१०० पौण्ड K_2O रहता है

१९१७ पौण्ड मिश्रित उर्वरक में १०० पौण्ड नाइट्रोजन, २०० पौण्ड फास्फरिक अम्ल और १०० पौण्ड पोटाश रहता है। सोडियम नाइट्रेट के १०० पौण्ड में १६ पौण्ड नाइट्रोजन, ४०० पौण्ड जान्तव खाद में ४×८·२ = ३३ पौण्ड नाइट्रोजन, कुल १६ + ३३ ४९ पौण्ड नाइट्रोजन प्राप्त हुआ। ५-१०-५ मिश्रित खाद में १०० पौण्ड नाइट्रोजन रहना चाहिए। शेष (१०० − ४९)

५१ पौण्ड नाइट्रोजन के लिए अमोनियम सल्फेट प्रयुक्त करना है। अमोनियम सल्फेट के १०० पौण्ड में २०·५ पौण्ड नाइट्रोजन रहता है। अतः ५१ पौण्ड नाइट्रोजन के लिए ५१/२०/५ अर्थात् २·५ सौ, अर्थात् २·५ × १०० २५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट चाहिए।

५-१०-५ मिश्रित उर्वरक के एक टन के लिए २०० पौण्ड फास्फरिक अम्ल चाहिए। यह २०% सुपर फास्फेट से प्राप्त होता है। अतः सुपर-फास्फेट की मात्रा २०० ÷ २० = १० या १० × १०० = १००० पौण्ड होगी।

उर्वरक के ५-१०-५ के एक टन में पोटाश की मात्रा १०० पौण्ड रहनी चाहिए। म्युरियेट आफ पोटाश में ६० प्रतिशत पोटाश रहता है। अतः १०० पौण्ड पोटाश के लिए १०० ÷ ६० = १$\frac{६}{३}$ सौ या १$\frac{२}{३}$ + १०० = १६७ पौण्ड म्युरियेट आफ पोटाश की आवश्यकता पड़ेगी।

अतः १९१७ पौण्ड मिश्रित उर्वरक के लिए ५-१०-५ का एक टन आवश्यक है। इसमें ८३ पौण्ड पूरक डालकर भार एक टन किया जा सकता है।

एक टन में १९१७ पौण्ड पोषक तत्त्व विद्यमान है, इस कारण ३० टन उर्वरक में विभिन्न पदार्थों की मात्रा इस प्रकार रहेगी —

३० × १०० = ३००	पौण्ड सोडियम नाइट्रेट
३० × ४०० = १२,०००	पौण्ड जान्तव खाद
३० × २५० = ७५००	पौण्ड अमोनियम सल्फेट
३० × १००० = ३०,०००	पौण्ड सुपर-फास्फेट
३० × १६७ = ५,०००	पौण्ड म्युरियेट आफ पोटाश

५७,४०० पौण्ड या २८·७५ टन उर्वरक और शेष १·२५ टन पूरक

मध्य विस्तार के एक ट्रक भरे बोझ उर्वरक की आवश्यकता पड़ेगी।

उर्वरक का मिश्रण बनाना

उर्वरक मिलाने का काम एक चिकने तख्ते के गच पर किया जाता है। तख्ता १६ × १२ फुट का होता है। उसका किनारा २ से ३ फुट ऊंचा रहता है। मिलाने के लिए कुदाल या पंजे की आवश्यकता पड़ती है। एक से दो टन उर्वरक एक साथ मिलाते हैं। उर्वरक को पहले गच पर फैला देते, तब कुदाल से उटकेरते हैं। मिला देने के बाद ३० डिगरी पर खड़ी तारकी जाली की चलनी में छानते हैं। बड़े बड़े

टुकड़ों को तोड़कर फिर छानते हैं। उसके बाद बोरे में बन्द करते हैं। ऐसा घर का बना उर्वरक बाजार के मिश्रित उर्वरक से कुछ सस्ता पड़ता है। प्रति टन ३० से ४० रुपये की बचत हो सकती है। पर मिश्रित उर्वरक को रखने के लिए एक सुरक्षित स्थान, सूखा और सीमेंट का गच या लकड़ी का बना तख्ता आवश्यक है। जो लोग प्रति वर्ष १० टन से अधिक उर्वरक का उपयोग करते हैं उनके लिए मिश्रित उर्वरक तैयार करना सस्ता पड़ता है।

कुछ मिश्रित उर्वरक के नुसखे यहाँ दिये जाते हैं।

नुसखा १

मिश्रण ५–८–७

उर्वरक	शोषक पदार्थ के साथ पौण्ड	शोषक पदार्थ के बिना पौण्ड
जान्तव खाद, नाइट्रोजन ८%	३००	—
सोडियम नाइट्रेट, N, १६%	१००	१००
अमोनियम सल्फेट, N, २०·५%	३००	४१०
सुपर फास्फेट, P_2O_5 २०%	८००	८००
म्युरियेट आफ पोटाश, K_2O ६०%	२३३	२३३
	१७३३	१५४३

नुसखा २

मिश्रण ५–१०–५

उर्वरक	शोषक पदार्थ के साथ पौण्ड	शोषक पदार्थ के बिना पौण्ड
जान्तव या मछली खाद, N, ८%	३००	—
सोडियम नाइट्रेट, N, १६%	१००	१००
अमोनियम सल्फेट, N, २०.५%	३००	४१०
सुपर फास्फेट, P_2O_5 २०%	१०००	१०००
म्युरियेट आफ पोटाश, K_2O ६०%	१६७	१६७
	१८६७	१६७७

नुसखा ३

मिश्रण ४–९–५

जान्तव खाद, N, ७%	१७०
सोडियम नाइट्रेट, N, १६%	६३
अमोनियम सल्फेट N, २०·५%	१६६
सुपर-फास्फेट, P_2O_5 १९%	९४७
अमोनिया फास्फेट, P_2O_5 २·३%	२१
यूरिया, N, ४६·६%	१८
पोटाश क्लोराइड, K_2O, ६०%	१६६
डोलोमाइट	२२४
पूरक	२२५
	२,०००

नुसखा ४

मिश्रण ५–२०–५

गोबर की खाद, N, ८%	३००	—
सोडियम नाइट्रेट, N, १६%	१००	१००
अमोनियम सल्फेट, N, २०·५%	३००	४१०
सुपर-फास्फेट, P_2O_5, ४०%	१०००	१०००
म्युरियेट आफ पोटाश, K_2O ६०%	१६७	१६७
	१८६७	१६७७

नुसखा ५

मिश्रण १०–२०–१०

जान्तव या मछली की खाद N, ८%	२५०	—
यूरिया, N, ४६%	३८१	४३५
सुपर-फास्फेट P_2O ४०%	१०००	१०००
पोटेसियम क्लोराइड, K_2O ६०%	३३२	३३२
	१९७४	१७६८

इन नुसखों से पता लगता है कि किस अनुपात में किस उर्वरक के मिलाने से कैसा मिश्रित उर्वरक प्राप्त हो सकता है। शोषक पदार्थ के रूप में रेंड़ी की खली का उपयोग हो सकता है।

भारत में मिश्रित उर्वरकों का उपयोग

मिश्रित उर्वरकों का उपयोग भारत में व्यापक रूप से नहीं होता। इन पर प्रयोग भी अपेक्षया कम हुए हैं। हेण्डी (Hendy) ने बरमा में धान के खेतों में एमिनो-फौस, ल्यूना-फौस और डाइ-अमोनियम फास्फेट का उपयोग किया था। केवल एमिनो-फौस के उपयोग से २०-२०-० ग्रेड के मिश्रित उर्वरक से प्रति एकड़ ५० से ३०० पौण्ड की पैदावार में वृद्धि हुई थी। इनके अवशिष्ट मान भी पाये गये थे। ल्यूना-फौस के उपयोग से भी पैदावार में पर्याप्त वृद्धि, प्रति एकड़ ५० से ४०० पौण्ड की, पायी गयी थी। डाइ-अमोनियम फास्फेट से भी वृद्धि पायी गयी है।

बिहार में एमिनो-फौस, ल्यूना-फौस, निसि-फौस और डाइ-अमोनियम फास्फेट से धान, ईख और गेहूँ की पैदावार में स्पष्ट वृद्धि देखी गयी है। प्रति एकड़ ८० पौण्ड की दर से इस्तेमाल करने पर धान की वृद्धि ४९०-९०० पौण्ड और पयाल की वृद्धि १४ से १८ हंडरवेट हुई थी। एमिनो-फौस के प्रति एकड़ में १२५ पौण्ड के उपयोग से जौ की पैदावार में प्रति एकड़ ६·२ मन की और ल्युना-फौस के प्रति एकड़ १२५ पौण्ड के उपयोग से प्रति एकड़ ७·७ मन की वृद्धि हुई थी। ट्रावनकोर में धान के खेतों में जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम हुआ कि एमो-फौस से २६५ पौण्ड की वृद्धि हुई थी। मैसूर में भी एमो-फौस से धान और ईख की पैदावार में वृद्धि पायी गयी है।

वैद्यनाथन ने मिश्रित उर्वरक का उपयोग धान, गेहूँ, जौ, ईख, सरसों, कपास और आलू के खेतों में भिन्न भिन्न राज्यों और भिन्न भिन्न जलवायु में करके देखा है कि उनके उपयोग से पैदावार निश्चित रूप से बढ़ जाती है।

विभिन्न मिश्रित उर्वरकों में कौन किससे उत्तम है इस पर बहुत कम कार्य हुआ है। गया के फार्म में एमिनो-फौस और निसि-फौस पर (फास्फरिक अम्ल की समतुल्य मात्रा लेकर) जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि एमिनो-फौस से निसि-फौस उत्तम है। सुबौर और कांके (राँची के निकट) में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि एमिनो-फौस और डाइ-अमोनियम फास्फेट समान रूप से प्रभावकारी हैं। पर ल्यूना-फौस इन दोनों से अधिक प्रभावकारी पाया गया है।

मिश्रित उर्वरक का व्यवहार

जिस भूमि में एक से अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता मालूम हो उस भूमि में मिश्रित उर्वरक का उपयोग अवश्य करना चाहिए। इससे पैदावार निश्चित रूप से बढ़ जाती है। कितना मिश्रित उर्वरक डालना चाहिए, यह भूमि की प्रकृति और फसल की किस्म पर निर्भर करता है। विभिन्न फार्मों में प्रति एकड़ ५० से ३०० पौण्ड तक का व्यवहार हुआ है। मिश्रित उर्वरक को ऊपर से पौधों में डाल सकते हैं। जहाँ तक हो कोमल पत्तों पर उर्वरक न पड़े, उन्हें बचाना चाहिए। बीज बोने के समय भी उर्वरक डाला जा सकता है। यहाँ उर्वरक को बीज के संस्पर्श से बचाना चाहिए। बीज या पौधा लगाने के पहले खेतों में डालकर खेत जोत भी दिया जा सकता है। धान के खेतों में रोपने के लिए खेत जोतने के समय भी उर्वरक डाला जा सकता है। रोपनी के पहले आधा उर्वरक और पौधा लगाने के कुछ समय के बाद आधा उर्वरक डालना अच्छा होता है।

जहाजों पर लादकर बाहर भेजने में बीमा कराना पड़ता है। बीमा कम्पनियों ने उर्वरकों को तीन वर्गों में विभक्त किया है। 'क' वर्ग के उर्वरक बिल्कुल निरापद समझे जाते हैं। 'ख' वर्ग के उर्वरक कुछ संकटमय समझे जाते हैं और 'ग' वर्ग के उर्वरक संकटजनक समझे जाते हैं।

'क' वर्ग	'ख' वर्ग	'ग' वर्ग
बेसिक स्लैग	सूखी मछली	अमोनियम नाइट्रेट
हड्डी का चूरा	मछली चूरा	कैलसियम नाइट्रेट
बिनौले की खली	बकरी खाद	पोटेसियम नाइट्रेट
मांस का चूरा	अलसी की खली	सोडियम नाइट्रेट
फास्फेट चट्टान	मूँगफली की खली	बेबुझा चूना
पोटेसियम क्लोराइड	भेड़ की खाद	ऊन अवशेष
अवक्षिप्त फास्फेट	वानस्पतिक कोयला	तुंग गुठली चूरा
बुझा चूना	ऊन अवशेष	हेरिंग ग्वानो
अमोनियम सल्फेट	ह्वेल-ग्वानो	
पोटाश सल्फेट		
गन्धक		
सुपर-फास्फेट		
तम्बाकू तना		
काठ-राख		
साइनेमाइड		
हड्डी का कोयला		
केनाइट		

उन्नीसवाँ अध्याय

उर्वरक की खरीद और व्यवहार

"आषाढ़ में खाद खेत में जावे, तब भर मूठा दाना पावे।"

उर्वरक क्या है ?—साधारण रूप से कहा जा सकता है कि उर्वरक वह पदार्थ है जिसके मिट्टी में देने से फसलें अच्छी उगती हैं। पौधों की वृद्धि के लिए कुछ प्रमुख पोषक तत्त्व आवश्यक हैं। पौधों के उगाने पर ये पोषक तत्त्व मिट्टी से निकल जाते हैं। यदि फसलें बारबार एक ही खेत में उगायी जायँ तो ऐसी मिट्टी में आवश्यक तत्त्वों की कमी हो जाती है। इस की पूर्ति के लिए ही उर्वरक डालना आवश्यक है।

जिस उर्वरक में एक या एक से अधिक पोषक तत्त्व रहते हैं उसे 'पोषक उर्वरक' कहते हैं। पोषक उर्वरकों में कुछ प्रत्यक्ष उर्वरक और कुछ परोक्ष उर्वरक होते हैं। प्रत्यक्ष उर्वरकों से पौधों को सीधे लाभ होता है। परोक्ष उर्वरकों में कुछ ऐसे तत्त्व रहते हैं जिनसे पौधों को प्रत्यक्ष कोई लाभ नहीं होता पर उनमें कुछ ऐसे तत्त्व भी रहते हैं जो पौधों की वृद्धि में लाभकारी होते हैं। ऐसे उर्वरकों को 'उद्दीपक' या 'उत्प्रेरक' उर्वरक कहते हैं। बाजारों में जो उर्वरक बिकते हैं उन्हें 'व्यावसायिक' उर्वरक कहते हैं। ऐसे उर्वरकों को 'पौधा आहार', 'फास्फेट' और 'ग्वानो' भी कहीं कहीं कहते हैं।

अपूर्ण और पूर्ण उर्वरक—जिस उर्वरक में केवल एक या दो पोषक तत्त्व रहते हैं उसे 'अपूर्ण' उर्वरक कहते हैं। पूर्ण (कंप्लीट) में पौधों के तीनों आवश्यक तत्त्व, नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटेसियम मौजूद रहते हैं। आधुनिक अनुसन्धान से पता लगा है कि पूर्ण उर्वरकों में छः तत्त्वों, नाइट्रोजन, फास्फरस, पोटेसियम, कैल-सियम, मैगनीशियम और गन्धक का रहना आवश्यक है। अन्तिम तीन तत्त्व साधारणतया सब मिट्टियों में पाये जाते हैं और कभी-कभी ही तथा खास खास स्थानों में उनकी कमी होती है और उनको मिट्टी में देने की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ 'विशेष उर्वरक' भी अब बिकते हैं। ये खास खास फसलों की जरूरत के मुताबिक बने होते हैं। ये विशेष उर्वरक उतने महत्त्व के नहीं हैं क्योंकि इनका प्रभाव बहुत कुछ मिट्टी और जलवायु पर निर्भर करता है। कुछ व्यावसायिक उर्वरकों को 'रासायनिक खाद' कहते हैं। साधारणतया जो उर्वरक कारखानों में रासायनिक

यौगिकों से बनते हैं उन्हें आजकल के दैनिक पत्र-पत्रिकाओं में 'रासायनिक खाद' के नाम से सूचित करते हैं। इनमें पोषक तत्त्व सान्द्र और उपलब्ध रूप में रहते हैं। ऐसे पदार्थों में अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, यूरिया, सुपरफास्फेट और पोटाश लवण हैं। इनके संगठन में बहुत अल्प अन्तर रहता है, इस कारण इन्हें 'मानक' (standard) पदार्थ कहते हैं। पूर्ण उर्वरकों के तैयार करने में 'मानक' पदार्थों का ही उपयोग होता है। कुछ उर्वरक जैसे पीसी हुई सूखी मछली, घूरे की खाद, हड्डी का चूरा मानक नहीं माने जाते क्योंकि इनके संगठन में बहुत अन्तर पाया जाता और इनमें पोषक तत्त्वों की उपलब्धि भी एक सी नहीं रहती।

उर्वरक की कीमत

कुछ उर्वरक सस्ते बिकते हैं और कुछ महँगे। उर्वरकों की कीमत वस्तुतः उनमें उपस्थित पोषक तत्त्वों पर निर्भर करती है। उर्वरक के सस्तेपन पर किसानों को नहीं जाना चाहिए। उन्हें देखना चाहिए कि किस उर्वरक में पोषक तत्त्व अधिक हैं। यह तभी सम्भव है जब राज्य की ओर से उर्वरकों की कीमत निश्चित की जाय और यह बराबर देखा जाय कि उर्वरकों में कोई मिलावट तो नहीं होती। बिकनेवाले उर्वरकों की समय-समय पर जाँच होनी चाहिए जैसा अमेरिका के संयुक्त राज्य में होती है। कृषिविभाग यह कार्य सरलता से कर सकता है।

उर्वरक नकद दाम देकर खरीदना चाहिए अथवा उधार खरीदना चाहिए, यह प्रश्न भी विचारणीय है। यदि किसान नकद रुपया देकर उर्वरक खरीद सकें तो बहुत अच्छा है क्योंकि ऐसे खरीदने से वह सस्ता पड़ता है। उधार खरीदने से दाम अधिक देना पड़ता है। अब तो राज्य की ओर से उर्वरक खरीदने के लिए कर्ज मिल रहा है। ऐसा सुझाव है कि खरीफ फसल के लिए मार्च मास में और रबी फसल के लिए जून मास में कर्ज दिया जाय, ताकि किसान पहले से ही उर्वरक खरीदने का प्रबन्ध कर सकें। सहकारी समितियों की ओर से उर्वरक खरीदने के लिए कम सूद पर अथवा बिना सूद पर रुपया दिया जा सकता है। इससे किसानों को उर्वरक प्रयुक्त करने में प्रोत्साहन प्राप्त होगा। किस स्थान और किस फसल के लिए कौन उर्वरक ठीक होगा इसकी सूचना तो स्थानीय कृषि अफसरों से प्राप्त करनी चाहिए। ऐसे अफसर अब प्रायः हर स्थान में मिल सकते हैं और किसानों को इस सम्बन्ध में सलाह देना उनका कर्तव्य है।

पोषक तत्त्व वाहक—जिन पदार्थों में नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटेसियम रहते हैं, उन पदार्थों को पोषक तत्त्वों का 'वाहक' कहते हैं।

उर्वरकों की भौतिक अवस्था—उर्वरकों की भौतिक अवस्था महत्त्व की है।

उर्वरक के न तो बड़े-बड़े दाने होने चाहिए और न महीन चूर्ण। दोनों से ही वितरण में रुकावट होती है। वितरण के लिए अच्छा उर्वरक वही है जिसके दाने का व्यास १ से ४ मिमी० का रहे। ऐसे दाने वितरक मशीनों से अच्छे वितरित होते हैं। मिश्रित उर्वरक तैयार करने में भी ये अच्छे होते हैं। आजकल उचित आकार के दाने तैयार करने की मशीनें बनी हुई हैं और उनमें अच्छा दानेदार उर्वरक तैयार होता है। इसके लिए घूर्णक शुष्क कारक मशीन अच्छी प्रमाणित हुई है। उचित दानों के बनने से फिर अभिसाधन की आवश्यकता नहीं होती और इससे उत्पादन खर्च घट जाता है।

उर्वरकों की अम्लता

कुछ उर्वरक अम्लीय होते हैं और मिट्टी की अम्लता को बढ़ाते हैं। उर्वरकों की अम्लता दूर करने में चूना, डोलामाइट चूना अथवा चूना-पत्थर का उपयोग होता है। पहले ये पदार्थ केवल पूरक के रूप में प्रयुक्त होते थे, पीछे बोरे को अम्लों से सुरक्षित रखने के लिए प्रयुक्त होने लगे। आज तो ये पदार्थ उर्वरकों के आवश्यक अवयव के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनसे नुकसान यह होता है कि ये अमोनिया को मुक्त करते और फास्फेट को अविलेय बना देते हैं। अम्लता के दूर करने में आज चूने के स्थान में साइनेमाइड अथवा अमोनिया द्रव का उपयोग होता है।

उर्वरकों का विश्लेषण

किसानों के लिए बड़ा सुविधाजनक होगा, यदि उर्वरकों का विश्लेषण इस प्रकार किया जाय —

जल-विलेय नाइट्रोजन की प्रतिशतता
जल-अविलेय नाइट्रोजन की प्रतिशतता
उपलब्ध अविलेय नाइट्रोजन की प्रतिशतता
उपलब्ध फास्फरिक अम्ल की प्रतिशतता
जल-विलेय पोटाश की प्रतिशतता
उर्वरक अम्लीय है या क्षारीय

यदि क्लोरीन, मैंगनीज, जस्ता, ताँबा और मैगनीशियम की मात्रा भी दी हुई हो तो और अच्छा है।

उर्वरकों का संग्रह

उर्वरकों को बोरे में बन्द कर बाहर भेजा जाता है। बोरे १०० और २०० पौण्ड के होते हैं। अधिकांश बोरे भारत के बने होते हैं। कपड़े के बोरे भी अब अमेरिका में

बनने लगे हैं। कुछ कारखानों में कागज के बोरे भी इस्तेमाल होते हैं। कागज के बोरे स्वच्छ और आकर्षक होते हैं। उर्वरक निकाल लेने पर जो बोरे खाली हो जाते हैं उन्हें इकट्ठा कर रखना निरापद नहीं है। उनमें स्वतः आग लग सकती है, विशेषतः जब उनमें 'ख' और 'ग' वर्ग के उर्वरक रखे हों जिनका उल्लेख पूर्व प्रकरण में हुआ है।

उर्वरकों का कृषि-मान—एक टन उर्वरक के व्यवहार से पैदावार में जो वृद्धि होती है उस वृद्धि के मूल्य को उर्वरक का 'कृषि-मान' (agriculture value) कहते हैं। यह उर्वरक के पोषक तत्त्वों की उपलब्धि, मिट्टी, जलवायु, ताप, धूप और वर्षा की अवस्था, उर्वरक की मात्रा, उर्वरक डालने के ढंग और फसल के बाजार में बिकने की दर आदि अनेक बातों पर निर्भर करता है। कृषिमान अधिक होने से उर्वरक में अधिक रुपया लगाया जा सकता है। जिस फसल से अधिक रुपया प्राप्त हो सकता हैं उस फसल के लिए अधिक उर्वरक प्रयुक्त हो सकता है।

कृषिमान स्थायी नहीं होता। उर्वरक की सूक्ष्मता का भी इस पर प्रभाव पड़ता है। यदि उर्वरक बड़े-बड़े टुकड़ों में हो तो फसलों को वह जल्द उपलब्ध नहीं होता इससे पैदावार में कमी हो जाती है। ऐसा जल्दी उगनेवाली फसलों पर अधिक होता है। जिस फसल का बाजार मन्द है उससे अधिक पैसा नहीं आता और तब कीमती उर्वरक का व्यवहार ठीक नहीं होता। अन्य परिस्थितियों के अनुकूल रहने पर भी जलवायु के प्रतिकूल होने से कृषिमान में कमी हो जाती है।

कुछ लोगों की धारणा है कि रंगीन उर्वरक अच्छे होते हैं। यह धारणा ठीक नहीं है। पर कुछ निर्माणकर्त्ता उर्वरकों के रंगीन बनाने का प्रयास करते हैं। उर्वरकों में वे लाल केनाइट या कजली या कोयला डालकर रंगीन बनाते हैं। रंग या गंध से उर्वरकों की उतमता में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

उर्वरकों का व्यावसायिक मान—उर्वरकों का व्यावसायिक मान कृषिमान से बिल्कुल भिन्न होता है। व्यावसायिक मान (commercial value) वस्तुतः उर्वरकों में उपस्थित पोषक तत्त्वों पर निर्भर करता है। उर्वरक की कीमत का आधार उसके पोषक तत्त्वों की उपस्थिति ही होनी चाहिए, न कि उसका रंग और गंध। निर्माण-कर्त्ता उर्वरक का संगठन देते हैं। कौन-कौन पोषक तत्त्व कितनी मात्रा में विद्यमान हैं इसका भी उल्लेख करते हैं। अमेरिका में ऐसा उल्लेख करना अनिवार्य है। इससे खरीददार को मालूम हो जाता है कि जो उर्वरक वह खरीद रहा है उसमें कौन कौन पोषक तत्त्व कितनी मात्रा में विद्यमान हैं। जिस उर्वरक में उसका संगठन न दिया हो उसे खरीदना अच्छा नहीं है। हो सकता है कि किसी उर्वरक में पोषक तत्त्व कम हों अथवा बिल्कुल न हों। निर्माणकर्त्ताओं की गारण्टी उर्वरकों पर अवश्य रहनी चाहिए।

पूर्ण उर्वरक की खरीद—किसी एक उर्वरक के स्थान में ऐसा उर्वरक खरीदना जिसमें सब आवश्यक तत्त्व विद्यमान हों किसानों के लिए लाभप्रद है। दूसरे शब्दों में पूर्ण उर्वरकों का खरीदना अच्छा है। इसके कारण निम्नलिखित हैं—

१. पूर्ण उर्वरक की भौतिक अवस्था ऐसी रहती है कि उसे खेतों में तत्काल डाल सकते हैं।

२. पूर्ण उर्वरक को जब खेतों में डालना चाहें तब ही और जितना डालना चाहें उतना ही विक्रेताओं से खरीद कर डाल सकते हैं।

३. कुछ पूर्ण उर्वरक किसी स्थान की मिट्टी और वहाँ की जलवायु के अनुकूल बने मिलते हैं। विभिन्न फसलों के लिए भी अनुकूल मिश्रित उर्वरक मिलता है। ऐसा मिश्रित उर्वरक किसानों के लिए बड़ा सुविधाजनक होता है।

पूर्ण उर्वरकों में कुछ दोष भी हैं। देखने से पता नहीं लगता कि पूर्ण उर्वरक में कौन कौन पोषक तत्त्व विद्यमान हैं। इससे किसानों के ठगे जाने का भय रहता है। किसान यदि किसी उर्वरक को सस्ता समझकर ही खरीदें तो सम्भव है कि ऐसे सस्ते उर्वरक में पोषक तत्त्वों की कमी अथवा बिल्कुल अभाव हो।

उर्वरक पूरक

उर्वरकों में पोषक तत्त्व साधारणतया २५ प्रतिशत से अधिक नहीं रहते, शेष ७५ प्रतिशत पौधों के लिए बेकार होते हैं। २५ प्रतिशत में भी फास्फरिक अम्ल (P_2O_5) का आक्सिजन और पोटाश (K_2O) का आक्सिजन बेकार होता है। यदि इस बेकार अंश को निकाल दें तो व्यर्थ अंश की मात्रा ८६ प्रतिशत पहुँच जाती है। काम का अंश केवल १४ प्रतिशत रह जाता है। कोलिंग्स् का मत है कि फास्फरस और पोटेसियम को फास्फरिक अम्ल और पोटाश में न प्रदर्शित कर यदि फास्फरस (P) और पोटे-सियम (K) में ही प्रदर्शित करें तो विश्लेषण अधिक यथार्थ होगा।

एक टन उर्वरक प्रायः २००० पौण्ड होता है। वास्तविक उर्वरक १४०० से १८०० पौण्ड ही रहता है। शेष ६०० से २०० पौण्ड जो पदार्थ रहता है उसे 'पूरक' (filler) कहते हैं। पूरक के रूप में पहले रेत प्रयुक्त होती थी। पीछे डोलोमाइट पत्थर, जिपसम, फुलर की मिट्टी, चट्टान-नमक, महीन पीसा हुआ फास्फेट-चट्टान (floats), कोयले की राख, कंकड़, मूँगफली के छिलके, लकड़ी का बुरादा और अन्य कई प्रकार के कार्बनिक पदार्थ प्रयुक्त होने लगे। कभी-कभी प्रजीर्णक (muck) भी प्रयुक्त होता है। प्रजीर्णक केवल पूरक का ही काम नहीं करता वरन् उर्वरक को थक्का बँधने से भी बचाता है।

यदि पूरक का उपयोग करना आवश्यक ही हो तो डोलोमाइट, जिपसम अथवा

किसी मिट्टी संशोधक का उपयोग अच्छा है। यदि पूरक की आवश्यकता न प्रतीत हो तो केनाइट का उपयोग हो सकता है। सामान्य पूर्ण उर्वरक में प्रति टन नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटेसियम १५० से २५० पौण्ड रह सकते हैं। अमेरिका में पहले पूरक का उपयोग अधिकता से होता था। धीरे-धीरे पूरक का उपयोग वहाँ कम हो रहा है। पहले जहाँ प्रायः २० प्रतिशत पूरक प्रयुक्त होता था वहाँ १९४५ ई० में यह घटकर ६·८ प्रतिशत हो गया। १९४७ ई० में बीस लाख टन पूरक अमेरिका में प्रयुक्त हुआ था, जिसमें १० लाख टन केवल रेत या इसी प्रकार के निष्क्रिय पदार्थ थे।

१९५२ ई० में अमेरिका में दो करोड़ टन मिश्रित उर्वरक बिका था। यदि उसमें पूरक न डाला गया होता तो इससे ४ करोड़ रुपये की बचत, उनके मिलाने, बोराबन्दी करने, जहाजों पर लादने और जहाज के भाड़े आदि के खर्च में, होती।

उर्वरकों के व्यवहार का उद्देश्य

खेतों में उर्वरक डालने का प्रमुख उद्देश्य है उन तत्त्वों को डालना जो फसलों के पोषण के लिए आवश्यक हैं। पर इससे और भी लाभ होता है। उर्वरक से मिट्टी की भौतिक दशा सुधरती है। पानी को पकड़ रखने की क्षमता बढ़ती है। पर कभी-कभी बिना सूझ-बूझ के डालने से हानि भी हो सकती है।

पैदावार बढ़ाने का उद्देश्य लाभ है। पैदावार की वृद्धि से लाभ का ज्ञान होता है। अमेरिका में किसानों के बीच एक बार यह जानने का प्रयत्न हुआ था कि उर्वरक से क्या लाभ होता है। उसके फलस्वरूप पता लगा कि उर्वरक में एक रुपया खर्च करने से लगभग साढ़े तीन रुपये का लाभ होता है। इसी आधार पर गणना कर देखा गया है कि एक टन उर्वरक के व्यवहार से विभिन्न फसलों में वृद्धि इस प्रकार होती है—

फसल	पैदावार में वृद्धि
गेहूँ	८५ बुशेल
मकई	१२५ बुशेल
कपास	२ गाँठ
जई	१४० बुशेल
आलू	१८५ बुशेल
तम्बाकू	१३७० पौण्ड
शकरकन्द	२८५ बुशेल
मूँगफली	२०० बुशेल
टमाटर	२१५ बुशेल
सेब	७०० बुशेल
दूध	८,००० पौण्ड

वार्नर (१९३१) ने जो आँकड़े संग्रह किये हैं उनसे मालूम होता है कि एक रुपये के उर्वरक के व्यवहार से २ से ५ रुपया लाभ होता है। ब्रैण्ड (१९४४) का मत है कि एक रुपये के उर्वरक के व्यवहार से ५ रुपये का लाभ होता है। १९५३ के आँकड़ों से पता लगता है कि एक रुपये के व्यवहार से ४ से ६ रुपये का लाभ होता है। कुछ शाक-भाजियों में लाभ अधिक होता और कुछ मकई कपास सदृश फसलों में लाभ कम होता है।

कुछ स्थानों की मिट्टी ऐसी हो सकती है कि उसमें उर्वरक देने से पैदावार बहुत अच्छी होती है और कुछ स्थानों की मिट्टी से उतनी अच्छी नहीं होती। इसका कारण जलवायु और वर्षा भी हो सकता है। अधिक वर्षा से संकर्षण होकर पोषक तत्त्व नष्ट हो सकता है। जिस मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अधिक रहता है उसमें उर्वरक से अधिक लाभ होता पाया गया है। रेत-पत्थर की अपेक्षा चूना-पत्थर से भी पैदावार अधिक होती पायी गयी है।

मिट्टी की प्रकृति का उर्वरक के इस्तेमाल से बड़ा घना सम्बन्ध है।

मिट्टी का संघटन

मिट्टियाँ भिन्न-भिन्न किस्म की चट्टानों से बनी होती हैं। चट्टानों की छीजन भिन्न-भिन्न होती है। इससे मिट्टियाँ एक दूसरे से बहुत विभिन्न होती हैं। उर्वरकों के समुचित उपयोग के लिए मिट्टी के संगठन का ज्ञान बड़ा आवश्यक है। बलुआर मिट्टी ऐसी चट्टानों से बनी होती है जिनमें पोटेसियम की कमी रहती है। चूँकि अधिकांश फसलों को पोटाश की आवश्यकता पड़ती है, इस कारण बलुआर मिट्टी में पोटाश उर्वरक का उपयोग बहुत आवश्यक हो जाता है। ऐसी मिट्टी में बिना पोटाश उर्वरक के पैदावार अच्छी नहीं होती। मटियार मिट्टी ऐसी चट्टानों से बनी होती है जिनमें फेल्डस्पार रहता है। फेल्डस्पार में पोटेसियम रहता है। अतः मटियार मिट्टी में पोटाश पर्याप्त रहता है। पर इसमें चूना और फास्फरस की कमी रहती है। ऐसी मिट्टी में चूनेवाला और फास्फरसवाला उर्वरक डालना आवश्यक होता है। चूना-पत्थर से बनी मिट्टी में चूना पर्याप्त रहता है पर उसमें फास्फरस और पोटेसियम की कमी रहती है। इस कारण ऐसी मिट्टी में फास्फरस और पोटेसियम उर्वरक से बहुत अधिक लाभ होता है। सब प्रकार की मिट्टियों में नाइट्रोजनीय खाद बड़ी आवश्यक है।

विभिन्न मिट्टियों में नाइट्रोजन की मात्रा विभिन्न रहती है। संकर्षण से बहुत कुछ नाइट्रोजन नष्ट हो जाता है। जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ की मिट्टी में नाइट्रोजन

की कमी रहती है। कार्बनिक पदार्थवाली मिट्टी में फास्फरस अधिक और उपलब्ध रूप में रहता है।

मिट्टी की भौतिक अवस्था

मिट्टी की भौतिक अवस्था मिट्टी में उपस्थित कणों पर निर्भर करती है। मिट्टी बलुआर, मटियार, चिकनी, साद (silt) हो सकती है। इनमें किसी एक प्रकार की मिट्टी शायद ही व्यापक रूप से पायी जाती हो। अधिकांश मिट्टियाँ विभिन्न विस्तार के कणों से बनी होती हैं पर मिट्टी की बनावट, (पोत, texture) बहुत कुछ मिलती जुलती है। मिट्टी की बनावट पर ही उर्वरक की किस्म निर्भर करती है।

यह पता लगाने के लिए कि कहाँ कौन सी खाद्य उपयुक्त होगी, बिहार सरकार ने कृषिविभाग के अन्तर्गत खाद-योजना नामक एक विभाग खोला है। बिहार की विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में किस फसल पर, कौन सी खाद, कितने परिम ण में देकर सबसे अधिक लाभ उठाया जा सकता है और इस संकट-काल में किस प्रकार खाद के सहारे प्रचुर अन्न उपजाने से इसका निवारण हो सकता है, यह बतलाया जाता है। बलुआर मिट्टी सरन्ध्र और खुली हुई होती है। उसमें महीन या कोलायडल कण कम होते हैं। अतः ऐसी मिट्टी पोषक तत्त्वों की अधिक मात्रा ग्रहण नहीं कर सकती। संकर्षण से ऐसी मिट्टी का पोषक तत्त्व बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। ऐसी मिट्टी में एक बार में अधिक नाइट्रेट या अमोनियम लवण का उपयोग लाभकारी नहीं होता।

मटियार मिट्टी साधारणतया अच्छी बनावट की होती है पर उसमें जल और वायु का प्रवेश स्वच्छन्दता से नहीं होता। ऐसी मिट्टी में भी अधिक उर्वरक से लाभ नहीं होता। ऐसी मिट्टी विलेय नाइट्रोजन और पोटेसियम लवणों को कुछ सीमा तक शीघ्र ग्रहण कर लेती है। ऐसी मिट्टी के लिए गोबर की खाद अच्छी होती है।

अधिकांश फसलें साद और दोमट मिट्टी में अच्छी उगती हैं। यदि उनमें पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ हो और सोच-समझकर उर्वरक का उपयोग किया जाय तो उससे बहुत लाभ हो सकता है।

उर्वरकों से अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए मिट्टी की भौतिक दशा का सुधार आवश्यक है। ६० से ९० प्रतिशत फसलें ऐसी होती हैं जिनकी जड़ें ऊपर की जोती हुई भूमि में ही रहती हैं। ऐसी फसलें उर्वरक से बहुत लाभ उठाती हैं। शेष ४० से १० प्रतिशत फसलों की जड़ें जोती हुई धरती के नीचे तक जाती हैं और नीचे की मिट्टी से पोषक तत्त्व ग्रहण करती हैं।

यदि मिट्टी बहुत महीन या बहुत मोटी, बहुत सघन या बहुत सरन्ध्र, बहुत सूखी या भींगी है तो ऐसी मिट्टी को उर्वरक से बहुत अधिक लाभ नहीं होता। मिट्टी को समुचित भौतिक दशा में रखना उर्वरक के महत्तम लाभ के लिए बड़ा आवश्यक है।

मिट्टी का पूर्व उपचार

किसानों का सामान्य अनुभव है कि एक ही प्रकार की मिट्टी में एक ही उर्वरक देने से किसी खेत की पैदावार बड़ी अच्छी होती है और किसी की उतनी अच्छी नहीं। इसका कारण यह समझा जाता है कि पूर्व वर्षों में दोनों खेतों का उपचार एक सा नहीं हुआ है। कैसी फसल खेत में पहले उगायी गयी है, किस प्रकार उगायी गयी है, इसका भी प्रभाव पड़ता है।

उर्वरकों के व्यवहार से मिट्टी में प्रगाढ़ परिवर्तन हो सकता है। गोबर की खाद और हरी खाद से उपज में बहुत अन्तर पड़ सकता है। चूने से भी परिवर्तन हो सकता है। अधिक चूने से उपज में कमी हो सकती है, फास्फेट की उपलब्धि में कमी हो सकती है। फसल के गुणों में भी परिवर्तन हो सकता है। अच्छी खादवाले खेतों के अनाज और पयाल अधिक पुष्टिकर होते हैं।

मिट्टी खनिजों से बनी होती है। खनिज साधारणतया जल में अविलेय होते हैं। धीरे-धीरे वायु और जल से खनिजों की छीजन होती है। छीजन से कुछ पदार्थ जल में अविलेय होने से अवक्षिप्त हो जाते हैं और कुछ जल में घुलकर पेड़-पौधों द्वारा अवशोषित हो जाते हैं। कुछ कलिल मिट्टी या ह्यमस में अवशोषित हो जाते हैं और कुछ संकर्षण द्वारा जल में मिलकर निकल जाते हैं। छीजन प्रधानतया जल-विच्छेदन क्रिया है। हाइड्रोजन आयनों का खनिजों पर प्रभाव पड़ता है। जिस खेत में कोई पेड़-पौधा नहीं उगाया गया है, उसमें पोषक तत्त्व महत्तम मात्रा में विद्यमान रहते हैं। ऐसी भूमि उपजाऊ होती है।

पोषक तत्त्वों का पेड़-पौधों द्वारा अवशोषण

छीजन से मिट्टी-खनिजों का जो जल-विच्छेदन होता है वह बड़ी मन्द क्रिया है। क्रिया इतनी मन्द होती है कि उससे पौधों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। मिट्टी-कलिलों के तल पर जो स्थिरवैद्युत बल रहता है, उसी से उपलब्ध पोषक तत्त्व संगृहीत होते हैं। उसी से बढ़ते पौधे अपनी आवश्यकताओं को जल्दी ग्रहण करते हैं। जिस धरती में फसलें बहुत उगायी गयी हैं उनका संग्रह जल्दी खर्च हो जाता है। उसकी पूर्ति के लिए समय-समय पर विलेय उर्वरकों के डालने की जरूरत पड़ती है। मिट्टी

कलिल से आयन का अवशोषण कैसे होता है, यह अभी पूरा समझ में नहीं आया है। ऐसा समझा जाता है कि जड़ के हाइड्रोजन आयन के स्थान में पोषक तत्त्वों का धनायन अवशोषित हो जाता है और उसी प्रकार HCO_3 आयन के स्थान में पोषक तत्त्व का ऋणा-यन अवशोषित होता है। बर्ड (१९४७) का मत है कि पोषक तत्त्व मिट्टी से पौधों में केवल तरल रूप में ही नहीं जाते वरन् ठोस रूप में भी जाते हैं।

पौधों की जड़ों में भी धनायन-विनिमय की क्षमता रहती है। यह क्षमता कलिल पदार्थों की उपस्थिति से आती है और विभिन्न फसलों में यह धनायन-विनिमय मान विभिन्न होता है। इस कारण मिट्टी का पी एच मान बड़े महत्त्व का है। पोषक तत्त्वों की उपलब्धि बहुत कुछ पी एच मान पर निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में एक चित्र पी एच प्रकरण में दिया हुआ है। उस चित्र से पता लगता है कि विभिन्न पोषक तत्त्वों का महत्तम अवशोषण अथवा ग्रहण विभिन्न पी एच मानों पर होता है। फसलों की प्रकृति पर भी पोषक तत्वों की उपलब्धि निर्भर करती है।

उर्वरक के इस्तेमाल की विधियाँ

खेतों में उर्वरक डालने के ढंग अनेक हैं। इनमें अधिक महत्त्व के ढंग निम्न-लिखित हैं—

१. कतार में बुरकना।
२. हाथ या ड्रिल से बखेरना
३. बीज के साथ व्यवहार करना
४. जुताई से पहले खेतों में बखेरना
५. जुताई के बाद गहराई में व्यवहार करना
६. गहरे कुंड में व्यवहार करना
७. बराबर में बुरकना
८. मिट्टी में दबाना
९. उर्वरक का विलयन डालना
१०. खड़ी फसल में बुरकना
११. सिंचाई के साथ
१२. अन्य विधियाँ

कतार में बुरकना—यदि फसल कतार में बोयी गयी है और उस की जड़ें औसत जड़ों से छोटी हैं तो ऐसी फसल के लिए कतार में उर्वरक डालना अच्छा होता है। विशेष लाभ उस दशा में होता है जब उर्वरक की मात्रा कम, एकड़ में १०० से ४०० पौण्ड हो। देखा गया है कि आलू की खेती में एकड़ में यदि ३०० से ४०० पौण्ड उर्वरक डालना हो तो बुरकने के स्थान में कतार में डालने से उपज अच्छी होती है। कतार में खाद देने से अगली फसल के लिए भी लाभ होता है। मकई में केवल १०० से २०० पौण्ड प्रति एकड़ कतार में उर्वरक डालने से उपज अच्छी होती पायी गयी है। बाग-बगीचों और साग-भाजियों के लिए कतार में बुरकना सबसे अच्छा होता है। कतार

में मशीनों से भी उर्वरक डाला जा सकता है। आलू और मकई में कतार में डालने के लिए विशेष मशीनें बनी हुई हैं।

कतार में बुरकने में इस बात की विशेष सावधानी रखनी चाहिए कि उर्वरक बीज के संस्पर्श में न आये। संस्पर्श से अँकुरने में देर हो सकती है। बुवाई के समय एक या अधिक इंच चौड़ी कतार में बीज के एक या दोनों ओर गहराई में बुरकना चाहिए। यदि सान्द्र उर्वरक डालना हो तो मिट्टी के साथ उर्वरक मिलाकर डालना अच्छा होता है। अंकुरने में क्षति का भय इससे जाता रहता है। यदि उर्वरक विलेय है तो दुगुनी मिट्टी के साथ भली भाँति मिलाकर डालना बिल्कुल निरापद है।

कतार में उर्वरक डालने से संकर्षण से क्षति की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। पौधों की जड़ें ऐसे उर्वरक को जल्द ग्रहण करती हैं। पौधों की वृद्धि अच्छी होती और फसलें जल्द पकती हैं। जहाँ उर्वरक की मात्रा अधिक नहीं है वहाँ कतार में बुरकना ही अच्छा है।

हाथ या ड्रिल से बखेरना—यदि उर्वरक की मात्रा अधिक, प्रति एकड़ १५०० से २००० पौण्ड, हो तो उर्वरक को बखेर कर हेंगा चलाकर अथवा कुदाल से मिला देना अच्छा होता है। उर्वरक हाथों से बखेरा जा सकता है अथवा मशीनों से। दोनों दशाओं में देखना चाहिए कि वितरण एक सा हो। कुछ मजदूर बखेरने में बड़े दक्ष होते हैं और एकसा बखेर सकते हैं।

जिस धरती में कई फसलें एक के बाद दूसरी उगानी हों उसमें तो बखेरना ही अच्छा होता है। यदि एक ही खेत में बारी-बारी से आलू, पातगोभी, अनाज, यूथ-घास और सेंजी (clover) उगाना है तो उर्वरक एक साथ ही सबों के लिए बखेरा जा सकता है। पहली फसल से ही उर्वरक की कीमत निकल आवेगी और शेष फसलें उर्वरक के अवशिष्ट प्रभाव से अच्छी होंगी। संकर्षण से उर्वरक के नष्ट होने की सम्भावना कम रहती है। यदि उर्वरक में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक हो तो संकर्षण से कुछ क्षति हो सकती है। बखेरना जुताई से पहले किया जा सकता है अथवा पौधों के उग जाने पर बराबर में बुरका जा सकता है।

बीज के साथ व्यवहार—बीज की बोआई या पौधे की रोपाई के समय उर्वरकों का उपयोग हो सकता है। यह विधि उन बीजों के साथ काम में लायी जाती है जिनको उर्वरक के संसर्ग से हानि नहीं पहुंचती, जैसे ज्वार, बाजरा आदि।

ऊपर से उर्वरक डालना—कुछ पौधों में बढ़ने की अवस्था में ऊपर से या पार्श्व से उर्वरक डाला जा सकता है। इसे शीर्ष-खादन या पार्श्व-खादन कहते हैं। शीर्ष-खादन उन फसलों के लिए आवश्यक हो जाता है जिनमें प्रति बरस बोआई नहीं की

जाती; जैसे चरागाह, घास का मैदान, चारेवाली फसलें, फलों के बाग आदि स्थायी-फसलें। सेलरी को भी पार्श्व-खादन की आवश्यकता पड़ती है। शीर्ष-खादन
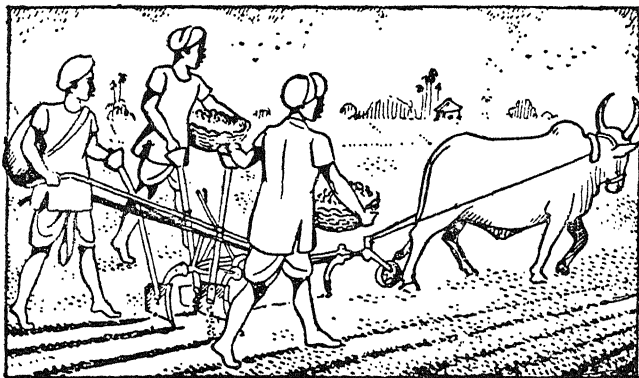
चित्र ५१—बीज के साथ उर्वरक का उपयोग

चित्र ५२—जुताई के पूर्व उर्वरक बखेरना

के लिए फास्फरीय या पोटाश उर्वरक उपयुक्त नहीं है। अतः मिश्रित उर्वरक का उपयोग शीर्ष-खादन के लिए नहीं होता।

शीर्ष-अथवा पार्श्व-खादन के लिए विलेय अमोनियम या नाइट्रेट उर्वरक, जैसे अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, यूरिया, ल्यून, साल्ट पीटर, सोडियम नाइट्रेट,

चूने के नाइट्रेट अधिक उपयुक्त हैं। इन्हें बीज लगाने या पौधा रोपने के समय डालना चाहिए। बढ़ने के समय भी दो तीन बार करके इन्हें बखेरा जा सकता है। पहले देने से संकर्षण द्वारा इनके नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। वार्षिक फसलों, अनाजों की, साग-भाजियों की, जड़वाली फसलों, जैसे आलू, शकरकन्द, कन्दा आदि,

चित्र ५३—जुताई के बाद उर्वरक बखेरना

तन्तुवाली फसलों, कपास, जूट आदि, मसालों (धनिया, अजवाइन, सौंफ आदि) की फसलों में बढ़ते हुए पौधों में ही उर्वरक डालना अच्छा होता है।

उर्वरक जब पौधों के चारों ओर वृत्त में रखा जाता है तब इसे 'स्थानीय खादन' कहते हैं। पार्श्व में रखने से 'पार्श्व-खादन' कहा जाता है।

शीर्ष-या पार्श्व-खादन से उर्वरक का संकर्षण द्वारा नाश नहीं होता। ऐसे समय में शीर्ष या पार्श्व-खादन करना चाहिए जब पौधे पोषक तत्त्वों को शीघ्र ग्रहण कर सकें।

शीर्ष-खादन में इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि पौधों के कोमल पत्ते उर्वरक के संस्पर्श में न आयें। जब पौधे सूखे हों तभी उर्वरक डालना चाहिए ताकि वह पत्तों पर चिपके नहीं।

शीर्ष-या पार्श्व-खादन साधारणतया हाथों से ही होता है। इससे कोमल पत्ते और डालें बचायी जा सकती हैं। बिखेरने के स्थान में कतार में बुरकना अच्छा होता है। इससे उर्वरक का पूरा लाभ और पैदावार अच्छी होती है।

कौब (१९४६) का मत है कि भारी मिट्टी के लिए उर्वरक बिखेरकर जोत देना अच्छा होता है, जब कि हलकी मिट्टी के लिए ऊपर से डालने से उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त होता है। कतार में बीज से आधे इंच से डेढ़ इंच की दूरी पर देने से मटर में अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि हराई में खाद देने अथवा पार्श्व में रखने से विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। बीज के संस्पर्श में उर्वरक के आने से डेविस (१९४५) ने सोयाबीन की पैदावार में ५० से ४० प्रतिशत की कमी पायी थी।

अन्य विधियाँ

सूई देना—ऊपरी और निचली मिट्टी में इन्जेक्शन देने की रीतियाँ भी निकाली गयी हैं। पेड़ों में भी सूई दी जा सकती है। ब्राइनर (१९४१) ने एक विधि का वर्णन किया है जिसमें पेड़ के तने में एक या डेढ़ मीटर की दूरी पर उर्वरक की सूई दी जाती है। सूई देने के लिए अनेक प्रकार के भाले बने हैं जिनसे जमीन में उर्वरक डाला जाता है। यह विधि फल के पेड़ों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होती है। लोहे की कमी की पूर्ति के लिए सूई देने का उपयोग सफलता से हुआ है। पर इसमें बड़ी चौकसी की जरूरत है। विशेषज्ञ ही सूई देने का काम कर सकते हैं। सावधानी से सूई न दी जाय तो लाभ के स्थान में हानि हो सकती है।

सिंचाई के जल में भी उर्वरक डाला जा सकता है। हमारे राँची के एक मित्र ने इस विधि को अच्छा पाया है। पानी की टंकी में वे पहले अमोनियम सल्फेट डालते हैं। फिर उसमें चूना डालते हैं। चूना इतना डालते हैं कि अमोनियम सल्फेट का सारा अमोनिया मुक्त हो जाय। फिर पानी को मिला देते हैं जिससे कैलसियम सल्फेट नीचे बैठता नहीं है। यदि आवश्यक हुआ तो थोड़ा मैगनीशियम सल्फेट भी डाल देते हैं। राँची की मिट्टी में मैगनीशियम की कमी है। इस पानी की सिंचाई से धान और गेहूँ की फसल अच्छी उगी हुई पायी गयी है। यह सिंचाई तब होती है जब फसलों में पोषक तत्त्वों के ग्रहण करने की क्षमता महत्तम रहती है। ऐसी सिंचाई से साग-भाजियों में विशेष लाभ पाया गया है।

कुछ उद्दीपक और रोग-रोधक उर्वरक भी **पानी में घोल कर पौधों पर छिड़के जाते हैं।** मैगनीशियम और मैंगनीज की कमी इससे जल्द दूर की जा सकती है।

इष्टका या पिंड बनाकर भी उर्वरक डाला जाता है। हांस (Hance) का कहना है कि पौधों की जड़ें पोषक तत्त्वों की खोज में सीमेंट जैसी कठोर वस्तुओं में भी प्रवेश कर जाती हैं। यह सम्भव है कि खाद की बनी इष्टकाओं में भी वे प्रवेश कर पोषक तत्त्वों को ग्रहण कर सकें। इष्टका के रूप में उर्वरक देने से पोटाश लवणों का
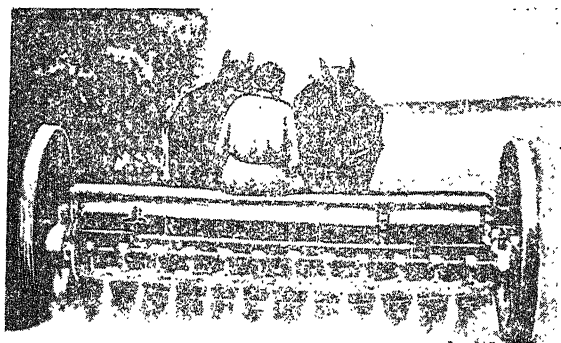
चित्र ५४—उर्वरक वितरण ड्रिल, पृ० ४८७-९०
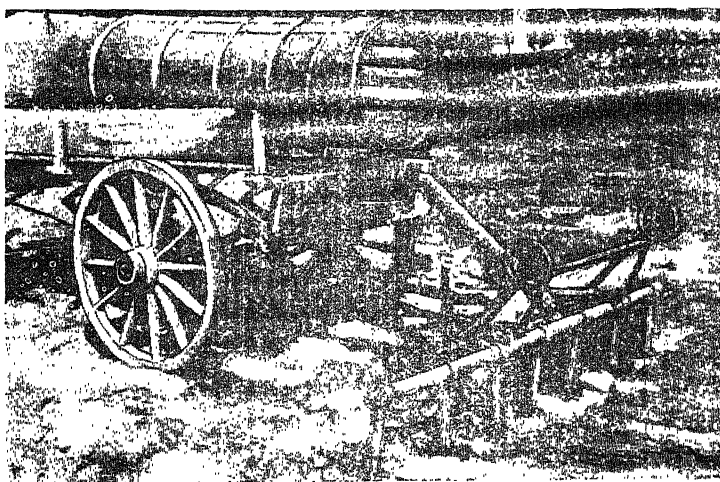
चित्र ५५—उर्वरक विलयन वितरक, पृ० ४९०

उर्वरक के विलयन छिड़कने का यह वितरक वैसा ही है जैसी छोटे-छोटे नगरों में सड़क पर पानी छिड़कने के लिए गाड़ियाँ होती हैं। जिस ड्रिल का यहाँ चित्र दिया गया है वह डेनमार्क में प्रयुक्त होता है।

संकर्षण और फास्फेटों का स्थिरीकरण रोका जा सकता है। उन्होंने पहले सीमेंट, बालू और उर्वरक की इष्टका बनायी। पीछे सीमेंट और बालू के स्थान में प्लास्टर आफ पेरिस का उपयोग किया। इष्टका को फिर पैराफिन से ढँक दिया ताकि संकर्षण से उर्वरक की रक्षा हो सके। पीछे उन्होंने सोडियम सिलिकेट के सहारे इष्टका बनायी। यह इष्टका अच्छी प्रमाणित हुई पर महँगी पड़ती थी। उर्वरकों को बाँधने के लिए पीछे पीसी हुई बैसेल्ट चट्टान का उपयोग हुआ। यह अपेक्षया सस्ती पड़ती थी। इष्टका की कठोरता और संगठन इच्छानुसार न्यूनाधिक किया जा सकता है। यह विधि शायद ही काम में लायी जाती है।

स्वयं उर्वरकों को पिंड बनाकर खेतों में डालने से भी लाभ पाया गया है। एक या दो जड़ें भी यदि पिंड में प्रविष्ट हो जायँ तो उससे पौधों की समस्त आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं, चूना और फास्फेट के लिए तो यह विधि अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

एक विधि में बीज को उर्वरक से ढँक दिया जाता है, गुसेव (Gusev, १९३८) का मत है कि बीज को यदि फास्फेट से ढँक दिया जाय तो फास्फेट का ७० से ८० प्रतिशत पौधों के काम आ जाता है। इसके लिए या तो बीज को फास्फेट के सान्द्र विलयन में डुबा दिया जाता है अथवा फास्फेट और स्टार्च के मिश्रण से लेप दिया जाता है। रौबर्टस ने गेहूँ के बीज को पोटेसियम हाइड्रोजन फास्फेट के ५ प्रतिशत विलयन में डुबाकर २२ सें० पर सुखा कर बोया था और उससे पैदावार में स्पष्ट रूप से वृद्धि देखी गयी थी।

उर्वरक डालने की गहराई

किस गहराई पर उर्वरक डालना चाहिए, यह मिट्टी की किस्म, फसल की किस्म और उर्वरक की किस्म पर निर्भर करता है। साधारणतया कहा जा सकता है कि उर्वरक को पौधों की जड़ों के निकट में रहना अच्छा है जिससे वे पोषक तत्त्वों को सरलता से खींच सकें। स्टब्बस और ली ने कपास पर जो प्रयोग किये हैं उनसे मालूम होता है कि सबसे अच्छी पैदावार उस दशा में होती है जब उर्वरक सतह से २ से ३ इंच की गहराई में हों। जहाँ ऊपर से उर्वरक देने पर पैदावार प्रति एकड़ केवल ८७० पौण्ड हुई थी वहाँ २ से ३ इंच की गहराई में देने से पैदावार १०३० पौण्ड हुई। ४ से ५ इंच की गहराई अथवा ६ से ८ इंच की गहराई पर उर्वरक देने से दोनों दशाओं में पैदावार केवल ९२० पौण्ड हुई थी।

टाइयेन्स (Teidjens, १९४०) इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि चूना और

फास्फेट को हराई में अथवा कुछ इंच नीचे की मिट्टी में देने से और पोटाश तथा नाइ-ट्रोजन उर्वरकों को ऊपर देने से सबसे अच्छा परिणाम प्राप्त होता है। जोते हुए स्तर के ४ से ६ इंच नीचे सुपर-फास्फेट रखने से टाइयेन्स (१९४५) ने विशेष अच्छा परिणाम पाया था।

उर्वरक डालने का समय

उर्वरक डालने से पूरा पूरा लाभ हो सके इसके लिए आवश्यक है कि ठीक समय पर उर्वरक खेतों में डाला जाय।

कार्बनिक नाइट्रोजनीय खादों में, गोबर की खाद, कम्पोस्ट आदि को बीज बोने या पौधा रोपने के कुछ मास पहले खेतों में डालकर जोत देना अच्छा होता है। इससे कार्बनिक पदार्थों के सड़ने-गलने का अवसर मिल जाता है जिससे बीज बोने पर अथवा पौधों के लगाने पर उन्हें पोषक तत्व मिल जाते हैं।

अधिक विलेय और जल्द उपलब्ध होने योग्य नाइट्रोजनवाले उर्वरकों को ऊपर से या कतार में बिखेरना अच्छा होता है। पौधे जब कुछ बढ़ जायँ तब नाइट्रोजन को ग्रहण कर जल्द लाभ उठाते हैं। उसे बहुत पहले डालने से संकर्षण द्वारा नष्ट हो जाने का भय रहता है। उर्वरक बिखेरने के बाद वर्षा का होना अथवा सिंचाई करना आवश्यक होता है।

यदि उर्वरक का उपयोग बड़ी मात्रा में करना है तो बीज बोने के पहले ही खेतों में बिखेरकर मिट्टी में मिला देना अच्छा है, जिससे उर्वरक के मिट्टी में मिल जाने से पौधों के लिए पोषक तत्त्वों की उपलब्धि बढ़ जाती है।

बीज बोने अथवा पौधा रोपने के पहले पोटाश उर्वरकों को बिखेरकर मिट्टी में मिला देना चाहिए ताकि पोटाश में मिट्टी घुल जाय जिससे पौधे उसे ग्रहण कर सकें।

फास्फेट उर्वरकों को, विशेषतः उन्हें जो जल्दी घुलनेवाले नहीं हैं, बीज बोने के कुछ मास पहले खेतों में डालना चाहिए, ताकि वे विलेय होकर पौधों को प्राप्य हो सकें। अधिक विलेय फास्फेटों को बोने के ठीक पहले अथवा पौधे जब कुछ इंच बढ़ जायँ तब डाला जा सकता है।

मिट्टी के संशोधकों को बीज बोने के कुछ मास पहले खेतों में डालकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। रोगरोधक और उद्दीपक उर्वरक कतार में या ऊपर से डाले जा सकते हैं अथवा उनका विलयन बना कर छिड़का जा सकता है।

उर्वरक की मात्रा—खेतों में कितना उर्वरक इस्तेमाल करना चाहिए, यह मिट्टी की प्रकृति, फसल की किस्म, मौसम, उर्वरक की किस्म और उर्वरक की कीमत पर

निर्भर करता है। सामान्य खाद बड़ी मात्रा में मिट्टी की भौतिक दशा को अच्छा बनाने में प्रयुक्त हो सकती है। ऐसी खाद में पोषक तत्त्वों के सिवाय अनेक प्रकार के जीवाणु भी रहते हैं जो मिट्टी के सुधारने में सहायक होते हैं। सामान्य खादों के सिवाय विशिष्ट खाद भी विशिष्ट उद्देश्य से विशिष्ट दशाओं में इस्तेमाल हो सकती है। एक बात सदा स्मरण रखनी चाहिए। उर्वरक डालने का उद्देश्य उपज बढ़ाना होता है, उपज से लाभ होता है। जितने का उर्वरक खर्च हो उससे अधिक का लाभ पैदावार से होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो उर्वरक के इस्तेमाल का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता।

उर्वरक का वितरण

खेतों में उर्वरक का वितरण एक सा होना चाहिए। हाथों से एक-सा वितरण हो सकता है, पर इसके लिए ऐसा आदमी चाहिए जो इस काम में दक्ष हो। सब मजदूर एक-सा वितरण नहीं कर सकते। उर्वरक-वितरण की मशीनें बनी हुई हैं। ये मशीनें वैसी ही हैं जैसी चूना छीटने के लिए प्रयुक्त होती हैं। मशीनों से वितरण अवश्य ही एक-सा होता है। पर मशीनें हर स्थान पर नहीं मिलतीं। सामान्य किसान के लिए तो मशीन मिलना प्रायः असम्भव है। मशीनों से वितरण के लिए उर्वरक महीन होना चाहिए। उर्वरक की छिटाई वैसी ही होती है जैसी बीज की छिटाई होती है। कभी-कभी उर्वरक में रेत या सूखी मिट्टी मिलाकर छिटाई करते हैं।

यदि उर्वरकों का बिखेरना एक सा न हो तो उससे पूरा लाभ नहीं होता। इसका प्रयोग मेहरिंग और क्युमिंगस् (१९३०) ने किया है। उनके प्रयोगों का परिणाम यह है कि एक-से वितरण से पौधों की वृद्धि अधिक जल्द और एक सी होती है। फूल जल्दी लगते हैं, फसल जल्दी पकती है और पैदावार अच्छी होती है। यह देखा गया है कि उर्वरकों का संचरण ऊपर नीचे अधिक होता है और पार्श्व में कम होता है।

उर्वरकों का बीज पर प्रभाव

कार्बनिक खादों से बीजों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, पर अकार्बनिक उर्वरकों से बीज क्षतिग्रस्त हो सकता है। यह निर्विवाद है कि कुछ अकार्बनिक उर्वरकों से अँकुरने में विलम्ब होता है। क्यों विलम्ब होता है, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगा है। शिवे (Shive, १९१६) का मत है कि अँकुरने का सम्बन्ध

बीज द्वारा जल के अवशोषण से है। जल का अवशोषण मिट्टी-विलयन की सान्द्रता पर निर्भर करता है। सम्भवतः मिट्टी-विलयन की सान्द्रता पर उर्वरक लवणों का प्रभाव पड़ता है और उससे बीज के अँकुरने में विलम्ब होता है। इस सम्बन्ध में नाइट्रोजन और पोटाश की अपेक्षा सुपर-फास्फेट कम हानिकारक होता है। हानि सुपर-फास्फेट, सल्फेट, क्लोराइड और नाइट्रेट के क्रम में होती है। मिलर और मिचेल (Millar and Mitchel, १९२७) का मत है कि सफेद सेम के बीज पर प्रति एकड़ ३५० पौण्ड सुपर-फास्फेट (१६ प्रतिशत सुपर-फास्फेट) के उपयोग से अँकुरने में कोई विलम्ब नहीं होता। यदि सुपर-फास्फेट में फ्लोरीन रहे तो मोरस् (१९३५) के अनुसार मकई के अँकुरने में विलम्ब हो सकता है यदि बीज सुपर-फास्फेट के संस्पर्श में आये। जई के अँकुरने में कोई बाधा नहीं होती, पर अन्य बीजों, गेहूँ, मटर, सेम, मध्यनील (lupine) के अंकुरने में कुछ विलम्ब हो सकता है।

उपर्युक्त कारणों से बीज से कुछ दूरी पर ही उर्वरक रखना चाहिए। कुछ लोगों का मत है कि कम से कम तीन-चौथाई इंच की दूरी दोनों के बीच रहनी चाहिए। कुछ का मत है कि २ से ३ इंच की दूरी रहनी चाहिए। कुछ का मत है कि बीज के नीचे १ से २ इंच की गहराई पर उर्वरक रहना चाहिए।

चूना कली या बुझा चूना अथवा साइनेमाइड या बेसिक स्लैग को बीज के सीधे संस्पर्श में कभी नहीं आने देना चाहिए।

उर्वरक से पूरा लाभ

१. उर्वरक से पूरा लाभ उठाने के लिए यह बहुत जरूरी है कि जमीन की जुताई तथा अन्य तैयारियाँ खूब अच्छी तरह हों, ताकि पौधों की जड़ों को फैलने की पूरी जगह मिले तथा उन्हें जरूरत के मुताबिक पानी और हवा तथा भोजन मिल सके। बोने के बीज पुष्ट तथा दाना बड़ा और कीड़ों तथा बीमारी के प्रभाव से मुक्त होना चाहिए।

२. उर्वरक हमेशा सही तरीके से खेतों में दिया जाय।

३. खाद की मात्रा मिट्टी तथा फसल के अनुसार दी जाय।

४. खाद से पूरा लाभ उठाने के लिए भरपूर सिंचाई करना जरूरी है, नहीं तो कम लाभ होगा।

५. जिस मिट्टी में चूने की कमी हो उसमें उचित मात्रा में चूना देना भी आवश्यक है ताकि मिट्टी का पी एच ऐसा रहे कि पौधे उर्वरकों से पूरा लाभ उठा सकें। पी एच ठीक न रहने से पोषक तत्वों का अवशोषण ठीक से नहीं होता।

बढ़ जाती है। मूंग किस्म के पौधों की हरी खाद से लाभ यह है कि कार्बनिक पदार्थों के साथ-साथ अनाज भी प्राप्त हो जाता है।

यदि खेत में तुबरी (pigeon) मटर, मूँगफली और ईख तीनों बारी बारी से उपजाना है तो प्रति एकड़ ५० पौण्ड फास्फरिक अम्ल का व्यवहार लाभकारी है। इससे तीनों फसलों को लाभ होता है।

ईख के लिए खली और उर्वरकों (कृत्रिम) के मिश्रण का उपयोग अच्छा है। इन्हें हराई (furrows) में ६ से ८ इंच की गहराई तक डालकर मिट्टी में पूर्ण रूप से मिला देना चाहिए। इस प्रकार मिली हुई मिट्टी के तल पर ईख के अँखुओं को रखकर मिट्टी से ढक देना चाहिए।

नाइट्रोजनीय उर्वरकों को बोने के समय एक ही बार पूरा डाल देना चाहिए अथवा थोड़-थोड़ा करके दो या दो से अधिक बार डालना चाहिए; यह रीति सब जगह एक सी नहीं बरती जाती। यह बहुत कुछ स्थान और सिंचाई की सुगमता पर निर्भर करता है। पर एक चीज सब स्थानों के लिए एक ही है और वह यह है कि सब स्थानों में बोने के समय ही फास्फेट डाला जाता है।

दक्षिण भारत में ईख की फसल देर से पकती है। अतः वहाँ अधिक मात्रा में खादों की आवश्यकता पड़ती है। खादें भी वहाँ तीन या चार बार करके डाली जाती हैं। उत्तर भारत में प्रति एकड़ ६० से २०० पौण्ड नाइट्रोजन की आवश्यकता पड़ती है। दक्षिण भारत की लाल, लेटेराइट (laterite) और काली मिट्टियों में २०० से ४५० पौण्ड तक नाइट्रोजन डाला जाता है।

फास्फेट से केवल बंबई और बिहार में कुछ लाभ पाया गया है। पोटाश से कहीं लाभ नहीं पाया गया है। हाल में बिहार में कुछ दरियाई मिट्टी में जहाँ वर्षा बहुत अधिक होती है पोटाश से कुछ लाभ देखा गया है। खाद और उर्वरकों से पूरा लाभ तभी होता है जब मिट्टी में पर्याप्त नमी रहती है। नमी के अभाव में उतना लाभ नहीं होता। सिंचाईवाले खेतों में उर्वरकों से पूरा लाभ होता है।

असम

असम में ईख पर जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि वहाँ प्रति एकड़ १२० पौण्ड से २७० पौण्ड तक नाइट्रोजनीय उर्वरक की महत्तम मात्रा है। फास्फेट और पोटाश लाभकारी नहीं सिद्ध हुए हैं। अकार्बनिक उर्वरकों से गोबर की खाद का नाइट्रोजन अधिक प्रभावशाली है। ऐसी स्थिति में केवल गोबर की खाद के स्थान में गोबर की खाद और अमोनियम सल्फेट के १ : १ नाइट्रोजन अनुपात का उपयोग

अधिक अच्छा है। पौधा लगाने के समय गड्ढे में खाद देने से परिणाम सर्वश्रेष्ठ होता है।

हरी खादों में सनई से सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त हुआ है। अन्य हरी खाद ढैंचा और लोबिया (cowpea) सनई से निष्कृट हैं। चूने से हरी खाद के विच्छेदन में सहायता मिलती है।

पश्चिम बंगाल

लाल और लेटेराइट मिट्टियों में फास्फरिक अम्ल की कमी रहती है। खली और अमोनियम सल्फेट के रूप में नाइट्रोजन १०० से १२० पौण्ड रहना चाहिए।

उड़ीसा

उड़ीसा में फास्फरिक अम्ल से कोई लाभ नहीं पाया गया। अकेले अमोनियम सल्फेट से अथवा घूरे की खाद से एक सा परिणाम प्राप्त होता है। खली से कुछ लाभ होता पाया गया है, बोने के समय ४० पौण्ड नाइट्रोजन के बाद मिट्टी उटकेरने के समय अमोनियम सल्फेट के ६० पौण्ड नाइट्रोजन से लाभ होता है।

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश में काली मिट्टी में ईख बोयी जाती है। वहाँ बोने से पहले प्रति एकड़ १४०० पौण्ड खली डाली जाती है, फिर १५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट ऊपर से डाला जाता है। हलकी मिट्टी में गोबर की खाद अथवा हरी खाद बोने से पहले डालने से अच्छा परिणाम प्राप्त होता है। बोने के समय सुपर-फास्फेट के रूप में प्रति एकड़ ४० पौण्ड फास्फरिक अम्ल भी डाला जाता है।

बिहार

उत्तर बिहार के लिए कृषिविभाग ने प्रति एकड़ ६० पौण्ड नाइट्रोजन और ७५ पौण्ड फास्फरिक अम्ल तथा दक्षिण बिहार के लिए १२० पौण्ड नाइट्रोजन और ६० पौण्ड फास्फरिक अम्ल निश्चित किया है। छोटा नागपुर के लिए केवल १२० पौण्ड नाइट्रोजन की सिफारिश है क्योंकि उधर फास्फेट से कोई लाभ नहीं पाया गया है। खेतों के जोतने के पहले प्रारम्भ में प्रति एकड़ २०० मन हरी खाद या कम्पोस्ट या घूरे की खाद की सिफारिश है। पोटाश उर्वरकों से कहीं भी कोई लाभ नहीं देखा गया है, सिवाय चम्पारन के निकट बड़े सीमित क्षेत्र में जहाँ कुछ लाभ पाया गया है। अकेले पोटाश लवणों से पैदावार घट जाती है।

रेंड़ी या मूँगफली की खली का प्रभाव एक-सा ही पाया गया है, यद्यपि मूँगफली में नाइट्रोजन अधिक रहने से उसका उपयोग अधिक लाभप्रद हो सकता है। अमोनियम सल्फेट से अमोनियम नाइट्रेट इस कारण अच्छा है कि अमोनियम नाइट्रेट में नाइट्रोजन अधिक रहता है।

उत्तर बिहार में प्रति एकड़ १२० से १६० पौण्ड नाइट्रोजन लाभ के साथ इस्तेमाल हो सकता है यदि गरमी में ४ से ६ बार सिंचाई का प्रबन्ध हो। यदि सिंचाई का प्रबन्ध न हो तो सब अमोनियम सल्फेट बोने के समय ही खेतों में डाला जा सकता है, पर यदि सिंचाई का प्रबन्ध हो तो आधा बोने के समय और मिट्टी झोरने के समय दिया जा सकता है।

चूनेवाली मिट्टी में फास्फेट को गहराई में देने से ईख का रस उत्कृष्ट होता है। अच्छी पैदावार के लिए सल्फीटेशन का 'प्रेस-मड' और छोआ प्रति एकड़ १०० से २०० पौण्ड डाला जा सकता है। हरी खाद में सनई सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हुई है।

इधर कुछ दिनों से कृषिविभाग द्वारा किसानों के खेतों में व्यापक रूप से प्रयोग हुए हैं। चूर्णीय मिट्टी में ४० पौण्ड नाइट्रोजन देने से २·४ टन की वृद्धि और अचूर्णीय मिट्टी में ३·३ टन की वृद्धि पायी गयी है। यदि ऊपर से ८० पौण्ड नाइट्रोजन डाला जाय तो पहली किस्म की मिट्टी में ५·६ टन और दूसरी किस्म की मिट्टी में ४·५ टन की वृद्धि पायी गयी है।

जहाँ तक फास्फरिक अम्ल का प्रश्न है चूर्णीय मिट्टी में ५० पौण्ड के उपयोग से २·० टन की वृद्धि और अचूर्णीय मिट्टी में ३·७ टन की वृद्धि हुई है।

दक्षिण बिहार की भारी मिट्टी में और सोन की कछार (alluvial) मिट्टी में ६० पौण्ड नाइट्रोजन का उर्वरक देने से क्रमशः ४·६ और ८·८ टन की वृद्धि और १२० पौण्ड देने से क्रमशः ९·६ टन और १०·३ टन की वृद्धि हुई है। भारी मिट्टी में ३० पौण्ड फास्फरिक अम्ल से ४·१ टन की और कछार मिट्टी में ६·१ टन की वृद्धि हुई है।

उत्तर प्रदेश

कार्बनिक और अकार्बनिक नाइट्रोजनीय खाद के २ : १ अनुपात में प्रति एकड़ १२० पौण्ड नाइट्रोजन डालने से पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। १३० से १८० पौण्ड तक नाइट्रोजन की मात्रा लाभ के साथ बढ़ायी जा सकती है। प्रथम १०० पौण्ड नाइट्रोजन के व्यवहार से ईख की औसत वृद्धि प्रति एकड़ १० टन होती

है। १०० पौण्ड के बाद प्रति एकड़ १०० पौण्ड से केवल १·५ टन की वृद्धि होती है। अमोनियम सल्फेट के उपयोग से १० से ३० प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है।

खली डालने का सबसे अच्छा समय पौधा रोपने के ३ से ४ सप्ताह पहले है। उर्वरक डालने का सबसे अच्छा समय बोने के वक्त अथवा अँकुरने के बाद है। पीछे उर्वरक डालने से फसल के पकने में देरी लगती है। अँखुवा वाली ईख में प्रति एकड़ १०० से १४० पौण्ड उर्वरक साधारणतया डाला जाता है। फास्फेट और पोटाश उर्वरकों से विशेष अन्तर नहीं देखा गया है। शाहजहाँपुर में ईख बोने के अढ़ाई मास पहले प्रति एकड़ १८० मन सल्फीटेशन छोआ डालने से ईख की पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है। कानपुर और गोरखपुर में भी अँखुआ वाली ईख में छोआ से बहुत लाभ पाया गया है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि हलकी मिट्टी में उर्वरकों से पैदावार बढ़ जाती है।

पंजाब

पंजाब में नाइट्रोजनीय खाद से ईख की फसल अच्छी होती है। प्रति एकड़ १०० से १४० पौण्ड नाइट्रोजन डालना चाहिए। ईख बोने के एक मास पहले नाइट्रोजन की आधी मात्रा गोबर की खाद के रूप में डालनी चाहिए और शेष आधी मात्रा खली के रूप में अथवा अमोनियम सल्फेट के रूप में डालनी चाहिए। यदि खली डालना है तो बोने के पहले खेत तैयार करने के समय ही डालना चाहिए और यदि अमोनियम सल्फेट डालना है तो दो बार करके सिंचाई के समय मई और जून में डालना चाहिए।

खली या अमोनियम सल्फेट अथवा सोडियम नाइट्रेट के उपयोग में कोई अन्तर नहीं देखा गया है। प्रथम १०० पौण्ड नाइट्रोजन के उपयोग से सबसे अधिक प्रभाव उत्पन्न होता है। १०० पौण्ड के बाद २०० पौण्ड की दक्षता केवल ०·३८ रहती है। १०० से २०० पौण्ड फास्फेट से विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। गोबर की खाद के साथ १२ इंच की गहराई तक रखने से प्रभाव में कोई अन्तर नहीं होता। पोटाश उर्वरकों से भी प्रभाव में कोई अन्तर नहीं होता।

प्रति एकड़ ५० पौण्ड नाइट्रोजन से (अमोनियम सल्फेट के रूप में) १६१ रुपये ७ आने का और मूंगफली की खली से ६४ रुपये १५ आने का लाभ पाया गया है। केवल हमीरा इलाके में सुपर-फास्फेट के उपयोग से विशेष लाभ पाया गया है।

राजस्थान

राजस्थान के लिए प्रति एकड़ १०० से २०० पौण्ड नाइट्रोजन की (कुछ तो घूरे या कम्पोस्ट खाद की और कुछ ऊपर से अमोनियम सल्फेट की), ६० पौण्ड फास्फरिक अम्ल की (सुपरफास्फेट के रूप में) सिफारिश की गयी है।

बंबई

बंबई में तीन किस्म की ईख की फसलें उगायी जाती हैं, एक मौसिमी (seasonal), दूसरी पूर्व-मौसिमी और तीसरी अदसाली (adsali)। पहली के लिए ३५० पौण्ड नाइट्रोजन और १०० पौण्ड फास्फ़रिक अम्ल, दूसरी के लिए ३७५ पौण्ड नाइट्रोजन और १०० पौण्ड फास्फरिक अम्ल और तीसरी के लिए ४५० पौण्ड नाइट्रोजन और १०० पौण्ड फास्फरिक अम्ल की सिफारिश की गयी है। कब-कब नाइट्रोजनीय उर्वरक डालना चाहिए वह फसल की किस्म पर निर्भर करता है।

खाद डालने का समय	मौसिमी		पूर्व-मौसिमी		अदसाली	
	अमोनियम सल्फेट	खली	अमोनियम सल्फेट	खली	अमोनियम सल्फेट	खली
बोने के समय	३०	—	३७·५	—	४५	—
छः सप्ताह के बाद	२०	१००	—	—	—	—
आठ सप्ताह के बाद	—	—	२५	१२५	३०	१५०
बारह सप्ताह के बाद	—	—	३७·५	—	—	—
सोलह सप्ताह के बाद	३०	—	—	—	४५	—
मिट्टी उटकेरने के समय	२०	१००	२५	१२५	३०	१५०
जोड़	१००	२००	१२५	२५०	१५०	३००

प्रति एकड़ ७५, १५० और ३०० नाइट्रोजन मात्राओं की सापेक्ष दक्षता क्रमशः ०·८, १·० और १·५ है। जिस मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की कमी हो उसमें अमोनियम सल्फेट और खली का अनुपात, जैसा ऊपर दिया है ठीक वैसा ही रहना चाहिए। फास्फेट उर्वरक को गहरी मिट्टी में हराई में छः इंच नीचे देने से सबसे अधिक लाभ होता है। छिछली मिट्टी में ३ इंच नीचे देने से सबसे अच्छा परिणाम प्राप्त होता है। हरी खाद को बोने के समय फास्फेट देने से विशेष लाभ नहीं पाया गया। कार्बनिक

खाद, कम्पोस्ट या घरेलू खाद या गोबर की खाद प्रति एकड़ ४०,००० पौण्ड देने की राज्य के कृषिविभाग ने सिफारिश की है।

मद्रास और आन्ध्र

यहाँ नाइट्रोजन के उपयोग से फसलें अच्छी होती पायी गयी हैं। उर्वरकों की कितनी मात्रा विभिन्न स्थानों में प्रयुक्त होनी चाहिए, यह निम्नलिखित सारणी से प्रकट होता है—

आन्ध्र

	प्रति एकड़ नाइट्रोजन पौण्ड में
श्रीकाकुलम और विशाखपट्टनम जिले	१००
गोदावरी और कृष्णा जिले	१५०
चित्तूर और अनन्तपुर जिले	२००

ईख के अँखुओं को ५० पौण्ड नाइट्रोजन और दिया जाता है।

मद्रास

दक्षिण आरकोट और मदुराई जिले	२५०
तिरुचिनापल्ली और सलेम जिले	२००
कोयम्बटोर और दक्षिण कनारा जिले	१५०

इन उर्वरकों के उपयोग से ईख की पैदावार में आन्ध्र में १ से ६ टन और मद्रास में १·५ से ५·५ टन की वृद्धि पायी गयी है।

उर्वरक को छः इंच की गहराई में ईख के गुच्छों के निकट रखकर सिंचाई कर देनी चाहिए। ईख या रस के गुणों पर फास्फरीय और पोटाश उर्वरकों का कोई प्रभाव नहीं होता। बोने से पहले गोबर की खाद (प्रति एकड़ २० गाड़ी खाद) की सिफारिश की गयी है। गोबर की खाद के स्थान में प्रति एकड़ ३००० भेड़ों को रखा जा सकता है। नगर के कचरे या फसलों के अवशिष्ट अंश से बने कम्पोस्ट का भी व्यवहार हो सकता है। सनई या ढैंचा की हरी खाद भी दी जा सकती है।

मैसूर

नाइट्रोजन उर्वरक से पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है। हलकी मिट्टी में प्रति एकड़ ४५० पौण्ड की और भारी मिट्टी में २५० पौण्ड की सिफारिश की गयी है। अमोनियम सल्फेट और खली दोनों के उपयोग की सिफारिश की गयी है। अमोनियम

सल्फेट को दो या तीन बार करके ऊपर से डालने की सिफारिश की गयी है। पहली बार बोने के समय हराई में डालना चाहिए और पीछे खली के साथ ऊपर से।

हरी खाद और कम्पोस्ट प्रति एकड़ ५ से १० गाड़ी अन्तिम जोताई के पहले डालना अच्छा बतलाया गया है। यदि गोबर की खाद मिल सके तो दो बार करके, एक अन्तिम जोताई के समय और एक अन्तिम गोड़ाई (earthing) के समय डालना चाहिए। संतुलित पोषण के लिए फास्फरिक अम्ल का २० पौण्ड अत्यावश्यक समझा जाता है। हरी खाद के साथ देने अथवा ३ से ६ इंच की गहराई पर देने से सबसे अच्छा परिणाम प्राप्त होता है। साधारणतया पोटाश उर्वरक का कोई प्रभाव नहीं पड़ता पर विशेष क्षेत्रों में इसका प्रभाव देखा गया है।

हैदराबाद

खेत तैयार करने के समय ५ टन की गोबर की खाद और बोने के समय हराई में अमोनियम सल्फेट और सुपर-फास्फेट का उपयोग बोने के दो मास बाद फिर अमोनियम सल्फेट और उसके तीन या चार मास बाद तीसरी और अन्तिम बार अमोनियम सल्फेट एवं खली की सिफारिश की गयी है।

समस्त नाइट्रोजन का खली और अमोनियम सल्फेट के बीच २ : १ अनुपात रहना चाहिए। यदि बारह-मास वाली फसल है तो नाइट्रोजन प्रति एकड़ २२५ पौण्ड और यदि अठारह-मास वाली फसल है तो ३०० से ३५० पौण्ड नाइट्रोजन की सिफारिश की गयी है। पहली बार खाद डालने के समय प्रायः ५० पौण्ड फास्फरिक अम्ल भी डालना चाहिए। बारह-मास वाली फसल में सनई हरी खाद की भी सिफारिश की गयी है।

ट्रावनकोर-कोचीन

ट्रावनकोर-कोचीन के लिए प्रति एकड़ २०० पौण्ड नाइट्रोजन, दो बार करके, एक बोने के समय और एक गोड़ाई के समय देने की सिफारिश की गयी है। नाइट्रोजन अकार्बनिक और कार्बनिक रूप में २ : १ अनुपात में रहना चाहिए।

फास्फेट और रस

ऐसा समझा जाता है कि फास्फेट के कारण ईख उत्कृष्ट होती है। बंबई और बिहार के लिए यह बिल्कुल ठीक प्रमाणित हुआ है। बंबई में फास्फेट के अभाव में

ईख की पैदावार में केवल कमी ही नहीं होती वरन् रस भी निकृष्ट कोटि का होता है। फास्फरीय उर्वरकों से फसलें जल्द पकती हैं और पक जाने पर रस का ह्रास भी जल्दी नहीं होता। अन्य स्थानों में फास्फेट से कोई अन्तर नहीं पाया गया है।

बहुत अधिक मात्रा में उर्वरकों के उपयोग से ईख में रोग और कीड़े लग जाने की सम्भावना अधिक हो जाती है। इससे उर्वरकों का उपयोग बहुत अधिक मात्रा में करना ठीक नहीं है।

*धान की खेती

संसार की आबादी के आधे व्यक्तियों का प्रमुख आहार चावल है। समस्त संसार में लगभग २३७० लाख एकड़ भूमि में धान की खेती होती है। इसमें औसतन प्रति वर्ष ११०० लाख टन चावल पैदा होता है। धान की खेती प्रधानतया एशिया में होती है। समस्त उत्पादन का ९५ प्रतिशत धान दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में—पाकिस्तान से जापान के बीच के देशों में—पैदा होता और खपता है।

भारत में जो फसलें उपजती हैं उनमें धान का स्थान सबसे अधिक महत्त्व का है। संसार के धान के उत्पादन का तिहाई अंश से अधिक भारत में पैदा होता है। भारत से अधिक धान केवल चीन में पैदा होता है। इसमें चीन का प्रथम और भारत का दूसरा स्थान है।

भारत में ७६० लाख एकड़ भूमि में धान की बोआई होती है। समस्त संसार के खेतों की धान-बोआई का लगभग ३० प्रतिशत भारत में, लगभग २४० लाख टन धान, पैदा होता है। भारत के प्रायः सब राज्यों में धान पैदा होता है।

भारत की बढ़ती आबादी के लिए भरपेट भोजन मिलने का घनिष्ठ सम्बन्ध धान की पैदावार से है। भारत में प्रति वर्ष प्रायः ४५ लाख की गति से आबादी बढ़ रही है। यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को पोषण के लिए प्रति दिन केवल १७०० कलरी प्राप्त होती है, जब कि इंग्लैंड में प्रत्येक व्यक्ति को ३००० कलरी प्राप्त होती है। पोषण की इसी मात्रा की प्राप्ति के लिए अगले दस वर्षों में और ३२० लाख एकड़ भूमि में फसल उगायी जानी चाहिए, अथवा एक-एक वर्ष के अन्तर पर पैदावार की मात्रा १० प्रतिशत तक बढ़ानी चाहिए।

***इण्डियन एग्रिकल्चरल रिसर्च इंस्टिट्यूट, नई दिल्ली के एन० मित्र के लेख के आधार पर।**

भारत में धान की बोआई बहुत काल से होती आ रही है, पर प्रति एकड़ पैदावार अन्य देशों से बहुत कम होती है।

प्रति एकड़ धान का औसत उत्पादन

जापान	२३५२ पौण्ड
इटली	२४४२ ,,
अमेरिका	१६५७ ,,
चीन	१५३४ ,,
पाकिस्तान	८१७ ,,
भारत	७३८ ,,

पहली पंचवर्षीय योजना में समस्त खाद्यान्नों का उत्पादन ६६० लाख टन था और इसे बढ़ाकर दूसरी पंचवर्षीय योजना में ७६० लाख टन करने का प्रयत्न हो रहा है। उपज बढ़ाने के लिए (१) नयी भूमि जोत में आनी चाहिए, कम से कम २००-२५० लाख एकड़ नयी भूमि जोत में आनी चाहिए। (२) धान के खेतों की सिंचाई में वृद्धि होनी चाहिए। अभी केवल २५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई का प्रबन्ध है। (३) धान का बीज उत्कृष्ट कोटि का होना चाहिए। केवल उच्च कोटि के बीज के उपयोग से उपज १० प्रतिशत बढ़ायी जा सकती है। (४) खाद और उर्वरक के ठीक-ठीक उपयोग से ३० से १०० प्रतिशत उपज बढ़ायी जा सकती है। (५) धान के रोगों और कीड़ों के नियंत्रण से प्रायः १० प्रतिशत उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। (६) फसलों के हेर-फेर, घास-पातों के नियंत्रण आदि से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

यह निर्विवाद है कि भारत की मिट्टी में पोषकतत्त्वों की कमी है। आवश्यक खाद और उर्वरक के न देने से मिट्टी की उर्वरता घट गयी है। भारत के विभिन्न सैकड़ों क्षेत्रों में जो प्रयोग हुए हैं उनसे स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि नाइट्रोजन वाली खादों के देने से पैदावार बढ़ जाती है, यद्यपि पैदावार की वृद्धि बहुत कुछ मिट्टी की प्रकृति, जलवायु, खाद और उर्वरक डालने के ढंग और समय पर निर्भर करती है।

गोबर और राख की खाद अच्छी है पर इसका पर्याप्त मात्रा में मिलना सरल नहीं है। इसमें नाइट्रोजन अपेक्षया कम रहता है। नाइट्रोजनीय उर्वरक इनसे अच्छे हैं पर इनके निर्माण में खर्च अधिक पड़ता है, अतः ये कुछ कीमती पड़ते हैं। इनके रखने में भी विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है। यदि ये उर्वरक सस्ते मिलें तो इनकी खपत बहुत बढ़ सकती है। कम कीमत में मिलने के लिए ही भारत में उर्वरक के कारखाने खुले हैं और अधिक खुल रहे हैं।

धान के लिए अमोनियम उर्वरक सोडियम नाइट्रेट से श्रेष्ठतर है। धान के पौधे अमोनिया को जल्द ग्रहण कर लेते हैं। उनके लिए सोडियम नाइट्रेट अच्छा नहीं है। पोटाश नाइट्रेट इस कारण अच्छा है कि इससे नाइट्रोजन के साथ-साथ पोटाश भी प्राप्त होता है। धान के पयाल और छिलके में पोटाश अधिक रहता है। बिहार के सुबौर, उत्तर प्रदेश के नगीना, उड़ीसा के कटक, पश्चिम बंगाल के चिनसुरा, मैसूर के नगेन-हाली और इर्विन कैनाल फार्म, मद्रास के कोयम्बटोर, पटम्बी आदि में जो प्रयोग हुए हैं उनसे अमोनियम लवणों की उत्कृष्टता स्पष्ट रूप में सिद्ध होती है।

सन् १९५२ में सेठी, रमैया और अब्रहम ने जो प्रयोग किये हैं उनसे सिद्ध होता है कि यदि अमोनियम सल्फेट की दक्षता १०० मान लें तो अमोनियम क्लोराइड की दक्षता ९४ और सोडियम नाइट्रेट की दक्षता ३४ होती है। यदि प्रति एकड़ ४० पौण्ड नाइट्रोजन देना है तो २०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट डालना चाहिए। १५०-२०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट के डालने से धान की पैदावार में प्रति एकड़ ४००-५०० पौण्ड की वृद्धि पार्थसारथि (१९५४) ने पायी है। वास्तविक वृद्धि मिट्टी की प्रकृति, बीज की किस्म, जल-वायु और खाद देने के ढंग और समय पर निर्भर करती है। सर जान रसेल का मत है कि कम्पोस्ट या घूरे की खाद के साथ-साथ यदि ८० पौण्ड अमोनियम सल्फेट इस्तेमाल हो तब धान की पैदावार प्रायः २०० पौण्ड बढ़ जाती है। फूड बुलेटिन (१९४८) में भारत की नाइट्रोजनीय खाद की खपत २० लाख कूती गयी है। यह ८७ लाख टन अमोनियम सल्फेट के बराबर है। जोत की जमीन ६०० लाख एकड़ ऐसी है जहाँ सिंचाई की सुविधा है। यदि प्रति एकड़ १६ पौण्ड नाइट्रोजन डाला जाय तो २० लाख टन अमोनियम सल्फेट की आवश्यकता पड़ेगी।

भारत में ७५० लाख एकड़ भूमि में धान की खेती होती है। प्रति एकड़ १०० पौण्ड उर्वरक डाला जाय तो ३० लाख टन से अधिक अमोनियम सल्फेट की आवश्यकता पड़ेगी।

धान*

मध्य प्रदेश के रायपुर फार्म में जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि प्रति एकड़ ६,००० पौण्ड गोबर की खाद अथवा ८,००० पौण्ड सनई डालने से धान की उपज अच्छी

*'इण्डियन फार्मिंग' में मध्य प्रदेश के 'राइस रिसर्च आफिसर' बी० बी० दवे के निबन्ध "What Fertilisers for Rice" के आधार पर।

होती है। प्रति एकड़ दो हंडरवेट हड्डी का चूरा डालने से फसल और भी अच्छी होती है। हलकी मिट्टी में हड्डी के चूरे के स्थान में प्रति एकड़ एक हंडरवेट सुपर-फास्फेट अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। यदि नाइट्रोजनीय उर्वरकों के साथ फास्फरिक अम्ल न रहे तो नाइट्रोजनीय उर्वरक का भी प्रभाव विशेष नहीं होता।

रायपुर फार्म में गत पाँच वर्षों में जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि हलकी बलुआर दोमट मिट्टी और भारी मटियार दोमट मिट्टी, दोनों में, नाइट्रोजनीय उर्वरक के साथ-साथ फास्फोरीय उर्वरक १ : १ अनुपात में प्रयुक्त होने से परिणाम अधिक प्रभावकारी होता है। केवल २० पौण्ड अमोनियम सल्फेट नाइट्रोजन अथवा २० पौण्ड फास्फरिक अम्ल के उपयोग से पैदावार उतनी नहीं होती, जितनी २० पौण्ड अमोनियम सल्फेट नाइट्रोजन और २० पौण्ड सुपर-फास्फेट फास्फरिक अम्ल के उपयोग से होती है। केवल २० पौण्ड फास्फरिक अम्ल के स्थान में केवल २० पौण्ड नाइट्रोजनीय उर्वरक से पैदावार अच्छी होती है।

जब कोई उर्वरक नहीं डाला गया था तब खेत से प्रति एकड़ ९८८ पौण्ड धान प्राप्त हुआ था। केवल २० पौण्ड नाइट्रोजन (अमोनियम सल्फेट १०० पौण्ड) डालने से धान १५०१ पौण्ड हुआ अर्थात् ५२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। जब खेत में १० पौण्ड नाइट्रोजन (५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट) और १० पौण्ड फास्फरिक अम्ल (५० पौण्ड सुपर-फास्फेट) डाला गया, तब पैदावार में १५९२ पौण्ड, ६१ प्रतिशत की वृद्धि हो गयी। जब २० पौण्ड नाइट्रोजन (१०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट) और २० पौण्ड फास्फरिक अम्ल (१०० पौण्ड सुपर-फास्फेट) डाला गया तब पैदावार में २,१२२ पौण्ड, ११४ प्रतिशत की वृद्धि हो गयी। किसानों के खेतों में भी ऐसे ही परिणाम प्राप्त हुए हैं।

बलुआर हलकी मिट्टी में फास्फरिक अम्ल की कमी रहती है। ऐसी मिट्टी में प्रति एकड़ २० पौण्ड फास्फरिक अम्ल (१०० पौण्ड सुपर-फास्फेट) डालने से पैदावार ८७९ पौण्ड से १३२६ पौण्ड (५१ प्रतिशत की वृद्धि) हो गयी। ऐसी मिट्टी में केवल नाइट्रोजन, प्रति एकड़ ४० पौण्ड, से कोई लाभ नहीं होता। पर दोनों के साथ-साथ व्यवहार से पैदावार बढ़ जाती है। दोनों उर्वरकों का प्रभावशाली अनुपात १ : १ है। भारी मटियार दोमट किस्म की मिट्टी में केवल गोबर की खाद के स्थान में कार्बनिक और अकार्बनिक उर्वरकों का मिश्रण अच्छा होता है। केवल गोबर की खाद (२० पौण्ड नाइट्रोजन) से जहाँ पैदावार १०१७ पौण्ड हुई वहाँ आधे गोबर (१० पौण्ड नाइट्रोजन) और आधे अमोनियम सल्फेट (१० पौण्ड नाइट्रोजन) से पैदावार १,२१५

पौण्ड हुई थी। जहाँ केवल २० पौण्ड नाइट्रोजन (अमोनियम सल्फेट) का उपयोग हुआ था वहाँ पैदावार १,३२३ पौण्ड थी।

मध्य प्रदेश के धान अनुसन्धान आफिसर का मत है—

"धान के खेतों में प्रति एकड़ १०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट और १०० पौण्ड सुपर-फास्फेट इस्तेमाल करना चाहिए। इनसे प्रति एकड़ २० पौण्ड नाइट्रोजन और २० पौण्ड फास्फरिक अम्ल प्राप्त होते हैं। खेत के जोतने के समय तल से २ से ३ इंच की गहराई पर हलके बाँस की नली लगाकर ड्रिल से डालना चाहिए। यदि सुपर-फास्फेट न मिल सके तो भारी मिट्टी में केवल १०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट डाल सकते हैं, पर बहुत हल्की या बलुआर मिट्टी में इससे कोई लाभ नहीं होता।

कटक की धान-अनुसन्धान संस्था में जो खोजें हुई हैं उनसे पता लगता है कि भारत की मिट्टी धान के लिए बड़ी उपयुक्त है। धान के लिए मिट्टी में पर्याप्त फास्फेट और पोटाश रहते हैं, पर जितने नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है उतना नाइट्रोजन नहीं रहता। प्रारम्भ में धान को अधिक नाइट्रोजन की जरूरत रहती है। अमोनियम सल्फेट इसके लिए सबसे अच्छा नाइट्रोजनीय उर्वरक है। फास्फेट के डालने से भी लाभ होता है। प्रारम्भ में पोटाश का रहना महत्त्वपूर्ण है। नाइट्रोजन का अवशोषण अन्त में ही सबसे अधिक होता है।

खली और हरी खाद से भी पैदावार बहुत बढ़ी हुई पायी गयी है। रोपनी के एक या दो सप्ताह पहले हरी खाद दी जाय तो पैदावार सबसे अधिक होती है। कुछ लोग रोपनी के समय भी हरी खाद देने की सिफारिश करते हैं।

ए० के० पाल ने औस धान पर अनेक प्रयोग किये हैं। उनका मत है कि प्रति एकड़ ४० पौण्ड नाइट्रोजन और ४० पौण्ड फास्फरिक अम्ल से पैदावार सबसे अच्छी होती है, पर ३० पौण्ड नाइट्रोजन और ३० पौण्ड फास्फरिक अम्ल के उपयोग की उन्होंने आर्थिक दृष्टि से सिफारिश की है।

बिहार में धान के लिए किस उर्वरक का कितनी मात्रा में उपयोग करना चाहिए, इसके प्रयोग बिहार के हर जिले की मिट्टी पर किये गये हैं। सामान्य परिणाम यह है कि अमोनियम फास्फेट अथवा अमोनियम फास्फेट और रेंड़ी की खली का मिश्रण सबसे अच्छा है। धान के लिए प्रति एकड़ २ से २॥ मन अमोनियम फास्फेट अथवा १ मन अमोनियम फास्फेट और ३॥ मन रेंड़ी की खली का मिश्रण सर्वोत्कृष्ट है।

अगहनी धान के लिए पटना में प्रति एकड़ १ मन ७ सेर अमोनियम फास्फेट और ३० मन ३० सेर रेंड़ी की खली का मिश्रण सबसे अच्छी खाद है। बिहार शरीफ, नवादा, शाहाबाद और दरभंगा में प्रति एकड़ २ मन २० सेर अमोनियम सल्फेट, बाढ

और गया में २ मन १४ सेर अमोनियम फास्फेट, सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, मधुबनी, भागलपुर, मानभूम, धनबाद में १ मन ७ सेर अमोनियम फास्फेट और ३ मन ३० सेर रेंड़ी की खली प्रति एकड़, दुमका, हजारीबाग, और साहबगंज में २ मन २० सेर अमोनियम फास्फेट, देवघर और रांची में १ मन ३५ सेर अमोनियम सल्फेट, पूर्णिया और सिंहभूम में २ मन २० सेर अमोनियम सल्फेट सबसे अच्छा समझा जाता है। पलामू के लिए १ मन ३५ सेर अमोनियम सल्फेट और २ मन २५ सेर सुपर-फास्फेट अच्छा है।

मीरचन्दानी का मत है कि प्रति एकड़ ५० पौण्ड नाइट्रोजन सर्वश्रेष्ठ है। नाइ-ट्रोजन कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों रूपों में रहना चाहिए। रोपनी के बाद एक या दो बार करके खाद डालना चाहिए। हरी खाद, सनई, ढैंचा आदि धान के लिए अच्छी है। पोटेसियम या फास्फरीय उर्वरकों से विशेष लाभ नहीं होता। नाइट्रोजनीय खादों से ही बहुत लाभ होता है।

बी० एल० चौधरी* का मत है कि धान के लिए निम्नलिखित खाद सर्वश्रेष्ठ है।

१. गोबर की खाद या कम्पोस्ट, १० गाड़ी

२. हरी (सनई) खाद, सनई के उगने के एक मास बाद प्राय: ३००० पौण्ड

३. अमोनियम सल्फेट १०० पौण्ड और सुपर-फास्फेट १०० पौण्ड को मिलाकर अन्तिम जोताई के समय बुरकना।

मूंगफली†

भारत में मूंगफली की खेती बहुत होती है। केवल पंजाब में एक लाख एकड़ भूमि में मूंगफली बोयी जाती है। धीरे-धीरे वहाँ का उत्पादन बढ़ रहा है।

मूंगफली की खेती में उर्वरकों के उपयोग पर अनेक प्रयोग पूना और पंजाब के समराला मूंगफली प्रयोगशालाओं में हुए हैं। उनसे पता लगता है कि आर्थिक दृष्टि से प्रति एकड़ २५ पौण्ड नाइट्रोजन का उपयोग लाभदायक है। इससे उत्पादन में २१.१ प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है। नाइट्रोजन के लिए अमोनियम सल्फेट और अमोनियम फास्फेट दोनों समान रूप से लाभकारी सिद्ध हुए हैं। अमोनियम सल्फेट का नाइट्रोजन

*'इण्डियन फार्मिंग' के निबन्ध "Living Well on a Few Acres." में

†यह अंश नेगी और दलाल के इण्डियन फार्मिंग के निबन्ध "Farmers can get more Groundnut per Acre" पर आधारित है।

जल्दी से मूँगफली को उपलब्ध होता है। पंजाब में अमोनियम सल्फेट के व्यवहार से जो खर्च बढ़ जाता है उसकी पूर्ति ही नहीं होती, वरन् प्रति एकड़ ६० से ७० रुपये का लाभ भी होता है।

पूना में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि गोबर की खाद प्रति एकड़ १० गाड़ी देने से उत्पादन में ३६ प्रतिशत की वृद्धि होती है, १२८ पौण्ड अमोनियम सल्फेट, ६४० पौण्ड सुपर-फास्फेट और ३२० पौण्ड पोटाश और १००० पौण्ड चूना से ४३ प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है।

मूँगफली छीमी जैसी फसल है। इसमें वायु से नाइट्रोजन ग्रहण करने की क्षमता है। अत: अमोनियम सल्फेट से उतना लाभ नहीं होता जितना फास्फेट और पोटाश उर्वरकों से होता है। यदि मिट्टी बहुत अम्लीय हो तो १०००-२००० पौण्ड चूना डाला जा सकता है।

मूँगफली के लिए ५०-१०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट, ३००-४०० पौण्ड सुपर-फास्फेट और १००-१५० पौण्ड पोटाश लवण की साधारणतया सिफारिश की जाती है। अमोनियम सल्फेट से सोडियम नाइट्रेट इस कारण अच्छा होता है कि सोडियम नाइट्रेट अम्लीय नहीं होता। अम्लता मूँगफली के लिए अच्छी नहीं समझी जाती।

मैसूर राज्य में बोने के तीन सप्ताह पहले ४ गाड़ी गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट देने और ठीक बोने के पहले प्रति एकड़ २० पौण्ड अमोनियम सल्फेट, ५६ पौण्ड सुपर-फास्फेट और २० पौण्ड म्युरियेट आफ पोटाश की सिफारिश की गयी है। २०० पौण्ड चूना भी गोबर खाद देने के एक सप्ताह पहले देने से अच्छा होता है।

कपास*

कपास द्वारा मिट्टी से पोषक तत्त्व अधिक नहीं निकलता। इस कारण हल्की मिट्टी में जहाँ अन्य फसलें नहीं उगतीं वहाँ कपास अच्छी उपजती है। जिस मिट्टी में पोटाश और फास्फरिक अम्ल विद्यमान है उसमें केवल नाइट्रोजनीय खाद से भी काम चल जाता है।

*१. जे० जे० चन्दनानी के 'Fertilise Cotton for Better Yields' के आधार पर।

भारत में कपास की पैदावार अच्छी नहीं होती। जहाँ मिस्र में प्रति एकड़ ५१६ पौण्ड, अमेरिका के संयुक्त राज्य में ३१४ पौण्ड, और सूदान में २९८ पौण्ड कपास उपजती है वहाँ भारत में केवल ९२ पौण्ड कपास होती है।

भारत में कपास के चार क्षेत्र हैं। एक दक्खिनी क्षेत्र, एक उत्तरी क्षेत्र, एक पच्छिमी क्षेत्र और एक मध्य क्षेत्र। उत्तरी क्षेत्र में पंजाब, दिल्ली, राजस्थान और उत्तर प्रदेश हैं। मध्य क्षेत्र में मध्य भारत और मध्य प्रदेश हैं। पच्छिमी क्षेत्र में बंबई और सौराष्ट्र हैं। दक्खिनी क्षेत्र में मद्रास, मैसूर और हैदराबाद हैं।

उत्तरी क्षेत्र के पंजाब में नाइट्रोजनीय खाद से कपास की उपज अच्छी होती है। ४०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट अथवा ५०० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट से कपास की उपज ७·५ मन बढ़ जाती है। गत चार-पाँच वर्षों से जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि अमोनियम सल्फेट के २०० से २५० पौण्ड के उपयोग से बीज कपास की वृद्धि ३.४ मन और २५० से ३०० पौण्ड चीली शोरे से वृद्धि ५ मन की होती है। फूल लगने के समय उर्वरक देने से महत्तम प्रभाव उत्पन्न होता है।

उत्तर प्रदेश में अमोनियम सल्फेट के २२५ पौण्ड के उपयोग से देशी कपास में ३ मन की वृद्धि और पंजाब-अमेरिकी कपास (F-216) में १५० पौण्ड के उपयोग से ५ मन की वृद्धि हुई है।

दिल्ली में १५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट से २ मन की और २०० पौण्ड चीली शोरे से ३ मन की वृद्धि पायी गयी है।

अजमेर में प्रति एकड़ ३० पौण्ड नाइट्रोजन के अमोनियम सल्फेट अथवा चीली शोरे के रूप में वृद्धि क्रमशः ५·४ और ३·३ की हुई है।

साधारणतया कहा जा सकता है कि उत्तरीय क्षेत्रों में अमोनियम सल्फेट के लगभग २०० पौण्ड अथवा चीली शोरे के २५० पौण्ड के व्यवहार से ३ से ४ मन की वृद्धि होती है। अमोनियम सल्फेट से चीली शोरा कुछ अच्छा है।

मध्य क्षेत्र के मध्य भारत में अमोनियम सल्फेट के १२५ पौण्ड के व्यवहार से १·१ मन की और २०० पौण्ड के व्यवहार से २·३ मन की वृद्धि होती है। मध्य प्रदेश में अमोनियम सल्फेट के १०० पौण्ड के व्यवहार से १·२५ मन की और १५० पौण्ड के व्यवहार से २·५ मन की वृद्धि पायी गयी है। चिली शोरा और अमोनियम सल्फेट के प्रभाव एक-से पाये गये हैं। सारांश यह है कि मध्य क्षेत्र में १०० से १५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट के व्यवहार से १·२५ से २·५ मन की वृद्धि होती है।

पच्छिमी क्षेत्र में सूरत और भरुच में अधिकांश प्रयोग हुए हैं। उनसे पता लगता है कि मई मास में ५ से १० गाड़ी गोबर की खाद देनी चाहिए। यदि मिट्टी उपजाऊ

नहीं है तो प्रति एकड़ १०० से १५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट के उपयोग से बीज कपास की पैदावार २५ प्रतिशत बढ़ जाती है बशर्ते वर्षा २५ इंच से ऊपर हो और नियमित रूप से पानी बरसता रहे। उर्वरक दो बार में, एक बार बोने से पहले और दूसरी बार बोने के दो मास बाद, देना चाहिए।

प्रति एकड़ ५०० पौण्ड सुपर-फास्फेट और १०० से १५० पौण्ड पोटाश लवण भी दिया जा सकता है।

दक्खिनी क्षेत्र में मद्रास में जहाँ वर्षा ३० इंच से अधिक होती है २०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट से आर्थिक दृष्टि से लाभ होता है। कुछ जिलों में जहाँ की मिट्टी काली है २२४ पौण्ड अमोनियम सल्फेट, ११२ पौण्ड सुपरफास्फेट और २५० पौण्ड मूंगफली की खली से २० से ४० प्रतिशत बीज कपास की वृद्धि होती है। सिरगप्पा इलाके में प्रति एकड़ ४०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट के व्यवहार से पैदावार में अच्छी वृद्धि पायी गयी है।

मंगलोर-जैसे स्थानों में जहाँ वर्षा अधिक होती है प्रारम्भिक खाद देने के बाद २०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट या २५० पौण्ड चीली शोरे से ६० से ७० प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

हैदराबाद में प्रति एकड़ २० से ४० पौण्ड नाइट्रोजन अमोनियम सल्फेट, चीली शोरा और अमोनियम क्लोराइड के रूप में देकर प्रयोग हुए हैं। परमानी इलाके में अमोनियम क्लोराइड और चीली शोरा से प्रायः ३० प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है। बदनपुर क्षेत्र में तीनों से ५० से ६० प्रतिशत की वृद्ध हुई है।

इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उर्वरकों के उपयोग से उत्पादन में निश्चित रूप से वृद्धि होती है।

आलू[१]

आलू को पोषक तत्त्वों की बहुत बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है। इसकी पैदावार भी अधिक होती है। यदि मिट्टी में पूरी खाद न दी जाय तो पैदावार अच्छी नहीं होती और बीज और खेत की जोताई आदि का खर्च बेकार होता है।

भारत में प्रायः साढ़े छः लाख एकड़ में आलू की खेती होती है। इनमें पाँच लाख

१. इसमें दी हुई सूचनाएं इण्डियन फार्मिंग में प्रकाशित डा० रामानुजम और मुखतार सिंघ के निबन्ध ("Fertilisers that the Potatoes Need" और ए० पी० गुप्ता, होर्टिकल्चरिस्ट, उत्तर प्रदेश के निबन्ध 'Potato Yields can go High Up' पर आधारित है।

एकड़ उत्तर भारत के मैदानों, उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम और पच्छिम बंगाल में होती है। शेष पहाड़ों पर। केवल उत्तर प्रदेश में दो लाख चालीस हजार एकड़ भूमि में आलू बोया जाता है। उत्तर भारत के मैदानों में आलू की सिंचाई होती है। पहाड़ों पर पानी के लिए वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। दक्खिन भारत के नीलगिरि पर मन्द जलवायु के कारण साल भर आलू उगाया जा सकता है।

भारत में जो आलू उपजाये जाते हैं, वे हैं देशी फुलवा, दार्जिलिंग लाल, गोला और विदेशी मजेस्टिक (नैनीताल), अपटुडेट (नम्बरी), लम्बरी, मिलिटरी स्पेशल, शिमला बीज। उत्तर भारत के मैदानों में शंकरज, शंकरज (Hyb) ४५, शंकरज २०८, शंकरज २०९ और शंकरज २२३६ से अच्छी फस्लें प्राप्त होती है।

आलू के लिए हल्की और दोमट (loamy) मिट्टी सबसे अच्छी समझी जाती है। यह मिट्टी भुरभुरी होती है। इस कारण आलू की गाँठें बिना किसी कठिनता के मिट्टी में फैल जाती हैं। भारी मिट्टी आलू के लिए अच्छी नहीं है क्योंकि ऐसी मिट्टी की जोताई अच्छी नहीं होती और सरलता से कीच हो जाती है। पर इस मिट्टी में भी आलू उपजाया जा सकता है।

आलू के लिए जल्द कार्य करनेवाला और देर से कार्य करनेवाला दोनों प्रकार के उर्वरकों की आवश्यकता पड़ती है। देर से कार्य करनेवाली खाद, कार्बनिक खाद, गोबर की खाद, घूरे की खाद और कम्पोस्ट है। ये पोषक तत्त्वों के प्रदान करने के साथ-साथ मिट्टी को भी सुधारते हैं। गोबर की खादों से भारी मिट्टी सरन्ध्र हो जाती और हल्की मिट्टी ऐसी बँध जाती है कि वह पानी को रोककर रख सके।

गोबर की खादों के साथ-साथ उर्वरकों का उपयोग भी आवश्यक है। खली भी सान्द्र कार्बनिक खाद है। खली के पोषक तत्त्व धीरे-धीरे मुक्त होते हैं, पर वे पौधों द्वारा जल्द ग्रहण कर लिये जाते हैं। खली में पर्याप्त नाइट्रोजन रहता है।

उर्वरक की किस्म और मात्रा मिट्टी की उर्वरता पर निर्भर करती है। कैसी फसल खेतों में बोयी गयी है और मिट्टी की बनावट, हल्की बलुआर या भारी मटियार, पर भी निर्भर करती है।

पटने में सेण्ट्रल पोटैटो रिसर्च इन्स्टिट्यूट में आलू के उपयुक्त उर्वरक पर गत छः सात वर्षों से अनुसन्धान हो रहे हैं। उनसे जो परिणाम प्राप्त हुए हैं वे निम्न. लिखित हैं—

गोबर और घूरे की खाद और कम्पोस्ट से पैदावार बढ़ जाती है। प्रति एकड़ ४०० मन के हिसाब से देने से औसत २३ मन की वृद्धि होती है। यदि मिट्टी उपजाऊ नहीं है तो प्रति एकड़ १० मन खली भी दी जा सकती है।

बीज बोने से ३ से ४ सप्ताह पहले प्रति एकड़ ३०० से ४०० मन घूरे की खाद डालनी चाहिए। खेत जोतने के समय इसे मिट्टी के साथ भलीभाँति मिला देना चाहिए।

यदि घूरे की खाद उपलब्ध न हो तो हरी खाद का उपयोग किया जा सकता है, विशेषतः हलकी बलुआर मिट्टी में। सनई को बरसात शुरू होते ही उगाकर अगस्त के मध्य में खेतों में जोत देना चाहिए, ताकि कार्बनिक पदार्थों को सड़ने-गलने का पूरा अवसर मिले। हलकी बलुआर मिट्टी में हरी खाद देकर जोतने से मिट्टी सुधर जाती है और उर्वरता बढ़ जाती है। बलुआर मिट्टी में सनई बड़ी जल्दी उपजती है और लगभग दो मास में प्रति एकड़ २५० से ३०० मन हरी खाद प्राप्त हो जाती है। इसकी जोताई बड़ी जल्द हो जाती है और प्रायः एक महीने में वह मिट्टी में मिल जाती है। आलू के खेतों में उड़द या मूँग बोकर खरीफ फसल अथवा अन्य चारा उपजाया जा सकता है।

१० मन खली के उपयोग से आलू की पैदावार में प्रति एकड़ २८ मन की वृद्धि होती है। जो खली खायी नहीं जाती उसका उपयोग खाद के लिए हो सकता है। खली जल्द विच्छेदित हो जाय इसके लिए आवश्यक है कि खली को चूरा कर एक सा बिखेर कर बीज बोने के एक या दो सप्ताह पूर्व जोत देना चाहिए।

नाइट्रोजनीय उर्वरक

आलू को नाइट्रोजनीय खाद की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। इससे वृद्धि अच्छी होती और पौधे का रंग गाढ़ा हरा होता है तथा पत्ते अच्छे फैले हुए होते हैं। पैदावार भी अच्छी होती है। ऊपर से प्रति एकड़ ३ मन अमोनियम सल्फेट उर्वरक के डालने से ४६ मन और ६ मन अमोनियम सल्फेट के डालने से ६३ मन पैदावार में वृद्धि होती है। उर्वरक का प्रभाव स्पष्ट पड़ता है और सब प्रकार की मिट्टियों में घूरे की खाद के साथ-साथ अथवा उसके अभाव में भी प्रभाव पड़ता है। पटने में अगेती बोने और हलकी सिंचाई करने से, ताकि मिट्टी आर्द्र रहे, उर्वरक का प्रभाव अच्छा पड़ता है।

आलू के लिए अमोनियम सल्फेट सरलता से उपलब्ध, सस्ता और अत्यधिक प्रभावकारी उर्वरक है। इसकी मात्रा खली के उपयोग पर निर्भर करती है। यदि प्रति एकड़ में खली ७ से १० मन हो तो अमोनियम सल्फेट ३ मन पर्याप्त है। यदि खली न हो तो ५ से ६ मन अमोनियम सल्फेट प्रयुक्त करना चाहिए।

आलू बोने के ठीक पहले हराई में प्रति एकड़ ४ मन तक अमोनियम सल्फेट डाला जा सकता है। यदि अधिक डालना हो तो आलू बोने के दो रोज पहले उर्वरक को छींट

कर मिट्टी में मिला देना अच्छा होता है। यदि खेतों में घास-पात बहुत उगते हों तो आधा या दो-तृतीयांश बोने के समय हराई में और शेष मिट्टी चढ़ाने के समय देना चाहिए।

अमोनियम सल्फेट के स्थान में सोडियम नाइट्रेट, अमोनियम नाइट्रेट, यूरिया अमोनियम क्लोराइड और नाइट्रो-लाइम का भी व्यवहार हो सकता है। पर इनमें कोई भी अमोनियम सल्फेट से उत्तम नहीं है। ये सब कम प्रभावशाली हैं और आर्द्र वायु में रखने से गीले हो जाते हैं।

फास्फेट उर्वरक

जहाँ कार्बनिक खाद लाभकारी है और नाइट्रोजनीय उर्वरक अत्यावश्यक है वहाँ फास्फेट उर्वरकों का उपयोग बहुधा आवश्यक हो जाता है। २९ प्रयोगों में २२ प्रयोगों में ६ मन प्रति एकड़ सुपर-फास्फेट डालने से पैदावार में १६ मन की वृद्धि देखी गयी है। जब मिट्टी में फास्फेट की कमी रहती है तब आलू की पत्तियां छोटी-छोटी होतीं और हरे रंग में चमक नहीं रहती। ऐसी फसल को यदि सुपर-फास्फेट दिया जाय तो पौधे हरे-भरे हो जाते और उनका रंग हल्का हरा हो जाता है। इसके लिए सुपर-फास्फेट को पंक्ति में मिट्टी में पौधों के निकट डालना चाहिए।

हल्की बलुआर मिट्टी में प्रति एकड़ ४ से.६ मन सुपर-फास्फेट देना चाहिए। लेटराइट मिट्टी में यदि फास्फेट की कमी हो तो इतनी ही मात्रा दी जा सकती है। अगेती आलू में इसे देना अच्छा होता है क्योंकि इससे फसल जल्द तैयार होती है। जब घूरे की खाद ३०० से ४०० मन प्रति एकड़ प्रयुक्त हुई है तब सुपरफास्फेट की मात्रा, केवल २ से ३ मन दी जा सकती है। सुपर-फास्फेट को बिखेरना नहीं चाहिए। हराई में बोने से पहले डालना चाहिए।

पोटाश उर्वरक

आलू को पोटाश उर्वरक सबसे बड़ी मात्रा में आवश्यक होता है। आलू की अच्छी पैदावार के लिए लगभग १२०-१६० पौण्ड नाइट्रोजन, २५ से ३० पौण्ड फास्फरिक अम्ल और २०० से २५० पौण्ड पोटाश की आवश्यकता पड़ती है। पर भारत में आलू के खेतों में कदाचित् ही पोटाश उर्वरक डाला जाता है।

३ मन प्रति एकड़ की दर से पोटाश सल्फेट डालने से लगभग ८ मन की वृद्धि हुई है। विशेष लाभ छोटा नागपुर की बलुआर और लेटेराइट मिट्टियों में देखा गया है। प्रति एकड़ २ मन की दर से ऐसी मिट्टियों में ऊपर से डाला जाता है। विदेशी

आलुओं में पोटाश उर्वरकों से विशेष लाभ देखा गया है। प्रति एकड़ ३ से ४ मन पोटेसियम सल्फेट बोने से पहले हराई में देने से पैदावार बढ़ी हुई पायी गयी है। दार्जिलिंग आलू की पैदावार पोटाश से बढ़ी हुई नहीं पायी गयी है।

दिल्ली के लिए सिफारिश है कि ८० : ८० : ४० का मिश्रण इस्तेमाल करना चाहिए।

पहाड़ियों पर

१९५४-५५ में जो प्रयोग पहाड़ी आलुओं पर हुए हैं उनसे पता लगता है कि प्रति एकड़ ४०० मन गोबर की खाद से ५५ मन की वृद्धि, १० मन खली से २१ मन की वृद्धि, ४ मन अमोनियम सल्फेट से ३१ मन की वृद्धि और ६ मन सुपर-फास्फेट देने से १७ मन की वृद्धि होती है। पोटाश उर्वरकों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चूंकि पहाड़ियों पर सिंचाई के लिए केवल वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है, इस कारण उर्वरकों का प्रभाव अनिश्चित रहता है। इससे अल्प मात्रा में ही खाद और उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। पहाड़ियों के लिए प्रति एकड़ २०० मन गोबर की खाद, ४ मन अमोनियम सल्फेट और ४ मन सुपर-फास्फेट की सिफारिश की जाती है।

दक्खिन भारत के नीलगिरि पर मूँगफली की खली ५५० पौण्ड, अमोनियम सल्फेट २०० पौड, हड्डी का चूरा ३५० पौण्ड और पोटेसियम सल्फेट २२४ पौण्ड जिसमें नाइट्रोजन ८५ पौण्ड, फास्फरिक अम्ल २१४ पौण्ड और पोटाश ११० पौण्ड है, की सिफारिश मद्रास के कृषि-विभाग ने की है।

दिल्ली में ए० आर० खां ने कुछ प्रयोग किये हैं। उनका मत है कि उर्वरकों से आलू की पैदावार अच्छी होती है। (Potatoes fare better with fertilisers). इण्डियन फार्मिग अक्तूबर, १९५६)। उनके प्रयोगों का निष्कर्ष यह है कि उर्वरक ८० : ८० : ४० (NPK) के देने से सबसे अच्छा परिणाम प्राप्त होता है।

शकरकन्द—शकरकन्द में वैसा ही उर्वरक देना चाहिए जैसा आलू में दिया जाता है। शकरकन्द को भी आलू की भांति ही अधिक पोषक तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है और उर्वरक से पैदावार भी बहुत बढ़ जाती है। उर्वरक से शकरकन्द के गुणों में भी बहुत कुछ अन्तर आ जाता है। उर्वरक में नाइट्रोजन उतनी मात्रा में नहीं चाहिए जितनी मात्रा में फास्फरिक अम्ल और पोटाश की आवश्यकता पड़ती है। साधारण रूप से कहा जा सकता है कि शकरकन्द के खेतों में प्रति एकड़ २००-४०० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट, ३००-५०० पौण्ड सुपर-फास्फेट अथवा २५०-३०० पौण्ड हड्डी का चूरा अथवा बेसिक स्लैग और २००-३०० पौण्ड पोटेसियम सल्फेट डालना चाहिए।

गेहूँ, जौ, चना आदि

गेहूँ के लिए खाद पर उत्तर प्रदेश में अनेक प्रयोग हुए हैं। जिस खेत में हरी खाद दी गयी है उसमें फिर और खाद देने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। अन्य खेतों में खाद डालनी चाहिए। प्रति एकड़ गेहूँ के खेत में ५० पौण्ड नाइट्रोजन की जरूरत पड़ती है। इसमें कम से कम आधा कम्पोस्ट, गोबर की खाद या खली के रूप में रहना चाहिए। शेष अमोनियम सल्फेट के रूप में देना चाहिए।

उत्तर प्रदेश के अनेक क्षेत्रों में फास्फेट और पोटाश से लाभ नहीं पाया गया है। तौ भी प्रति एकड़ ५० पौण्ड फास्फरिक अम्ल की सिफारिश की गयी है।

यदि फास्फेट उर्वरक देना है तो खेत जोतने के समय हराई में डालना सर्वोत्तम है। हड्डी का चूरा इस्तेमाल करना भी अच्छा है। बोने के कम से कम एक मास पहले डालना चाहिए। गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट भी एक मास पहले खेतों में देना चाहिए। यदि खली इस्तेमाल करना है तो उसे महीन पीसकर बोने के कुछ दिन पहले अकार्बनिक उर्वरकों के साथ मिलाकर डालना चाहिए।

प्रति एकड़ ५० पौण्ड से अधिक नाइट्रोजन नहीं डालना चाहिए। आवश्यकता से अधिक खाद से पौधे गिर जा सकते हैं, फसल तैयार होने में देरी लग सकती है और दाने भी कम लग सकते हैं।

बी० एल० चौधरी का मत है कि बिना सिंचाईवाले खेतों में प्रति एकड़ १० गाड़ी गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट जून के शुरू में डालना चाहिए। सिंचाईवाले खेतों में (१) १० गाड़ी गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट (२) हरी खाद (सनई) ५० मन और (३) सुपर-फास्फेट ५० पौण्ड देना चाहिए। बीज के साथ एक मन सुपर-फास्फेट मिलाकर बोना चाहिए।

जौ—जौ के लिए गेहूँ-सी उर्वरा भूमि की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि जौ को माल्ट बनाने के लिए उपयुक्त करना है तो ऐसे जौ में नाइट्रोजन अधिक नहीं रहना चाहिए। अतः जौ के लिए नाइट्रोजन खाद की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि खाद देना ही हो तो गेहूं के खेत-सा खाद इसमें भी दे सकते हैं।

जई—भारत में जई की खेती नहीं होती। कैसी खाद इसको चाहिए इसका कोई अन्वेषण भी नहीं हुआ है। पर साधारणतया ४-१२-४ का मिश्रित उर्वरक ३००-५०० पौण्ड प्रति एकड़ उपयुक्त हो सकता है।

मकई (मक्का)—बिहार में मकई की खेती बहुत अधिक होती है। प्रयोग भी बहुत हुए हैं। अमोनियम सल्फेट से सबसे अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ है। मकई

में अधिक पोषक तत्त्वों की आवश्यकता भी पड़ती है। फास्फेट से विशेष लाभ नहीं पाया गया है। लायलपुर में तो हड्डी के चूरे और पोटाश से उत्पादन घटा हुआ पाया गया है। पर-सोडियम नाइट्रेट, हड्डी का चूरा और पोटाश तीनों के उपयोग से उत्पादन में अढ़ाई गुना वृद्धि हुई थी जबकि उत्पादन की तुलना केवल सोडियम नाइट्रेट के उपयोग से की जाती है। गुजरात में जो प्रयोग हुए हैं उनसे गोबर की खाद से प्रति पौण्ड नाइट्रोजन से ९·७ पौण्ड की वृद्धि पायी गयी है। पूसा में प्रति एकड़ १०० मन गोबर की खाद से उतना उत्पादन नहीं हुआ जितना तोरिया खली के ४० पौण्ड नाइट्रोजन से हुआ था। पोटाश उर्वरक के व्यवहार से उत्पादन की वृद्धि के स्थान में कमी देखी गयी है।

बिहार में १ मन २० सेर से लेकर २ मन २० सेर अमोनियम सल्फेट मकई के लिए सर्वोत्तम खाद सिद्ध हुआ है। अमोनियम फास्फेट के १ मन ७ सेर के व्यवहार से भी अनेक स्थानों पर अच्छा परिणाम हुआ है। अमोनियम फास्फेट के अभाव में ३२ सेर अमोनियम सल्फेट और १ मन १० सेर सुपर-फास्फेट का व्यवहार किया जा सकता है।

मकई के लिए हल्की मिट्टी में २ मन २० सेर अमोनियम सल्फेट और ३ मन ५ सेर सुपर-फास्फेट और भारी मिट्टी में १ मन १० सेर अमोनियम सल्फेट और ४ मन २० सेर सुपर-फास्फेट देना चाहिए।

जुवार, बाजरा, मड़ुआ (रागी), चीना—नाइट्रोजनीय खादों से इनमें लाभ होता है। फास्फेट से कोई लाभ नहीं पाया गया है। नाइट्रोजन के लिए गोबर की खाद, विष्ठा, खली और अमोनियम सल्फेट का व्यवहार हो सकता है। निसिफौस से पैदावार कम होती पायी गयी है। मड़ुवा के लिए आमोनियम सल्फेट सर्वोत्तम खाद है।

अरहर, चना, मसूर, मूंग और खेसारी—दलहन फसलों में साधारणतया खाद या उर्वरक नहीं दिया जाता। पर प्रयोगों से जो कुछ हाल में हुए हैं, स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि इन फसलों में भी उर्वरक देनें से उत्पादन बहुत कुछ बढ़ जाता है। अरहर के खेतों में केवल ३ से ५ मन तक सुपर-फास्फेट से पैदावार ८ से १० मन तक बढ़ जाती है। साधारणतया चना, मसूर, मूंग और खेसारी के खेतों में भी खाद नहीं दी जाती। यदि खाद का उपयोग हो तो उत्पादन अवश्य बढ़ जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्रति एकड़ १·२ से २·५ मन अमोनियम सल्फेट, २ से ३ मन सुपर-फास्फेट या बेसिक स्लैग और आधा से सवा मन तक पोटाश सल्फेट या क्लोराइड की सिफारिश की जाती है। जिस मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की कमी हो उसमें हरी खाद अथवा गोबर की खाद लाभ के साथ डाली जा सकती है। अरहर में केवल ३ से ५ मन सुपर-फास्फेट या हड्डी का चूरा इस्तेमाल हो सकता है।

जूट को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है,पर साधारणतया जूट के खेतों में उर्वरक नहीं दिया जाता। ढाका में जूट अनुसन्धानशाला थी जिसमें जूट के सम्बन्ध में अनुसन्धान होता था। वहां जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता लगता है कि खाद देने से जूट की पैदावार बढ़ ही नहीं जाती, वरन् जूट के रेशे का गुण भी बहुत कुछ सुधर जाता है। पोटाश उर्वरक के व्यवहार से जूट में विशेष सुधार पाया गया है। किसी जूट में उर्वरकों के व्यवहार से २०० प्रतिशत की और किसी जूट में ३०० प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी है। गोबर की खाद देकर ३ ' ६ मन अमोनियम सल्फेट और १ ' २ मन म्युरियेट आफ पोटाश के व्यवहार से २०० प्रतिशत की और गोबर की खाद के बाद ५ ' ४ मन अमोनियम सल्फेट और १ ' २ मन म्युरियेट आफ पोटाश से ३०० प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी है।

खेत जोतने के समय गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट देने के बाद १००-२०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट, २००-३५० पौण्ड सुपर-फास्फेट अथवा बेसिक स्लैग और ५०-१०० पौण्ड म्युरियेट आफ पोटाश देना अच्छा है। यदि सम्भव हो तो हरी खाद भी दी जा सकती है।

तेहलन—हमें सरसों, अलसी, तिल और रेंड़ी से तेल प्राप्त होता है। इनमें कुछ तो, जैसे सरसों, अलसी और तिल, अन्य फसलों के साथ बोये जाते हैं। अल्प मात्रा में कहीं-कही इनकी स्वतंत्र रूप से भी खेती होती है। इनकी खेती में साधारणतया खादों का उपयोग नहीं होता। इस पर खाद के सम्बन्ध में अन्वेषण भी बहुत कम हुए हैं। जो थोड़े से प्रयोग किये गये हैं उनसे पता लगता है कि खाद देने से इनका उत्पादन बढ़ जाता है। गोबर की खाद, सुपर-फास्फेट, डाइएमिनोफौस, सोडियम नाइट्रेट, पोटेसियम सल्फेट और चूने का उपयोग हुआ है। इनमें गोबर की खाद, हरी खाद और कम्पोस्ट भी खेत जोतने के समय दिया जा सकता है, यदि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की कमी हो।

सरसों और अलसी के लिए १००-२०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट, १५०-२५० पौण्ड सुपर-फास्फेट अथवा बेसिक स्लैग और ५०-१०० पौण्ड म्युरियेट आफ पोटाश अथवा पोटैसियम सल्फेट की सिफारिश की गयी है।

तिल के लिए १५०-२५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट, २०० से ३०० पौण्ड सुपर-फास्फेट या बेसिक स्लैग अथवा १५० से २०० पौण्ड हड्डी का चूरा, और ५०-१०० पौण्ड पोटाश लवणों (सल्फेट या क्लोराइड) की सिफारिश है।

रेंड़ी में गोबर की खाद से सबसे अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ है। पर अन्य उर्वरक भी दिये जा सकते हैं। रेंड़ी की खली और नीम की खली से उत्पादन बहुत बढ़ जाता

है। सुपर-फास्फेट और पोटाश लवणों से उत्पादन में वृद्धि होती है। इसके लिए ५०-९० मन गोबर की खाद या कम्पोस्ट, ६० से ९० पौण्ड अमोनियम सल्फेट या ६५ से ९० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट, २००-२८० पौण्ड सुपर फास्फेट और ५० से ९० पौण्ड पोटाश लवणों (सल्फेट या क्लोराइड) की सिफारिश की गयी है।

तम्बाकू—तम्बाकू के लिए मिट्टी उपजाऊ होनी चाहिए। उर्वरकों में नाइट्रोजन और पोटेसियम उर्वरक विशेष रूप से आवश्यक हैं। फास्फेट की मात्रा अधिक नहीं रहनी चाहिए। नाइट्रोजन का भी बहुत अधिक मात्रा में रहना ठीक नहीं है। अत्यधिक नाइट्रोजन से पत्ते का गुण घट जाता है। प्रति एकड़ ५० पौण्ड तक नाइट्रोजन निरापद है। अमोनियम उर्वरक तम्बाकू के लिए अच्छा नहीं समझा जाता। इससे पत्ता घटिया हो जाता है। अधिक फास्फरस से तम्बाकू की फसल जल्द पक जाती है जिससे पत्ते की उत्कृष्टता कम हो जाती है।

बोने के पहले ३ से ५ मन कार्बनिक खाद, गोबर की खाद अथवा बिनौले या रेंड़ी की खली, डाल कर खेत जोत देना चाहिए। पीछे १५०-२०० पौण्ड सुपर-फास्फेट अथवा बेसिक स्लैग और १०० पौण्ड पोटेसियम सल्फेट अथवा पोटेसियम कार्बोनेट या पोटेसियम नाइट्रेट दे सकते हैं। क्लोराइड तम्बाकू के लिए अच्छा नहीं है। बढ़ने के समय १०० पौण्ड सोडियम सल्फेट देना चाहिए।

चाय, काफी, प्याज, सेम आदि

चाय—चाय के खेतों में खाद देने की प्रथा पुरानी है। खाद से केवल पत्तियाँ अधिक मात्रा में ही नहीं बनतीं, वरन् उनके स्वाद में भी अन्तर आ जाता है जो चाय की उत्कृष्टता के लिए बड़ा आवश्यक है।

अधिक पत्तों के लिए नाइट्रोजनीय खाद आवश्यक है, पर नाइट्रोजनीय खादों का कार्य फास्फरस और पोटेसियम की अनुपस्थिति में ठीक से नहीं होता। अतः नाइट्रोजनीय खादों के साथ फास्फेट और पोटाश उर्वरकों का रहना भी आवश्यक है। नाइट्रोजनीय खादों के लिए गोबर की खाद या खली सबसे अच्छी समझी जाती है। पर कुछ अमोनियम सल्फेट भी दिया जा सकता है। फास्फेट के लिए सुपर-फास्फेट, बेसिक स्लैग, हड्डी का चूरा अथवा चट्टान फास्फेट का उपयोग हो सकता है। पोटाश के लिए पोटाश सल्फेट उत्तम होता है। इससे चाय का स्वाद अच्छा होता है। मिट्टी में पर्याप्त कार्बनिक पदार्थों का रहना बहुत आवश्यक है।

चाय के लिए ५० पौण्ड खली और १०० मन गोबर की खाद के सिवाय, १५०-२०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट अथवा २००-२५० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट, १००-१५०

पौण्ड सुपर-फास्फेट और ६०-१०० पौण्ड पोटाश सल्फेट की सिफारिश हुई है।

काफी—काफी वाले खेतों में ह्यूमस का रहना आवश्यक है। ह्यूमस की उपलब्धि गोबर की खाद अथवा हरी खाद से हो सकती है। बिना खाद या उर्वरक के काफी अच्छी उगती नहीं है। गोबर की खाद और हरी खाद के सिवाय १५०-२०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट अथवा २००-२५० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट, २०० पौण्ड सुपर-फास्फेट या बेसिक स्लैग अथवा हड्डी का चूरा और प्रायः १०० पौण्ड पोटाश सल्फेट या क्लोराइड डालना चाहिए।

कोको—कोको में भी गोबर की खाद पर्याप्त मात्रा में रहनी चाहिए। ऊपर से अमोनियम सल्फेट १५०-२०० पौण्ड, सुपर-फास्फेट १५० से २५० पौण्ड अथवा हड्डी का चूरा १००-१५० पौण्ड और पोटाश लवण १००-१२५ पौण्ड डालना चाहिए।

मिर्चा—मिर्चा बोने के लिए गोबर, राख आदि देकर खेत तैयार करना चाहिए। फिर अमोनियम सल्फेट ३ मन, सुपर-फास्फेट ६ मन और म्युरियेट आफ पोटाश १ मन २० सेर प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए। अमोनियम सल्फेट आधा रोपने के समय और आधा बड़ा होने पर देना चाहिए।

टमाटर और बैंगन—टमाटर के लिए प्रति एकड़ ३ से ५ मन तक अमोनियम सल्फेट, ५.५ से ८ मन तक सुपर-फास्फेट और २.५ से ३.७ मन तक म्युरियेट आफ पोटाश देना चाहिए। बैंगन में ये ही उर्वरक, पर अल्पाधिक मात्रा में, प्रायः डेढ़गुना अधिक इस्तेमाल करना चाहिए।

कोबी—सभी तरह की कोबियों में प्रति एकड़ ५.२ से ७.५ मन अमोनियम सल्फेट, ११ से १६ मन सुपर-फास्फेट और ३ से ४ मन म्युरियेट आफ पोटाश देना चाहिए। ऊपर से २ से ३ मन सोडियम नाइट्रेट भी डाला जा सकता है।

प्याज और लहसुन—प्याज और लहसुन में प्रायः एक ही किस्म के उर्वरक प्रयुक्त हो सकते हैं। उर्वरक से उत्पादन बहुत बढ़ जाता है। खेतों में १०० से २५० मन गोबर की खाद देकर खेत तैयार करना चाहिए। उसमें १० से १५ मन खली भी दी जा सकती हैं। विष्ठा या कम्पोस्ट भी गोबर की खाद और खली के स्थान में दिया जा सकता है। कार्बनिक खादों के अतिरिक्त ३०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट, ४०० पौण्ड सुपर फास्फेट और ४०० पौण्ड पोटाश सल्फेट दिया जा सकता है।

सोयाबीन—सोयाबीन के खेतों को गोबर की खाद या कम्पोस्ट देकर तैयार करना चाहिए। उसमें फिर ४० पौण्ड अमोनियम सल्फेट, अथवा ५० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट, २००-३०० पौण्ड सुपर-फास्फेट और ७५-१०० पौण्ड म्युरियेट आफ पोटाश या पोटाश सल्फेट डालना चाहिए।

हल्दी और अदरख—मद्रास में जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता चलता है कि मछली ग्वानो के १००० पौण्ड के व्यवहार से केवल गोबर खाद की तुलना से अदरख उत्पादन में ६८ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। गोबर की खाद और १५० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट के व्यवहार से केवल गोबर की खाद की तुलना में ८७ प्रतिशत की वृद्धि हुई। गोबर की खाद, मछली-ग्वानो और सोडियम नाइट्रेट के उपयोग से ८४ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।

हल्दी में अकेले विष्ठा, अथवा खली के साथ अथवा अमोनियम सल्फेट के साथ उपयोग से उत्पादन बढ़ा पाया गया है।

इन दोनों फसलों में १००-२०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट, १२५-२५० पौण्ड सुपरफास्फेट, २००-३०० पौण्ड पोटाश सल्फेट, १०० से २०० मन गोबर की खाद और ५००-१००० पौण्ड खली के व्यवहार की सिफारिश की गयी है।

मूली, गाजर और गाँठ गोभी—खेतों में गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट डालकर जोत देना चाहिए।

पीछे २·५ से ३·५ मन अमोनियम सल्फेट, ३·५ से ५·५ मन सुपर-फास्फेट और ३ से ५ मन पोटाश लवण देना चाहिए।

चुकन्दर—क्षारीय मिट्टी में चुकन्दर अच्छा उगता है। बलुआर दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वोत्तम है। अल्प भारी मिट्टी में भी यह उपजता है।

चुकन्दर बोने के कम से कम एक मास पहले १० से १५ गाड़ी गोबर खाद डालकर खेत को तैयार करना चाहिए। तत्काल गोबरवाले खेत में चुकन्दर कभी नहीं बोना चाहिए। पीछे बोने के समय १५० पौण्ड सुपर-फास्फेट और ८० पौण्ड अमोनियम सल्फेट डालना चाहिए।

मटर और सेम—मटर और सेम के लिए प्रायः एक ही किस्म की खाद की जरूरत पड़ती है। खेत के जोतने के समय गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट डालना चाहिए। पीछे २०-२५ सेर अमोनियम सल्फेट, ३·५ से ४·५ मन सुपर-फास्फेट और २·५ से ३·५ मन पोटाश लवण (सल्फेट या क्लोराइड) डाल सकते हैं।

फल के पेड़ों में उर्वरक*

आम—आम २५ से ३५ फुट की दूरी पर जुलाई से अक्टूबर तक लगाना चाहिए।

***ये सूचनाएं बिहार कृषि विभाग द्वारा प्रकाशित 'कृषि तत्त्व' पर आधारित हैं।**

पेड़ लगाने के समय गोबर की सड़ी खाद १ मन, रेंड़ी की खली २·५ सेर, चूना आधा सेर, हड्डी का चूरा २ सेर, लकड़ी की राख ४ सेर और पत्ते की खाद (यदि मिट्टी भारी हो) १० सेर देनी चाहिए।

फिर खाद देने का समय	खाद का नाम	प्रथम वर्ष सेर में	प्रति वर्ष बढ़ाने की मात्रा सेर में	प्रौढ़ वृक्षों में दी जानेवाली मात्रा सेर में
अक्तूबर और जून	गोबर की खाद	२०	४	१·७५
	हड्डी का चूरा	२·५	०·५	५
	चूना (यदि चूने की कमी हो)	०·५	०·२५	२
	लकड़ी की राख	२	१	१०

लीची—लीची २० फुट की दूरी पर जून से अगस्त में बोनी चाहिए। पेड़ लगाने के समय गोबर की सड़ी खाद १ मन, चूना २-३ सेर, हड्डी का चूरा २-३ सेर और लकड़ी की राख ५-६ सेर देनी चाहिए।

फिर खाद देने का समय	खाद का नाम	प्रथम वर्ष सेर में	प्रति वर्ष बढ़ाने की मात्रा सेर में	प्रौढ़ वृक्षों में देने की मात्रा सेर में
जून	गोबर की खाद	२०	१०	२·५ मन
	हड्डी का चूरा (सुपरफास्फेट)	२·५	०·५	३ से ५
	लकड़ी की राख	२	०·५	५ से ८
	रेंड़ी की खली	१	०·५	४ से ५
	चूना (जहां चूना की कमी हो)	२	१	५

नीबू जाति के फल—१५ से २० फुट की दूरी पर सितम्बर से अक्तूबर अथवा फरवरी से मार्च में लगाना चाहिए। लगाने के समय गोबर की सड़ी खाद १ मन, हड्डी का चूरा २·५ सेर, लकड़ी की राख १ सेर और चूना १ सेर देना चाहिए।

फिर खाद देने का समय	खाद का नाम	प्रथम वर्ष सेर में	प्रति वर्ष बढ़ाने की मात्रा सेर में	प्रौढ़ वृक्षों में दी जानेवाली मात्रा सेर में
दिसम्बर से जनवरी	गोबर की सड़ी खाद	१०	४	१.५ मन
अम्बे बहार के लिए	हड्डी का चूरा	०.२५	०.२५	२
मई-जून मूंग बहार	लकड़ी की राख	०.५	०.५	५
के लिए	अमोनियमसल्फेट	०.२५	०.२५	१
	चूना	०.२५	०.२५	१

अमरूद—अमरूद २०-२० फुट की दूरी पर जून से अक्तूबर तक बोया जाता है। बोने के समय गोबर की सड़ी खाद, ३० सेर देनी चाहिए।

फिर खाद देने का समय	खाद का नाम	प्रथम वर्ष सेर में	प्रति वर्ष बढ़ाने की मात्रा	प्रौढ़ वृक्षों में दी जाने वाली मात्रा
			सेर में	सेर में
नवम्बर	गोबर की सड़ी खाद	१०	१	१ मन
	लकड़ी की राख	१	०.५	५
	हड्डी का चूरा	१	०.५	२

पपीता—पपीता १० फुट की दूरी पर अप्रैल, जून से सितम्बर तक बोया जाता है। लगाने के समय गोबर की सड़ी खाद २० सेर, रेंड़ी की खली २ सेर और लकड़ी की राख ५ सेर डालनी चाहिए।

फिर खाद देने का समय	खाद का नाम	प्रथम वर्ष सेर में	प्रति वर्ष बढ़ाने की मात्रा	प्रौढ़ वृक्षों में दी जाने की मात्रा
			सेर में	सेर में
अक्तूबर और अप्रैल	अमोनियम सल्फेट	—	—	०.२५
	पत्ते की सड़ी खाद	—	—	५
	लकड़ी की राख	—	—	१०
	चूना	—	—	२ छटांक
	हड्डी का चूरा	—	—	२ छटांक

केला—केला १० से १५ फुट की दूरी पर अगस्त में बोना चाहिए। बोने के समय कच्चा गोबर १ मन, कम्पोस्ट १० सेर, लकड़ी की राख १० सेर डालनी चाहिए; पीछे

जुलाई-अगस्त में प्रथम वर्ष प्रत्येक थाला में कच्चा गोबर १ मन, रेंड़ी की खली ५ सेर, अमोनियम सल्फेट १·५ सेर, पोटेसियम सल्फेट १·५ सेर और सुपर-फास्फेट ०·५ सेर डालना चाहिए। केले को पोटाश की खास जरूरत पड़ती है।

बंगाल के कृष्ण नगर में केले पर जो प्रयोग हुए हैं उनसे पता चलता है कि नाइ-ट्रोजनीय खाद के आधा पौण्ड का प्रभाव केले पर अच्छा पड़ता है। नाइट्रोजनीय खाद को अंशतः गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट के रूप में और आधा अमोनियम सल्फेट के रूप में अच्छा होता है।

बैर—बैर में गोबर की सड़ी खाद १ मन और नमक ०·२५ सेर देना चाहिए। फिर जनवरी-फरवरी में एक बार गोबर की सड़ी खाद १० सेर और लकड़ी की राख २ सेर देनी चाहिए। प्रति वर्ष गोबर की खाद ४ सेर और राख आधा सेर बढ़ाकर प्रौढ़ वृक्षों में गोबर खाद की मात्रा १ मन और राख की मात्रा ५ सेर कर देनी चाहिए।

कटहल—कटहल किसी भी समय लगाया जा सकता है। लगाने के समय गोबर की सड़ी खाद २ मन और पत्ते की खाद १ मन देनी चाहिए। अगस्त और जनवरी में फिर खाद देनी चाहिए। प्रथम वर्ष गोबर की खाद १ मन और पत्ते की खाद १० सेर, फिर प्रति वर्ष क्रमशः १० सेर और ४ सेर की दर से बढ़ाकर प्रौढ़ वृक्ष के लिए क्रमशः २·५ मन और १ मन कर देना चाहिए।

आँवला—आँवला कभी भी बोया जा सकता है। बोने के समय गोबर की सड़ी खाद १ मन और अमोनियम सल्फेट ०·२५ सेर डालना चाहिए। अगस्त, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर में खाद देनी चाहिए। उनकी मात्रा इस प्रकार रहनी चाहिए।

खाद का नाम	प्रथम वर्ष	प्रति वर्ष बढ़ाने की मात्रा	प्रौढ़ वृक्षों में दी जानेवाली मात्रा
गोबर की सड़ी खाद	१ मन	५ सेर	१·५ मन
अमोनियम सल्फेट	०·२५ सेर	०·२५ सेर	१ सेर
लकड़ी की राख	१ सेर	०·५ सेर	५ सेर
सुपर-फास्फेट	०·५ सेर	०·२५ सेर	१ सेर

अनन्नास—तवाई में अनन्नास सबसे अच्छा उपजता है। प्रति एकड़ में ४१० पौण्ड नाइट्रोजन, २०७ पौण्ड फास्फरिक अम्ल और ५२० पौण्ड पोटाश को तीन वर्ष के पूर्ण चक्र में देना चाहिए। यह दलबीर सिंघ की सिफारिश है, जिन्होंने अनन्नास का विशेष अध्ययन किया है। पौधा लगाने के पहले एक बार खाद देनी चाहिए। पौधा लगाने के ८ से १० मास बाद दूसरी बार लगाना चाहिए। पौधे के अति निकट

सुराख बनाकर खाद देनी चाहिए। बोने के फिर १५ मास बाद तीसरी बार खाद डालनी चाहिए। पेड़ की कतार में तीसरी बार यन्त्रों से या हाथ से खाद डालकर फैला देनी चाहिए। अनन्नास के पेड़ों पर बीच-बीच में फेरस सल्फेट का दुर्बल विलयन छिड़कना चाहिए, विशेषतः ऐसी मिट्टी में जिसका पी एच ५·६ से ७ है। पोटाश लवणों में पोटासियम सल्फेट का व्यवहार करना चाहिए। पोटेसियम क्लोराइड अच्छा नहीं है। क्लोराइड से फल के गुणों में अन्तर आ जाता है। अमोनियम सल्फेट का नाइट्रोजन अभी तक सर्वोत्तम पाया गया है। अमोनियम का सीधे पौधे द्वारा अवशोषण हो जाता है। सोडियम नाइट्रेट से फल कोमल होता है और रंग हल्का।

अंगूर—अंगूर में अमोनियम सल्फेट और सुपर-फास्फेट का व्यवहार अच्छा होता है। २०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट अथवा २५० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट ४०० पौण्ड सुपर-फास्फेट या बेसिक स्लैग और २०० पौण्ड पोटेसियम सल्फेट का व्यवहार करना चाहिए। केवल अमोनियम सल्फेट के व्यवहार से भी अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ है।

खजूर—खजूर में लवणवाला उर्वरक नहीं देना चाहिए। २००-४०० पौण्ड खली, २०० पौण्ड हड्डी का चूरा अथवा ३०० पौण्ड बेसिक स्लैग और साल में दो बार करके २०-५० पौण्ड पोटेसियम सल्फेट डालना चाहिए।

नारियल—मद्रास में नारियल में उर्वरक देने पर जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम हुआ कि प्रति पेड़ ३ पौण्ड अमोनियम सल्फेट और २० पौण्ड नारियल की राख देने से उत्पादन में ६८·८ प्रतिशत की वृद्धि हुई। प्रति पेड़ १०० पौण्ड गोबर की खाद से वृद्धि ६८·१ की हुई। एक प्रयोग में प्रति पेड़ ३ पौण्ड अमोनियम सल्फेट, ५ पौण्ड सुपर-फास्फेट और एक पौण्ड पोटेसियम सल्फेट के उपयोग से उत्पादन में ५० प्रतिशत की वृद्धि हुई जब कि पोटेसियम सल्फेट के अभाव में केवल ४२·६ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।

गोबर की खाद ४ टोकरी, हड्डी का चूरा ६ पौण्ड, अरंडी की खली ३ पौण्ड, मछली की खाद २ पौण्ड, कैनाइट ३ पौण्ड और पोटाश १ पौण्ड की सिफारिश की गयी है।

बिहार कृषि विभाग द्वारा नारियल के लिए निम्नलिखित खाद अच्छी बतलायी गयी है। पेड़ लगाने के समय एक मन गोबर की खाद, पत्ती की खाद ३-४ टोकरी और खारा नमक ०·५ सेर देना चाहिए और प्रौढ़ वृक्षों में गोबर की खाद १ मन, पत्ती की खाद ७-८ टोकरी, अमोनियम सल्फेट १ सेर और सुपर-फास्फेट १ सेर डालना चाहिए।

सुपारी—सुपारी के लिए नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटेसियम तीनों का मिश्रण

अच्छा होता है। प्रत्येक पेड़ में खली ३ पौण्ड अथवा अमोनियम सल्फेट १·२५ पौण्ड, सुपर-फास्फेट ७ पौण्ड और पोटेसियम सल्फेट का ०·५ पौण्ड देना चाहिए।

सेव और नासपाती—इन दोनों फलों के पेड़ों में प्रायः एक ही किस्म की खाद की जरूरत पड़ती है। नासपाती में अल्प गोबर और खली से लाभ होता है। साधारणतया दोनों में प्रति एकड़ १५०-२५० पौण्ड अमोनियम सल्फेट अथवा २००-३०० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट, २५०-४०० पौण्ड सुपर-फास्फेट या बेसिक स्लैग और २००-३०० पौण्ड पोटेसियम सल्फेट का उपयोग हो सकता है। नासपाती में कुछ गोबर की खाद या खली अथवा ये दोनों भी दी जाती हैं।

बादाम और अखरोट—इन दोनों में एक ही प्रकारके पोषक तत्त्व आवश्यक हैं, १५०-२०० पौण्ड अमोनियम सल्फेट अथवा २००-२५० पौण्ड सोडियम नाइट्रेट, २०० पौण्ड खून का चूरा या खली, ३०० पौण्ड सुपर-फास्फेट अथवा बेसिक स्लैग और २०० पौण्ड पोटेसियम सल्फेट प्रयुक्त हो सकते हैं।

मछली—मछली पालने का प्रयत्न आज हो रहा है। इसके लिए तालाब या पोखरे बनाये जाते हैं जिनमें मछलियां पाली जाती हैं। पोखरे की लम्बाई-चौड़ाई कितनी भी रह सकती है। साधारणतया पोखरे आधे एकड़ से दो एकड़ तक भूमि में रहते हैं। पोखरों की गहराई कम से कम कुछ स्थानों की पाँच फुट रहनी चाहिए ताकि गरमी में मछलियों को ठंडा स्थान मिल सके। अन्य भाग छिछला रहना अच्छा होता है ताकि मछलियों को सरलता से आहार दिया जा सके।

मछलियां अधिकांश छोटे-छोटे जीवों को भक्षण करती हैं। ये जीव सूक्ष्म पौधों पर बसर करते हैं। अतः पानी में सूक्ष्म पौधों का रहना और पनपना आवश्यक है। सूक्ष्म पौधों के लिए आहार चाहिए। इनके आहार में नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटाश रहना चाहिए। पानी में इन पोषक तत्त्वों के रहने से सूक्ष्म पौधे बढ़ते हैं और उन्हें खाकर सूक्ष्म जीव बढ़ते हैं जिससे मछलियों को आवश्यक आहार प्राप्त होता है।

पोखरे में कितना उर्वरक डालना चाहिए यह बहुत कुछ पोखरे की स्थिति, पोखरे की गहराई और पोखरे के पानी के संगठन पर निर्भर करता है। साधारणतया कहा जाता है कि एक एकड़ के पोखरे में २०० से ५०० पौण्ड पूर्ण उर्वरक प्रति वर्ष डालना चाहिए। उर्वरक को बसन्त में अथवा ग्रीष्म के प्रारम्भ में पानी के तल पर डालना चाहिए अथवा पोखरे के किनारे रख देना चाहिए ताकि वर्षा से घुलकर धीरे-धीरे वह पोखरे में चला जाय। ऐसा उर्वरक ठीक तरह से देने से मछली ५८० पौण्ड तक पैदा की जा सकती है। उर्वरक से मछलियां जल्द मोटी हो जाती हैं।

यदि पानी में पर्याप्त उर्वरक है तो ऐसे पानी का रंग हरा या हरापन के साथ भूरा देख पड़ता है। इसका ऐसा रंग सूक्ष्म पौधों के कारण होता है। ६-८-४ संगठन का १०० पौण्ड प्रथम बार और पीछे सोडियम नाइट्रेट दस-दस पौण्ड करके बसन्त में प्रति सप्ताह और ग्रीष्म में ४ से ८ सप्ताह पर डाला जा सकता है। ऐसे पोखरे का पानी नहाने के लिए अथवा पशुओं को पिलाने के लिए बिलकुल निरापद है। इससे मछलियां बड़ी जल्द बड़ी-बड़ी हो जाती हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय

मिट्टी की प्रतिक्रिया

मिट्टी में पौधों के पोषक तत्त्व रहते हैं। पौधों के लिए उनकी उपलब्धि दो बातों पर निर्भर करती है, एक मिट्टी की प्रतिक्रिया और दूसरी मिट्टी की भौतिक दशा। कुछ मिट्टी अम्लीय होती है, कुछ क्षारीय और कुछ मिट्टी उदासीन होती है। कुछ पौधे अम्लीय मिट्टी में अच्छे होते हैं, कुछ पौधे क्षारीय मिट्टी में और अधिकांश पौधे उदासीन मिट्टी में। विभिन्न पोषक तत्त्वों की उपलब्धि भी मिट्टी की प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है। पृ० ५२९ पर जो चित्र दिया हुआ है उससे मालूम होता है कि विभिन्न उर्वरक विभिन्न प्रतिक्रियावाली मिट्टी पर सबसे उत्तम परिणाम देते हैं।

मिट्टी की प्रतिक्रिया की माप

मिट्टी की प्रतिक्रिया को सूचित करने के लिए सामान्य शब्दों में हम कहते हैं कि अमुक मिट्टी अम्लीय है, अमुक मिट्टी क्षारीय है और अमुक मिट्टी उदासीन है। जो मिट्टी सामान्य सूचकों से अम्लीय क्रिया देती है उसे हम अम्लीय कहते, जो मिट्टी सामान्य सूचकों से क्षारीय क्रिया देती है उसे क्षारीय और जो मिट्टी इनमें कोई क्रिया नहीं देती उसे हम उदासीन मिट्टी कहते हैं। अम्लीय मिट्टी में अम्लीय मूलकों का आधिक्य, क्षारीय मिट्टी में क्षारीय मूलकों का आधिक्य और उदासीन मिट्टी में अम्लीय और क्षारीय मूलकों की सम मात्राएँ रहती हैं।

मिट्टी की प्रतिक्रिया कई बातों पर निर्भर करती है। किस चट्टान से मिट्टी बनी है, मिट्टी की जल-वायु और स्थिति कैसी है, कैसा घास-पात वहाँ उगता है, कैसा मौसिम रहता है, बाढ़ आती है अथवा नहीं, मिट्टी के संसर्ग में मनुष्य और पशु आते हैं अथवा नहीं, इन सब बातों का प्रभाव मिट्टी की प्रतिक्रिया पर पड़ता है। अनेक लोगों की रिपोर्ट है कि किसी क्षेत्र के नाइट्रोजन, फास्फेट और कार्बन आदि की मात्राएं बदलती रहती हैं। पानी रोक रखने की क्षमता, वैद्युत-चालकता, विनिमय-योग्य धनायन में परिवर्तन की भी रिपोर्ट मिली है।

मौसिम के परिवर्तन और आकाशीय दशा के परिवर्तन से भी मिट्टी की प्रतिक्रिया बदलती रहती है। मौसिम के हेरफेर से कम, पर आकाशीय हेरफेर से अधिक प्रतिक्रिया होती है।
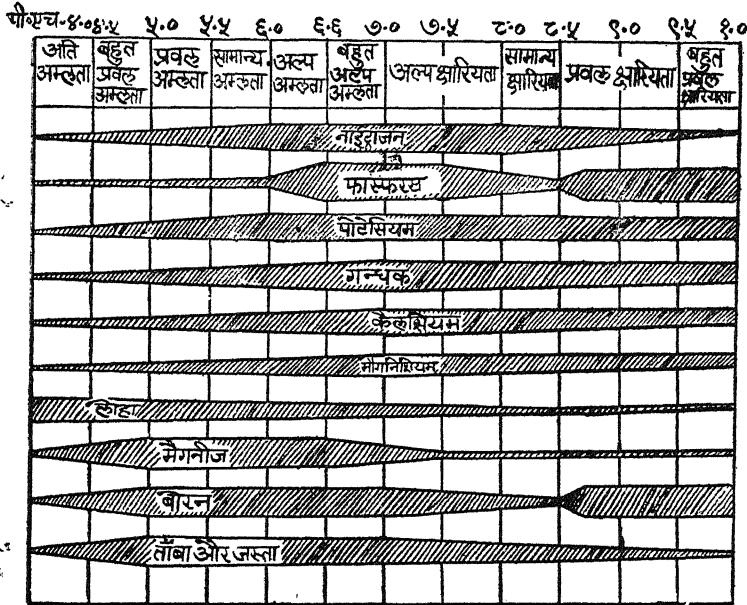
चित्र ५६—मिट्टी की प्रतिक्रिया पर उर्वरकों की सक्रियता

उर्वरक किसी विशेष पी एच पर ही सबसे अच्छा परिणाम देते हैं। कौन उर्वरक किस पी एच पर कितना प्रभावकारी होता है वह उर्वरक-रेखा की चौड़ाई से प्रकट होता है। अधिकांश उर्वरक ६.० और ७.५ पी एच के बीच ही सबसे अच्छे परिणाम देते हैं।

अम्लता अथवा क्षारीयता को मापा भी जा सकता है। मापने से इनकी डिगरी का पता लगता है। प्रतिक्रिया जानने के लिए वैज्ञानिक ग्रन्थों में पी एच का व्यवहार होता है। पी एच शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं है। डच रसायनज्ञ सौरेन्सेन ने

इस शब्द का पहले-पहल उपयोग किया और आज यह शब्द व्यापक रूप से सब देशों और सब भाषाओं में प्रयुक्त होता है। किसी पदार्थ की अम्लता हाइड्रोजन आयन (H^+) के कारण होती है। हाइड्रोजन आयन और पी एच का सम्बन्ध निम्नलिखित समीकरण से प्रकट होता है—

$$pH = \log_{10} 1/H^+$$

पी एच का मान अम्लों और क्षारों के विघटन से सरलता से निकाला जा सकता है। पर, विलयनों में और अनेक पदार्थ मिले रहते हैं जो आयोनीकरण को परिवर्तित कर देते हैं। ऐसी दशा में अम्लों अथवा क्षारों के आयनीकरण को रोकने के लिए कुछ पदार्थों के डालने की आवश्यकता पड़ती है। दूसरे शब्दों में अम्लों अथवा क्षारों के डालने पर पी एच में कोई परिवर्तन न हो, इसे रोकने के लिए जिन पदार्थों को डालते हैं, उन्हें बफर विलयन कहते हैं। अनेक दुर्बल अम्ल, क्षार, जिलेटिन और केसीन सदृश कार्बनिक पदार्थों के मिश्रणों का बफर विलयन के रूप में उपयोग होता है। कुछ विलयन ऐसे होते हैं, जिनके तनु करने से पी एच के मान में कोई अन्तर नहीं होता; पर कुछ दशाओं में अन्तर होता है। इस कारण विलयन के तनु करने में सतर्कता आवश्यक है।

अनेक लोगों ने भिन्न-भिन्न बफर विलयनों के उपयोग का सुझाव रखा है। इनमें सबसे अच्छा बफर विलयन डाइ-सोडियम हाइड्रोजन फास्फेट और साइट्रिक अम्ल के विलयन का है। इसके लिए डाइ-सोडियम हाइड्रोजन फास्फेट सूखा और मणिभीय होना चाहिए। पहले में मणिभीकरण जल के दो अणु और दूसरे में एक अणु रहते हैं। प्रमाप बफर विलयन के तैयार करने में शुद्ध पोटेसियम हाइड्रोजन थैलेट के १·०२ ग्राम मणिभ को १०० मिलीमीटर आसुत जल में घुलाते हैं। ऐसे विलयन का पीएच मान १८° और ४०° से० के बीच स्थायी १·९७ होता है। डाइ-सोडियम हाइड्रोजन फास्फेट और सिट्रिक अम्ल के विलयनों के मिश्रण से जो प्रमाप बफर मिश्रण तैयार होते हैं, उनके पी एच मान स्थायी, पर भिन्न-भिन्न सान्द्रण के विभिन्न होते हैं।

किसी पदार्थ की अम्लता अथवा क्षारीयता पी एच संख्या से नापी जाती है। जल में हाइड्रोजन और हाइड्राक्सिल आयन बराबर-बराबर मात्रा में रहते हैं। ऐसे द्रव या विलयन को जिसमें हाइड्रोजन और हाइड्राक्सिल आयन सम मात्रा में हो हम उदासीन कहते हैं। जल उदासीन है।

जो पदार्थ उदासीन होते हैं उनका पी एच ७ होता है। यदि किसी पदार्थ का

पी एच ७ से कम हो तो वह पदार्थ अम्लीय और जिस पदार्थ का पी एच ७ से ऊपर हो वह पदार्थ क्षारीय होता है।

उग्र अम्लीय मिट्टी का पी एच	४·५ से कम होता है
अति प्रबल अम्लीय मिट्टी का पी एच	४·५ से ५·० होता है
प्रबल अम्लीय मिट्टी का पी एच	५·१ से ५·५ होता है
मध्यम अम्लीय मिट्टी का पी एच	५·६ से ६·० होता है
अल्प अम्लीय मिट्टी का पी एच	६·१ से ६·५ होता है
उदासीन मिट्टी का पी एच	६·६ से ७·३ होता है
मृदु क्षारीय मिट्टी का पी एच	७·४ से ८·० होता है
प्रबल क्षारीय मिट्टी का पी एच	८·१ से ९·० होता है
अति प्रबल क्षारीय मिट्टी का पी एच	९·१ से ऊपर होता है

वास्तविक उदासीन मिट्टी का पी एच ७·० है, पर ६·३ से ७·३ पी एच वाली मिट्टी उदासीन ही समझी जाती है।

दो भूमियों का पी एच एक रहने पर भी मिट्टी में अम्लता की समस्त मात्रा विभिन्न रह सकती है। अतः एक पी एच रहने पर भी विभिन्न मिट्टियों में पी एच को ऊपर उठाने के लिए चूने की विभिन्न मात्राओं की आवश्यकता पड़ सकती है। एक पी एच रहते हुए भी मटियार मिट्टी में बलुआर मिट्टी की अपेक्षा अधिक अम्लता हो सकती है। जिस मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अधिक रहते हैं उसमें अम्लता अधिक रहती है। उष्ण देशों की अपेक्षा शीत देशों में अम्लता अधिक रहती है। जीर्णकी और प्रजीर्णकी मिट्टियों में भी अम्लता अधिक रहती है। गाढ़े रंग की मटियार मिट्टी में हल्के रंग की बलुआर मिट्टी की अपेक्षा अधिक अम्लता रहती है। यही कारण है कि शीत देशों में उष्ण देशों की अपेक्षा अधिक चूना डालने की आवश्यकता पड़ती है। अधिक चूना से उष्ण देशों में नुकसान हो सकता है। मिट्टी के कुछ पोषक तत्त्व भी चूने के कारण अप्राप्य रूप में परिणत हो सकते हैं।

अम्लता का परीक्षण—पी एच परीक्षण के लिए कुछ सूचक इस्तेमाल होते हैं। ये सूचक संकीर्ण कार्बनिक पदार्थ हैं जिनका किसी विशिष्ट पी एच मान पर एक विशिष्ट रंग होता है। रंगों के परिवर्तन से हम जानते हैं कि मिट्टी का पी एच क्या है। सूचक रंगों को क्षारक सोडा में विलयन तैयार करते हैं। इन सूचकों के विलयनों को ऐसी बोतलों में रखना चाहिए जो क्षारों के प्रति प्रतिरोधक हों। बोतलों को काँच अथवा रबर के कागों से बन्द कर अंधेरे में रखना चाहिए।

सूचक रंगों की सूची और उनका पी एच और रंग-परिवर्तन

सूचक	सान्द्रण (प्रतिशत)	पी एच विस्तार	रंग परिवर्तन
ऐसिड क्रीसोल रेड	०·०२	०·२–१·८	रक्त से पीत
ऐसिड मिटा-क्रीसोल पर्पल	०·०४	१·२–२·८	रक्त से पीत
बेंजोल येलो	०·१	२·४–४·०	रक्त से पीत
ब्रोम-फीनोल ब्लू	०·०४	३·०–४·६	पीत से नीला
मेथिल रेड	०·०४	४·४–६·०	रक्त से पीत
ब्रोमक्रीसोल पर्पल	०·०४	५·२–६·८	पीत से नीललोहित
ब्रोमथाइमोल ब्लू	०·०४	६·०–७·६	पीत से नील
फीनोल रेड	०·०२	६·८–८·४	पीत से रक्त
मिटा-क्रीसोल पर्पल	०·०४	७·६–९·२	पीत से नीललोहित
थाइमोल ब्लू	०·०४	८·०–९·६	पीत से नीला
थैलिन रेड	—	८·६–१०·२	पीत से रक्त
टौलिल रेड	—	११·०–१२·६	पीत से रक्त
पेरेज़ो औरेंज	—	११·०–१२·६	पीत से नारंगी
ऐसील ब्लू	—	१२·०–१३·६	रक्त से नील

पी एच से हमें अम्लता की तीव्रता मालूम होती है, न कि समस्त अम्लता। इससे मिट्टी में कितना चूना डालना चाहिए इसका कुछ-कुछ पता लग जाता है, यद्यपि इसके ठीक-ठीक पते के लिए समस्त अम्लता का ज्ञान आवश्यक है। पी एच के ज्ञान से हमें और भी कुछ बातें मालूम होती हैं।

कुछ फसलें अम्लीय मिट्टी में अच्छी उगती हैं, कुछ क्षारीय मिट्टी में, पर अधिकांश फसलें उदासीन मिट्टी में अच्छी उगती हैं। यदि मिट्टी अम्लीय है और उसमें ऐसी फसल बोई जानेवाली है जो क्षारीय मिट्टी में अथवा उदासीन मिट्टी में अच्छी उगती है तो आवश्यक चूना डालकर मिट्टी की प्रतिक्रिया को उदासीन अथवा क्षारीय बना लेते हैं।

साधारणतः पौधे ६·५ पी एच पर पोषक तत्त्वों की अधिकतम मात्रा को ग्रहण करते हैं। नाइट्रोजन के स्थिरीकरण और कार्बनिक पदार्थों के विघटन की बैक्टीरियाएं ६ और ८ पी एच के बीच सबसे अच्छा कार्य करती हैं। यदि पी एच इनसे भिन्न हो तो चूना डालकर ऐसा कर लेते हैं।

कौन फसल किस पी एच पर सबसे अच्छी उगती है, इसका ज्ञान नीचे दी गयी सारणी से होता है। स्मरण रखना चाहिए कि कुछ फसलें शीत देशों में अधिक अम्लीय मिट्टी में भी उपज सकती हैं।

फसल	सर्वोत्कृष्ट पी एच परास
जौ (Hordeum Sativum)	*६·५–८·०
कुट्टक (Fagopyrum esculentum)	*५·५–७·०
मकई (Zea mays)	५·५–७·५
जई (Avena sativa)	५·०–७·५
धान (Oryza sativa)	५·०–६·५
राई (Secale cereale)	५·०–७·०*
गेहूं (Triticum vulgare)	५·५–७·५
सेम (Phaseolus vulgaris)	*६·०–७·५
सेंजी (T. incarnatum)	५·५–७·०
राजमाष (Cowpea: vignasinensis)	५·०–६·५
मूंगफली (Arachis hypogaea)	५·३–६·६
लुसर्न (Medicago sativa)	६·२–७·८
मटर (Pisum sativum)	६·०–७·५
सोयाबीन (Soja max)	६·०–७·०
मूंगमोठ (Vicia vilosa)	*५·२–७·०
चुकन्दर (Beta vulgaris)	*६·५–८·०
कपास (Gossypium hirsutum)	५·०–६·०
जूट (Linum usitatissimum)	५·०–७·०
तोरिया (Brassica napus)	६·०–७·५
आलू (Solanum tubersum)	४·८–६·५
शकरकन्द (Ipomaea batatas)	५·८–६·०
ईख (Saccharum officinarum)	*६·०–८·०
तम्बाकू (Nicotiana tabacum)	*५·५–७·५
शलजम (Brassia rapa)	५·५–६·८
सुदान घास (S. vulgare Sudanese)	५·०–६·५
यूथ घास (Phleum pratense)	५·५–८·०
बरमुडा घास (Cynodon dactylon)	६·०–७·०

कुछ अंकों के पहले * यह चिन्ह है जिसका आशय है कि उस अंक के एक डिगरी नीचे तक पी एच में पौधा अच्छा उपज सकता है और कुछ अंकों के बाद यह चिन्ह है जिसका आशय है कि उस अंक के एक डिगरी ऊपर तक पी एच में पौधा अच्छा उपज सकता है।

भारत की मिट्टियों के पी एच का निर्धारण अभी पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। कुछ वैज्ञानिकों ने यत्र-तत्र पी एच का निर्धारण किया है। पर उर्वरकों से पूरा लाभ उठाने के लिए मिट्टियों के पी एच का निर्धारण नियमित रूप से शीघ्र होना चाहिए। मिट्टी जाँच की २५ प्रयोगशालाएं देश में खुलनेवाली हैं जिनमें १५ प्रयोगशालाएँ खुल चुकी हैं और शेष शीघ्र खुलेंगी। भूमि के सर्वेक्षण के लिए भी देश में चार संस्थाएं दिल्ली, खड़गपुर, नागपुर और बंगलोर में खुल रही हैं।

बिहार के पूर्णिया जिले में किशनगंज के निकट इसलामपुर गांव की मिट्टी की प्रतिक्रिया का विशेष रूप से अध्ययन हुआ है। वहां की मिट्टी पर्याप्त अम्लीय पायी गयी है। मिट्टी के पी एच में पर्याप्त अन्तर पाया गया है। जिस मिट्टी की प्रतिक्रिया का अध्ययन विस्तार से हुआ है वह मिट्टी बलुआर दोमट है। उसमें कार्बनिक पदार्थों की मात्रा ऊंची थी। मिट्टी देखने में काली लगती है। मिट्टी की १० से १२ इंच तक की गहराई की जाँच हुई है। ऐसी मिट्टी का विश्लेषण निम्नलिखित था—

जल	२·२	प्रतिशत
कार्बनिक पदार्थ	५·४	,,
मृदा (Clay)	१४·८	,,
साद (Silt)	१७·०	,,
महीन बालू	५६·३	,,
मोटी बालू	३·५	,,
सेस्क्वी आक्साइड	८·७	,,
चूना (CaO)	०·२	,,
पोटाश (K_2O)	०·०३	,,
फास्फरिक अम्ल (P_2O_5)	०·०५	,,
उपलब्ध फास्फरिक अम्ल	०·०२	,,
उपलब्ध पोटाश	०·००७	,,
विलेय एल्यूमिनियम	०·०७५	भाग प्रति लाख

मिट्टी ऊसर थी। जलवायु आर्द्र है। वर्षा साल में १०० इंच होती है। अधिकांश बरसात है। पी एच निकालने के लिए ६ इंच गहराई की मिट्टी निकाल कर सुखायी गयी थी।

कुछ टुकड़ों की मिट्टी का पी एच ५·२ था
कुछ टुकड़ों की मिट्टी का पी एच ५·२ से ५·५ था
कुछ टुकड़ों की मिट्टी का पी एच ५·५ से ६·० था
कुछ टुकड़ों की मिट्टी का पी एच ६·० से ऊपर था।

अधिकांश मिट्टी का पी एच ५·०२ से ५·८० था और कुछ मिट्टी का पी एच ४·४० तक पाया गया।

मिट्टी की प्रतिक्रिया कई बातों पर निर्भर करती है।

चट्टान की प्रकृति

जिस चट्टान से मिट्टी बनी है उस चट्टान में क्षारीय धातुएँ होती हैं। उनकी प्रतिक्रियाएं क्षारीय होती हैं। पर क्षारीय धातुएँ धीरे-धीरे पानी द्वारा निकल जाती हैं, तब मिट्टी अम्लीय हो जाती है। कुछ क्षारीय धातुएँ हाइड्रोजन से भी विस्थापित हो जाती हैं। इससे भी मिट्टी अम्लीय हो जाती है। यदि मिट्टी में अम्लीय उर्वरक डाला गया है तो मिट्टी और भी अम्लीय हो जाती है। ऐसी भूमि में फसल उपजानें के लिए अम्लता को दूर करना आवश्यक है। बिना अम्लता दूर किये ऐसी भूमि में फसलें नहीं उपज सकतीं।

मिट्टी की अम्लता दूर करने के लिए चूना, कैलसाइट चूना-पत्थर, डोलोमाइट चूना-पत्थर का व्यवहार हो सकता है। कैलसाइट चूना-पत्थर इसलिए अच्छा नहीं है कि वह विलेय फास्फेट को अविलेय बना देता है। इस दृष्टि से डोलोमाइट चूना-पत्थर अच्छा है। यह इतना महीन होना चाहिए कि ६०-अक्षि चलनी में चल जाय।

यदि मिट्टी क्षारीय या चूर्णीय है तो उसके लिए मिश्रित उर्वरक अच्छा है, पर इससे क्षारीयता पूर्ण रूप से दूर नहीं होती। अमेरिका में क्षारीयता को दूर करने के लिए प्रति टन मिश्रित उर्वरक में ५० से ५०० पौण्ड गन्धक उपयुक्त होता है। यदि इस पर भी पौधे में पीतता रोग होवे तो लोहे अथवा जस्ते लवण का उपयोग करना चाहिए। पर गन्धक का नाइट्रेट के साथ उपयोग करना ठीक नहीं है। इससे आग लगने का डर रहता है।

मिट्टी की अम्लता बढ़ाने के लिए फिटकरी और कसीस का उपयोग अमेरिका में होता है। कुछ पौधे अम्लीय मिट्टी में अच्छे उगते हैं। पर फिटकरी और कसीस

से गन्धक चार या पाँच गुना अधिक प्रभावकारी होता है। पर इनकी मात्रा अधिक नहीं रहनी चाहिए। प्रति दस लाख भाग में एल्यूमिनियम की मात्रा एक से अधिक हो तो वह छोटे पौधे के लिए विषाक्त हो सकता है।

मिट्टी की प्रतिक्रिया के परिवर्तन से मिट्टी में अनेक परिवर्तन होते हैं। यदि पी एच ५ · ५ से कम है तो अनेक पोषक तत्त्व, जैसे लोहा, मैंगनीज़, बोरन और एल्यूमिनियम की विलेयता बहुत कम हो जाती है। यदि पी एच ९ · ० से ऊपर है तो नाइट्रोजन और फास्फरस की उपलब्धि कम हो जाती है।

नाइट्रोजन की उपलब्धि

यदि मिट्टी का पी एच ५ · ५ से कम है तो नाइट्रेट बनने वाली बैक्टीरियों का कार्य सुचारु रूप से नहीं होता। यही कारण है कि ऐसी मिट्टी में चूना देने से नाइट्रोजनीय उर्वरकों से लाभ अधिक होता है। पर यदि क्षारीयता प्रबल हो जाय तो भी नाइट्रीकरण में बाधा पहुँचती है। यही कारण है कि बहुत अधिक चूने से नुकसान हो सकता है और नाइट्रोजन की उपलब्धि कम हो जाती है। पर यदि मिट्टी आर्द्र है तो अधिक चूने से नुकसान होने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।

फास्फरस की उपलब्धि

फास्फरस की उपलब्धि तभी सबसे अधिक होती है जब पी एच ६ · ० और ७ · ० के बीच रहता है।

यदि पी एच इस मान से कम या अधिक हो तो फास्फरस की उपलब्धि कम हो जाती है। यदि पी एच ५ · ५ हो जाय तो अविलेय लोहे और एल्यूमिनियम के लवण विलेय रूप में आ जाते हैं और यदि पी एच ५ · ० या ४ · ८ गिर जाय तो और भी अधिक मात्रा इन लवणों की प्राप्य होती है। यही कारण है कि ५ · ५ पी एच मान पर फास्फरस लोहे और एल्यूमिनियम के साथ मिलकर अविलेय फास्फेट बनता है और तब फास्फेट पौधों के लिए प्राप्य नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि पी एच के ३ · ० या ४ · ० रहने से पौधों में फास्फरस की कमी के लक्षण प्रकट होते हैं। इसके सिवाय विलेय एल्यूमिनियम लवण अनेक पौधों के लिए विषाक्त भी होता है।

विलेय फास्फरस के अवक्षेपण में कैलसियम का भी हाथ है। यदि पी एच ७ · ० से ऊपर है तो अधिक मात्रा में अविलेय कैलसियम फास्फेट बनता है जिससे फिर फास्फरस की उपलब्धि कम हो जाती है। एक ओर तो अधिक अम्लता से लोहे और एल्यूमिनियम के फास्फेट के रूप में फास्फरस बँध जाता, दूसरी ओर अधिक क्षारीयता से अविलेय कैलसियम फ़ास्फेट के रूप में फास्फरस बँध जाता है। इस कारण फास्फरस की उपलब्धि के लिए ६ · ० से ७ · ० के बीच का पी एच उत्तम है।

६·० से ७·० पी एच के मान पर भी फास्फरस का प्रत्यादान अल्प है। पहले वर्ष में प्रत्यादान साधारणतया ५ से ३० प्रतिशत होता है। पहले वर्ष में आलू के खेत में क्रान्टज़ (Krantz, १९४९) ने केवल ७·६ प्रतिशत का और सोयाबीन में केवल १८·२ प्रतिशत का प्रत्यादान पाया है।

साधारणतया कहा जा सकता है कि यदि मिट्टी का पी एच ३·० से ४·० रहता है तो फास्फरस प्रधानतया लोहे के साथ, यदि पी एच ५·० से ६·० रहता है तो प्रधानतया एल्यूमिनियम के साथ बँधा रहता है। जब मिट्टी का पी एच ६·० से ७·० रहता है तब मिट्टी के हाइड्राक्सिल आयनों के द्वारा अवशोषित फास्फरस विलयन में आ जाता है। ७·० पी एच से ऊपर ८·० पी एच पर फास्फरस अविलेय कैलसियम फास्फेट में परिणत हो जाता है।

प्रबल अम्लीय मिट्टी में $H_2 PO_4$ आयन रहता है, अम्लता के कम होने से यह HPO_4 आयन में और अन्त में PO_4 आयन में परिणत हो जाता है। PO_4 आयन की अपेक्षा H_2PO_4 आयन और HPO_4 आयन पौधों को अधिक ग्राह्य होते हैं। ६·० और ६·५ पी एच के बीच विलयन में H_2PO_4 और HPO_4 आयन ही रहते हैं।

पोटेसियम की उपलब्धि

पोटेसियम की उपलब्धि पर मिट्टी की प्रतिक्रिया का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। बहुत अम्लीय मिट्टी में पोटेसियम उर्वरक से स्पष्ट प्रतिचार बहुधा प्राप्त हुआ है, पर अधिकांश दशा में यह पोटेसियम-हीनता के कारण हो सकता है। यदि मिट्टी में बहुत अधिक चूना डाला गया है अथवा कैलसियम उर्वरक की मात्रा बहुत अधिक है तो पोटेसियम से स्पष्ट लाभ होते पाया गया है। यदि सक्रिय कैलसियम की मात्रा बहुत अधिक हो तो पोटेसियम के अवशोषण में बाधा पहुँच सकती है।

गन्धक की उपलब्धि

समस्त पी एच परास पर गन्धक पौधों को ग्राह्य है क्योंकि इन सब पी एच पर यह विलेय होता है। केवल बहुत कम पी एच पर ही यह उतना ग्राह्य नहीं होता क्योंकि इतने अल्प पी एच पर संकर्षण से वह निकल जाता है।

कैलसियम और मैगनीशियम की उपलब्धि

अम्लीय मिट्टी में कैलसियम और मैगनीशियम बड़ा अल्प प्राप्य होता है। पी एच के बढ़ने से कैलसियम की प्राप्यता बढ़ती है। ६·० पी एच तक कैलसियम का अव-

शोषण बढ़ जाता है। यदि अम्लता ऊंची हो तो विलेय कैलसियम के रहने पर भी पौधे उसे ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं।

मैगनीसियम की उपलब्धि भी ७ ·५ पी एच तक बढ़ती है। इसके ऊपर फिर घटती है। आर्द्र मिट्टी में मैगनीशियम की उपलब्धि उतनी नहीं होती जितनी कैलसियम की होती है।

कैलसियम और मैगनीशियम की कमी अम्लीय मिट्टी में ही, विशेष रूप से अम्लीय बलुआर मिट्टी में, देखी जाती है, क्योंकि ऐसी मिट्टी में कलिल अंश, अतः विनिमय क्षमता, अल्प रहती है। ऐसी मिट्टी में तरबूज, ककड़ी, तृणबदर आदि फसलें अच्छी उपजती हैं।

मैंगनीज और लोहे की उपलब्धि

अधिकांश मिट्टियों में मैंगनीज़ और लोहा रहते हैं। साधारणतया ये अविलेय रूप में रहते हैं। मिट्टी का चाकलेट और लाल रंग इन्हीं तत्त्वों के लवणों के कारण होता है। पौधों को इन तत्त्वों की बड़ी अल्प मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। यदि इनकी मात्रा अधिक हो तो ये पौधों के लिए विषाक्त होते और पौधों की वृद्धि में उनसे बाधा पहुँचती है। यदि मिट्टी का पी एच ५ ·५ और ७ ·० के बीच रहे तो पौधों को मिट्टी से पर्याप्त मैंगनीज़ और लोहा प्राप्त हो जाते हैं। इस पी एच पर मैंगनीज मैंगनस के और लोहा फेरस के रूप में रहते हैं। ऐसी मिट्टी में मैंगनीज़ और लोहे की हीनता नहीं होती। यदि मिट्टी का पी एच ५ ·५ से कम हो तो इन तत्त्वों की उपलब्धि बढ़ जाती है और उनका विषाक्त प्रभाव प्रकट हो सकता है। पी एच की कमी से मैंगनीज़ की उपलब्धि बढ़ जाती है। एल्यूमिनियम के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। पी एच के हेरफेर से पौधों के एल्यूमिनियम के ग्रहण करने पर विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

६·५ से ऊपर पी एच पर मैंगनीज़ और लोहे मैंगेनिक आक्साइड और फेरिक आक्सा-इड के रूप में रहते हैं। तब ये पौधों को ग्राह्य नहीं होते और उनकी हीनता के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। उदासीन अथवा अल्प क्षारीय मिट्टी में पौधे लोहे को ग्रहण करने में असमर्थ हो सकते हैं, पर ज्यों ही मिट्टी अल्प अम्लीय हो जाती है वे ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। मिट्टी में सक्रिय कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति से ऊंचे पी एच पर भी पौधे लोहे को ग्रहण कर सकते हैं।

बोरन, जस्ता, तांबा, और मोलिबडेनम

बहुत अम्लीय मिट्टी में बोरन, जस्ता और तांबे की कमी हो सकती है क्योंकि

ऐसी मिट्टी में ये तत्त्व ऐसे विलेय लवणों के रूप में रहते हैं जिनकी क्षति संकर्षण से जल्द हो जाती है। बोरन की उपलब्धि ७.० पी एच के ऊपर क्रमशः कम होती जाती है। ८.५ पी एच तक यह कमी होती है। उसके बाद जब मिट्टी अधिक क्षारीय हो जाती है तब फिर उपलब्धि बढ़ती है। चूने से बोरन का कोई विशेष अवक्षेपण नहीं होता, पर ऐसा मालूम होता है कि चूने के कारण बोरन के संचारण में बाधा पहुँचती है।

जस्ता और ताँबे की उपलब्धि भी ७.० पी एच पर कम होनी शुरू होती है और क्रमशः कम होती जाती है। ८.५ पी एच या इसके ऊपर तो यह बहुत अल्प हो जाती है। चूना के आधिक्य से इन पोषक तत्त्वों की साधारणतया कमी हो जाती है। विलेय फास्फेट के व्यवहार से भी बोरन, जस्ता और ताँबे की कमी हो सकती है।

नाइट्रोजन की उपलब्धि पर मिट्टी की प्रतिक्रिया

मिट्टी में नाइट्रोजन, प्रधानतया कार्बनिक नाइट्रोजन के रूप में रहता है। अब पता लगा है कि कुछ पौधे कार्बनिक नाइट्रोजन को सीधे ग्रहण कर सकते हैं। पर अधिकांश पौधे नाइट्रेट और अमोनियम के रूपों में ही नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं। कार्बनिक नाइट्रोजन को नाइट्रेट और अमोनियम के रूपों में परिणत करने के लिए सूक्ष्माणुओं की सहायता लेनी पड़ती है। ये सूक्ष्माणु उसी मिट्टी में पनपते और कार्य करते हैं जिसमें जल, उनके आहार और प्रतिक्रिया अनुकूल हो। कार्बनिक पदार्थों से तभी सबसे अधिक लाभ होता है जब वे विघटन की दशा में हों, पर इससे वे मिट्टी से निकल भी जाते हैं। नये खेतों को जब जोता जाता है तब २५ वर्षों में उसका २५ से ३० प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ निकल जाता है। ऐसे खेत की उर्वरता नष्ट हो जाती है यदि उसमें फिर से कार्बनिक पदार्थ न डाला जाय।

सभी प्रकार की मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थों के डालने से लाभ होता है। इससे मिट्टी का फ़ास्फरस जल्द उपलब्ध होनेवाले रूप में रहता है। कार्बनिक पदार्थों के रहने से मिट्टी के पानी के अवशोषण या पकड़ रखने की क्षमता बढ़ जाती है। इससे सूखा में कार्बनिक पदार्थवाली मिट्टी की फसल उतनी जल्द सूखती नहीं है।

बलुआर मिट्टी की उर्वरता, उसकी आयोनिक विनियम क्षमता पर निर्भर करती है और यह कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर करती है। कार्बनिक पदार्थों से फास्फेट के स्थिरीकरण के रोकने में भी सहायता मिलती है। कार्बनिक पदार्थों से कैलसियम और फास्फरस की विलेयता भी ३० से १०० प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

बाईसवाँ अध्याय

मिट्टी और मिट्टी का परीक्षण

मिट्टी—चट्टानों के छीजने से मिट्टी बनती है। इस कारण मिट्टी की प्रकृति चट्टानों की प्रकृति पर निर्भर करती है। यदि चट्टान बलुआर है तो उससे बनी मिट्टी के कण बड़े और दानेदार होंगे; यदि चट्टान बारीक कणवाली है तो उससे चिकनी, महीन और लसदार मिट्टी प्राप्त होगी। मिट्टी बनने की क्रिया बड़ी धीमी गति से, पर बराबर होती रहती है। मिट्टी बनाने का काम मनुष्य की शक्ति से बाहर है। पर मिट्टी का सुधार मनुष्य कर सकता है। अनेक युगों से आज की मिट्टी बनती आ रही है। आज भी नियमित रूप से यह काम हो रहा है। मिट्टी का बनना प्राकृतिक साधनों से होता है। पानी, हवा तथा ऋतुओं का मिट्टी बनने में पर्याप्त हाथ है।

चट्टान—चट्टानों की प्रकृति से मिट्टी दो प्रकार की मानी गयी है। एक वह मिट्टी जो अम्लीय चट्टानों से बनती है। दूसरी वह मिट्टी है जो भास्मिक चट्टानों से प्राप्त होती है। अम्लीय चट्टानों में सिलिका की मात्रा ६५ से ७५ प्रतिशत रहती और भास्मिक चट्टानों में ५० से ५५ प्रतिशत। पर इन दोनों प्रकार की चट्टानों के विभाजन की कोई स्पष्ट रेखा नहीं है। एक वर्ग धीरे-धीरे दूसरे वर्ग में प्रविष्ट करता है। मेरिल (Merril) ने चट्टानों को तीन वर्गों में विभक्त किया है—

		सिलिका प्रतिशत
अम्लीय वर्ग	ग्रेनाइट (granite)	७८·६३
	लेपेराइट (leperite)	७६·६८
	ओबसिडीयन (obsidian)	८३·७१
मध्यम वर्ग	सियेनाइट (syenite)	७२–५५
	ट्रेकाइट (trachyte)	६४–६०
	हयालोट्रेकाइट (hyalotrachyte)	६४–६०
	अण्डेसाइट (andesite)	६७–६६
भास्मिक वर्ग	डायबेस (diabase)	५४–४८
	बेसाल्ट (basalt)	५१–४१
	पेरिडेटाइट (peridetite)	४३–३४

अम्लीय मिट्टी का निर्माण भास्मिक मिट्टी के निर्माण-काल से बहुत प्राचीन है। अम्लीय मिट्टी में पोटाश की मात्रा अधिक रहती है और भास्मिक मिट्टी में लोहे और चूने की मात्रा अधिक रहती है।

मिट्टी के निर्माण में जल का प्रभाव—जब पानी चट्टानों पर बरसता है तब चट्टानें भींगती और उससे कुछ मुलायम हो जाती हैं। वर्षा के पानी में वायु से कार्बन डाइ-आक्साइड आ जाता है। चट्टानों पर कार्बन डाइ-आक्साइड की धीरे-धीरे क्रिया होती है। चट्टानें मुलायम हो जातीं और ऊपर के स्तर का छोटे-छोटे कणों में छीजन होता है।

ऊँची चट्टानों पर बर्फ भी जमती है। बर्फ के जमने से उसका दबाव चट्टानों पर पड़ता है। चट्टान की दरारों में पानी प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ जब वह जमकर बर्फ बनता है तो उसका आयतन बढ़ता है। इससे बहुत अधिक दबाव उत्पन्न होता और उससे चट्टान का छीजन होता है। पानी के ऊपर से नीचे गिरने पर भी चोटों से चट्टानें टूटती हैं। पानी के बहाव से पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े परस्पर रगड़ते हुए पानी के साथ बहते हैं और इससे क्रमशः छोटे होते जाते हैं। जितनी अधिक दूर वे पानी से बहते हैं, उतने ही सूक्ष्म होते जाते हैं। यही कारण है कि गंगा और यमुना की बालू बहुत महीन होती है और सोन और फाल्गु की बालू बहुत मोटी होती है।

वायु का प्रभाव—वायु की क्रियाएं चट्टानों पर निरन्तर होती रहती हैं। वायु में एक गैस आक्सिजन रहती है। यह गैस बड़ी क्रियाशील होती है और चट्टानों को आक्रान्त करती है। इससे चट्टानों की ऊपरी तहें आक्रान्त होने के कारण भंगुर हो जाती हैं और चट्टानों के छोटे-छोटे कण चट्टानों से अलग होकर गिरते और पानीसे बहा कर दूर ले जाये जाकर मिट्टी का रूप धारण करते हैं। हवा से मिट्टी के बारीक टुकड़े भी एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाये जाते हैं। इन टुकड़ों और पत्थरों के गिरने से भी चट्टानों पर चोटें पड़ती हैं और उससे वे टूटते रहते और कुछ कण अलग होते रहते हैं।

ऋतुओं का प्रभाव—साल में गर्मी और सर्दी बारी-बारी से आती रहती है। गर्मी से सब चीजें फैलती या बड़ी होती और सर्दी से सिकुड़ती या छोटी होती हैं। चट्टानें भी गर्मी से बढ़ती और सर्दी से सिकुड़ती हैं। इस घटती-बढ़ती के कारण चट्टानें कमजोर हो जाती हैं और धीरे-धीरे छोटे-छोटे कणों में टूट जाती हैं।

वनस्पति का प्रभाव—पौधों से भी मिट्टी के बनने में सहायता मिलती है। बीजों को जब उपयुक्त मिट्टी और आवश्यक जल मिल जाता है, तब वे उगते हैं और उनकी जड़ें मिट्टी में फैलती हैं। जड़ों के फैलने के लिए स्थान की आवश्यकता होती है।

ये जड़ें चट्टानों को तोड़-फोड़ कर स्थान बना लेती हैं। यह साधारण अनुभव है कि पीपल के पेड़ की जड़ें पक्की दीवारों को तोड़कर स्थान बना लेती हैं। ऐसा ही कार्य पहाड़ों पर भी वृक्षों द्वारा होता है और चट्टानों के टूटने से भी मिट्टी बनती रहती है। फंगस जाति के कुछ पौधे चट्टानों के मुलायम भागों को भी अपनी जड़ों से तोड़ते हैं। इस प्रकार चट्टानों के तोड़ने-फोड़ने में पौधों का प्रमुख हाथ है।

बिजली का प्रभाव—बादलों के कारण हवा में बिजली की गरज और चमक होती है। यह बिजली कभी-कभी पृथ्वी पर भी गिरती है और गिरकर चोटें करती और चट्टानों को चूर-चूर कर देती है।

हर स्थान की मिट्टी का स्तर दो प्रकार का होता है। एक ऊपर का स्तर जिसको हम ऊपरी मिट्टी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे सायल (soil) कहते हैं। दूसरा नीचे का स्तर जिसे हम निचली मिट्टी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे सबसायल (sub-soil) कहते हैं। इन दोनों स्तरों की मिट्टियों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। हवा, पानी, ख़ाद और घास-पातों के सड़ने से और जोताई और गोड़ाई से ऊपरी मिट्टी खेती के योग्य होती है। निचली मिट्टी में उपर्युक्त पदार्थों के अभाव से वह खेती के योग्य नहीं होती। ऊपरी मिट्टी का विश्लेषण व्यापक रूप से हुआ है। भारतीय, अमेरिकी और हवाई टापू की मिट्टी के विश्लेषण से निम्नलिखित आँकड़े प्राप्त होते हैं।

पदार्थ	भारतीय	अमेरिकी	हवाई
समस्त सिलिका	७७·६३	८५·५२	३२·६३
विलेय सिलिका	०·३५	६·४०	१७·५९
पोटाश	०·६४	०·४०	०·३४
सोडा	०·०५	०·२७	०·३५
चूना	१·०२	०·७५	१·३०
मैंगनीशिया	—	०·६८	१·१८
मैंगनीज आक्साइड	—	०·१२	०·५०
लोहा आक्साइड	२०·०८	३·८१	२८·०२
अलुमिना	२·५०	५·१५	२०·२७
फास्फरिक अम्ल	०·०२५	०·१६	०·३५
गन्धकाम्ल	—	०·०४	०·३२
नाइट्रोजन	०·०४७	०·१८	०·३३

यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि दो स्थलों की मिट्टी कभी एक-सी नहीं होती। एक ही चट्टान से बनी मिट्टी भी एक-सी नहीं होती। एक चट्टान से बनी मिट्टी में भी

वर्षा, संकर्षण, ताप आदि कारणों से विभिन्नता आ जाती है। अतः मिट्टी की प्रकृति बहुत विभिन्न रहती है और बहुत अल्प दूरी पर भी प्रकृति बदलती रहती है।

मिट्टी की भौतिक दशा के कारण वैज्ञानिकों ने मिट्टी को चार प्रमुख वर्गों में विभक्त किया है। वे हैं—१. कंकरीली, २. बलुआर (रेतीली), ३. दुमट और ४. मटियार। यह विभाजन मिट्टी के विस्तार की दृष्टि से होने से बिलकुल अनियमित है और एक वर्ग का सरलता से दूसरे वर्ग में समावेश हो जाता है। इंगलैण्ड में मिट्टी का विभाजन इस प्रकार करते हैं—

१. **स्थूल बलुआर मिट्टी**—इसके कण के व्यास ०·०५ और ०·०२ इंच के बीच होते हैं।

२. **मध्यम बलुआर मिट्टी**—इसके कण के व्यास ०·०२ और ०·०१ इंच के बीच होते हैं।

३. **सूक्ष्म बलुआर मिट्टी**—इसके कण के व्यास ·०१ और ०·००४ इंच के बीच होते हैं।

४. **दुमट मिट्टी**—इसके कण के व्यास ०·००२ और ०·०००२ के बीच होते हैं।

५. **मटियार मिट्टी**—इसके कण के व्यास ०·०००२ इंच से छोटे होते हैं।

एक तीसरी रीति से भी मिट्टी का वर्गीकरण हुआ है। इस रीति में मिट्टी को दो वर्गों में विभक्त करते हैं। एक वर्ग को तलछटी मिट्टी (sedimentary soil) और दूसरे वर्ग को स्थानान्तरित मिट्टी (transported soil) कहते हैं। जो मिट्टी उसी स्थान की चट्टानों से बनी होती है उसे तलछटी मिट्टी कहते हैं। तलछटी मिट्टी का संगठन उस स्थान की चट्टानों के संगठन का द्योतक है। स्थानान्तरित मिट्टी जिन चट्टानों से बनी होती हैं, उनसे दूर हवा या पानी अथवा हिम नदी द्वारा बहा कर लायी जाकर इकट्ठी होती है। इनमें जो स्थानान्तरित मिट्टी धीरे-धीरे आकर किसी पर्वत की ढाल पर इकट्ठी होती है, उसे समूढ़ मिट्टी (colluvial soil) कहते हैं और जो स्थानान्तरित मिट्टी नदी द्वारा बहाकर दूर मैदान में किसी रुकावट के कारण जमती है उसे जलोढ़ या कछार (alluvial) मिट्टी कहते हैं। जलोढ़ मिट्टी को कहीं-कहीं दियारे की मिट्टी कहते हैं। कुछ लोगों ने मिट्टी को शुष्क मिट्टी (arid soil) और आर्द्र मिट्टी (humid soil) में विभक्त किया है। साधारणतया गरम देशों की मिट्टी शुष्क और मन्द ताप प्रदेशों की मिट्टी आर्द्र होती है।

ये सब ही विभाजन ऐसे हैं कि एक वर्ग दूसरे वर्ग में इतनी सूक्ष्मता से प्रवेश करता है कि कुछ मिट्टी के लिए यह कहना कठिन हो जाता है कि वह किस वर्ग की मिट्टी है। फसल उगाने की दृष्टि से उपर्युक्त चार वर्गों—(१) कंकरीली, (२) बलुआर,

(३) दुमट और (४) मटियार—के अतिरिक्त तीन वर्ग और जोड़े जा सकते हैं। ये तीन वर्ग हैं—(१) काली मिट्टी, (३) उसरीली मिट्टी और (३) उपजाऊ मिट्टी।

कंकरीली मिट्टी—ऐसी मिट्टी बिहार के छोटा नागपुर, मध्य भारत, दक्खिन पठार और उत्तर प्रदेश में पायी जाती है। इस मिट्टी में कंकड़ और पत्थर मिले रहते हैं। इसका धरातल ऊंचा-नीचा होता है। इस कारण ऐसी धरती की सिंचाई का प्रबन्ध ठीक से नहीं हो सकता। ऐसी धरती से तीन काम होते हैं—(१) घास खूब उपजती है। पशुओं के लिए वहाँ चरागाह अच्छा होता है। इस कारण पशु-पालन का व्यवसाय सरलता से किया जा सकता है। (२) ऐसी भूमि में पेड़ सरलता से उगते हैं। इसमें जंगल अच्छे होते हैं। इन जंगलों में उपयोगी लकड़ियां उपजायी जा सकती हैं। इन पेड़ों पर लाह के कीड़े भी उपजाकर उनसे लाह प्राप्त किया जा सकता है। (३) ऐसी भूमि से मकान बनाने के पत्थर निकाले जा सकते हैं। उत्तर प्रदेश के चुनार और बिहार के सासाराम, पलामू आदि स्थानों में ऐसे पत्थर निकाले जाते हैं।

बलुआर मिट्टी—बलुआर मिट्टी के कण बड़े-बड़े और खुरखुरे होते हैं। इनमें चिपक नहीं होती। इससे ऐसी मिट्टी में पानी नहीं टिकता; पर ऐसी मिट्टी की जोताई और गोड़ाई सरलता से हो जाती है। पानी धारण करने की क्षमता के अभाव में इनमें फसलें उसी समय तक उपज सकती हैं जब तक पानी बरसता रहता है। ऐसी भूमि नदियों की तली और समुद्र-तट पर पायी जाती है। इसका रंग प्रायः चमकीला होता है। कहीं-कहीं अन्य रंगों की भी होती है। इसके अन्दर वायु का प्रवेश स्वच्छन्दता से होता है; पर सरदी और गर्मी का प्रभाव भी तत्काल पड़ता है। इससे ऐसे खेतों के पौधे गर्मी में जल्द झुलस जाते हैं। पूर्णतया बलुआर मिट्टी खेती के लिए ठीक नहीं होती, पर ऐसी भूमि में तरबूजा, खरबूज, ककड़ी सरीखी फसलें अच्छी होती हैं।

रेतीली भूमि के सुधारने के प्रयत्न हुए हैं। कुछ सीमा तक इनका सुधार हो सकता है। इनके सुधार के लिए निम्नलिखित रीतियां उपयुक्त हो सकती हैं।

१. मिट्टी में चूना मिलाना। २. मिट्टी में गोबर की सड़ी हुई खाद मिलाना। मिट्टी में चिकनी मिट्टी मिलाना। ३. खेत में पानी भरकर जोताई करना ताकि उसपर आस-पास की मिट्टी आकर जम जाया करे।

दुमट मिट्टी—दुमट में आधी चिकनी और आधी बलुआर मिट्टी पायी जाती है। यह मिट्टी सब प्रकार की खेती के लिए उपयुक्त है। इसमें हर प्रकार की फसलें पैदा की जा सकती हैं। ईख के लिए तो यह सर्वथा उपयुक्त है। आलू भी इसमें अच्छा उगता है। ऐसी मिट्टी में पानी सोखता है और वायु सरलता से प्रविष्ट करती

है; ऐसी मिट्टी की जोताई-गोड़ाई सरलता से होती है। दुमट मिट्टी दो प्रकार की होती है। एक कड़ी या भारी दुमट, जिसमें चिकनी मिट्टी ६० से ७० प्रतिशत रहती है और शेष ४० से ३० प्रतिशत बालू रहती है। दूसरी हल्की दुमट, जिसमें चिकनी मिट्टी ३० से ४० प्रतिशत रहती है।

मटियार मिट्टी—इस मिट्टी को चिकनी मिट्टी भी कहते हैं। इसमें केओलीन की मात्रा सबसे अधिक रहती है। गीली होने पर यह बहुत चिपकनेवाली लसदार होती है और सूख जाने पर बहुत कड़ी हो जाती है। ऐसी मिट्टी में कुछ फसलें अच्छी उपजती हैं। धान के लिए यह मिट्टी अच्छी है पर गेहूं, जौ, ईख आदि फसलें इसमें अच्छी नहीं उगतीं। इसमें वायु उतनी स्वच्छन्दता से प्रवेश नहीं करती। सूखने पर इसमें बड़ी-बड़ी दरारें फट जाती हैं। बरतन बनाने के लिए यह मिट्टी अच्छी समझी जाती है।

काली मिट्टी—काली मिट्टी भारत के कुछ ही स्थलों—बंबई, मध्य प्रदेश और छोटा नागपुर—के कुछ भागों में पायी जाती है। ऐसी मिट्टी कोयला आदि खनिज पदार्थों के मिले रहने से बनती है। कुछ लोगों का मत है कि ज्वालामुखी पहाड़ों के उद्‌गमन के कारण मिट्टी काली होती है। यह मिट्टी चिकनी मिट्टी से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। चिकनी मिट्टी-जैसे ही गुण इस मिट्टी में होते हैं। ऐसी मिट्टी में दरारें फटती हैं और मिट्टी कड़ी होती है। भींगने पर बड़ी लसदार हो जाती है और इसमें हल चलाने में कठिनाई होती है। ऐसी मिट्टी में पानी सोख जाता और नीचे नमी बनी रहती है। इसमें सिंचाई के बिना भी काम चल जाता है। यह मिट्टी उपजाऊ होती है।

ऊसरीली मिट्टी—यह मिट्टी कुछ अंश तक चिकनी मिट्टी से मिलती-जुलती है। केवल भौतिक दशा में कुछ भिन्न होती है। ऐसी मिट्टी में सोडियम कार्बोनेट (सज्जी), सोडियम सल्फेट और सोडियम क्लोराइड विशेष रूप से पाये जाते हैं। इन लवणों के कारण ही मिट्टी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती। ऐसी भूमि को उपजाऊ बनाने के अनेक प्रयत्न हुए हैं। यदि ऐसी मिट्टी में छोआ डालकर जोत दिया जाय तो इसमें फसलें उपज सकती हैं। ऐसी भूमि सुधारने के जो उपाय बताये गये हैं, उनमें निम्नलिखित रीतियाँ उल्लेखनीय हैं—

१. जमीन की गहरी जोताई कर नमकवाले पानी को निकाल देना।
२. ऐसी भूमि में ऐसी फसल बोना जिसकी जड़ गहरे तक जाती है, जैसे अरहर, चना इत्यादि।
३. मिट्टी में हवा का प्रवेश कराने के लिए कंकड़-पत्थर इत्यादि डालना।

४. भूमि के ऊपर दो-तीन इंच मोटी बालू की तह बिछाना।

५. मिट्टी में छोआ डालकर जोताई करना और सींचना।

उपजाऊ मिट्टी—जिस मिट्टी में बालू सात भाग, चिकनी मिट्टी के तीन भाग, चूना के एक भाग और खाद के एक भाग रहते हैं वह मिट्टी उपजाऊ होती है। इस मिट्टी में सब प्रकार की फसलें उपज सकती हैं यदि उन्हें पर्याप्त पानी मिले और जल-वायु की अवस्था अनुकूल हो।

मिट्टी का विश्लेषण—भारत के कृषि विभाग की स्थापना सन् १९०० में हुई थी। तब से मिट्टी के विश्लेषण और खाद की अवस्था और आवश्यकता का अध्ययन व्यापक रूप से हुआ है और ऐसा कहा जा सकता है कि इस विभाग से अनेक बहुमूल्य सूचनाएँ अब तक प्राप्त हुई हैं, पर किस खेत में कैसी खाद देने से उपज अच्छी होगी इसका अध्ययन इधर कुछ वर्षों से ही शुरू हुआ है।

भारत सरकार द्वारा कृषि पर एक रायल कमीशन की नियुक्ति हुई थी, उसकी रिपोर्ट सन् १९२८ में प्रकाशित हुई। उस रिपोर्ट में लिखा है—

"यह स्वीकार किया जाता है कि कृषि विभाग ने यद्यपि बहुत उपयोगी कार्य किया है, पर उन्नत खाद के व्यवहार का प्रवेश अभी तक किसानों के बीच नहीं हुआ है। कृषि विभाग अब भी यह बताने में समर्थ नहीं है किस उर्वरक का उपयोग आर्थिक दृष्टि से अच्छा है। यद्यपि सन् १९०० से ही खाद के संबंध में अनेक प्रयोग हुए हैं, विभाग का समय और शक्ति का उपयोग इस दिशा में बहुत अधिक हुआ है और अनेक प्रायोगिक फार्मों में प्रयोग किये गये हैं, पर अब भी कृषि-विशेषज्ञ किसानों को यह बताने में असमर्थ हैं कि किस भूमि में किस खाद का उपयोग करना चाहिए।"

यही अवस्था १९४३ तक रही जब कि एक योजना बनी जिसमें किस मिट्टी में कैसी खाद डालनी चाहिए, इसके अन्वेषण का सुझाव रखा गया। यह योजना १९४८ में कार्यान्वित हुई।

वोएल्कर ने पहले-पहल कृषि रसायनज्ञ की नियुक्ति की सन् १८८९ में सिफारिश की थी। इसके फलस्वरूप कृषि रसायनज्ञ की नियुक्ति हुई जिनका काम था—

१. मिट्टी का रासायनिक विश्लेषण करना और

२. सरकारी कृषि फार्मों में खाद की आवश्यकताओं पर प्रयोग करना।

मिट्टी का समस्त रासायनिक विश्लेषण—

भारतीय मिट्टी का विश्लेषण अब तक बहुत कुछ हुआ है, पर उससे पता नहीं लगता कि भूमि में किन-किन पोषक तत्त्वों की कमी है। केवल रासायनिक विश्लेषण

से खाद की आवश्यकताओं का पता नहीं लग सकता। खेतों में प्रयोग करके ही इसका पता लग सकता है।

रोबिनसन (१९४५) का कथन है कि मिट्टी के विश्लेषण से प्रत्येक दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि किस पोषक तत्त्व की कमी है और उसकी पूर्ति के लिए कौन खाद और उर्वरक कितनी मात्रा में डालना चाहिए। मिट्टी के समस्त रासायनिक विश्लेषण से केवल यह पता लगता है कि मिट्टी में कौन-कौन तत्त्व कितनी मात्रा में विद्यमान हैं। पोषक तत्त्वों की उपस्थिति का ज्ञान हो जाता है। पर उससे यह नहीं पता लगता कि पोषक तत्त्वों की कितनी मात्रा पौधों को तत्काल उपलब्ध हो सकती है। किस गति से पोषक तत्त्व पौधों को प्राप्त होते रहेंगे इसका भी पता नहीं लगता। यदि स्थिति अनुकूल हो तो यह सम्भव है कि उपस्थित पोषक तत्त्वों का अधिकांश भाग पौधों को प्राप्त हो। ऐसा देखा जाता है कि मिट्टी में पर्याप्त पोषक तत्त्वों के रहने पर भी फसलें अच्छी नहीं उगती और पैदावार कम होती है। ऐसी मिट्टी में खाद देने से उपज बढ़ जाती है। अतः मिट्टी का समस्त रासायनिक विश्लेषण केवल वैज्ञानिकों के काम की चीज है। किसानों को उससे कोई लाभ नहीं होता।

पौधा-राख विश्लेषण—कुछ लोगों का सुझाव है कि पौधों की राखों के विश्लेषण से कुछ-कुछ पता लगता है कि मिट्टी में जिसमें पौधा उगा है किस पोषक तत्त्व की कमी है और उससे पता लग सकता है कि किस उर्वरक के देने से अधिक लाभ होगा। पर इस संबंध में इधर जो अन्वेषण हुए हैं उनसे पता लगता है कि यह बात ठीक नहीं है। पौधों में पोषक तत्त्वों की उपस्थिति अनेक बातों पर निर्भर करती है जिनमें (१) जलवायु की स्थिति, (२) फसल की किस्म (३) फसल की जड़-प्रणाली, (४) पौधे के परिपक्व होने का क्रम (५) जोताई के ढंग और (६) मिट्टी की प्रकृति प्रमुख हैं। इन दोषों के होते हुए भी जिस मिट्टी में फसल की उपज अच्छी नहीं होती उसके कारण समझने में राखों के विश्लेषण से कुछ सहायता मिल सकती है।

जीव-विज्ञान विधियाँ—भूमि की उर्वरता और पोषक तत्त्वों की कमी का पता लगाने के लिए अनेक जीव-विज्ञान विधियों का आविष्कार हुआ है। एक ऐसी विधि दण्डाणु-संबंधी विधि है। इस विधि का आविष्कार पहले-पहल डेनमार्क में हुआ। पीछे अन्य लोगों ने इसकी पुष्टि की। इस विधि में मिट्टी की निश्चित मात्रा को लेकर उसमें विभिन्न उर्वरक डालकर ऐजोटेबैक्टर बैक्टीरिया उपजायी जाती है। जिस नमूने में बैक्टीरिया की उपज बहुत अच्छी होती है उससे परिणाम निकलता है कि वह उर्वरक उस मिट्टी के लिए बड़ा अच्छा है। इस रीति से ७२ घण्टे में परिणाम प्राप्त हो जाता है। अन्य लोगों ने अन्य बैक्टीरिया उपजाकर उपलब्ध फास्फरस और पोटेसियम

की उपस्थिति का पता लगाया है। कौन (Conn, १९२८) ने मिट्टी की दशा मालूम करने के लिए बैक्टीरियम ग्लोबिफार्मिस (Bacterium globiformis) का उपयोग किया है।

नेबायर परीक्षण (Neubauer test)—अनेक अन्वेषकों ने नेबायर परीक्षण का उपयोग किया है। इस परीक्षण के आविष्कारक नेबायर और श्नाइडर (Neubauer and Schneider) हैं। यहां एक छिछले पात्र में निश्चित मात्रा में मिट्टी रखकर उसमें कोई पौधा, बहुधा राई, उगाते हैं। जलकी अनुकूलतम अवस्था में सब आवश्यक तत्त्वों की अनुकूलतम मात्रा डालते हैं। केवल एक में कुछ नहीं डालते। एक निश्चित समय के बाद, साधारणतया १८ दिनों के बाद, पौधों का विश्लेषण करते हैं। मिट्टी से जो पोषक तत्त्व निकल गये हैं उसका भी परीक्षण करते हैं। इससे पता लग जाता है कि किस मिट्टी को कौन उर्वरक आवश्यक है। यह विधि फास्फरस और पोटेसियम की हीनता के लिए बड़ी उपयुक्त है पर नाइट्रोजन के लिए यह ठीक नहीं है।

खेतों में परीक्षण—बिहार के खेतों में उर्वरक डालकर उनके प्रभाव का अध्ययन हुआ है। पर यह विधि भी सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती, क्योंकि मिट्टी की विभिन्नता बहुत अधिक पायी जाती है। एक खेत पर उर्वरक का जो प्रभाव हो दूसरे खेत पर भी वह ठीक वैसा ही होगा इसकी कोई निश्चितता नहीं है। फिर इस किस्म के प्रयोग भी कुछ थोड़ी फसलों, ईख, गेहूं और धान, पर ही हुए हैं। मकई, जौ और चना पर अपेक्षया कम प्रयोग और तेलहन और दलहन पर तो और भी कम प्रयोग हुए हैं।

द्रुत मिट्टी परीक्षण—कुछ विधियाँ ऐसी प्रयुक्त हुई हैं जिनसे मिट्टी का निष्कर्ष निकाल कर उनका परीक्षण हो सकता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भिन्न-भिन्न प्रतिकारकों और उनकी भिन्न-भिन्न प्रबलताओं का उपयोग किया है।

ऐसे निष्कर्ष की अम्लता और अन्न गुण एक से नहीं होते। मिट्टी से कितनी मात्रा निष्कर्ष में निकलती है यह भी भिन्न-भिन्न होती है।

श्राइनर और एंडर्सन ने निष्कर्ष निकालने वाले प्रतिकारकों की एक सूची दी है जो द्रुत रासायनिक परीक्षण में उपयुक्त हो सकती है। थौर्नटन, कोन्नर और फ्रेज़र (१९४५) की मिट्टी में फास्फरस और पोटेसियम के निर्धारण की रीतियाँ निम्नलिखित हैं—

धरती से परीक्षण के लिए कैसे मिट्टी निकाली जाय, यह महत्त्व का विषय है। ऊपरी सतह पर से ही मिट्टी उठा ली जाय अथवा नीचे की सतह से मिट्टी निकाली जाय? यदि नीचे की सतह से मिट्टी निकाली जाय तो कितनी गहराई के तल की मिट्टी

होनी चाहिए। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि जिस मिट्टी का परीक्षण करना हो वह सतह से नौ इंच से अधिक नीचे की गहराई की मिट्टी न हो। नौ इंच गहराई तक की मिट्टी को निकालकर उसे भलीभांति मिलाकर तब परीक्षण करना चाहिए। मिट्टी निकालने के लिए जो औजार प्रयुक्त होता है उसका चित्र यहाँ दिया हुआ है, इस औजार से विभिन्न गहराई तक की मिट्टी निकाली जा सकती है।
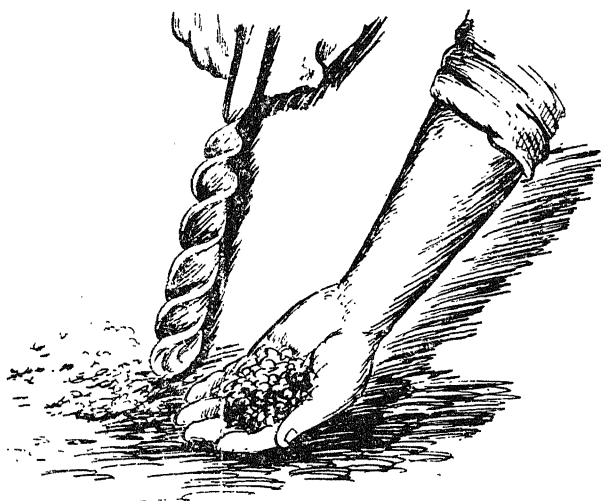
चित्र—५७ मिट्टी का नमूना निकालने का उपकरण

(इस यन्त्र से परीक्षण के लिए मिट्टी का नमूना निकाला जाता है।)

फास्फरस प्रतिकारक

प्रतिकारक नं० १—चार ग्राम अमोनियम मोलिबडेट को ५०० घन सेन्टीमीटर आसुत जल में घुलाकर विलयन को धीरे-धीरे ६० घन सेन्टीमीटर सान्द्र और ४३७ घन सेन्टीमीटर आसुत जल के मिश्रण में मिलाइए। मिश्रण को बराबर हिलाते रहिए।

ऐसा विलयन प्रतिकारक के रूप में उपयुक्त होता है, पर यह स्थायी नहीं होता। कुछ मास के बाद यह काम के लिए ठीक नहीं रहता। यदि इससे पाँच गुना सान्द्रण

का विलयन तैयार करें और इस्तेमाल करने के समय उसे हल्का बना लें तो उसे कई मास तक प्रयुक्त कर सकते हैं।

प्रतिकारक नं० २—सूखा चूर्ण किया स्टेनस क्लोराइड या स्टेनस अक्जलेट।

कार्यवाही—प्रतिकारक नं० १ को कांच की शीशी में रखकर आधा चाय-चम्मच मिट्टी डालकर जोरों से एक मिनट तक हिलावें। उसे फिर छानकर २ या ३ घन सेन्टीमीटर प्रतिकारक नं० १ डालकर आल्पीन की नोक बराबर प्रतिकारक नं० २ डालें। दोनों मिलाकर उसका रंग देखें। प्रतिकारक नं० २ को फिर और डालकर उसका रंग देखें। यदि रंग गाढ़ा होता है तो उस अन्तिम रंग को ध्यान से देखें। धुंधले नीले रंग से प्रकट होता है कि मिट्टी में प्रचुर फास्फरस है। बीच के नीले रंग से मालूम होता है कि उसमें आवश्यक फास्फरस है और हल्के नीले रंग से मालूम होता है कि उसमें मध्यम फास्फरस है और हरा या नीलापन के साथ हरे रंग से मालूम होता है कि फास्फरस की कुछ कमी है और यदि कोई रंग न हो केवल पीला रंग हो तो उसमें फास्फरस की बड़ी कमी है।

नोट—क्षारीय विलयन में फास्फरस की उपस्थिति की सूचना ठीक-ठीक नहीं मिलती। ऐसी मिट्टी से असाधारण ऊंचा परिणाम प्राप्त होता है।

पोटेसियम प्रतिकारक

प्रतिकारक नं० १—पाँच ग्राम कोबैल्टी-नाइट्राइट और ३० ग्राम सोडियम नाइट्राइट को आसुत जल में घुलावें, उसमें ५ घन सेन्टीमीटर हिम्य ऐसिटिक अम्ल डालकर विलयन को १०० घन सेन्टीमीटर बना लें और कुछ दिनों तक रख छोड़ें।

१५ ग्राम सोडियम नाइट्राइट को १०० घन सेन्टीमीटर आसुत जल में घुलाकर ऊपर के विलयन का ५ घन सेन्टीमीटर डालकर पी एच ५.० कर लें। यदि आवश्यकता पड़े तो कुछ और ऐसिटिक अम्ल डाल लें। सोडियम कोबैल्टी-नाइट्राइट शुद्ध 'बेकर' कम्पनी का बना हुआ विश्लेषणवाला रहना चाहिए, नहीं तो परिणाम विश्वसनीय नहीं होगा।

प्रतिकारक नं० २—आइसोप्रोपिल एलकोहल (अनार्द्र)।

कार्यवाही—प्रतिकारक नं० १ के १० घन सेन्टीमीटर को काँच शीशी में रखकर उसमें वायु-सूखी मिट्टी एक चम्मच डालें। एक मिनट तक जोरों से हिलाकर एक दूसरी शीशी में छान लें और छनित को ५ घन सेन्टीमीटर बना लें। उसमें फिर प्रतिकारक नं० २ का २·५ घन सेन्टीमीटर डालकर हिला लें। ३ मिनट के बाद देखें कि कितना अवक्षेप बना है।

यदि कोई अवक्षेप न बना हो अथवा अवक्षेप का केवल लेश हो तो मिट्टी में पोटेसियम की बड़ी कमी है। यदि अल्प अवक्षेप बना हो तो सामान्य रूप से कमी है। मध्यम अवक्षेप बना हो तो मध्यम कमी है और घना अवक्षेप बना हो तो पोटेसियम पर्याप्त है।

इस प्रकार से प्राप्त परिणामों में बहुत अन्तर देखा गया है। एक ही मिट्टी से भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न परिणाम प्राप्त हुए हैं। इस परीक्षण के लिए परीक्षक अनुभवी होना चाहिए।
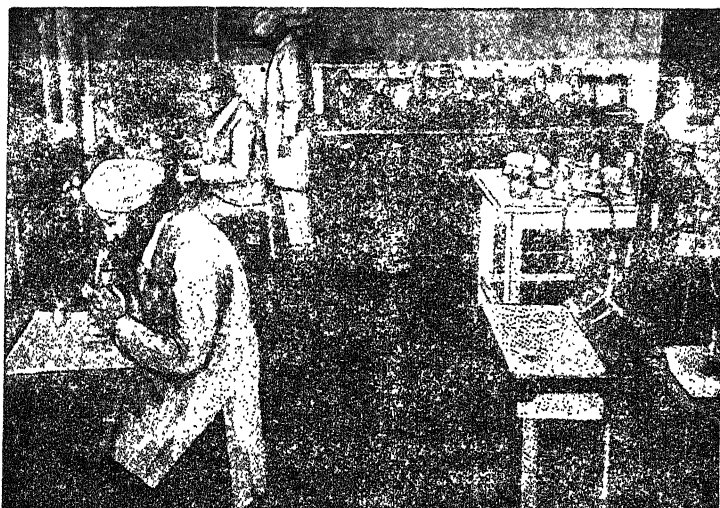
चित्र ५८—प्रयोगशाला में मिट्टी का परीक्षण

पौधा-ऊतक परीक्षण—कुछ अन्वेषकों का सुझाव है कि पोषक तत्त्वों की कमी का पता पौधों के ऊतकों के परीक्षण से भी लग सकता है। हौफर (१९२६) ने देखा है कि बढ़ते हुए मक्के डंठल के पर्वों के बीच के ऊतकों में नाइट्रेट का परीक्षण हो सकता है। ऊतक को काटकर उसपर डाइफेनिलेमिन की कुछ बूँदें डालने से यदि रंग धुंधला नीला हो जाय तो समझना चाहिए कि पौधे को पर्याप्त नाइट्रोजन प्राप्त होता है। यदि रंग कुछ पीलापन के साथ हरा हो तो नाइट्रोजन की कमी है। ऊतक पर फिर १० प्रतिशत पोटेसियम थायोसाइनेट और हल्के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की एक या दो बूँद डालने से यदि उसका रंग लाल हो जाय तो ऊतक में लोहा मौजूद है। लोहे की

उपस्थिति से पोटेसियम की कमी सूचित होती है। यदि इन परीक्षणों से नाइट्रोजन या पोटेसियम की कमी नहीं मालूम होती हो और तो भी पौधे की वृद्धि सन्तोषप्रद न होती हो तो समझना चाहिए कि फास्फरिक अम्ल की कमी है।

ऊतकों के विभिन्न भागों के परीक्षण से विभिन्न परिणाम प्राप्त हुए हैं, पर कुछ भागों के विश्लेषण से विश्वसनीय सूचनाएँ मिली हैं।

नाइट्रोजन के लिए प्रमुख डंठल और पत्रवृन्त (petioles) से सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त हुए हैं। फास्फरस के लिए भी प्रमुख डंठल और पत्र-वृन्त का परीक्षण हो सकता है। पोटेसियम के लिए घास या अनाज के पत्ते के निचले भाग, डंठल के मध्य भाग के निकट के भाग, के परीक्षण से अच्छा परिणाम प्राप्त होता है।

पौधाऊतक परीक्षण

नाइट्रोजन

प्रतिकारक नं० १—एक ग्राम डाइफेनिलेनिम को सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल के १०० घन सेन्टीमीटर में घुलाना चाहिए।

कार्यवाही—बड़े डंठलवाले पौधों के डंठल को अथवा पत्र-वृन्त को काट लेना चाहिए। यदि पौधे का डंठल छोटा है तो डंठल या पत्र-वृन्त से पतला बिम्ब (disc) काट लेना चाहिए। इसे फिर किसी काँच की शीशी में अथवा मोम कागज पर रखकर प्रतिकारक नं० १ को कुछ बूँदें डालकर उसके रंग का निरीक्षण करना चाहिए।

यदि उसका रंग धुँधला नीला है तो उसमें प्रचुर नाइट्रोजन की उपस्थिति सूचित होती है।

यदि रंग हल्का नीला है अथवा केवल हरा है तो उससे पर्याप्त नाइट्रोजन की उपस्थिति सूचित होती है।

यदि रंग बिलकुल न हो और पत्र का केवल हल्का हरा रंग हो तो नाइट्रोजन की कमी समझनी चाहिए।

फास्फरस

प्रतिकारक नं० १—अमोनियम मोलिबडेट के २ ग्राम को आसुत जल के २५० घन सेन्टीमीटर जल में घुलाकर उसमें धीरे-धीरे सान्द्र हाइड्रो-क्लोरिक अम्ल ३ घन-सेन्टीमीटर और जल २२० घन सेन्टीमीटर का मिश्रण डालकर बराबर हिलाते रहिए। ऐसा विलयन कई मास तक टिकता नहीं है। इसे तैयार कर कुछ दिन ही काम में ला सकते हैं।

प्रतिकारक नं० २—सूखा चूर्ण किया हुआ स्टेनस क्लोराइड अथवा स्टेनस औक्जेलेट।

कार्यवाही—डंठल या पत्रवृन्त के एक चमच को लेकर उसे किसी काँच-पात्र में रखकर उस पर प्रतिकारक नं० १ का १० घन सेन्टीमीटर डालकर एक मिनट तक जोरों से हिलाइए। आलपीन की नोक बराबर प्रतिकारक नं० २ पर डालिए। सबको मिश्रित कर उसके रंग का निरीक्षण कीजिए। प्रतिकारक नं० २ की अल्प मात्रा फिर डालकर निश्चित कर लीजिए कि उसकी मात्रा पर्याप्त है। अब रंग देखिए।

यदि उसका रंग धुँधला नीला हो जाता है तो उसमें फास्फरस प्रचुर मात्रा में उपस्थित है। यदि रंग मध्यम नीला है तो उसमें पर्याप्त फास्फरस है। यदि रंग हल्का नीला है तो फास्फरस मध्य मात्रा में है। यदि रंग हरा अथवा हरापन के साथ नीला है तो फारफरस की सामान्य कमी है और यदि रंग बिलकुल नहीं है अथवा पीला है तो फास्फरस की पर्याप्त कमी है।

नोट—जिस पौधे में बीज पूरे लग गये हैं उसमें यह विधि ठीक नहीं है। पर अन्य पौधों के लिए यह बिलकुल विश्वसनीय है।

पोटेसियम

प्रतिकारक नं० १—सोडियम कोबैल्टी नाइट्राइट के ५ ग्राम और सोडियम नाइट्राइट के ३० ग्राम को घुला कर उसमें ५ घन सेन्टीमीटर हिम्य ऐसिटिक अम्ल डालकर विलयन को १०० घन सेन्टीमीटर बनाइए और कई दिनों तक उसे रख छोड़िए। इस विलयन का ५ घन से० मी० १०० घन से० मी० आसुत जल में १५ ग्राम सोडियम नाइट्राइट के घुले विलयन में मिलाइए और ऐसिटिक अम्ल मिलाकर उसका पी एच ५·० कर लीजिए।

प्रतिकारक नं० २—९५ प्रतिशत एथिल एलकोहल।

कार्यवाही—पौधे के डंठल या पत्र-वृन्त के आधे चाय-चम्मच को लेकर उसे किसी काँचपात्र में रखकर उस पर १० घ० से० प्रतिकारक नं० १ डाल दीजिए। एक मिनट तक जोरों से हिला-डुला कर उसमें प्रतिकारक नं० २ का ५ घ० से० मी० डालिए। उसे फिर मिला लीजिए। तीन मिनट के बाद जो अवक्षेप बने उसे देखिए।

यदि कोई अवक्षेप नहीं बनता अथवा अवक्षेप का केवल लेश बनता है तो उसमें पोटेसियम की बड़ी कमी है।

यदि हल्का अवक्षेप बनता है तो पोटेसियम की अल्प कमी है। यदि अवक्षेप

मध्य बनता है तो पोटेसियम की मध्यम कमी है और यदि अवक्षेप घना बनता है तो पोटे-सियम पर्याप्त अथवा प्रचुर मात्रा में है।

हीनता के लक्षण

यदि पौधों को कोई तत्त्व पर्याप्त मात्रा में नहीं प्राप्त होता तो उनमें कुछ विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं। यदि मिट्टी में पर्याप्त पोषक तत्त्व हैं और वे पौधों को पूरे मिलते हैं तो पौधे उस खेत में बड़े अच्छे उपजते और स्वस्थ रहते हैं। यदि पौधों की उपज अच्छी नहीं होती तो उसके दो कारण हो सकते हैं। या तो पौधों को पोषक-तत्त्व पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते अथवा उनमें कोई रोग हो गया है। पोषक-तत्त्वों की पूर्ति के लिए खाद और उर्वरक डाला जा सकता है। यदि पौधों पर किसी रोग का आक्रमण हुआ है तो उसका निवारण करना चाहिए। रोगों के निवारण की अनेक औषधियाँ बनी हैं और कृषि-विभाग के कार्यकर्त्ता से सलाह लेकर उनका उपयोग करना चाहिए।

पोषक-तत्त्वों की कमी से जो विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं उनका वर्णन स्थान-स्थान पर पूर्व में हुआ है। अनेक वैज्ञानिकों ने इन लक्षणों का विशेष रूप से अध्ययन किया है और उनके निवारण का उपाय भी बतलाया है।

नाइट्रोजन की कमी के लक्षण

१. पौधों में फीका पीलापन लिये हरे रंग का होना।

२. पौधों की वृद्धि धीमी और कम होना।

३. पत्तियों का सूख जाना या 'जल जाना' जो कि पौधे के निचले भाग से आरम्भ होकर ऊपर की ओर बढ़ता है। अन्न और घास के पौधों में जल जाने की क्रिया निचली पत्तियों की नोक से आरम्भ होकर मध्य रेखा के साथ-साथ तने की ओर बढ़ती है।

४. पत्तियाँ जल्दी गिरने लगती हैं और पुरानी पत्तियाँ झड़ जाती हैं।

५. पौधों की शाखाएँ कम होतीं, उनमें कलियाँ कम लगतीं और अन्न कम होता है।

६. पौधे समय से पहले पक जाते हैं।

७. पौधों की कलियों का खुलना, पत्तियों और फूल का लगना देर से होता है।

८. बीज औसत आकार से छोटे रह जाते हैं और भार में हलके तथा सिकुड़े दिखाई देते हैं।

फास्फरस की कमी के लक्षण

फास्फरस की कमी से प्राय: उसी प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं जैसे नाइट्रोजन की कमी के लक्षण होते हैं।

१. पौधों की वृद्धि धीमी होती है। शाखाएँ कम निकलतीं तथा कलियाँ सूख जातीं और विकसित नहीं होतीं।

२. पौधों के तने निर्बल और मुलायम होते हैं।

३. पौधों की जड़ें अविकसित होती हैं।

४. मक्का के पौधों में डंठल छोटे और मुलायम होते हैं।

५. अनाज और फल देर से पकते हैं।

६. मोटी किस्म के अनाज में गूदा कम होता है।

७. अनाज, फल और बीज की उपज कम होती है।

उपर्युक्त लक्षण नाइट्रोजन की कमी के लक्षणों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। उनमें कुछ अन्तर भी है। फास्फरस की कमी से पत्तियों के रंगों में कुछ अन्तर हो जाता है। वह अन्तर सूक्ष्म होता है। अनुभवी मनुष्य ही जान सकता है कि रंग का अन्तर नाइट्रोजन की कमी के कारण है अथवा फास्फरस की कमी के कारण। फलों का गूदा मुलायम होता और फल खट्टे होते हैं। ऐसे फल अधिक समय तक नहीं टिकते।

पोटाश की कमी के लक्षण

१. पत्तियों का मुड़ना और उनकी निचली सतह पर धब्बा, चित्ती या धारी पड़ना।

२. निचली पत्तियों का किनारे या सिरे पर जलना या झुलसना। ये मुर्दा भाग टूटकर गिर पड़ते हैं जिससे पत्तियों के किनारे कटावदार हो जाते हैं। अन्न और घास की फसलों में पत्तियों की नोक से जलना आरम्भ होता है और मध्य रेखा को हरा छोड़ते हुए नीचे तक चला जाता है।

३. पत्तियों का समय से पहले पतन होता है। कपास ऐसे पौधों पर बौड़ियों का छोटी और गँठीली होना तथा पूरी तरह न खिलना।

४. अविकसित जड़ों के कारण मक्का के सदृश पौधों का पकने से पहले भूमि पर गिर पड़ना।

५. पौधों की वृद्धि का कम होना, उनमें शाखाएँ कम और पतली होना। यदि

कमी बहुत अधिक है तो अन्तिम छोर की वृद्धि बिल्कुल रुक जाती और अन्त में पौधे मर जाते हैं।

६. दो गाँठों के बीच का स्थान कम हो जाता है। अनाज और फल भी कम लगते हैं।

कैलसियम की कमी के लक्षण

१. पत्तियाँ झुर्रीदार दिखाई देती हैं।

२. जोड़ की कली की कोमल पत्तियाँ अंकुश को तरह दिखाई देती हैं और उनकी नोक तथा किनारे मुर्झा जाते हैं।

३. कुछ दशाओं में नवीन पत्तियाँ मुड़ी हुई ही रह जाती हैं।

४. जड़ें छोटी और बहुत अधिक शाखाओं वाली होती हैं।

सूचक-पौधों का उपयोग —

कुछ ऐसे पौधे हैं जिन पर पोषक तत्त्वों की कमी का प्रभाव जल्द और अधिक स्पष्ट देख पड़ता है। ऐसे पौधों को सूचक के रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं। खेतों में इन पौधों को बो कर देखते हैं कि उनमें किसी तत्त्व की कमी के लक्षण प्रकट होते हैं अथवा नहीं। यदि प्रकट होते हैं तो उसकी पूर्ति के लिए विशिष्ट उर्वरकों को इस्तेमाल करते हैं।

सूचक पौधे और उनमें कमी के विशिष्ट लक्षण

तत्त्व की कमी	सूचक पौधे	विशिष्ट लक्षण
नाइट्रोजन	फूलगोभी, पातगोभी ब्रोकोलाई (एक प्रकार की फूलगोभी) और खीरा	वृद्धि रुकी हुई; पौधे के लम्बा होने की प्रवृत्ति; पत्तियाँ हलकी हरी, क्रमशः पीली, नारंगी और लाल होती हुई और कभी कभी नीलारुण आभावाली होती हैं।
फास्फरस	तोरिया, केला, शलजम	वृद्धि रुकी हुई; डंठल पतला; रंग धुँधला नीलारुण जो पीछे लाल या नारंगी हो जाता है; पत्तियों का समय से पहले गिरना; पहले पुरानी पत्तियाँ गिरती हैं।

तत्त्व की कमी	सूचक पौधे	विशिष्ट लक्षण
पोटेसियम	फूलगोभी और केला	वृद्धि रुकी हुई; पत्तियाँ नीलापन के साथ हरी, किनारी झुलसी हुई और दल (laminae) अन्दर की ओर ऐंठा हुआ पर झुलसी किनारी आगे की ओर ऐंठी हुई।
	आलू, सेम, फूलगोभी, खीरा, केला	आलू की पत्तियों के निचले तल पर दाग; किनारे और छोर मुर्झाये हुए; पत्तियों का रंग कुछ नीला-पन के साथ हरा और रेशों के बीच बीच में पीतता जिससे पत्तियाँ काँसे-जैसी हो जाती हैं।

भारत में सूचक पौधों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। इस पर अनुसन्धान होना आवश्यक है। और भी ऐसे पौधे पाये जा सकते हैं जिनसे पोषक तत्त्वों की कमी का पता लग सकता है।

पौधों के भागों का वर्णक्रम लेखीय परीक्षण

इधर वर्णक्रम-लेखीय परीक्षण से पोषक तत्त्वों की कमी का पता सरलता से लग जाता है। पौधों के कुछ भागों को जलाकर राख बनाते हैं और उस राख का वर्णक्रम-लेखी से विश्लेषण करते हैं। राख को कार्बन विद्युदग्र के कोटर में रखकर चाप उत्पन्न करते हैं और उस चाप के प्रकाश को पर्याप्त समय तक वर्णक्रम-लेखीय पट्ट पर पड़े रहने के पश्चात् पट्ट के धोने से तत्त्वों की विशिष्ट रेखाएँ विकसित होती हैं और एक प्रमाप वर्णक्रम से तुलना कर पता लगाते हैं कि कौन-कौन तत्त्व उसमें विद्यमान हैं। रेखा की तीव्रता से कुछ सीमा तक तत्त्वों की प्रतिशतता भी निर्धारित की जा सकती है। घनता-मापी द्वारा रेखा-घनता की माप भी कर सकते हैं। ऐसा घनता-मापी वर्णक्रम-लेखी में दिया हुआ रहता है। यह विधि थोड़े समय से ही व्यवहार में आयी है। मिचेल द्वारा इसका वर्णन १९४७ में हुआ और उससे जल्दी और सरलता से मिट्टी में पोषक तत्त्वों की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है।

खेतों में फसल उगाकर कमी का परीक्षण

आजकल खेतों में फसल उगाकर भी पता लगाते हैं कि खेत में पौधों की वृद्धि किस ढंग से हो रही है। खेतों में वृद्धि सन्तोषजनक है अथवा नहीं और यदि सन्तोष-

जनक नहीं है तो उससे फसलों में कैसे विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं। उन लक्षणों से पोषक तत्त्वों की कमी का पता सरलता से लग जाता है। इसमें दोष यह है कि प्रत्येक किस्म की मिट्टी पर ऐसा प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है। बिना ऐसा किये परिणाम सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता। ऐसे प्रयोग के लिए कृषिविज्ञान के किसी कर्मचारी की सहायता कम से कम प्रारम्भ में लेना आवश्यक है। अनुभव हो जाने पर सामान्य किसान भी ऐसे प्रयोगों से आवश्यक परिणाम् निकाल सकता है।

परिशिष्ट

माप

क्षेत्रफल और दूरी-सूचक

१ मीटर = ३७·३७ इंच
१ मीटर = १·०९३६ गज
१ एकड़ = ४८४० वर्गगज
१ हेक्टेयर = २·४७१ एकड़
१ गज = ०·९१४४ मीटर
१ फुट = ०·३०४८ मीटर
१ एकड़ = ०·४०४७ हेक्टेयर

भार-सूचक

१ पौण्ड = ०·४५३६ किलोग्राम
१ छोटा टन = ०·९०७२ मेट्रिक टन
१ बड़ा टन = १·०१६१ मेट्रिक टन
१ किलोग्राम = २·२०४६ पौण्ड
१ मेट्रिक टन = २२०४·६ पौण्ड
१ मेट्रिक टन = १·१०२३ छोटा टन
१ मेट्रिक टन = ०·९८४२ बड़ा टन

धरिता-सूचक

१ बुशेल = ३६·२८ लिटर (ब्रिटिश)
= ३५·२४ लिटर (अमेरिकी)
१ गैलन = ४·५४६१ लिटर (ब्रिटिश)
= ३·७८५३ लिटर (अमेरिकी)
१ क्वार्ट = १·१३६५ लिटर (ब्रिटिश)
= ०·९४६३ लिटर (अमेरिकी)

१ लिटर = ०·०२७५ बुशेल (ब्रिटिश)
= ०·०२८४ बुशेल (अमेरिकी)
= ०·२२०० गैलन (ब्रिटिश)
= ०·२६४२ गैलन (अमेरिकी)
= ०·८८०० क्वार्ट (ब्रिटिश)
= १·०५६६ क्वार्ट (अमेरिकी)

कुछ तत्त्वों के अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु-भार

तत्त्व	संकेत	परमाणु-भार
एल्यूमिनियम	Al	२६·९७
बोरन	B	१०·८२
कैलसियम	Ca	४०·०८
कार्बन	C	१२·०१
क्लोरीन	Cl	३५·४५७
कोबाल्ट	Co	५८·९४
ताँबा	Cu	६३·५७
फ्लोरीन	F	१९·००
हाइड्रोजन	H	१·००८
लोहा	Fe	५५·८५
आयोडीन	I	१२६·९२
नाइट्रोजन	N	१४·००८
आक्सिजन	O	१६·००
मैंगनीज	Mn	५४·९३
मैगनीशियम	Mg	२४·३२
फास्फरस	P	३०·९८
पोटेसियम	K	३९·०९६
सिलिकन	Si	२८·०६
सोडियम	Na	२२·९९७
गन्धक	S	३२·०६
जस्ता	Zn	६५·३८

मानव मूत्र में ठोस अवयव

एक मनुष्य प्रति दिन औसत १·५ लिटर मूत्र निकालता है जिसमें ठोस अवयव ६० ग्राम रहता है। इसमें २५ ग्राम अकार्बनिक पदार्थ और ३५ ग्राम कार्बनिक पदार्थ रहते हैं।

अकार्बनिक पदार्थ, समस्त २५ ग्राम		कार्बनिक पदार्थ, समस्त ३५ ग्राम	
नमक (Na Cl)	लगभग १५.० ग्राम	यूरिया	लगभग ३०·० ग्राम
फास्फरिक अम्ल (P_2O_5)	,, २·५ ,,	यूरिक अम्ल	,, ०·७ ,,
सलफ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4)	,, २·५ ,,	क्रियेटिनिन	,, १·५ ,,
पोटेसियम (K_2O)	,, ३·३ ,,	हिप्युरिक अम्ल	,, ०·७ ,,
अमोनिया (NH_3)	,, ०·७ ,,	अन्य कार्बनिक पदार्थ	,, २·१ ,,
कैलसियम (CaO)	,, ०·३ ,,		
मैगनीशियम (MgO)	,, ०·५ ,,		
अन्य खनिज अवयव	,, ०·२ ,,		

प्रति मनुष्य मल और मूत्र की औसत मात्रा (वोगेल द्वारा)

	प्रति दिन			प्रति वर्ष		
	मल ग्राम	मूत्र ग्राम	समस्त ग्राम	मल किलो-ग्राम	मूत्र किलोग्राम	समस्त किलोग्राम
नैसर्गिक अवस्था	११३·०	१२००·०	१३३३·०	४८·५०	४३८·००	४८६·५०
समस्त सूखा पदार्थ	३०·३	५४·०	८४·३	११·१०	१९·७०	३०·८०
कार्बनिक पदार्थ	२६·१	३९·६	६५·७	९·५०	१४·५०	२४·००
राख	४·२	१४·४	१८·६	१·५०	५·३०	६·८०
जिसमें						
नाइट्रोजन	१.७	९·६	११·३	०·६२	३·५०	४·१२
फास्फरिक अम्ल	१.५	१·९	३·४	०·५५	०·६९	१·२४
पोटाश	०.५	२·३	२·८	०·१८	०·८४	१·०२
चूना	०.८	०·२	१·०	०·२९	०·०८	०·३७

भारत में आहार के रूप में नाइट्रोजन की आवश्यकता

आबादी	प्रति दिन प्रति व्यक्ति उपयोग	प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति उपयोग	वर्ष में समस्त आबादी की नाइट्रोजन की आवश्यकता
३५३,०००,०००	१२ ग्राम	९·६६ पौण्ड	१,५२२,३१२ टन

पारिभाषिक शब्दावली और अनुक्रमणिका